SOCIAL AND CULTURAL LIFE AS REFLECTED IN THE HISTORICAL SANSKRIT LITERATURE OF KASHMIR (C. 1000 A. D. TO 1200 A. D.)

कश्मीर के ऐतिहासिक संस्कृत साहित्य में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन (1000 ई. से 1200 ई. तक)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल्. उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध
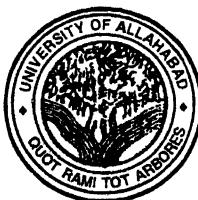
निर्देशक
डॉ. ए. पी. ओझा

शोध-छात्र
सन्त कुमार मिश्र

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ० प्र०)

२०००

प्रस्तावना

सातवी से बारहवी शती ई० के मध्य का काल अथवा पूर्वमध्यकाल भारतीय इतिहास मे परिवर्तन या उथल-पुथल का काल माना जाता है। जिसमे न केवल नवीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है अपितु मुस्लिम आक्रमण के कारण जो परिवर्तन आये उनकी स्पष्ट झलक मध्यकाल मे देखी जा सकती है। प्राचीन भारतीय इतिहास के सस्कृत साहित्य मे कश्मीरी विद्वानो के योगदान को नजरअदाज नही किया जा सकता, फिर कश्मीरी महाकवि कल्हण को तो निर्विवाद रूप से ऐसा भारतीय इतिहासकार माना जाता है जिसकी तुलना किसी अन्य भारतीय से नही की जा सकती, अस्तु पूर्वमध्यकाल के इस चरण मे उपलब्ध **कश्मीरी ऐतिहासिक सस्कृत साहित्य में प्रतिबिम्बित सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन** को शोध का विषय चुना गया है।

विभिन्न विद्वानो की पुस्तको से आलोच्यकाल के अन्य पक्षो के साथ-साथ सामाजिक एव सास्कृतिक इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इनमे एम० ए०, स्टेइन, डॉ० रघुनाथ सिह, प० रामतेजशास्त्री पाण्डेय की राजतरङ्गिणी पर समालोचना एव हिन्दी अनुवाद, सूर्यकान्त की 'क्षेमेन्द्र स्टडीज', बी० एन० शर्मा की **सोशल ऐण्ड कल्चरल लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया फ्राम सिक्स्थ टू ट्वेल्थ सेन्चुरी ए०डी०,** बी० एन० एस० यादव जी की **'सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेंन्चुरी ए०डी०'**, कृष्णा मोहन की **अर्ली मेडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर,** आर० एस० शर्मा की **'पूर्वमध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन'** उल्लेखनीय है, परन्तु आलोच्यकालीन कश्मीरी विद्वानो के ऐतिहासिक ग्रथों को आधार मानकर अभी तक कोई ऐसा अध्ययन प्राप्त नही होता। अत: प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इस दिशा मे एक विनम्र प्रयास है, यद्यपि समय, साधन, श्रम की अल्पता के कारण इसे कश्मीरी समाज तक ही सीमित रखा गया है।

बाल्यकाल से अग्रज—डॉ० दुर्गाप्रसाद मिश्र—रीडर संस्कृत विभाग, मेरठ कालेज, मेरठ—ने सानिध्य प्रदान कर न केवल चरित्र निर्माण मे सहायता प्रदान की अपितु अत्यन्त उपयोगी संस्कृत ग्रथो के अध्ययन का सुअवसर प्रदान किया, फलस्वरूप मन में सस्कृत साहित्य के प्रति एक लगाव सा हो

गया। अपने शोध विषय के चयन की जिज्ञासा जब मैने गुरुवर्य प्रोफेसर डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डे-भूतपूर्व विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से व्यक्त की तब उन्होंने यद्यपि मुझे महाकवि कल्हण का नाम सुझाया किन्तु स्पष्ट मार्गदर्शन हेतु जिन महानुभाव की ओर संकेतित किया, यदि उन्होंने मुझे अपनाकर विविध प्रकार की सहायता न प्रदान की होती तो शायद शोध करना मेरी कपोल-कल्पना ही रह जाती। ऐसे विद्वान मनीषी, निर्देशक डॉ० ए०पी० ओझा जी द्वारा प्रदत्त प्रेरणा, प्रोत्साहन एव सम्बल के लिए मै उनका सदैव आभारी रहूँगा।

प्रोफेसर वी० डी० मिश्र-विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद एव प्रोफेसर डॉ० ओमप्रकाश तथा प्रोफेसर डॉ० जे० एन० पाण्डेय जी द्वारा दिये गये बहुमूल्य सुझावो के लिये मै उनका हृदय से आभार मानता हूँ। अन्य विभागीय गुरुजन-वृन्द—डॉ० आर० पी० त्रिपाठी, डॉ० ओ० पी० श्रीवास्तव, डॉ० एच० एन० दूबे, डॉ० डी० पी० दूबे, डॉ० हर्ष कुमार द्वारा प्रदान किये गये मार्गदर्शन के लिए उन सबके प्रति सादर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। डॉ० शङ्करदयाल द्विवेदी रीडर सस्कृत विभाग, इ० वि० वि०, डॉ० जटा शङ्कर त्रिपाठी-रीडर, दर्शनशास्त्र विभाग, इ० वि० वि० का भी मै अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होने सदैव मुझे कार्य के प्रति सचेष्ट बनाये रखा।

डीन, कला सकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद द्वारा टकण हेतु प्रदत्त आर्थिक सहायता के लिए मै उनका अभारी हूँ तथा पुस्तकालयाध्यक्षो—इलाहाबाद विश्वविद्यालय, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, कम्पनीबाग, इलाहाबाद चौधरी चरणसिह विश्वविद्यालय मेरठ, मेरठ कालेज, मेरठ, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली तथा विभागीय पुस्तकालय प्रमुख श्री सतीश चन्द्र राय जी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ जिनके पुस्तकीय सहयोग के बिना मेरा कार्य कदापि संभव न हो पाता। मैं श्री जगदीश नारायण दूबे जी, श्री राधेरमण पाण्डेय जी, श्री अवधनारायण तिवारी जी तथा श्री सुधीर कुमार मिश्रजी द्वारा प्रदत्त विविध सहयोग एवं प्रोत्साहन के लिए आभारी हूँ।

प्रात स्मरणीया माताजी एव पिता श्री शिवचरण मिश्र जी ने जन्म देकर जो कृपा की उसके प्रति आभारोक्ति अकथनीय है किन्तु पूज्य अग्रज डॉ० दुर्गाप्रसाद मिश्र जी ने पुत्रवत् लालन-पालन करके आज की स्थिति तक पहुँचाकर जो उपकार किया, वह अव्यक्त है। आदरणीया भाभी श्रीमती रञ्जना मिश्रा ने मातृवत् स्नेह एव मानिध्य प्रदानकर कार्य सम्पादन मे जो अतुलनीय सहयोग दिया है उसके लिए मै दोनो के प्रति श्रद्धावनत हूँ। प्रिय पूजा ने जो अनुराग तथा चिरजीव शिवम् ने अपनी बालसुलभ क्रीडाओ से मन को जो प्रसन्नता प्रदान की, उनके लिए मै उनका चिरऋणी रहूँगा।

अन्त मे शुद्धता एव शीघ्रतापूर्वक टकण कार्य करने वाले त्रिपाठी कम्प्यूटर्स के स्वामी श्री कमल त्रिपाठी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना मै अपना कर्तव्य समझता हूँ। प्रस्तुत शोध ग्रथ पाठको के लिए किञ्चिद्मात्र ज्ञानवर्धक सिद्ध हो मका तो मै अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

सन्तकुमार मिश्र

सन्तकुमार मिश्र

शोध-छात्र

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

कश्मीर के प्रमुख ऐतिहासिक संस्कृत ग्रंथ एवं उसका भौगोलिक स्वरूप

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक स्थिति

तृतीय अध्याय

आर्थिक स्थिति

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक स्थिति

पञ्चम अध्याय

सामाजिक स्थिति

षष्ठ अध्याय

सांस्कृतिक जीवन

सप्तम अध्याय

संकेत शब्द-सूची

अनु०	=अनुवाद, अनुवादक
अ०	= अध्याय
अर्थ०	= अर्थशास्त्र-कौटिल्य कृत
अपरा०	= अपराजितपृच्छा-भुवनदेव कृत
अमर०	= अमरकोश
अभिधान०	= अभिधानचिन्तामणि
आर्क्या० सर्वे०	= आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
आख्या०	= आख्याकमणिकोश
अवदान०	= अवदानकल्पलता-क्षेमेन्द्र कृत
आर्क्या० सर्वे० रि०	= आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिव्यू
इ० हि० क्वा०	= इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
इं० ऐ०	= इण्डियन ऐन्टिक्वेरी
इपि० इण्डि०	= इपिग्राफिया इण्डिका
इ० हि० रि०	= द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू
इण्डि० फ्यू०	= इण्डियन फ्यूडलिज्म
इलि० एण्ड डाउ०	= इलियट ऐण्ड डाउसन
ऋक्०	= ऋग्वेद

ऐत० ब्रा०	= ऐतरेय ब्राह्मण
कथा०	= कथासरित्सागर—सोमदेव कृत
कला०	= कलाविलास—क्षेमेन्द्र कृत
क०	= कम्पनी
कृत्य०	= कृत्यकल्पतरु लक्ष्मीधर कृत
कात्या०	= कात्यायन स्मृति
का० मा० सि०	= काव्यमाला सिरीज
का० इ० इ०	= कार्पस इस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम
गृ० सू०	= गृह्य सूत्र
गा० ओ० सि०	= गायकवाड ओरिएन्टल सिरीज
गौतम०	= गौतम धर्मसूत्र
जन० एशि० सोसा० वगाल	= जर्नल ऑव एशियाटिक सोसा इटी ऑव बगाल
दशा०	= दशावतारचरित—क्षेमेन्द्र कृत
देशो०	= देशोपदेश—क्षेमेन्द्र कृत
नर्म०	= नर्ममाला—क्षेमेन्द्र कृत
नारद०	= नारदस्मृति
नीलमत०	= नीलमतपुराण
पराशर०	= पराशरस्मृति
पब्लि०	= पब्लिसिग

पृ०	= पृष्ठ
पा० टि०	= पाद टिप्पणी
पूर्वो०	= पूर्वोद्धृत
बोधा०	= बोधायनधर्मसूत्र
बोधि०	= बोधिसत्त्वावदानकल्पलता—क्षेमेन्द्र कृत
मनु०	= मनुस्मृति
महा०	= महाभारत
याज्ञ०	= याज्ञवल्क्यस्मृति
राज०	= राजतरङ्गिणी अनु० रामतेजशास्त्री पाण्डेय
लोक०	= लोकप्रकाश—क्षेमेन्द्र कृत
वशि० धर्म०	= वशिष्ट धर्मसूत्र
विष्णु०	= विष्णुपुराण
विक्रम०	= विक्रमाङ्कदेवचरित—बिल्हण कृत
वि० ध० पु०	= विष्णु धर्मोत्तर पुराण
वृहद०	= वृहन्नारदीयपुराण
वृहदा०	= वृहदारण्यकोपनिषद्
श० ब्रा०	= शतपथ ब्राह्मण
शुक०	= शुक्रनीतिसार
सम्पा०	= सम्पादक, सम्पादित
स्टेइन	= एम० ए० स्टेइन का राजतरङ्गिणी अनुवाद

समय०	= समयमातृका—क्षेमेन्द्र कृत
से० इ०	= सेलेक्ट इस्क्रिप्शस—डी०सी० सरकार
सोसाइटी	= सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेंचुरी ए०डी०-बी०एन०एस० यादव
सोशल	= सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया (फ्राम १००० ई० से १२०० ई०)—बी० एन० शर्मा
त्रिशष्टि०	= त्रिशष्टिशलाकापुरुष चरित
श्रीकण्ठ०	= श्रीकण्ठचरित—मखक कृत

प्रथम अध्याय

कश्मीर के प्रमुख ऐतिहासिक संस्कृत ग्रंथ एवं उसका भौगोलिक स्वरूप

- क्षेमेन्द्र के विविध ग्रंथ, सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर', बिल्हणकृत 'विक्रमाङ्कदेवचरित', शम्भुकवि कृत 'राजेन्द्रकर्णपूर', मंखक कृत 'श्रीकण्ठचरित', एवं कल्हण कृत 'राजतरङ्गिणी'।

- पर्वत एवं मार्ग, नदियाँ एवं तालाब

प्रथम अध्याय

प्रमुख कश्मीरी संस्कृत ग्रन्थ एवं उनका भौगोलिक परिवेश

भारतवर्ष की सबसे प्राचीन भाषा सस्कृत मानी जाती है अत भारतीय समाज एव सस्कृति के विषय मे समुचित जानकारी के लिये सस्कृत साहित्य का अध्ययन अति आवश्यक है। यद्यपि सस्कृत के अनेक ग्रथो व ग्रथकारो के काल-निर्धारण के सन्दर्भ मे आज भी विद्वानो मे मतभेद है क्योकि अतीत को सही रूप मे खोज निकालना तब कठिन हो जाता है जब अभीष्ट विषय पर प्रामाणिक सूचनाएँ सुरक्षित नही मिलती, किन्तु ह्विटने महोदय द्वारा सस्कृत व्याकरण मे लिखा वाक्य 'भारतीय साहित्य मे दी हुई सारी की सारी तिथियाँ कागज मे लगायी गई उन पिनो के समान है जो फिर से निकाल ली जाती है।' अतिशयोक्तिपूर्ण है। **डॉ० सूर्यकान्त** ने लिखा है कि 'भारतीय सभ्यता व सस्कृति की महत्ता पर किसी को भी सदेह नही हो सकता किन्तु खेद की बात यह है कि प्राचीन एव मध्यकालीन सस्कृत साहित्य मे एक भी ग्रथ विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक नही है—जिसमे तिथियो व घटनाओ का अतिशयोक्तिपूर्ण एव कल्पना से रहित वर्णन दिया गया हो।'[१]

भारतीय आदर्श के अनुसार इतिहास का उद्देश्य केवल तिथियो व घटनाओ का वर्णन न होकर जीवन के शाश्वत सिद्धान्तो को महापुरुषो मे चरितार्थ करते हुए राष्ट्र का सास्कृतिक उत्थान प्रदर्शित करना रहा है। संस्कृत साहित्य मे लौकिक घटनाओं के इतिहास की रचनाये है ही नही ऐसा नही कहा जा सकता क्योकि पुराणो मे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक जीवन के संकेत स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते है।[२] बौद्ध एव जैन ग्रथो मे ऐतिहासिक व्यक्तियो का उल्लेख, प्राचीन राजाओ की प्रशस्तियो एवं अभिलेखों मे ऐतिहासिक तथ्यो का विवरण तथा काव्यो में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री सस्कृत साहित्य मे ऐतिहासिक भावना के आत्यन्तिक अभाव का निराकरण करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

संस्कृत साहित्य मे जो भी ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है उनमे भी ऐतिहासिक

---

१ **'सस्कृत वाड्मय का विवेचनात्मक इतिहास'** ए०वी०कीथ अनु० डॉ० मगलदेव शास्त्री, प्रस्तावना

२ **सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च। वशानुचरितं चैव पुराणम् पञ्चलक्षणम्॥**

तथ्यो की अपेक्षा भाषा-सौष्ठव, वर्ण-वैचित्र्य तथा आलकारिक शैली को प्रधानता दी गई है, जबकि होना इसके विपरीत चाहिए था। ये सभी ग्रथकार राज्याश्रित थे जिनमे कवित्त्व भावना तथा अपने आश्रयदाता को सन्तुष्ट करने की प्रवृत्ति थी। अत सत्य किन्तु आश्रयदाता को अरुचिकर बाते ग्रथो मे समाविष्ट नही हो पाती थी। सस्कृत साहित्य मे इतिहास-विषयक उपलब्ध सामग्री को चार वर्गो मे विभाजित किया गया है।[३]

(अ) कुछ ग्रथकारो द्वारा वर्णित किन्तु सम्प्रति अनुपलब्ध पूर्ववर्ती ऐतिहासिक ग्रंथ

(ब) ताम्रपत्रों, अभिलेखों, प्रशस्तियों आदि मे प्राप्त सामग्री

(स) रामायण, महाभारत, पुराणादि

(द) काव्यपरक ऐतिहासिक ग्रथ —इसी वर्ग के अन्तर्गत लिखित सामग्री विशुद्ध ऐतिहासिक है जिसमे कोई भी काट-छाँट किये बिना भारतीय इतिहास के निर्माण मे पर्याप्त सहायता प्राप्त की जा सकती है।

भारत मे प्राचीनकाल से लेखन की समृद्ध परम्परा होने के बावजूद उस पर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि यहाँ इतिहासकारो का तथा ऐतिहासिक भावना का अभाव रहा है, परन्तु इसके विरोध मे बहुत कुछ सत्यता के साथ, कुछ समय से ऐसा कहा जाता है कि कुछ लेखो व तथ्यो के आधार पर भारत की ऐतिहासिक बुद्धि को सिद्ध किया जा सकता है। ए० बी० कीथ [३अ] के अनुसार भारतीय साहित्य के प्राचुर्य होने पर भी इतिहास विषयक ग्रथो का ऐसा अत्यन्त अभाव है तथा सस्कृत साहित्य के समस्त बड़े काल मे एक भी ऐसा लेखक नही है जिसको हम वास्तव मे एक विवेचक इतिहासकार कह सके। महाकवि कल्हण ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसको हम एक सच्चे इतिहासकार के अत्यन्त समीप तक पहुँचने वाला कह सकते है किन्तु उसकी भी तुलना यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस से नही की जा सकती। इसका प्रमुख कारण भारतीयो मे इतिहास के प्रति जागरुकता की कमी थी। एम० ए० स्टेइन [३ब] ने भारतवर्ष में राष्ट्रीय भावना के अभाव को भारतीय इतिहास लेखन के मार्ग मे प्रमुख

---

३ **"अर्ली मेडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर"** कृष्णा मोहन- दिल्ली १९८१, प्रस्तावना पृ० ६, सूर्यकान्त-क्षेमेन्द्र **स्टडीज**-पूना, १९५४ पृ० १६

३अ **'संस्कृत साहित्य का इतिहास**-अनु० मगलदेव शास्त्री-पृ०' १८०

३ब राजतरङ्गिणी अनुवाद-I-२८

बाधक तत्त्व माना है। भारतीयो के मानसपटल पर कर्म के सिद्धान्त का प्रभाव, यौगिक शक्तियो व सन्त-महात्माओ की प्रवृत्ति मे विश्वास, विशेष की अपेक्षा सामान्य के प्रति भारतीयो की अधिक रुचि तथा ऐतिहासिक तथ्यो के यथार्थ अकन की अपेक्षा आश्रयदाता की प्रसन्नता को महत्त्व देने को भी भारतीय इतिहास लेखन मे बाधा माना जा सकता है।

कल्हण महोदय ने अपने काव्य प्रणयन मे अपने पूर्ववर्ती ग्यारह विद्वानो के ग्रंथो का उपयोग किया किन्तु उन्हे इतिहास की दृष्टि से अपर्याप्त मानते हुए अपने ग्रथ की प्रामाणिकता के लिये देवमन्दिरो, स्मारको, महलो, ताम्रपत्रो, भूमिदानो तथा प्रशस्तियो के रूप मे लिखित अभिलेखो, सिक्को, स्थानीय अनुश्रुतियो तथा अपने पिता व अन्य लोगो के अनुभवो का उपयोग किया। इसीलिए कीथ मे लिखा है कि भारत मे कल्हण की कृति के साथ तुलना करने के योग्य कोई दूसरा ग्रथ नही है।[३स]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे कल्हण की कालजयी कृति राजतरङ्गिणी को प्रमुख स्रोत के रूप मे प्रयोग किया गया है किन्तु विवेच्यकालीन कश्मीरी सस्कृत साहित्य मे अनेक ऐसे ग्रथ है जो यद्यपि ऐतिहासिक नही है किन्तु उनमे यत्र-तत्र ऐसी बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है, जो कश्मीरी समाज के स्पष्ट पक्ष को प्रस्तुत करने मे बहुत महत्त्वपूर्ण है, अत· ऐसे ग्रथो का भी उपयोग किया गया है।

१००० ई० से १२०० ई० के मध्य के प्रमुख कश्मीरी संस्कृत ग्रंथ

क्षेमेन्द्र के विविध ग्रंथ

कश्मीर नरेश अनन्त (१०२८-१०६३ ई०) तथा उनके पुत्र कलश (१०६३-१०८९ ई०) के राज्य काल मे क्षेमेन्द्र की जीवनलीला व्यतीत हुई। अपनी तुलनात्मक शैली, मतों की स्पष्ट अभिव्यक्ति,व्यग्य-लेखन की उत्तम शक्ति तथा आलोचक अन्तर्दृष्टि के कारण भारतीय साहित्य परम्परा मे वे महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।[४] सम्पूर्ण क्षेत्रों मे लेखन कार्य करने के कारण इनकी उपाधि व्यासदास उचित प्रतीत होती है, किन्तु इनकी कृतियों को लेकर विद्वानो मे मतभेद है। पी० वी० काणे[५] इनकी कृतियो की संख्या

३स कीथ-पूर्वो०पृ० २७६

४ बेनी प्रसाद **द स्टेट्स इन ऐन्शिएन्ट इण्डिया** इलाहाबाद, १९२८, पृ० ४३५

५ काणे- **'हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र'** पूना १९३०-१९५३-खण्ड I पृ० १३२-१३३

चालीस मानते है। राजतरङ्गिणी मे इनकी एकमात्र ऐतिहासिक किन्तु अप्राप्य कृति-नृपावली का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने नृपावली नामक इतिहास ग्रथ लिखा जो काव्य की दृष्टि से उत्तम रचना थी किन्तु ग्रन्यकर्ता की असावधानी के कारण उसका कोई भी अश निर्दोष न बच सका।[६] डॉ० सूर्यकान्त [७] ने क्षेमेन्द्र की सम्पूर्ण कृतियो की सख्या उन्नीस मानते हुए उन्हे चार वर्गो मे विभाजित किया है।

अत क्षेमेन्द्र की सम्पूर्ण उपलब्ध कृतियो मे प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री को बडी सावधानीपूर्वक अन्य प्रामाणिक ग्रथो से पुष्ट करके ग्रहण किया जाना चाहिए क्योकि प्राचीन भारतीय विद्वानो मे समाज का वर्णन अपने काव्यात्मक ग्रथो के माध्यम से किये जाने की परम्परा सदैव से रही है। ए० वी० कीथ[८] के अनुसार—क्षेमेन्द्र अपने सक्षेपो मे रोचकता लाने के प्रयत्न के स्थान मे अपनी रचनाओ की रूक्षता को दूर करने की दृष्टि से बीच-बीच मे, सुन्दर वर्णनो का समावेश करना पर्याप्त समझते है परन्तु इन वर्णनो का कोई महत्त्व नही है। इनसे कोई प्रयोजन सिद्ध न होकर ग्रथो का केवल आकार बढ जाता है। क्षेमेन्द्र के प्रमुख ग्रन्य निम्नवत् है, जिनका सक्षेप उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

१. रामायणमञ्जरी तथा भारतमञ्जरी—क्षेमेन्द्र ने १०३७ ई० मे अपनी पहली कृति रामायणमञ्जरी की रचना की थी। ए० वी० कीथ[९] ने इनकी दो अन्य रचनाओ भारतमञ्जरी तथा वृहत्कथा मञ्जरी को इनके यौवनकाल की रचनाये मानते हुए लिखा है कि जो कवि बनना चाहता है उसे पहले रचना का इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए। इन रचनाओ से उनके समकालीन सस्कृत महाकाव्यो की स्थिति की जानकारी उपलब्ध होती है।

२. बौद्धावदानकल्पलता—[१०]प्रस्तुत कृति मे क्षेमेन्द्र ने जातक कथाओ के आधार पर १०८ पल्लव लिखे है। इससे ग्यारहवी-बारहवी शती मे कश्मीर मे बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार एव स्थिति के सम्बन्ध में समुचित जानकारी प्राप्त होती है।

---

६ राज०-पूर्वो० I १३

७ सूर्यकान्त-पूर्वो० पृ० ५३

८ ए० वी० कीथ—**'हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर'** अनु० मगलदेव शास्त्री पृ० ३४३

९ वही

१० अनु० सरतचन्द्र दास एव प० एच० एम० विद्याभूषण - कलकत्ता १८८८

३. दशावतारचरितम्—[११] इसमे भगवान विष्णु के दशावतारो मे से एक बुद्धावतार तथा ग्यारहवीं-बारहवीं शती मे कश्मीर मे बौद्ध धर्म की स्थिति का उल्लेख किया गया है।

४. समयमातृका—[१२] अपने पूर्ववर्ती विद्वान दामोदर गुप्त मे प्रभावित होकर क्षेमेन्द्र ने अपनी इस कृति का प्रणयन किया। इस रचना के माध्यम से उन्होंने न केवल कश्मीर मे वेश्याओं व कुटनियो की स्थिति का वर्णन किया है अपितु नवयुवको को उनसे सावधान रहने का उपदेश दिया है। उन्होंने अपने समय की सामाजिक स्थिति से प्राप्त अपने कामशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान को श्रेष्ठ उपदेशपरक तरीके से प्रस्तुत किया है।

५. कलाविलास—[१३]आलोचको द्वारा कलाविलास क्षेमेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी गयी है। दस खण्डो मे विभक्त प्रस्तुत कृति के माध्यम से उन्होने विभिन्न व्यवसायो की चर्चा करते हुए अपने समय के कायस्थ अधिकारियो पर व्यग्यपूर्ण कटाक्ष किया है। इसके अन्तिम दो खण्डो मे नवयुवको को बुरे रास्ते में जाने से बचने की चेतावनीपूर्ण सूक्तियाँ दी गई है।

६. दर्पदलन—[१४]सात अध्यायो मे विभाजित प्रस्तुत कृति का सम्बन्ध श्रेष्ठ जन्म, धन, ज्ञान, सुन्दरता, साहस, उदारता एव योग से है। इसमे श्रेष्ठ चरित्रो को लम्बे-लम्बे उपदेशपरक भाषण देते हुए प्रस्तुत किया गया है यथा—बुद्ध दूसरे सर्ग मे तथा शिव सातवे सर्ग मे योगियो द्वारा मोक्ष प्राप्त न करने का प्रमुख कारण उनकी लिप्सा बताते है।

७. देशोपदेश—[१५]तत्कालीन समय के रीति-रिवाजो एव कुख्यात चरित्रो पर क्षेमेन्द्र के स्वनिरीक्षण की विस्तृत चर्चा इस ग्रथ मे की गई है। इसमे उन्होने कजूसो, वेश्याओ, कुटनियो तथा चापलूसो की हंसी उडायी है। छठे सर्ग मे शिक्षा प्राप्ति हेतु कश्मीर आने वाले गौड़देशीय ब्राह्मणों पर व्यंग्य किया गया है।

---

११. अनु० प० दुर्गा प्रसाद एव के० पी० परब, का० मा० सि० २६, बम्बई, १८९१
१२. वही, का० मा० सि० १० बम्बई १९२५
१३ वही, का० मा० सि १ बम्बई १८८६
१४ अनु० प० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, का० मा० सि० ६ बम्बई १८९०
१५ अनु० प० मधुसूदन कौल शास्त्री, का० सि० टे० स्ट०, पूना १९२३

८. नर्ममाला—[१६] प्रस्तुत रचना कायस्थ अधिकारियो तथा दिविरो (लेखको) पर किये गये व्यग्यलेखन से परिपूर्ण है।

९. चारुचर्याशतक—[१७] महाकाव्यो एव पुराणो से ग्रहण की गई कानून एव राजनीति की बातो को १००० पद्यो वाली प्रस्तुत पुस्तक मे सग्रहीत किया गया है।

१०. सेव्यसेवकोपदेश—[१८] प्रस्तुत ग्रथ स्वामी व सेवको के कर्त्तव्यो से सम्बन्धित है।

११. चतुर्वर्ग संग्रह—[१९] मानव के चारो पुरुषार्थो—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से सम्बन्धित विवेचन इसमे किया गया है।

१२. कविकण्ठाभरण—[२०] इसमे कवियो के सम्बन्ध मे बताया गया है।

१३. औचित्यविचारचर्या—[२१] सस्कृत काव्यशास्त्र के औचित्य सिद्धान्त का सोदाहरण प्रति पादन इसमे किया गया है।

१४. सुवृत्ततिलक—[२२] छन्दोज्ञान से सम्बन्धित जानकारी इसमे सग्रहीत की गई है।

१५. लोकप्रकाशकोष—[२३] नर्ममाला की भॉति इस ग्रथ मे भी कायस्थो तथा दिविरो की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुए प्रशासन सम्बन्धी जानकारी दी गई है।

लघुकाव्यसंग्रह[२४] तथा **नीतिकल्पतरु**[२५] क्षेमेन्द्र की अन्य कृतियॉ है।

सोमदेव कृत 'कथासरित्सागर[२६].

ओडिसी व इलियड दोनो के दूने के बराबर वाली रचना कथासरित्सागर मे २२,००० पद्य है।

---

१६ मधुसूदन कौल शास्त्री पूना १९२३
१७ प० दुर्गा प्रसाद एव के० पी० परब, का मा० सि० २ बम्बई, १८८६
१८ वही
१९ वही० का० मा० सि० ५ बम्बई १८८८
२० का० मा० सि० ४ बम्बई १८८७, हरिदास सस्कृत सिरीज २४ बनारस १९३३
२१ का० मा० सि० १, बम्बई १८८६, वही २५, बनारस १९३३
२२. वही २ बम्बई १८८६ वही २६, बनारस १९३३
२३. पं० जगद्धर जादू शास्त्री, का० सि० टे० स्ट० ७५, श्रीनगर १९४७
२४. अनु० आर्येन्द्र शर्मा स० ए० सि० ७ हैदराबाद १९६१
२५. **नीतिकल्पतरु** अनु० वी० पी० महाजन भ० ओ० रि० इन्स्ट० १ पूना १९५६
२६. अनु० सी० एच० टॉवनी—१० खण्डो मे, लन्दन १९२४-१९२८

जो विश्व का सबसे बडा कहानी सग्रह है। इसकी रचना १०७० ई० के लगभग राजा अनन्तदेव के कवि सोमदेव ने उनकी पत्नी रानी सूर्यमती के मनोरञ्जन के लिए लिखा था। इसमे १८ लम्भक तथा १२४ तरग है।[२७]

कथासरित्सागर की घटनाये निश्चित नही है क्योकि ये कहानियाँ जादूगरिनियो तथा गन्धर्वो की है। फिर भी कल्हण महोदय ने इनका उपयोग कश्मीर के प्रारम्भिक इतिहास लेखन मे किया है। क्योकि इसमे कश्मीर के सन्दर्भ मे बहुत सी महत्वपूर्ण सामग्री दी गई है। ग्रन्थ-नाम का स्वाभाविक अर्थ है—'कथाओ की नदियो का सागर'। ए० बी० कीथ की ऐसी मान्यता है कि सभवत अपने ग्रथ का नाम—राजतरङ्गिणी चुनने मे कल्हण पर स्पष्टत सोमदेव का प्रभाव था।[२८] इसमे स्त्रियो से सम्बन्धित कहानियो की बहुलता है। शिवलिङ्ग तथा मातृकाओ की पूजा का वर्णन प्रायेण मिलता है तथा मानव जीवन के निर्धारण मे पूर्व जन्म के कर्मो का प्रभाव दिखलाया गया है। नरबलियो का विशेष रूप से बार-बार उल्लेख आता है।

विल्हण कृत विक्रमाङ्कदेवचरित[२९]

राजा अनन्तदेव के राज्यकाल मे जब कलश युवराज बना था, उसी समय विल्हण कश्मीर से प्रस्थान करके दक्षिण भारत मे कल्याणनगर के चालुक्यवशीय नरेश विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६-११२७ ई०) के दरबार मे आश्रय प्राप्त कर विद्यापति उपाधि से मण्डित हुए थे। आश्रयदाता के चरित्रकाव्य के रूप में प्रस्तुत महाकाव्य अठारह सर्गो मे है, जिसमे अन्तिम कश्मीर से सम्बन्धित है। विभिन्न स्रोतो से इसका रचनाकाल १०८८ ई० से पूर्व माना जाता है।[३०]

शम्भुकवि कृत राजेन्द्रकर्णपूर

अपने आश्रयदाता कश्मीरनरेश हर्ष (१०८८-११०० ई०) की प्रशस्ति में शम्भुकवि ने ७५ पद्यो वाले प्रस्तुत काव्य ग्रंथ की रचना की थी।

---

२७ अनु० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, बम्बई १९३०
२७. मगलदेव शास्त्री—द्वितीय भाग पृ० ३४९
२८. वही
२९. अनु० विश्वनाथ शास्त्री भरद्वाज, बनारस १९६४
३० चन्द्रप्रभा 'हिस्टोरिकल महाकाव्य इन संस्कृत' पृ० ४६-४७

मंखक कृत श्रीकण्ठचरित[३१]

प्रसिद्ध अलकारिक 'रुय्यक' के शिष्य एव राजा जयसिह (११२९-११५० ई०) के दरबारी मखक की रचना-श्रीकण्ठचरित मे २५ सर्ग है, जिसमे भगवान शङ्कर और त्रिपुरासुर के युद्ध को निबद्ध किया गया है। प्रस्तुत ग्रथ रीतिबद्ध शास्त्रीय महाकाव्य माना जाता है। इसकी रचना इन्होने ११३५-११४५ ई० के मध्य की थी। [३२]

कल्हण कृत राजतरङ्गिणी[३३]

कल्हण की राजतरङ्गिणी विवेच्यकालीन कश्मीर का ही नही, सम्पूर्ण भारतीय इतिहास का ऐसा अनूठा ग्रंथ है जिसे बिना किसी काट-छॉट के स्वीकार किया जा सकता है।[३४] यद्यपि अपने विषय मे कल्हण ने ज्यादा नही लिखा किन्तु विद्वानो के अनुसार इनके पिता चम्पक राजा हर्ष के द्वारपति थे तथा इनके पितृव्य (चाचा) कनक भी राजा हर्ष के प्रति अनुराग रखते थे। उन्होने हर्ष से सङ्गीत की शिक्षा ली थी इससे प्रसन्न होकर राजा ने उन्हे एक लाख स्वर्ण के सिक्के पुरस्कार स्वरूप दिये थे।[३५]

प्रो० एस० सी०रे ने कल्हण को राजा जयसिह का दरबारी माना है।[३६] परन्तु इस कथन के पक्ष में हमारे पास कोई ठोस प्रमाण नही है। व्यूहलर तथा स्टेइन[३७] महोदय ने राजतरङ्गिणी का रचनाकाल ११४८-११५० ई०के मध्य माना है। अपनी कृति को कल्हण इतिहास की अपेक्षा महाकाव्य मानते है।[३८] आठतरगो मे लगभग ८,००० श्लोको मे रचित प्रस्तुत कृति मे कल्हण ने अपने पूर्ववर्ती ग्यारह इतिहासकारो के ग्रथो, मदिरो एव पूर्ववर्ती नरेशो के अभिलेखो, तत्कालीन सिक्को, प्रशस्तियो तथा

---

३१ प० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, का० मा० सि० ३ बम्बई १९००

३२. कृष्णा मोहन—पूर्वो० प्रस्तावना पृ० ११

३३. दुर्गाप्रसाद—बम्बई १८९२, हिन्दी अनु०—प० रामतेज शास्त्री, काशी १९६०, अग्रेजी अनु० आर० एस० पण्डित, इलाहाबाद १९३५ एम० ए० स्टेइन, बम्बई १८९२, दिल्ली १९६१, रघुनाथ सिह चार खण्डो मे

३४. बहादुर चन्द्र छाबडा—**सस्कृत साहित्य का इतिहास**—प्रस्तावना

३५. कीथ—पूर्वो० पृ० १९८

३६. इ० हि० क्वा० XXXI अक ३ दिसम्बर १९५९ पृ० २५३

३७ स्टेइन राज० पूर्वो० खण्ड I पृ० १२ ब्यूहलर रिपोर्ट पृ० ५०

३८. कृष्णा मोहन-पूर्वो०-परिशिष्ट I पृ० ३०७

शास्त्रो के अतिरिक्त तत्कालीन लोगो के साक्षात्कार को आधार माना है तथा आठवे तरग को अद्यतनभूत के रूप मे लिखा है। कल्हण ने अपने ग्रथ के प्रणयन मे पूर्ण निष्पक्षता अपनायी है जिसमे उन्होने समाज की सम्पूर्ण दशाओ का उल्लेख किया है।

कश्मीर का भौगोलिक स्वरूप

उत्तर मे उत्तुग पर्वत-मालाओ और शेष अन्य तीन ओर मे शक्तिमान सागरो एवं महासागरो से परिवेष्टित भारत स्वयं एक भौगोलिक इकाई है। प्राणि एव वनस्पति जगत, वशो एव भाषाओं, धर्मो एव सस्कृतियो की अपरिमित विविधता इसे उपमहाद्वीप कहलाने के योग्य बनाती है, इसीलिए प्राचीनतम लेखो मे सम्पूर्ण देश को लक्षित करने के लिये कोई व्यापक शब्द हमे नही मिलता।[३९] 'इडिया' शब्द सिन्धु नदी या 'इन्डस' से व्युत्पन्न है।[४०] चीनी निवासी भी शिन टुह (Shin tuh) या सिन्धु को ही भारत का प्राचीन नाम जानते थे।[४१] ऋग्वेद मे इसके लिए 'सप्तसिन्धव' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[४२] धारयद्वसु के पर्सीपोलिस और 'नक्श-इ-रुस्तम' के प्रसिद्ध अभिलेखो मे सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियो द्वारा सिचित सम्पूर्ण प्रदेश को 'हिन्दु' नाम से अभिहित किया गया है।[४३] हेरोडोटस ने इसे 'इडिया' कहा है जो पारसीक साम्राज्य का बीसवॉ प्रान्त था।[४४] सस्कृत बौद्ध ग्रथो मे इसके लिए 'जम्मूद्वीप' का उल्लेख प्राप्त होता है।[४५]

विदेशी आक्रान्ताओ के साथ आने वाले लेखको के यात्रा-वृत्तान्तो, बौद्ध-ग्रंथो, जैन ग्रंथो, अभिलेखो, मुस्लिम लेखको तथा सस्कृत साहित्य के अतिरिक्त भारत के ऐतिहासिक भूगोल जानने के लिए इंपीरियल और प्रोविन्शियल गजेटियरों के सर्वेक्षण आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इडिया की रिपोर्ट,

---

३९ विमल चरण लाहा—**'प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल**—अनु० रामकृष्ण द्विवेदी, लखनऊ १९७२ पृ० १३'

४० सर डब्ल्यू हैग—**'द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया'**—कैम्ब्रिज, १९२८ खण्ड I, पृ० ३२४

४१ लाहा—**'-ज्योग्रफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म'** पृ० १६

४२ VIII-२४-२७

४३ कैम्ब्रिज पूर्वो०—पृ० ३२४

४४ हेमचन्द्र राय चौधरी **'स्टडीज इन द इडियन ऐटिक्विटीज'** पृ० ८१

४५ महावस्तु III ६७, ललितविस्तर अ० १२, बोधिसत्त्वावदानकल्पलता—७८ वॉ पल्लव, ९

एपीग्राफिया इडिका के भौगोलिक उल्लेख कार्पस, इस्क्रिप्शनम् इडिकेरम, ऐपीग्राफिया कर्नाटिका तथा भारतीय जनगणना की रिपोर्ट महत्वपूर्ण स्रोत है।

राजशेखर की काव्यमीमामा मे भारत को पॉच भागो—मध्य देश, उत्तरापथ या उद्रीच्य (उत्तरी भारत), प्राच्य (पूर्वी भारत), दक्षिणापथ (दकन) तथा अपरान्त (पश्चिमी भारत)—मे बॉटा गया है।[४६]

कनिघम महोदय[४७] के अनुसार पहाडी राज्यो को तीन समूहो मे बॉटा जा सकता है—कश्मीर, दुगार तथा त्रिगर्त। इसमे कश्मीर समूह के राज्य सिन्धु व झेलम नदियो के मध्य पडते थे। दुगार झेलम व रावी के मध्य तथा त्रिगर्त अथवा जालन्धर (कागडा) व अन्य बहुत से छोटे-छोटे राज्य रावी व सतलज के बीच पडते थे। इनमे कश्मीर सबसे प्राचीनतम राज्य था, जो ईसा के पूर्व भी विद्यमान था। कश्मीर के सास्कृतिक इतिहास के प्राचीनतम स्रोत नीलमतपुराण[४८] मे लिखा है कि कश्मीर भूमि कल्प के प्रारम्भ से छ मन्वन्तर तक छ. योजन लम्बी तथा तीन योजन चौड़ी सतीसर नामक झील द्वारा अधिगृहीत थी, सातवे मन्वन्तर मे विष्णु देव ने शेषनाग को आदिष्ट करके जल मे अजेय जलोद्भव नामक दानव को मारकर कश्मीर मण्डल की स्थापना की। ऐसी ही किवदन्ती कल्हण की राजतरङ्गिणी[४९] मे उल्लिखित है तथा ह्वेनसाग के यात्रा वृतान्त व महावश मे इससे मिलते-जुलते प्रसङ्ग प्राप्त होते है।

कश्मीर शब्द कश धातु मे ईरन् प्रत्यय मुट् के आगम से बना है। भारतीय साहित्य मे कश्मीर नगर तथा कश्मीरी लोगो का प्रारम्भिक उद्धरण—पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के गण पाठ मे प्राप्त होता है।[५०] पुराणो मे कश्मीर को कश्मीरा घाटी कहा गया है।[५१]

जी० एम० डी० सूफी के अनुसार[५२] कश्मीर दो शब्दो क + श्मीर के योग से बना है। क = जल तथा श्मीर = सुखाना अर्थात् वह भूमि जो पानी-सूखने से निकली हो वह है कश्मीर। कौल[५३] ने

---

४६ राजशेखर-काव्यमीमासा पृ० ९३

४७. **'कनिंघम्स ऐन्शिएन्ट ज्यॉग्रफी ऑव इण्डिया'** कलकत्ता, १९२४ पृ० १५०

४८. नीलमतपुराण अनु० वेदकुमारी १२-१३

४९. राज०-पूर्वा० I, २५-२८, महावश १२,३ ९,२४

५० अष्टाध्यायी-IV-२, १३३, IV ३, ९३

५१. 'विष्णु XLV-१२०, पद्मपुराण I, VI ४८, मत्स्यपुराण - IV -४८, नीलमतपुराण—३०८'

५२. जी० एम० डी० सूफी—**'कश्मीर'** खण्ड I, लाहौर १९४९ पृ० १२

५३ जी० एल० कौल **"कश्मीर थ्रू द एजेज-श्रीनगर १९६३ पृ० १८"**

इसकी भिन्न व्युत्पत्ति की है उनके अनुसार क = जल एव समीर = हवा अर्थात् वह भूमि जिसका पानी हवा द्वारा सुखाया गया हो।

विष्णु धर्मोत्तरपुराण[५४] मे इसे वैतस्तिक (वितस्ता नदी का) प्रदेश कहा गया है।

नीलमतपुराण[५५] मे कश्यप द्वारा बनाये गये प्रदेश को कश्मीर कहा गया है। हैदरमलिक को सदर्भित करते हुए स्टेइन लिखते है कि कश्यप का पहाड या समुद्र ही कश्मीर है।[५६] जबकि सूफी महोदय एक भिन्न अर्थ बताते है कि पर्वतो से घिरा होने के कारण यह कठौता जैसा लगता है इसीलिए इसका नाम कश्मीर पड गया।[५७] डॉ वेदकुमारी लिखती है कि उमा के सदृश किसी पवित्र कश्मीरा देवी के नाम पर इसका नाम कश्मीर पडा, किन्तु अपने इस कथन के पीछे वे कोई साक्ष्य नहीं देती।[५८]

प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डे[५९] ने एक नया दृष्टिकोण देते हुए कहा कि जिस प्रदेश की आबोहवा अच्छी हो, वह प्रदेश कश्मीर है।

कश्मीर से अभिप्राय सिन्धु से पूर्व तथा रावी के पश्चिम मे स्थित वर्तमान जम्मू एव कश्मीर राज्य से नही बल्कि ८४ मील लम्बा और २०-२५ मील विस्तृत ३०° से ३४° ३ उत्तर और ७४°८' से ७५°२५' पश्चिम के मध्य समुद्र तल से ५००० फीट की ऊँचाई पर स्थित १८००-१९०० वर्ग मील क्षेत्र मे फैले उस स्थान से है जो १०,००० से १८,००० फीट ऊँचे पहाडो से घिरा है। पर्वतो की श्रृंखला के उत्तरी-पश्चिमी कोने मे एक सॅकरा रास्ता है, जिसे प्राचीनकाल मे वाराहमूला कहा जाता था। वर्तमान मे घाटी का द्वार माना जाता है।[६०] वर्तमान जम्मू एव कश्मीर राज्य १८४६ ई० की अग्रेजों की सन्धि का परिणाम है।

सिन्धु घाटी तथा व्यापारिक दृष्टिकोण से प्रसिद्ध गिलगिट क्षेत्र पर समय-समय पर कश्मीरी

---

५४ वि० ध० पु० I १६४
५५. नीलमतपुराण—पूर्वो० २१८-२१९
५६ स्टेइन-खण्ड II पृष्ठ ३८७
५७ सूफी—पूर्वो० पृ० १२
५८. वेद कुमारी—पूर्वो० खण्ड I पृ० २३
५९ अवकाश प्राप्त विभागाध्यक्ष सस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
६० स्टेइन—खण्ड II पृष्ठ ३८७

शासको ने आक्रमण किया, जिससे वहाँ प्रच्छन्न रूप मे घाटी की सस्कृति का प्रभाव पड़ा।[६१] कश्मीर की प्राकृतिक सीमाओ को इतनी सावधानीपूर्वक निर्धारित किया गया है कि उन्हे सभी देशी अथवा विदेशी ऐतिहासिक दस्तावेजो के माध्यम मे जाना जा सकता है। देश की महान रक्षापक्ति रूपी दीवार के रूप मे पहाडो की महत्ता सदैव से यहाँ के निवासियो तथा बाह्य खोजकर्ताओं द्वारा स्वीकार की जाती रही है। प्राचीनकाल मे ही यहाँ के निवासी बाह्याक्रान्ताओ से सुरक्षित अपने देशपर गर्व करते रहे है—यह भावना प्राकृतिक सुरक्षाओ द्वारा ही सभव हो पायी थी।[६२] जो नीलमतपुराण[६३], विक्रमाङ्कदेवचरितम्[६४] तथा राजतरङ्गिणी[६५] मे स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। कल्हण ने पहाडो के कारण कश्मीर को अजेय बताते हुए लिखा है कि जिसे इस भूमि पर शासन करना है उसे आन्तरिक विद्रोहो से बचना चाहिए तथा बाह्य शत्रुओ से उसे उसी प्रकार भयभीत नही होना चाहिए जिस प्रकार चार्वाक परलोक से नही डरते है।[६६] अरब यात्रियो ने भी पहाडो की दुर्गम प्रकृति का उल्लेख किया है।[६७] यद्यपि पहाड़ो की इस महान श्रृखला को घाटी की ओर जाने वाले रास्ते कई स्थानो पर विच्छेदित करते थे किन्तु प्राचीनकाल मे इनकी विशेष रूप से रखवाली की जाती थी।[६८] इनके लिए कल्हण ने द्वार एवं द्रग शब्द प्रयुक्त किये है[६९] द्वारादिशु प्रदेशेषु शब्दो का प्रयोग करते हुए स्टेइन महोदय लिखते है कि ये शब्द घाटी को जाने वाले एक या अनेक दर्रो के लिये प्रयुक्त हुए है। कश्मीर के इतिहास मे इन प्रवेश मार्गो का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है जो वर्तमान काल मे विशेषरूप से सुरक्षा चौकियो द्वारा रक्षित रहे है।[७०] प्रारम्भिक काल से ही कश्मीर घाटी दो प्रमुख भागो मे बॅटी थी—क्रम राज्य एव मडवराज्य। विभिन्न स्रोतो के आधार पर स्टेइन की मान्यता है कि वितस्ता नदी के दोनो ओर श्रीनगर

६१ स्टेइन खग्ड II पृ० ३८७ जन० ऑव रो० ए० सो० यू० के० १९४४, पृ० १२-१४

६२. स्टेइन० पूर्वो० खण्ड II पृ० ३९०

६३ **'कश्मीर मण्डलम् चैव प्रधान जगति स्थितम्।** नीलमत० ६'

६४ **'सहोदरा. कुङ्कुम केसराणा भवन्ति नूनं कविता विलासा.।'**
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषा यदन्यत्रमया प्ररोहः ॥ विक्रम०-पूर्वो० I २१

६५ राज० I ३१, ३९

६६ स्टेइन खण्ड I, IV ३४५

६७ अलइदरीसी—**'हिस्ट्री ऑव इडिया'** अनु० इलियट खण्ड I पृ० ९०

६८ राज० I १२२, ३०२, VII १४०, VIII ४१३, ४५१, सचाऊ-खण्ड I पृ० २०६

६९ वही

७० स्टेइन. खण्ड I I. १२२

मे ऊपर का भाग मडवराज्य तथा उससे नीचे का भाग क्रमराज्य था, जहाँ प्रशासनिक दायित्व का निर्वाह मण्डलेश करता था।[७१]

सातवी शती के चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसाग के अनुसार कश्मीर राज्य के अन्तर्गत केवल कश्मीर घाटी नही आती बल्कि इसमे दक्षिण मे (साल्ट रेज) तक सिन्धु व चेनाब के मध्य के सभी पहाडी राज्य आते है। जहाँ ह्वेनसाग गये थे उनमे कश्मीर के पश्चिम मे उरसा, दक्षिण-पश्चिम मे तक्षशिला व सिहपुर और दक्षिण मे पूछ व राजपुरी (रजौरी) यद्यपि अन्य राज्यो के नाम नही दिये गये किन्तु यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि सातवी शती मे कश्मीर राज्य सिन्धु से रावी तक विस्तृत था।[७२] राजा शङ्करवर्मन ने सिन्धु से सतलज तक सम्पूर्ण पजाब मे कश्मीरी सम्प्रभुता का विस्तार किया था।[७३] एस०एन० मजूमदार लिखते है कि ऊपरी व्यास मे स्थित कुलू नामक छोटा राज्य अपनी दुर्गम पहुँच के कारण स्वतत्र था जबकि जालधर-जो समृद्ध राज्य था—पर कन्नौज नरेश हर्षवर्द्धन का उस समय अधिकार था।[७४]

प्राचीन कश्मीर के पडोसी राज्यो के रूप मे जिन पर्वतीय राज्यो के उल्लेख प्राप्त होते है उनमे कास्थवाड (वर्तमान किश्तवाड) चम्पा, वल्लापुर, विषलाटा, राजपुरी, लोहर, पर्ण्णोत्स, द्वारवटी, उरशा, कर्णाह, दरद, तथा भौट्ट प्रमुख है।

दक्षिण-पूर्व मे प्रारम्भ मे ऊपरी चेनाब पर कास्थवाड (वर्तमान किश्तवाड) घाटी स्थित थी, जिसे कल्हण ने कलश के समय एक पृथक पहाड़ी राज्य माना है।[७५] चेनाब के नीचे की ओर स्थित पहाडी जिला भद्रावह—राजतरङ्गिणी मे वर्णित भद्रावकाश है, जहाँ के राजा—संभवतः चम्पा (वर्तमान चम्बा) राज्य के अधीनस्थ थे क्योकि इसका उल्लेख कल्हण ने अपनी पहाडी राजाओ की सूची मे नही किया है। जबकि चम्पा के राजाओ का उल्लेख हुआ है।[७६] चम्पा भूक्षेत्र रावी तथा कुछ अन्य सहायक घाटियों—कांगड़ा, त्रिगर्त को मिलाकर बना था।

---

७१ राज० स्टेइन खण्ड I, II १५ (टिप्पणी) खण्ड II पृ० ४३६
७२. मजूमदार—पूर्वो० पृ० १०३
७३ राज० III १००, V १४३, VII ५८८-५९०
७४. मजूमदार—पृ० १०३
७५ राज० VII ५९०
७६ राज० VII २१८, ५८८, १५१२, VIII ५३८, १०८३, १४४३, १५३१, स्टेइन खण्ड I, VII २१८ (टिप्पणी)

चम्पा के पश्चिम तथा भद्रावकाश के दक्षिण मे वल्लापुर (वर्तमान बल्लावर) राज्य पडता था जिसका उल्लेख अलबेरुनी ने भी किया है।[७७]

बनिहाल दर्रे के पाद पर विष्लाटा क्षेत्र स्थित था जहॉ के खश प्रमुख के दुर्ग मे भिक्षाचर ने शरण लिया था।[७८] कश्मीर के पश्चिम व दक्षिण पश्चिम मे स्थित एक महत्त्वपूर्ण पहाडी राज्य राजपुरी था। पजाब को जाने वाले रास्ते मे स्थित होने के कारण इसके आवश्यक रूप से कश्मीर से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो गये थे।[७९] ह्वेनसाग के अनुसार उसके समय राजपुरी का राजा कश्मीर का अधीनस्थ था, जिसका शासक खश जाति का था।[८०] परन्तु लोहर राजवश के समय एक स्वतत्र राज्य था जिसके विरुद्ध कश्मीर नरेशो के सैन्य-अभियानो तथा आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप के साक्ष्य मिलते है।

राजपुरी की पश्चिमोत्तर सीमा लोहर राज्य से जुडी थी। इस पहाडी राज्य से सम्बन्धित मुख्य घाटी वर्तमान लोहारिन थी। यहॉ के लोहरवश के शासको ने कश्मीर राजसत्ता को सुशोभित किया। इसमे पर्णोत्स जिला भी सम्मिलित था।[८१] वितस्ता नदी के पश्चिम मे बहाव से दूर उरशा राज्य था जिसका महत्त्वपूर्ण भाग हजारा जिला वितस्ता व सिन्धु नदी के बीच पड़ता था।

राजतरङ्गिणी मे जालन्धर का उल्लेख है। ह्वेनसाग के कथन के आधार पर कनिघम का सुझाव है कि उत्तर मे चम्पा, पूर्व मे माण्डी और सुकेत तथा दक्षिण-पूर्व मे सतद्रु से घिरा क्षेत्र जालन्धर रहा होगा जो स्वय राजधानी था।[८२] प्राचीन दस्तावेजो मे जालन्धर का वैकल्पिक नाम त्रिगर्त अर्थात् तीन नदियो की भूमि से है। इन तीनो नदियो को मूरक्राफ्ट ने रावी, व्यास और सतलज माना है।[८३] जबकि वोगल इन्हें ब्यास की सहायक नदियॉ मानते है।[८४] राजतरङ्गिणी मे सदर्भित त्रिगर्त की पहचान चम्बा

---

७७ सचाऊ खण्ड I पृ० २०५

७८ स्टेइन खण्ड II पृ० ४३२, VIII २२८३ (टि०)

७९ राज० VI २८६, ३४८-४९, ३५१, VII १०५, २६७, ५३३, ५३९, ५४१, ५४६

८० मजूमदार—पूर्वो० पृ० १४८-१४९

८१ टी० वाटर्स "युऑन चाग ट्रेवेल्स इन इडिया, दिल्ली" १९६१, खण्ड I पृ० ३८३

८२ मजूमदार—पृ० १५६-१५८

८३ डब्ल्यू० मूरक्राफ्ट 'ट्रेवेल्स इन हिमालयन प्रोविन्सा ऑव हिन्दुस्तान एण्ड द पंजाब इन लद्दाख एण्ड कश्मीर' नई दिल्ली १९७१, खण्ड I पृ० १४०-१४१

८४ वोगल एण्ड हचीसन "एच० पी० एच० एस० लाहौर १९३३, पृ० १०२-१०३ (टि०)

के पहाडो और ब्यास के ऊपरी बहाव के मध्य स्थित वर्तमान कागडा से की जाती है।[८५] स्टेइन ने इसे नगरकोट्ट माना है।[८६]

सिन्धु की ओर शकरवर्मन द्वारा किये गये सैन्य अभियान (९०२ ई०) से पता चलता है कि कश्मीरी सेना पीछे हटते हुए उरशा से अपने राज्य के भूक्षेत्र तक पहुँच गई थी। इसके बाहर उरशा के सीमा तक की घाटी द्वारवटी (वर्तमान द्वारबीदी) के नाम से जानी जाती है।[८७] द्वारवटी क उत्तर मे कृष्णा (वर्तमान किशनगगा) की निचली घाटी मे कर्णाह (वर्तमान करनव) नामक अर्द्ध स्वतत्र खशराज्य पडता था। कृष्णा के ऊपरी बहाव मे दरदो द्वारा आबाद क्षेत्र था जिसे दरददेश कहा जाता है।[८८]

कश्मीर घाटी को लद्दाख होते हुए चीन व तिब्बत से जोडने वाले जोजीला दर्रे के दूसरी तरफ रहने वाले तिव्बती लोगो को कल्हण ने भौट्ट या भौट्टराष्ट्र कहा है।[८९]

पर्वत एवं मार्ग

कश्मीर को घेरने वाली पर्वत श्रृखलाओ को मुख्य रूप से तीन श्रेणियो मे बॉटा गया है। कश्मीर घाटी को दक्षिण एव दक्षिण-पश्चिम दिशाओ से सीमा रेखा के रूप मे घेरे हुए पीर पजाल एक है। घाटी के दक्षिणी भाग-जहॉ समुद्र की १,२०० फीट ऊँचाई पर बनिहाल दर्रे की पर्वतमालाएँ है—से यह पर्वत शुरू होकर पूर्व से पश्चिम की ओर लगभग पैतीस मील जाने के बाद उत्तर एव उत्तर-पश्चिम की ओर घूमती है। इस दिशा मे लगभग पचास मील फैलने के बाद सबसे ऊँची चोटी तटकूटी चोटी (१५५२४ फीट समुद्र से) के बाद वितस्ता नदी की ओर धीरे-धीरे कम होता जाता है। पंजाब की ओर जाने वाले सभी पुराने रास्ते इसी पहाड़ से होकर जाते है।[९०] अबुल फजल के अनुसार पीर पजाल से लगभग पॉच मील उत्तर तंगतल दर्रा है।[९१] इसके अतिरिक्त दो अन्य मार्ग (दर्रे)—चित्तपानी तथा

---

८५ स्टेइन० खण्ड I IV १७७ (टि०)

८६ वही खण्ड I, III १०० (टि०)

८७ राज० पूर्वो० V २२५, स्टेइन खण्ड I, V-२२५ (टि०)

८८. 'वही I ३१२, स्टेइन खण्ड I ३१२' V १५२, VII ११९, खण्ड II पृ० ४३५, VIII २५३८

८९. वही VIII २८८७, स्टेइन खण्ड II पृ० ४०८

९० स्टेइन खण्ड II पृ० ३९२

९१. अबुल-फजल-आइने-अकबरी अनु० एच० एस० गैरैट, कलकत्ता १८९१ पृ० ३४८

कोटिगली लगभग १४,००० फीट ऊँचाई पर है। तटकूटी चोटी को पार करते हुए सगसफद, नूरपुर और कोरगली दर्रे है जो प्राचीन लोहर (लोहारिन) घाटी की ओर जाते है।[९२]

पूर्वी मार्ग मे बनिहाल दर्रा था—जिसे कल्हण ने बाणशाल कहा है। यह कम ऊँचाई (९००० फीट) के कारण ऊपरी चेनाव घाटी और पूर्वी पजाब के पहाडी राज्यो की ओर यातायात का सबसे सुविधाजनक मार्ग था। इस मार्ग की सुरक्षा के लिये निर्मित बाणशाल का किला बारहवी शती मे एक खश प्रमुख के हाथो मे था। इसी रास्ते से जयसिह के शासनकाल मे विद्रोही भिक्षाचर ने आक्रमण की योजना बनायी थी। यह ऐसा मार्ग है जो हिमपात के समय भी पूर्णतया अवरुद्ध नही होता है।[९३]

पर्वत श्रृखलाओ मे एक अन्य रास्ता सिद्ध पथ (वर्तमान सिदऊ गॉव) पर है, जो श्रीनगर को अखनूर से जोडने वाली सीधी रेखा तथा जम्मू मे मैदानो पर पडता है। यद्यपि ऊबड़-खाबड होने के कारण इसे पैदल ही तय किया जा सकता है किन्तु अपनी कम दूरी के कारण यह कश्मीरी लोगो का प्रिय मार्ग था।[९४] इसके विपरीत ओर १३,००० फीट ऊँचे रुपरी तथा दरहाल नामक दो दर्रे है।[९५]

शूरपुर (वर्तमान हुरपोर) गॉव को प्राय राजपुरी और पड़ोसी स्थानो से कश्मीर जाने का प्रवेश द्वार कहा जाता है तथा विपरीत दिशा से आने वालो के लिए प्रस्थान बिन्दु माना जाता है।[९६] रेम्बयार अथवा रामण्याटवी घाटी से ऊपर सात मील जाने पर एक ऐसे स्थान पर जहॉ पीर पजाल और रुपरी दर्रे मिलते है। यहॉ लम्बवत् पहाडी चट्टानो से एक छोटा सा किला बनता है जिसे कमलनकोठ कहा गया है।[९७] कल्हण ने इसे क्रमवर्त कहा है।[९८] यहॉ से चार मील ऊपर अलियाबाद की मुगल सराय के समीप हस्तिवज्ज नामक पर्वतमाला प्राप्त होती है। अलियाबाद की सराय हस्तिवज्ज से आधा मील ऊपर मुगलो द्वारा यात्रियो के विश्राम के लिए बनवाई गई धर्मशाला थी।[९९]

---

९२ स्टेइन-खण्ड II पृ० ३९८-३९९
९३ वही खण्ड II पृ० ३९२-३९३, राज०-VIII १६६५
९४ स्टेइन खण्ड II पृ० ३९३
९५. वही
९६. राज०-III २५७, V-३९, VII ५५८, १३४८, १३५२, १३५५, १५२०, VIII १०५१, ११३४, १२६६, १४०४, १५१३, १५७७, २७९९
९७ स्टेइन खण्ड II पृ० ३९४
९८. राज० III २२७
९९. स्टेइन-खण्ड II पृ० ३९५ समयमातृका II ९०

अलियाबाद सराय से सडक धीरे-धीरे पश्चिम की ओर ऊपर जाते हुए लगभग साढे चार मील बाद पीर पजाल दर्रे पहुँचती है, जहाँ से पजाब की तरफ ढाल शुरु होता है।[१००] पीर पजाल से तीन हजार फीट नीचे पुशियान (प्राचीन पुषिआणनाड) स्थित है जहाँ से बहरामगल के लिए रास्ता जाता है वहाँ से दक्षिण घूमने पर राजपुरी की खुली घाटी मे उतरने वाले रतनपीर दर्रे मे पहुँचा जाता है।[१०१]

लोहरा होकर कश्मीर तथा पश्चिमी पजाब के बीच सचार का माध्यम तोषमैदान दर्रा था। यह कश्मीर की राजधानी तथा लोहर के मध्य सबसे सीधा मार्ग था, इसीलिए परिवर्ती कश्मीरी नरेशो—जिनका मूल निवास तथा सुरक्षित किला लोहर था—के समय इसका विशेष महत्त्व था। इससे अधिक यह झेलम व सिन्धु के बीच पूँछ (पर्णोत्स) घाटी से होकर पश्चिमी पजाब को जाने का सबसे छोटा व सुरक्षित रास्ता था।[१०२] बीरु परगना मे पहाड़ो की तलहटी मे स्थित द्रग गॉव ये यह मार्ग प्रारम्भ होता है। यहाँ द्रग की पहचान कार्कोट द्रग से की गई है।[१०३] सर्दियो मे जब यह रास्ता बर्फ से ढका रहता था, तब कश्मीर से लोहर जाने का मार्ग, बारामूला के नीचे से वितस्ता घाटी के पश्चिम से था।[१०४] एक रास्ता वितस्ता नदी के दाहिने किनारे से—अब्बूत्ताबाद, गरही, हबीबुल्ला, मुजफ्फराबाद और बारामूला जाता था। इसका उरशा तथा गन्धार (रावलपिण्डी) को व्यापारिक एव सैन्य दृष्टि से महत्त्व था।

द्वारवती व कर्णाह के मध्य काजनाग पर्वत श्रृखला वितस्ता के समानान्तर मुजफ्फराबाद तक लगभग ८० मील फैली है। प्राचीन शमाला और उत्तर के समीप इस श्रृंखला को एक मार्ग काटता है जो शिरहशिला दुर्ग द्वारा सुरक्षित था।[१०५] इसके उत्तरी पर्वत श्रृखला को महापद्म (वूलर झील) के उत्तर की ओर से प्रारम्भ एक मार्ग है जो श्रृखला को गुराइज पर काटता है, यह दुग्धाघाट किले द्वारा रक्षित था।[१०६] इस किले के पूर्व मे पर्वत श्रृखलाएँ हरमुक्ता (वर्तमान हरमुख) नामक चोटी पर मिलती

१०० स्टेइन खण्ड II पृ० ३९८

१०१ श्रीवर - राजतरङ्गिणी IV ५२९.५८९

१०२ स्टेइन-राज० खण्ड II पृ० ३९८-३९९

१०३ वही खण्ड I VII-४० (टि०) खण्ड II VIII 1५९६ (टि०)

१०४ वही खण्ड I IV १७७ (टि०)

१०५ वही खण्ड II पृ० ३४०-३४४, राज० - VIII २४९२

१०६ वही खण्ड II पृ० ४०६, राज० VII ११७१

है जहाँ अनेक पवित्र तीर्थस्थल स्थित है।[१०७] यहाँ से कश्मीर की पूर्वी सीमा बनाने वाले जोजीला दर्रे तथा नगा पर्वत को पर्वत श्रृखलाएँ जाती है। जोजीला पर्वतश्रृखला से चेनाव की तरफ दो रास्ते है—मरगन एव मरवल। मरबल कास्थवाट (किश्तवार) की ओर जाने वाला सामान्य रास्ता है।[१०८]

इसके अतिरिक्त जिन अन्य पर्वतो के नाम प्राप्त होते है उनमे **नन्दि पर्वत**—जिसका तादात्म्य नन्दकोल झील को भरने वाले हिमनद से किया जाता है।[१०९] **भारतगिरि**[११०] नन्दिक्षेत्र के अन्य तीर्थो व कालोदक तक जाने वाले तीर्थयात्रियो को रास्ते मे पडती है। **महादेवगिरि**—सिन्धु घाटी और पूर्वी पर्वतो की सीमा-क्षेत्र के बीच पडने वाले पहाड समूहो की सबसे ऊँची पश्चिमी चोटी है। राजतरङ्गिणी मे निम्न पर्वतो का उल्लेख हुआ है।

अञ्जानाद्रि (IV-३२९) गोपादि (I-३४१, VIII, ११०४, ११०७), गौरीगुरुशैल (I-४३) चन्दनाद्रि (मलयपर्वत IV-१५६), महेन्द्र (VIII १७०), मेरु (सुमेरु VIII ३१७३, ३३६६), रत्नाकर शेखर (III-७२), लोकालोक पर्वत (I-१३७), शिलिकाकोट्ट (VIII १५८८, २२६५), श्रीपर्वत (III २६७)।

दुर्ग

लोहरा दुर्ग कश्मीर के इतिहास मे विशेष महत्त्व रखता है। जिसका उल्लेख आगामी पृष्ठो मे यथावसर किया जायेगा इसके अतिरिक्त दुग्धाघाट (VII ११७१, VIII-२४६८; २७१५)

परिविशोक दुर्ग (IV-४१५), पृथ्वीगिरि दुर्ग (VII-११५२), बाणशाल (VIII १६६६), रत्नवर्ष दुर्ग (VIII-५१५), स्वापिक दुर्ग (VII-५९६) अन्य महत्वपूर्ण दुर्ग थे जिनका उल्लेख राजतरङ्गिणी मे हुआ है।

नदियाँ एवं तालाब

अलबेरुनी ने वायु पुराण व मत्स्य पुराण के आधार पर नदियो तथा उनके उद्गम स्थानो से

---

१०७ स्टेइन खण्ड II पृ० ४४७

१०८ स्टेइन - खण्ड I VII ३९९, ५८८-५९० (टि०) खण्ड II पृ० ४१०

१०९ वही खण्ड II पृ० ४०७ नीलमत० १०३२

११० वही पृ० ४०८ नीलमत १०५६

सम्बन्धित दो सूचियाँ दी है।[१११] सिन्धु नदी का उल्लेख तैत्तरीय सहिता के अतिरिक्त पाणिनि, पतजलि तथा कल्हण ने किया है।[११२]

सरस्वती नदी का ज्ञान वैदिक आर्यो को था[११३] कल्हण ने इसके कई बार लुप्त होने का उल्लेख किया है।[११४]

कुभा या **कुहू** का उल्लेख वैदिककालीन है।[११५] यह आधुनिक काबुल नदी है

चन्द्रभागा आधुनिक चेनाब नदी है।[११६]

जबकि आज की रावी नदी इरावती है।[११७]

गङ्गा—जो उत्तर भारत की प्रमुख नदी है—को अलकनन्दा, जाह्नवी, भगीरथी, त्रिपथगामिनी आदि कई नामो से जाना जाता है।[११८] इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण सहायक नदी **कालिन्दी** यमुना का भी उल्लेख हुआ है।[११९] कल्हण ने इसके अतिरिक्त जिन नदियो का उल्लेख किया है वे निम्न है—

कनकवाहिनी (I-१५०, VIII-३३५६), कालिका (IV-१४५), गम्भीरा (VIII १०६३), चन्द्रकुल्या (I-३१८), परोष्णी (VIII २००६), बकवती (I ३२९) ,बलहरी (VIII २८९८) ,मधुमती (I-३७, VII ११७९, ११९४, VIII २४९२, २५०९, २७०९, २८८३), मुक्ताश्री (VIII २४९२), महासरित् (III-३४५, VIII ३३९,

---

१११ सचाऊ - खण्ड I पृ० २५७, २५९

११२ तैत्तरीय VII ४, १३१, अष्टाध्यायी ४२, ३२-३३, महाभाष्य १, ३, १, राज० IV ३९१, V ९७, ७१६ VI ३०५, ७७९, १५४५

११३ मैक्समूलर ऋग्वेद सहिता पृ० ४६

११४ राज० I ३५

११५ ऋग्वेद १० ७५ ६

११६ राज० III ४६८, ६३८ VIII ५५४, ६२६

११७ जयशङ्कर मिश्र-**'ग्यारहवीं शती का भारत'** पृ० ६३

११८ ऋग्वेद १०, ७५, ५, श० ब्रा० - १३, ५, ५, ११,
राज० पूर्वो० (गङ्गा) - I-३५, ५७ II १२ III २२६, ३६५, IV ४१७-४१८, ५१५, VII ४८५, VIII १६२६, १६६१, १६६७, २२०८
जाह्नवी - III ४७, IV-१४६, VII ६०२, ८९७ भागीरथी—IV ५१५

११९ राज० (कालिन्दी) I ६०, III ३२७
(यमुना) I २९६, IV-१४५

७३३, ७५३, १०९९, ११००, ११५८), रमण्याटवी (VII-१४८०), लेदरी (I-८७) ,वितोला (VIII ९२०) वितस्ता (I २९, १६३, १६४, २०२, २६०, III ३५४, ३५८ IV १९१, ३०१, ३९१, ४८६, V-८८, ८३, ९७, १०३, ११८, VI-८७, १२८, २०५, ३०५, VII-१८०, २१४, ४७२, ५९२), विशोका (VI-१३०), वैतरणी (VII १३५५) तथा सुवर्णमणिकुल्या (I-९७)

तालाब

कश्मीर मे पद्म नामक नाग के नामवाला महापद्म (वूलर झील) सरोवर का उल्लेख हुआ है।[१२०] **सतीसर** सरोवर जिससे कश्मीर की उत्पत्ति हुई थी।[१२१] **पद्मसर** (VII २३२१) तथा **भट्टारनडवला** सरोवर (VII-१०३८)

चन्द्रसर सभवत. चन्दरसर झील है जो कश्मीर घाटी तथा सिन्धु नदी के बीच के ऊँचे पहाडो पर स्थित है।[१२२]

देवसर उत्तर परगना के अत मे दक्षिण-पूर्वी पहाडियो की तलहटी पर स्थित छोटी सी झील है।[१२३]

कालोदक—नन्दकोल झील है जो हरमुक्ता पर्वत के पूर्वी भाग मे स्थित है।[१२४]

नन्दिकुण्ड[१२५] –हरमुक्ता पर्वत की तलहटी मे नन्दि क्षेत्र मे स्थित है।

---

१२० स्टेइन—राज० खण्ड II पृ० ४२३ (पाद टि०)
१२१ राज ० पूर्वो० I २५
१२२ बेट्स—'गजेटियर ऑव कश्मीर—कलकत्ता १८७३, पृ० १६१'
१२३ वही पृ० १७७
१२४ स्टेइन—राज० खण्ड II पृ० ४०७
१२५ वही

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक स्थिति

- राजा, राजदरबार, राजमहल, रनिवास, राजवैभव एवं राजभोग
- मंत्रिगण
- प्रशासनिक व्यवस्था
- सैन्य-व्यवस्था
- न्याय एवं दण्ड व्यवस्था
- सामंती व्यवस्था

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक स्थिति

राजा—भारतीय इतिहास मे राजतत्र और दैवीकरण के मध्य आतरिक सम्बन्ध सर्वप्रथम अशोक के अभिलेख मे प्रयुक्त 'देवानापिय'[१] उपाधि से प्राप्त होता है, जो सभवत. ईरानी या हेलेनिस्टिक प्रभाव के कारण हुआ था। राजाओ के दैवीकरण के पीछे परिवर्तीकाल मे बाह्याक्रान्ताओ के प्रभाव को महत्त्वपूर्ण कारण माना जाता है। कुषाण नरेश वीमा कैडफिसेस के सिक्को मे प्राप्त उपाधियॉ—महेश्वर, सर्वलोकेश्वर[२] को दैवीकरण का आरम्भिक साक्ष्य माना जाता है। इन्हे मथुरा अभिलेख मे सूर्य पुत्र (देवपुत्र) कहा गया है किन्तु इनके उद्‌भव से पूर्व राजतत्र का दैवीकरण पश्चिम एशिया, ईरान व चीन मे हो चुका था जबकि भारतवर्ष मे शक-कुषाण प्रभाव के कारण इसका उल्लेख मनुस्मृति[३] मे मिलता है। धर्मशास्त्रो व पुराणो के बढते प्रभाव तथा अवतारवाद की लोकप्रियता ने इस विचारधारा को शक्ति प्रदान की। रामचरित[४] तथा नैषधीयचरितम्[५] मे अवतारवाद का उल्लेख हुआ है। जयानक ने पृथ्वीराजविजय मे पृथ्वीराज (चाहमाननरेश) को राम का अवतार माना है।[६] कल्हण के उस उद्धरण मे हमे कश्मीर मे राजतत्र के दैवीकरण का आभास मिलता है, जिसमे उन्होने लिखा है कि राजा दामोदर की विधवा गर्भवती स्त्री यशोमती देवी के ब्राह्मणो द्वारा राज्याभिषेक का अपने मन्त्रिमण्डल द्वारा विरोध करने पर श्रीकृष्ण का कहना कि 'कश्मीरदेश पार्वती का स्वरूप है और यहॉ का राजा साक्षात् शिव है अतएव दुष्ट होते हुए भी वह कल्याणेच्छुक विद्वानो के लिये पूजनीय है।[७] इसके बाद से स्त्रियों को

---

१ नीलकण्ठशास्त्री—**'ऐज ऑव द नन्दाज ऐण्ड मौर्याज'**—मोतीलाल बनारसीदास, बनारस १९५२, पृ० ४७६

२ आर० डी० बनर्जी—**'प्राचीन मुद्रा'** अनु० रामचन्द्रवर्मा'—काशीनगरीप्रचारिणी सभा—सवत् १९८१ पृ० ११०

३ मनु०—अध्याय VII श्लोक २७-२८, ए० एल० बाशम—**'स्टडीज इन इन्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर'** कलकत्ता १९६४ पृ० ६७

४ **'रामचरित'**—सध्याकरनन्दी—अनु० एच० वी० शास्त्री, कलकत्ता १९१०

५ **'नैषधीयचरितम्'**—श्रीहर्ष—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३३, I ६

६ **'पृथ्वीराजविजय'**—जयानक—अनु० सी० गुलेरी एव ओझा'—वैदिक यत्रालय, अजमेर—१९४१, VII-६२

७ राज० पूर्वो० **"कश्मीरा पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशज ।**
नावज्ञेय स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता ॥" I-७०-७३

भोग्य पदार्थ समझने वाले लोग यशोमती को देवता की भाँति आदरपूर्वक दृष्टि से देखने लगे।' दुष्ट राजा मिहिरकुल को एकत्रित प्रजा ने नही मार डाला तो इसका कारण उसे दुष्कृत्यो की प्रेरणा देने वाले देवताओ ने उसकी रक्षा की थी।[८] धूर्तो, बन्दीजनो, तथा खुशामदी मुसाहवो के मुख से बार-बार अपनी प्रशसा सुनकर व उनकी स्तुति से मुग्ध होकर राजा चक्रवर्मा स्वय को देवता समझता हुआ विवेक के विपरीत काम करने लगा।[९] इसीलिये कल्हण ने कटाक्ष करते हुये लिखा है "मृगनयनी सुन्दरियो की दुर्लभता, अश्वो के श्वास, धूर्तो के गाली-गलौज के श्रवण तथा भाटो की झूठी प्रशसा खरीदने मे ये राजे अपना धन खर्च करते है। अपनी प्रियतमाओ के कोप एवं प्रसन्नता की खोज करने, हाथी-घोडे आदि का वृतान्त सुनने, सेवको की मनोवृत्ति का अनुसरण करने तथा बालको के समान शिकार सम्बन्धी वार्ताओ को कहने सुनने मे राजाओ का समय बीतता है। ये राजे विलास, हास, आसन, गमन, दान, पान, भोजन आदि कामो मे छाया की भाँति औरो का अनुसारण करते है। धूर्तो द्वारा की गयी झूठी प्रशसा से फूलकर ये राजे अपने को अतिमानुष समझकर शिव अथवा विष्णु का अवतार या उससे भी अधिक मान लेते है और मृत्यु को भी कुछ नही समझते है। रात्रि के समय ये स्त्रियो के दास बने रहते है और दिन मे इन पर मत्रियो का अधिकार रहता है, फिर यह कितनी विडम्वना है कि सब कुछ होते हुए भी ये अपने को सबका प्रभु समझते है। इनका स्वभाव बिल्कुल बालको जैसा होता है।[१०] इन उद्धरणो से यह निष्कर्ष स्थापित किया जा सकता है कि कश्मीर मे राजा देवता का स्वरूप नही माना जाता था वल्कि वह अहकारवश स्वय को देवता के रूप मे प्रदर्शित करता था। क्षेमेन्द्र[११] व सोमदेव[१२] के भी ऐसे ही विचार है। कश्मीर के राजतत्र के सन्दर्भ मे बालकृष्ण[१३] जी के विचार बिल्कुल उचित प्रतीत होते है, "हिन्दु राजनीति मे अनुत्तरदायी अधम, अन्यायी, राजा को नही स्वीकार किया जाता था। राजा दैवीय कृत्यो के कारण अपनाया जाता था न कि दैवी अधिकारो के कारण।"

८ राज०-पूर्वो० I ३२४
९. वही V ३५२-३५३
१० वही VII ११०९-१११४
११. **'लोकप्रकाश'** अनु० जगाधर जादू शास्त्री कश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट एण्ड स्टडीज, श्रीनगर १९४७, अ० IV-३
१२. **कथासरित्सागर** अनु०, टावनी लदन १९२४-२८ खण्ड IV पृ० १
१३. **'द इवलूश्न ऑव द स्टेट'**—इ० हि० क्वा० जून १९२७ पृ० ३२५

अधीनस्थो तथा सामतो को वश मे करने के लिये भी राजत्व के दैवी सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है।[१४]

मौर्यकाल मे सामान्य रूप से राजन्, कुमार जैसी उपाधियाँ धारण की जाती थी।[१५] किन्तु शक कुषाण नरेशो की उपाधियाँ-महाराज-राजाधिराज, देवपुत्र, शाहानुसाहि (राजाओ के राजा) प्राप्त होती है।[१६] इसके बाद गुप्त नरेशो की उपाधियाँ—परमेश्वर, महाराजाधिराज, परमभट्टारक मिलने लगती है।[१७] जो परिवर्तीनरेशो द्वारा बढ-चढकर प्रयुक्त की जाने लगी थी।[१८] ये विचारो की सर्वोच्चता के साथ-साथ मानवृद्धि तथा सामती परिस्थितियो मे राजाओ के झूठे दावो को कायम रखने के लिये धारण की जाती थी। डामर जिस भिक्षाचर को अवतार मानते थे उन्होने ही उसे 'हिमराज' उपाधि प्रदान की थी।[१९] सुस्सल 'सर्वार्थसिद्ध' नाम से पुकारा जाता था।[२०] रानी दिद्दा ने तुग को राजपुरीनरेश पृथ्वीराज को पराजित करने की खुशी मे 'कम्पनेश' की उपाधि प्रदान की थी तथा महामत्री नरवाहन को राजानक की उपाधि दी थी।[२१] जबकि राजपुरी आक्रमण से अपमानित होने के कारण राजा हर्ष की 'प्रतापचक्रवर्ती' उपाधि धूमिल पड गयी थी।[२२]

इन प्रसङ्गो से स्पष्ट होता है कि कश्मीर मे भी राजाओ द्वारा ऊँची-ऊँची उपाधियाँ धारण की जाती थी।

प्राचीनकाल से भारत मे राज्य को सामाजिक व आर्थिक आवश्यकता के लिये अति आवश्यक माना गया है। अर्थशास्त्र[२३] जो प्राचीन भारत की राजनीति पर सबसे व्यावहारिक कृति है—मे कहा गया है कि 'राजा को अपनी प्रजा के लिये अच्छी सरकार देने के प्रति सदैव समर्पित रहना चाहिए

१४ राज० पूर्वो० VIII ८५८
१५ दीक्षितार—**'गुप्त पॉलिटी'** पृ० १२२
१६ स्टेन कोनो—कॉ० इ०इ० खण्ड दो प्लेट I पृष्ठ XXIX,
१७ अल्टेकर—**'द वाकाटक गुप्त ऐज'** पृ० २६९, दीक्षितार उपरोक्त पृ० १२३
१८ इपी० इ० खण्ड VII अ० २२, खण्ड X पृ० ९५
१९ राज० पूर्वो० VIII १४४५
२० वही VIII २४०
२१ वही VI ३५४, VII २६०-२६३, २७१
२२ वही VII ११६२
२३ शामशास्त्री—पूर्वो० भाग I अ० V पृ० ११ अ० XIX पृ० ४४

और उसका झुकाव सभी लोगो के लिये अच्छा करने का होना चाहिए। उसकी प्रजा की खुशी मे ही उसकी खुशी तथा उसकी प्रजा के कल्याण मे उसका कल्याण। कल्हण[२४] ने भी लिखा है—'**रजयति लोकानिति राजा**' अर्थात् जो प्रजा को आनन्दित करे वह राजा है। उन्होंने आगे लिखा है कि प्रजा का पालन करना राजा का प्राथमिक कर्तव्य होना चाहिए क्योकि उनके मध्य का सम्बन्ध तो पिता-पुत्र जैसा होता है।[२५] पतिभक्ति स्त्रियो का व्रत है, निर्वैर भाव से प्रजा के व्यवहारो को चलाना मन्त्रियो का व्रत है तथा अन्य सभी काम छोडकर प्रजा का पालन करना राजा का व्रत है।[२६] वे राजे धन्य है जो पुत्रो की भॉति प्रिय अपनी प्रजा को सर्वथा सुखी देखकर रात को सुख की नीद सोते है।[२७] राजा को अहकार विहीन, ईश्वर के प्रति समर्पित, दक्ष, उदार, गम्भीर, विनयशील, नीतिज्ञ तथा कृत्य, अकृत्य के निर्णय लेने के गुण से सम्पन्न होना चाहिये। धैर्यशाली व मनस्वी होना उनकी असाधारण विशेषता होती है।[२८] दान तथा मधुर एव सत्य भाषण राजा के लिये ससार को प्रसन्न रखने हेतु दो अचूक उपाय है किन्तु लोभ दोनो के महत्त्व को नष्ट कर देता है। इसीलिये राज्य रूपी उद्यान मे भोगरस के लोभी राजा रूपी भवरे विविध प्रकार के वासना भरण स्वरुप फूलो से अपना मन बहलाते है किन्तु दैवरूपी चचल वायु की चपेट मे पड तथा नियतिरूपी बल्लरी से गिरकर वे नष्ट हो जाते है।[२९]

कल्हण ने कामुक, मद्यसेवी, मासाहारी तथा धूर्तो के द्वारा बार-बार ठगे जाने वाले राजा की निन्दा की है। उन्होने लिखा है कि स्त्रियो की आज्ञा शिरोधार्य करने वाले, अपने पुत्र को राज्य का सब अधिकार दे देने वाले, एक बार धोखा खा करके भी विश्वासघात सेवको पर विश्वास करने वाले तथा साधारण शत्रु को अनावश्यक महत्त्व देते हुए तरह-तरह के लाक्षन लगाकर बार-बार आक्रमण करने वाले नीतिविहीन राजाओं का शीघ्र विनाश हो जाता है।[३०] वे राजे जिनका उद्देश्य प्रजा को सताना रहा है—सम्पूर्ण परिवार सहित नष्ट हो गये जबकि प्रजापालन मे सलग्न राजे अनुपम भाग्य को प्राप्त

---

२४ राज० पूर्वो० VII ९२०
२५ वही I ९८, V-३५०, VII ५०६, VIII ६०
२६ वही II ४८
२७ वही II २०, ४२
२८. वही I २७७-२७९, VII ५८७, VIII ४८३, २६६३, १२२, २११
२९ वही V १८९, VIII ३३४
३०. राज० पूर्वो० VI-१५३-१५४, VII ४४९

किये।[३१] कल्हण ने लिखा है कि राजा तुजीन के राज्यकाल मे भीषण अकाल पड़ा-तब उसने अपने निजी राजस्व तथा मत्रियो के सचित कोष से अन्न खरीदकर प्रजा का पालन किया किन्तु सम्पूर्ण खजाना खाली हो जाने पर उसने स्वय को प्रजा का विनाश देखने मे असमर्थ पाकर अग्नि मे होम करने का निश्चय किया।[३२] ऐसे राजाओ की प्रशसा करते हुये कल्हण कहते है, "समस्त जगतीतल के प्राणियो के प्राण दे करके भी उस राजा की रक्षा करनी चाहिये जो पद-पद मे विपत्ति मे पडकर प्रजा का उद्धार करने के लिये तत्पर रहता हो।[३३]

कल्हण ने राजा के तीन उद्देश्य माने है—धर्म, अर्थ, काम। राजा कलश अपने समय का विभाजन इसी त्रिवर्ग मे किये था।[३४] धर्म का अभिप्राय धार्मिक गुणों से नही बल्कि सम्पूर्ण प्रजा मे गुणो व नैतिकता को बढावा देना, बिना भेदभाव के सभी समुदायो के लिये धार्मिक सगठनो की स्थापना करना तथा गरीबो की मदद करने से है।[३५]

कृषि, व्यापार एव उद्योग को प्रोत्साहन देना अर्थ सबधी कर्तव्य है।[३६] अपनी प्रजा की कानून व्यवस्था एव शान्ति स्थापना को सुनिश्चित करके कला को प्रोत्साहित करना राजा के 'काम' सम्बन्धी कर्तव्य है। राजा हर्ष, उच्चल, सदृश राजे इसी प्रकार के थे।[३७]

सामतवादी व्यवस्था मे राजा—जिसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त था—अपनी प्रजा की अपेक्षा अपने अधीनस्थ सामतो का शासक माना जाने लगा तथा सामान्य जनता पर शासन का अधिकार अधीनस्थो को मिल गया। इससे राजा व प्रजा के सम्बन्ध-विच्छेद ही नही हो गये बल्कि प्रजा पर अधिक अत्याचार भी किये जाने लगे फलस्वरूप उसने राजा के विरुद्ध विद्रोह करना शुरू कर दिया।[३८] इन राजाओ ने

---

३१ राज० I १८८, III ४७२-४७३, V-२११-२१२, VII १५८२
३२ वही II २०
३३ वही VIII २३५१, ३३२८
३४ वही VII ५१०, अर्थ०—शामशास्त्री, पृ० ४०
३५ वही VI २८-३०, ६९७
३६ वही IV १९१, १९९, V. ८८,
३७ वही VI ३-९, VII-९२०-९४३ VIII ४६-६३
३८ यादव, बी० एन० एस०—**'सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरी ए०डी० इलाहाबाद,** १९७३, पृ० ११५ **'पृथ्वीराज विजय'** पूर्वो० राज०-पूर्वो०

अपने सैन्य अभियानो तथा मूर्खतापूर्ण महगे सुखो के लिये आवश्यक धन प्रजा मे ही वसूलना शुरू किया।[३९] इसीलिये १२वी शती के विधिवेत्ता लक्ष्मीधर एव विज्ञानेश्वर ने भूमि-दानो तथा अन्य दानो की अपेक्षा प्रजा के सरक्षण को राजत्व का सर्वोच्च आदर्श व पवित्र कर्तव्य माना है।[४०] इस समय कवियो, विद्वानो व धर्मगुरुओ के सरक्षण द्वारा अपनी प्रसिद्धि व महानता सिद्ध करने मे राजाओ मे होड सी लग गयी थी—बिल्हण ने लिखा है कि वे राजा कहलाने योग्य नही है जिनकी कीर्ति-गायन के लिये कवि नही है।[४१] कश्मीरी कवि मखक के भाई व जयसिह के मत्री अलकार ने विद्वानो की एक सभा बुलायी थी।[४२] इसी प्रकार पृथ्वीराज की राज्य सभा मे विद्वानो की सभा का उल्लेख प्राप्त होता है।[४३]

प्राचीन भारतीय परम्परानुसार राजा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र होता था जो वशानुगत परम्परा से राज्य प्राप्त करता था, परन्तु कश्मीर मे हमे इसके अतिरिक्त राजाओ के चयन, निर्वाचन तथा नामाकन की पद्धतियॉ भी दृष्टिगोचर होती है।

राजा के चयन का उल्लेख करते हुये कल्हण ने लिखा है कि ९३९ ई० मे उत्पलक वश की समाप्ति के समय कमलवर्धन—जिसका सरकारी तत्र पर नियत्रण था—राजा बनने के बजाय राजधानी की ब्राह्मण परिषद को राजा चुनने के लिये आहूत किया। ब्रह्म परिषद् ने परस्पर विचार-विमर्श मे पॉच-छ दिन व्यतीत कर दिये। पुरोहित परिषद् ने किसी निर्णय के लिये अनशन प्रारम्भ कर दिया, अत. ब्राह्मण परिषद् ने विदेश से वापस आने वाले यशस्कर को राजा चुना।[४४] राजा जयेन्द्र का मत्री शिवभक्त सन्धिमति को राज्य के पुरोहितो ने उपवन मे ले जाकर राज्याभिषिक्त किया था।[४५] उसने बाद मे समस्त प्रजाजनो को राज्यसभा मे बुलाकर कश्मीर का सुरक्षित राज्य लौटा दिया। उसके चले जाने पर पुत्र तथा मत्रीगण गान्धार देश के महान यशस्वी मेघवाहन को अपने यहॉ लाकर राजापद पर

३९ राज०-स्टेइन VIII ८५-९१ प्राक्कथन पृ० ११३, 'नर्ममाला'
४० मिताक्षरा—आचार्याध्याय श्लोक ३३५
४१ विक्रम०-पूर्वो० I, २७, पृ० ३
४२ राज० स्टेइन प्राक्कथन पृ० १२६ (पाद टि०)
४३. **हिन्दुस्तानी** १९४०
४४ राज० पूर्वो० V ४५५-५६, ४६१-४६६, ४७४-४७७
४५ वही II ६५ ११७-११८

अभिषिक्त किया।[४६] इसी तरह अन्ध युधिष्ठिर जब पुन राज्य प्राप्ति के लिये इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा था, उस समय मत्रियो ने उसे कारागार मे डाल दिया तथा राजा विक्रमादित्य के वशज प्रतापादित्य को देशान्तर से लाकर राजपद प्रदान किया—जिसने बडी तत्परता से राज्य का लालन-पालन किया।[४७] राजा हिरण्य के नि सन्तान स्वर्ग सिधार जाने पर राजाविहीन कश्मीर मण्डल के मत्रियो को उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य ने सदेश भेजा कि मेरा आज्ञापत्र लेकर जो भी आपके पास आयेगा, उसे नि.सन्देह कश्मीर के राजसिहासन पर अभिषिक्त कीजिए और इस प्रकार मातृगुप्त राजा वना।[४८] इन प्रसङ्गो से स्पष्ट होता है कि कश्मीर मे ऐसे भी समय आये जब राजा का मनोनयन राज्य के मत्रियो, ब्राह्मणो या जनता ने किया।

रानी दिद्दा ने उत्तराधिकारी के अभाव मे अपने भाई उदयराज के पुत्रो मे से सग्रामराज को अपना युवराज बनाया जो उसकी मृत्यु के बाद कश्मीर का राजा बना।[४९] राजा अनन्त का चचेरा भाई क्षितिराज जो लोहर प्रान्त का राजा था—अपने पुत्र भुवनराज द्वारा अपने विरुद्ध विद्रोह किये जाने के कारण कलश के दूसरे पुत्र उत्कर्ष को अपना उत्तराधिकारी बनाया।[५०] राजा अनन्तदेव ने अपने पुत्र कलश के पक्ष मे स्वय राजपद का परित्याग कर दिया था।[५१] ललितादित्य ने मंत्रियो को सन्देश भेजा कि उसके पुत्र कुबलयादित्य को राजा बनाया जाय-किन्तु यदि उसमे राजोचित गुण न हो, तो उसे राज्याच्युत कर दिया जाय—ऐसे मे यदि वह राज्य से बाहर चला जाय या आत्महत्या कर ले तो शोक न करे, छोटे पुत्र को कदापि राजा न बनाया जाय किन्तु यदि उसे राजा बना दिया जाय तो उसके प्राणो की रक्षा तथा आज्ञा का पालन किया जाय।[५२] इससे स्पष्ट होता है कि मनोनयन करने का अधिकार राजा को होता था किन्तु वे उपयुक्त पात्र का ध्यान रखते थे।

राजा शंकरवर्मा व उसके पुत्र गोपालवर्मा के मध्य के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कि

---

४६ राज० II १५१, १५९, III २-४,

४७ वही II ४-८,

४८ वही III १२४-१२५, १८६-१९०, २३९

४९ राज० पूर्वो० VI ३५५,३६२,३६५ कथा पूर्वो० भाग IV पृ० १८

५० वही VII २५१-२६१

५१ वही VII २३०-३३, २४५-२४७

५२ वही IV ३५६-३५८

तत्कालीन समय मे राजपद वशानुगत होता था।[५३] क्षितिराज ने इसी कारण से कलश के बडे पुत्र हर्ष को सभवत: अपना उत्तराधिकारी नही बनाया था।

ऐसे भी प्रसङ्ग प्राप्त होते है जब राजा, उसके मत्रियो तथा नागरिको मे उत्तराधिकारी के प्रति मतैक्य नही होता था। कल्हण ने लिखा है कि राजा कलश हर्ष को उत्तराधिकारी बनाना चाहता था किन्तु उसने मत्रियो के विरोध के कारण अपने छोटे पुत्र उत्कर्ष को लोहर प्रान्त से बुलाकर सत्तारूढ किया—किन्तु उसका राज्याभिषेकोत्सव जन सहयोग के अभाव के कारण सूना लग रहा था। क्योकि नागरिक हर्ष को राजा बनाना चाहते थे, जो अन्त मे अपने अन्य भाई विजयमल्ल की मदद से राज्यारुढ हुआ।[५४] हर्ष ने अपने बाहुबल से सत्ता प्राप्त की थी। द्वितीय लोहरवश के प्रथम नरेश उच्चल ने भी ऐसा ही कहा था—

पृथिव्या वीरभोज्यायां क्रमो वा कोपयुज्यते।

वीरस्य च सहायोऽस्तु क: स्वबाहुद्वयात्पर॥ राज० VII १२८८

पृथ्वी सदा से वीरभोग्या रही है—यहाँ पर वश परम्परा के क्रम का उपयोग ही कहाँ होता है और वीर पुरुषो के लिये अपनी दोनो भुजाओ के सिवाय अन्य कौन सहायक हो सकता है। उच्चल की हत्या के बाद हत्यारे रड्डु को मारकर उच्चल के सौतेले भाई सल्हण ने कश्मीर राज्य पद प्राप्त किया था, किन्तु उच्चल के छोटे भाई सुस्सल ने उसे बदी बना कर स्वय राज्य पद अधिगृहीत कर लिया।[५५]

बड़े भाई के राजा बनने पर छोटे भाई के युवराज पद पर आरुढ होने के कई प्रसङ्ग मिलते है। राजा प्रवरसेन के पुत्र हिरण्य के राजा बनने पर उसके छोटे भाई तोरमाण को युवराज बनाया गया था।[५६] राजा अवन्तिमर्वा ने अपने छोटे भाई शूरवर्मा को युवराज पद दिया था।[५७] तथा राजा उच्चल ने अपने छोटे भाई सुस्सल को अधिराज्य पद पर अभिषिक्त करके लोहरप्रात पर शासन करने के लिये भेज दिया था।[५८]

---

५३ राज० V २००-२०२

५४ राज0 VII ३६२,६८,९१,६१७,२७,४०,४४,४६,७०३,६,७,३१-३३,३५,३६,४०,७३-७६,८२९

५५ वही VIII ८-९,३८७-३८८,४८०-८१

५६ वही III १०२

५७ वही २२

५८ वही VIII८

राजदरबार—राजा हर्ष के काल मे कश्मीरी राजदरबार का वैभव अपनी पराकाष्ठा पर था। उसी का वर्णन करते हुये कल्हण लिखते है कि दरबार मे कोई भी व्यक्ति बिना अच्छे कपड़ो स्वर्णाभूषणो के नही आता था। विभिन्न स्थलो के लोग कश्मीरी दरवार मे आते थे। मत्रियो की यात्रा के समय उनके पहनावे व ठाठ-बाठ को देखकर प्राय. लोग उनके राजा होने का भ्रम कर बैठते थे। रात्रि के समय सभा भवन मे सहस्रो दीपक जगमगा उठते थे और नृत्य, सङ्गीत तथा विद्वतापूर्ण वार्तालापो से सम्पूर्ण सभा भवन शोभायमान हो उठता था। राजा हर्ष ने दरबारियो के लिये चमकीले व भड़कीले श्रृगार-प्रसाधनो का प्रयोग प्रारम्भ करवाया। इस सबका व्यय जनता द्वारा प्राप्त 'कर' से ही किया जाता था।[५९] मानसोल्लास[६०] अपराजितपृच्छा[६१] तथा कादम्बरी[६२] मे राजदरबार का विस्तृत विवेचन किया गया है।

राजमहल—कल्हण ने कश्मीर के वैभवपूर्ण राजमहलो का अनेक स्थलो पर उल्लेख किया है। हर्ष के अनेको महल कनक-आमलक आभूषणो व इमारतो की भव्यता के कारण बादलों को छूते प्रतीत होते थे। सैकड़ो द्वारो वाले महल विशिष्ट रूप से अपनी भव्यता के लिये प्रसिद्ध थे।[६३] राजा, रानियो, युवराजो तथा राजकुमारियो के लिये पृथक्-पृथक महल होते थे, जहॉ आवश्यकता के सम्पूर्ण साधन सुलभ होते थे। मानसोल्लास,[६४] तथा नैषधीयचरितम्[६५] मे राजमहलो का बडा ही मनोहारी चित्रण किया गया है।

रनिवास (अन्तःपुर) —विवेच्यकाल मे राजाओ के पास इतने बडे-बडे रनिवास हो गये थे कि उनके प्रबन्ध के लिये **'गृहकृत्य'** नामक पदाधिकारी की नियुक्ति की जाने लगी।[६६] राजा हर्ष के अन्तःपुर मे ३६४ रानियॉ थी।[६७] इसी प्रकार कलचुरिनरेश गागेयदेव के रनिवास मे १०० रानियॉ

५९ राज० पूर्वो० VII ८८१-८८३, ८९५, ९४६-९४९, ९९४, ११००-११०१
६० मानसोल्लास-गा०ओ०सि० १९३९ खण्ड II अ० II पृ० १००-१०७
६१ अपरा०-भुवनदेव गा० ओ० सि० बडौदा अ० CXIV,१९५० पृ० १९६
६२ **कादम्बरी**- निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९४८
६३ राज० पूर्वो०-स्टेइन VII ९३८, १५५०
६४ मानसोल्लास पूर्वो०- III २८
६५ **नैषधीयचरितम्**-श्रीहर्ष-निर्णयसागर प्रेस,१९३३ XVIII ३-२७, VI- ४६
६६ राज० पूर्वो० V १६७, १७६
६७ वही VII ९६३

थी।[६८] कल्हण ने हर्ष के रनिवास का कवित्त्वपूर्ण वर्णन किया है।[६९] ये रनिवास आपसी ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, सत्ता के प्रति प्रेम के कारण गभीर राजनीतिक षडयन्त्रो की जन्मस्थली सिद्ध होते थे। रानी सूर्यमती के कहने पर मत्रियो की इच्छा के विरुद्ध राजा अनन्त ने अपने पुत्र कलश को सत्ता सोप दी थी—उसी रानी के कारण बाद मे उसे आत्महत्या करनी पडी।[७०] रानी दिद्दा की महत्त्वाकाक्षा तथा रानी सुगन्धा के षडयन्त्रो के कारण कश्मीर का राजनीतिक जीवन दूषित हो गया था।[७१]

११७६ ई० मे मुहम्द गोरी जब उच के दुर्ग को विजित नही कर पाया तब उसने वहाँ की रानी से शादी का प्रस्ताव भेजा-फलस्वरूप रानी ने अपने पति की हत्या करवाकर शत्रु के लिये दुर्ग के द्वार खोल दिये।[७२] इससे यही सकेतित होता है कि अन्त.पुर के षडयन्त्रो व घातक परिणामो ने राजनीतिक जीवन को दूषित कर दिया था।

राजवैभव एवं राजभोग—प्राचीनकाल मे ही राजवैभव व राजभोग राजाओ की दिनचर्या का अग था—यह महात्मा बुद्ध की कथा से सहज समझा जा सकता है। बुद्ध के लिये जब ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की कि वे महान शासक या सन्यासी बनेगे तब उनके पिता ने उन्हे राजवैभव व राजभोग के सम्पूर्ण साधन सुलभ करवाये थे। किन्तु उस समय इनका प्रयोग एक सीमा तक नैतिक रूप मे किया जाता था। कादम्बरी[७३] के नायक ने इच्छातृप्ति की अधिकता को नजरअदाज किया था क्योकि यह राज्य के नियमो के विरुद्ध था। किन्तु सातवी शती तक आते-आते सङ्गीत, नृत्य, मद्यपान, वेश्यावृत्ति राजाओ के गुण माने जाने लगे थे।[७४] दसवी शती के लेखक इब्नखुर्दाब्दा[७५] लिखते है कि इस समय भारतीय राजा राजवैभव व अनैतिकता को धर्म द्वारा प्रदत्त मानने लगे थे। क्षेमेन्द्र[७६] भी राजाओ के

---

६८ इपी०इ० XII २११
६९ राज० स्टेइन- VII ९२८-९३१
७० वही VII २३०
७१ वही V २४९-२६२, २८८-३४०
७२ जे० ब्रिग्स— **'हिस्ट्री ऑव द राइज ऑव द मोहम्डन पॉवर इन इण्डिया'** लॉगमैन्स एण्ड ग्रीन, १८२९, खण्ड I, पृ०१६९
७३ **कादम्बरी**-पूर्वो० नवम् सस्करण पृ० १३३
७४ वही पृ०२३३
७५ हबीब **'हिन्दुस्तानी'** १९३१, पृ० २७३
७६ **बौद्धावदानकल्पलता**—अनु० सरतचन्द्र दास, भाग अ कलकता १८८८, १८४

मध्य इस प्रकार की भोग, विलासिता जो निषिद्ध सीमा को पार कर चुकी थी—की चर्चा करते है। कल्हण[७७] ने राजा हर्ष की मूर्खतापूर्ण महगे आनन्दो, विलासिता व अनैतिकता का भयकर एव घृणात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। कश्मीरनरेश भिक्षाचर मूर्खतापूर्ण असयमित दुराचार मे इतना मग्न था कि उसे अपने राज्य की बिल्कुल चिन्ता नही थी। अपितु वह एक नीचवर्ण के कामुक की भाँति, अपनी प्रकृति के विपरीत वस्तुओ के भोजन, घडे तथा कास्य (मजीरा) आदि वाद्य वादन मे तनिक भी लज्जा का अनुभव नही करता था, फलस्वरूप धीरे-धीरे उसकी सम्पूर्ण सम्पदा समाप्त हो गयी और वह पतन को प्राप्त हुआ।

अस्तु इस समय राजाओ, मत्रियो व अधिकारियो मे भोग-विलास, अनैतिकता का बोलबाला दिखाई पडता है।

मंत्रि-गण—प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तको ने राज्य के सात अग (प्रकृति)—राजा, अमात्य, कोष (भूमि), जन, बल, मित्र, दुर्ग—स्वीकार किये है। इनमे मत्री का स्थान महत्वपूर्ण है।[७८] अर्थशास्त्र[७९] मे कहा गया है कि राजा तभी सफलतापूर्वक राज्य का संचालन कर सकता है जब उसे योग्य एव बुद्धिमान मत्रियो की सहायता मिले क्योकि एक पहिया कभी रथ नही खीच सकता। महाभारत[८०] मे भी कहा गया है कि राजा मत्री पर उसी प्रकार निर्भर करता है जैसे पशु बादलो पर, ब्राह्मण वेदो पर तथा स्त्रियाँ अपने पतियो पर। काणे[८१] ने मत्री के लिये तीन शब्दो-अमात्य, सचिव तथा मन्त्रिण-का प्रयोग किया है। अर्थशास्त्र मे सलाहकार के लिये सचिव शब्द प्रयुक्त हुआ है।[८२] कल्हण[८३] महोदय ने मंत्रियो के समूह के लिये मत्रिपरिषद अथवा मत्रिसभा शब्द का प्रयोग किया है जबकि पृथक् रूप से मत्रियो के लिये अमात्य[८४] सचिव[८५] तथा मन्त्रिण[८६] शब्दो का प्रयोग किया है।

७७ राज० पूर्वो० V-१६७, १७६, VII-९६३, विक्रम०-पूर्वो VI ३४-३५

७८ अर्थशास्त्र VI अ० १ अग्निपुराण भाग II अध्याय २२९ पृ८५३, विष्णु अ० ३ पृ०३३ , शुक्र० अ० I पक्ति ३७-३८, १२२-१२४

७९ अर्थ० पूर्वो० खण्ड I अ० VII

८० महा० शान्तिपर्व अ० CVI श्लोक ११

८१ **धर्मशास्त्र का इतिहास** भाग III पृ० १०४

८२ अर्थ० पूर्वो० खण्ड I, अ० VII

८३ राज० पूर्वो० IV ६१, VI २६१

८४ वही IV ३२०, ४०३, VIII १६३३

८५ वही IV ३१०, VIII २३,८७२-८७३

८६ वही IV ३१८, ३४०, ३७८, VII ५७१,७३, VIII १०४७, १५६६-१५६७

कल्हण ने समय-समय पर क्रमराज्य, माडवराज्य तथा लोहर प्रान्त मे शासन करने के लिये जाने वाले राज्यपालो के लिये भी मत्रिन् शब्द का प्रयोग किया है।[८७] राजतरङ्गिणी मे ही हमे प्रधानसचिव, मुख्यमन्त्रिण, अग्रमन्त्रिण के सन्दर्भ प्राप्त होते है।[८८] कृष्णा मोहन[८९] के अनुसार इन सन्दर्भो मे प्राप्त 'मन्त्रिण:' शब्द मुख्यमत्री जिसे 'सर्वाधिकृत' कहा जाता था—के लिये प्रयुक्त न होकर मन्त्रियो की सख्या के लिये प्रयुक्त हुआ है, जो सामान्यत. पॉच होते थे और जिन्हे 'प्रधान प्रकृति' कहा गया है।[९०] परन्तु यदि सूक्ष्मता से इन शब्दो का विवेचन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि अग्रमन्त्रिण शब्द प्रधानमत्री के लिये ही प्रयुक्त हुआ है न कि मत्रियो की सख्या के लिये।

मन्त्रियो की महत्ता पर कल्हण ने लिखा है कि—मत्रिगण अन्य विश्वस्त लोगो के साथ मिलकर राजा की एक स्थायी सभा बनाते थे क्योकि जिस प्रकार चन्द्रमाविहीन रात्रि तथा सत्य से रहित भाषण नही अच्छे लगते उसी प्रकार मन्त्रियो के बिना राज्यलक्ष्मी भी नही शोभायमान होती।[९१] अर्थशास्त्र[९२] और कामन्दकनीतिसार[९३] मे मन्त्रिपरिषद मे बारह अमात्यो के सम्मिलित होने का उल्लेख है किन्तु कल्हण ने एक स्थल पर राज्य के पॉच मन्त्रियो का उल्लेख किया है।[९४] जबकि दूसरे स्थल पर राजा सग्रामराज (१००३-२८ ई०) के काल मे श्रीधर के सात पुत्र-जो मन्त्री थे तुग के विरुद्ध युद्ध करने आये थे।[९५] इससे भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है किन्तु कृष्णा मोहन यह कहते हुये इसका निराकरण करती है कि मत्रि-परिषद् मे मत्रियो की सख्या अधिक हो सकती थी—इसीलिये अर्थशास्त्र मे यथासामर्थ्यम् शब्द प्रयुक्त हुआ है किन्तु राजा के मन्त्रिमण्डल मे पॉच ही मत्री होते थे जिनसे राजा महत्त्वपूर्ण, गोपनीय तथा अत्यावश्यक मामलो मे विचार-विमर्श करता था।[९६] राजा ललितादित्य अपने मत्री मित्र शर्मा

---

८७ राज० VII १३७५-१३७६

८८ राज० पूर्वो० V-४१८, VI-१९४, VII-१४३१, VIII-१३८३,२१७५

८९ कृष्णा मोहन **'अर्ली मेडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर'** मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली, १९८१, पृ० ८९

९० राज० उपरोक्त VII-१०४२-४३, VIII-२१७५

९१ वही VI-२७९

९२ शामशास्त्री- पूर्वो० खण्ड-I, अ०-XV

९३ अनु० जे०पी० विद्यासागर कलकत्ता १८७५ सभाग-XI ७४

९४ राज० पूर्वो० V-४२२-२३, VI १०३, ११५-११६

९५ वही VII-२२

९६ राज० पूर्वो० V-४३०, VII-१०४३,१२५१

की दूरदर्शिता से प्रसन्न होकर उसे पचविरुदो (पॉच पदो की पदवी) का अधिकारी घोषित किया, उसी समय से प्राचीन अठारह कार्यस्थलो पर ये पॉच महाविरुदे—महाप्रतिहारपीडा महासान्धिविग्रह, महा-अश्वशाला, महाभण्डागार, महासाधनभाग—प्रयोग मे आने लगी जिन्हे राजवंश के लोग ही धारण किया करते थे।[९७] कल्हण ने साधारण राज्य मे धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष, परराष्ट्रसचिव, पुरोहित तथा ज्योतिषी ये सात अधिकारी (प्रकृति) माने है जबकि राजा जलौक ने अष्टादश कर्मस्थान स्थापित करके राजा युधिष्ठिर के समान अपने राज्य को सुन्दर बना दिया।[९८]

कल्हण ने सर्वत्र राजा की प्रभुसत्ता मत्रियो पर उसी प्रकार स्वीकार की है जैसे हीरा किसी भी कीमती पत्थर से कट नही सकता किन्तु सबको काट सकता है।[९९] सोमदेव[१००] लिखते हैं कि राजा जब तक सही रास्ते पर चलता हो उसे किसी को नही रोकना चाहिये, परन्तु जैसे ही वह गलत रास्ते पर जाय, मत्रियो द्वारा रोक दिया जाना चाहिये। राजा अवन्तिवर्मा जन्मना वैष्णव होते हुये अपने मत्री शूर को प्रसन्न करने के लिये मरणावस्था तक ऊपर से शैव बना रहा, इसी प्रकार यह मत्री शूर राजा को प्रसन्न करने के लिये अपने पुत्र के प्रिय सेवक धन्व डामर का सिर काटकर राजा का क्रोध शान्त किया। इस प्रकार राजा व मत्रियो के मध्य परस्पर सम्मान पर आधारित आदर्श सम्बन्ध होने चाहिये। जिनके मन मे कभी पारस्परिक क्रोध एव मनोमालिन्य न उत्पन्न हुआ हो—ऐसे राजे और मत्री ससार मे न कभी देखे गये और न सुने गये।[१०१] हर्षोत्तर काल से राजा व मन्त्रियो के बीच मतभेद हमे स्पष्ट रूप से दिखाई पडने लगते है।[१०२]

उत्तराधिकार सम्बन्धी महत्वपूर्ण मामलो मे राजाओ की पसन्द के निर्णय बदलने मे मंत्रियों की अहम भूमिका होती थी। राजा शकरवर्मन (९०२ ई०) की मृत्यु के बाद रानी सुगन्धा ने अपने सजातीय निजितवर्मा को राजा बनाना चाहा—जिसका मत्रियो ने विरोध किया तथा तत्रियों व पदातियो से

९७ राज० IV-१३९-१४३
९८ वही I-११८-१२०
९९ वही IV-५१
१०० कथा० पूर्वो० ३ ३.४६, VI-२९७-२९८, ३१५
१०१ राज० V- ४३, ४७-६०, ६३, १२४, VIII-१५६६, ३३२९
१०२ 'दशकुमारचरित'-दण्डिन अनु० काले० ओरिएन्टल पब्लि० क० बम्बई, १९१७ I,पृ० ७

मिलकर उसके पुत्र पार्थ को राजा बनाया।[१०३] इसी प्रकार राजा कलश (१०६३-१०८९ ई०) हर्ष को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था किन्तु मत्रियो के विरुद्ध होने के कारण उसे अपने छोटे पुत्र उत्कर्ष को लोहर प्रात से बुलाकर राजा बनाना पडा।[१०४] अस्तु मत्रियो की शक्ति राजा के व्यक्तित्व पर निर्भर करती थी। कमजोर राजा प्राय मत्रियो के हाथ की कठपुतली होते थे। द्वितीय लोहर राजवश के उत्तराधिकार युद्ध के समय गर्गचन्द्र इतना शक्तिशाली हो गया था कि राजा सुस्सल केवल छाया मात्र था तथा सभी अन्दर, बाहर, छोटे-बडे, जीवन, मृत्यु के लिये गर्ग पर निर्भर थे।[१०५] इसके विपरीत राजा उच्चल (११०१-११११ ई०) अपने द्वारपति को अधिक शक्तिशाली होते देख उसे पदच्युत कर दिया तथा उसके अधिकार सहिष्णु व समर्पित लोगो को दे दिया।[१०६] राजा जयसिह के शासनकाल (११२८-११४९ ई०) मे प्रतिहार लक्ष्मक इतना शक्तिशाली हो गया था कि अन्य मत्रियो के उत्थान व पतन को वह कन्दुक की भॉति ऊपर-नीचे कर सकता था।[१०७]

कौटिल्य के अनुसार एक मत्री मे निम्न गुण होने चाहिये—उसी राज्य का जन्मा हो, उच्चकु-लोत्पन्न, प्रभावशाली, चतुर, बुद्धिमान, दूरदृष्टा, साहसी, चरित्रवान, स्वस्थ, शक्तिशाली, कला मे निपुण, जागरुक एव सतर्क, स्थिरचित्त, अहकाररहित, वक्तृत्त्वकला मे निपुण तथा ईर्ष्यारहित।[१०८] कल्हण लि-खते है कि इन्ही गुणो को ध्यान मे रखकर मत्रियो की नियुक्ति का प्रयास किया जाता था, किन्तु अच्छे गुणो के मत्रियो का सर्वथा अभाव होता था। बहुत से ऐसे मत्री थे जो न तो राज्य मे जन्मे थे न ही उच्चकुलोत्पन्न। हलधर—भूति नामक वैश्य का पुत्र-जो गौरीश के मदिर मे द्वारपाल था। रानी सूर्यमती की सेवा करके प्रधानमन्त्री (सर्वाधिकारिन) बन गया था।[१०९] क्षेम नामक नाई ने कोष को परिपूर्ण किया तथा पादाग्र नामक पद सृजित किया, जो बाद मे सभी कार्यालयो मे श्रेष्ठ हो गया।[११०] रानी

---

१०३ राज० पूर्वो० V-२५१-२५५
१०४ वही VII ७०३
१०५ वही VIII ४१५-४२६, ८७२
१०६ वही VIII १७५-१८६
१०७ वही VIII १४८४, १५६७,१६३३
१०८ अर्थशास्त्र पूर्वो० भाग I,अ० IX, कामन्दक-पूर्वो० खण्ड II २५-३१
१०९ राज० पूर्वो० VII २०७-२०९
११० वही VII २०३-२१०

दिद्दा ने पर्णोत्सप्रातवासी खशजातीय तुग—जो पहले भैस पालता था को सर्वाधिकारी पद प्रदान किया था।[१११] त्रिगर्तदेशनिवासी केशव नामक ब्राह्मण राजा अनन्त का मत्री बना था।[११२] लोगो की पालकी उठाने वाले कुय्य नामक कहार का पुत्र सिन्धु—राजा पर्वगुप्त का प्रिय सेवक था—'धीरे-धीरे वह गजाध्यक्ष (खजानची) बन गया, दिद्दा रानी ने भी उसे गजाधिकारी बनाया। आगे चलकर वह विभाग का अध्यक्ष बन गया तथा 'सिन्धुगज' नामक नये विभाग की स्थापना की।[११३] निम्नकुलोत्पन्न भद्रेश्वर नामक कायस्थ को राजा सग्रामराज ने गृहकृत्य पद प्रदान किया था।

ऐसे भी प्रसङ्ग प्राप्त होते है जब प्रतिभावान तथा प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करने वाले योग्य किन्तु अपराधी लोगो को पद प्रदान किये गये जबकि क्रूर मत्री या तो पदच्युत कर दिये गये या मार डाले गये।[११४] राजा कलश ने राजस्व वृद्धि करने मे सिद्धहस्त मंत्री नोनक की क्रूरता के भय से उसे पादाग्र का पद नही दिया था। इसी प्रकार अनेक मत्रीपुत्र स्वेच्छाचारी, असत्यभाषी चोर और लूट-मार करने वाले थे—इसलिए पद प्राप्ति से वचित रह गये।[११५]

ऐसे भी उद्धरण प्राप्त होते है जिनसे स्पष्ट होता है कि राज्यपद की प्राप्ति राजा की कृपा पर निर्भर करती थी। मेरुवर्धन के धूर्त पुत्रो ने पार्थ आदि जिन राजाओ की कृपा से जीविका व उच्च पद पाया था उन्ही राजाओ को विविध प्रकार के षडयन्त्र रचकर अनेको बार पदच्युत किया।[११६] राजा चक्रवर्मा के कृपापात्र डोमो की खुशामद करने वाले मत्रियो का अभ्युदय होने लगा और उन्हे अक्षपटल का अधिकार प्राप्त हो गया।[११७] रानी दिद्दा ने कौटिन्य (मनपसन्द युवको को लाने) का काम करने वाले को नगराधिपति तथा अपने प्रेमपात्र तुग को सर्वाधिकारी पद प्रदान किया।[११८] राजा सग्रामराज ने चन्द्रमुख कायस्थ के पुत्रो नान, भाग और नन्दिमुख को मत्रिपद प्रदान किया था।[११९] चमक नामक

११११ राज० VI ३१८-३२०, ३३३-३४०, VII १३-१५
११२ वही VII २०४-२०५, VIII १०४२,१०४७
११३ वही VI २६४, २६७
११४ वही VII ३७, ८८९-८९१, VIII ४३०
११५ राज० VII ५७१-५७३
११६ वही V-२९८-३०१, VIII १८१, ५७७, २३६६
११७ वही V-३८९-३९०, ३९६
११८ वही V-२९६, ३२२-३२४, VI ३१८-३२०, ३३३-३४०, VII-३८,३९,४२,१०६
११९ वही VII १११-११७

भाट के कुटनेपन मे प्रसन्न होकर राजा कलश ने उसे मत्रिमण्डल मे स्थान, धन, मान तथा 'ठक्कुर' की उपाधि प्रदान की एव अपने पुत्रो का पालन करने वाले वामन को 'सर्वाधिकारी' बनाया।[१२०]

उपरोक्त प्रसङ्गो के आधार पर कहा जा सकता है कि कश्मीर मे पदाधिकारियो की नियुक्ति मे योग्यता, चरित्र, वश, राष्ट्र-प्रेम एव सद्गुणो का कभी कडाई से पालन नही किया गया। मनु, याज्ञवल्क्य वाल्मीकि और शुक्र ने कहा कि यदि पुत्र मे पिता के समान गुण हो तो मत्री पद को वशानुगत कर देना चाहिए[१२१] किन्तु कश्मीर मे वशानुगत सिद्धान्त प्रचलित न था। कल्हण के पिता चम्पक द्वाराधीश थे किन्तु स्वय योग्य होते हुये भी कल्हण ने कोई पद नही स्वीकार किया। कभी-कभी पूर्व मत्रियो के आश्रितो को उनकी योग्यता के आधार पर पद प्रदान किये जाते थे।[१२२] राजा द्वारा अपने सम्बन्धियो को भी पदारूढ किया जाता था—जिसकी कल्हण ने आलोचना की है किन्तु ऐसे व्यक्तियो की योग्यता पर उन्होने उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा भी की है।[१२३]

कुछ धनसम्पन्न लोग अपने धन के बल पर पद प्राप्ति का प्रयास करते थे। प्रशस्तकलश ने अपना स्वाभिमान प्रकट करते हुए अपने धन से बहुत बडी सेना गठित कर राजा की ओर से उस सेना का सेनापति अपने भाई रत्नकलश को बना दिया था, यद्यपि उसमे योग्यता नही थी।[१२४] इसी प्रकार स्वाभिमानी कन्दर्प ने अपने धन से सैन्यसग्रह करके अत्यन्त दुर्ग्राह्य स्वापिक दुर्ग पर अधिकार कर लिया था।[१२५] पद प्राप्ति हेतु घूस (उत्कोच) का सहारा लिये जाने के प्रसङ्ग भी प्राप्त होते हैं। कल्हण जी ने तो कटाक्ष करते हुए लिखा है कि राजा पार्थ के काल मे तत्रियो के नाम से दी हुई हुण्डियो को उस विपन्नावस्था मे पड़ी प्रजा का देकर जो व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा धन वसूल करता था वही राज्य के मत्री पद पर रह सकता था।[१२६]

---

१२० राज० VII-२८५-२९०, ५६८
१२१ मनु० अ० VII-५४, याज्ञ० अ० I-३१२, रामायण II १००-१२६
१२२ राज० VIII-३३२६-२७, ३३३२
१२३ वही VIII-२३५७-६०, २३६६, २३७५
१२४ वही VII-५९९-६००
१२५ वही VII-५९६
१२६ वही VIII-२३५२-५३, ५८,६०,२३६८-७०, V-२७५

प्राय एक मत्री एक ही विभाग मे नियुक्त किया जाता था किन्तु कभी-कभी एक मन्त्री को एक से अधिक पदो पर कार्य करना पडता था। रानी दिद्दा के समय तुग प्रधानमत्री के साथ-साथ सेनापति भी था।[१२७] राजा हर्ष के काल मे सहेल सेनापति के साथ-साथ द्वाराधीश पद पर भी आरूढ था।[१२८] जयसिह के समय सुज्जि न्यायिक तथा सैन्य मामले देखता था। साथ ही खेरी पद का भी प्रमुख था।[१२९]

यद्यपि किसी भी कार्यस्थान की सेवा अवधि निश्चित नहीं होती थी, किन्तु इतना निश्चित था कि कोई भी व्यक्ति राजा की कृपा प्राप्ति तक पढारुढ रहता था।[१३०] मत्री अपने पद से स्वेच्छापूर्वक त्यागपत्र दे सकता था।[१३१] अथवा राजा के अनुरोध के बावजूद पद नही स्वीकार करते थे।[१३२]

मत्रियो की आपसी वैमनस्यता से राज्य को हानि उठानी पडती थी। कल्हण ने लिखा है कि भरपूर भोजन मिलने के कारण उन्मत्त मेढे सीग की खुजली मिटाने के लिये आपस मे लडकर माथा टकराने लगते है और दोनो के बीच का खम्भा चकनाचूर हो जाता है, उसी तरह मनमाना कार्य करने के अभ्यासवश उद्दण्ड, दुर्दमनीय तथा ईर्ष्या से कलुषित बुद्धि वाले मत्री जब आपस मे ही लडते है तो राजा अतिशीघ्र नष्ट हो जाता है।[१३३] अन्य स्थल पर उन्होने लिखा है कि मंत्रियो के आपसी मतभेद से मामूली कार्य भी बनना कठिन हो जाता है, क्योकि कृषको की वैशाखरज्जु के खीचतान की तरह मत्रियो के दो दलो मे ही रस्साकशी होने लग जाती है।[१३४] राजा हर्ष के समय कन्दर्प व प्रशस्तकलश के मध्य का विवाद[१३५] तथा रानी दिद्दा द्वारा नरवाहन के प्रति अविश्वास इसके उदाहरण हैं।[१३६]

प्रशासनिक व्यवस्था—राजा प्रशासनिक व्यवस्था का सर्वोच्च बिन्दु माना जाता था जो मंत्रियो व कर्मचारियो की सहायता से प्रशासन चलाता था किन्तु कल्हण ने लिखा है कि राजा जयापीड के

१२७ राज० VI-३३३,३५४
१२८ राज० VII-१३१९
१२९ वही VIII १६२३-१६२५, १६८२-१६८६
१३० वही VI-२००-२०७, २८४-२८५, VII-४२, ५८३,६०१, VIII-९३,२९३,५६०-५६२,१६२३-१६२५, १६८२-१६८६
१३१ वही VII-१६६, ६०५
१३२ वही VII-५१५, ५९७, १३६२, VIII-१८७,२४७७
१३३ वही VII-१०१२, १२१३,१२१५
१३४ वही VII-१३९९
१३५ वही VII-५९७-५९९
१३६ वही VI-२७१-२७७

समय कश्मीर मे राज्ञा पद की अपेक्षा पण्डित पद अधिक लोकप्रिय था—यद्यपि पण्डितो मे बहुत से अवगुण आ गये थे किन्तु उनकी प्रसिद्धि मे किसी भी प्रकार की कमी नही आयी। प्रतिदिन एक लाख दीनार वेतन पाने वाले भट्टोद्भट नामक महापण्डित उसके यहाँ सभापति पद पर था तथा अन्नक्षेत्र के अध्यक्ष थक्किय नामक महान पण्डित की विद्वता से प्रभावित होकर राजा ने उसे अपने यहाँ रख लिया।[१३७] राजतरङ्गिणी के विभिन्न उद्धरणो से पता चलता है कि राजा के 'मत्रिमण्डल' मे पॉच मुख्यमत्री (प्रधानप्रकृति) सम्मिलित होते थे, जिनसे वह अत्यावश्यक एव गोपनीय मामलो पर चर्चा करता था। इनका तादात्म्य प्रधानमत्री (सर्वाधिकृत), सेनापति (कम्पनेश), द्वारपति, मुख्य न्यायाधीश (राजस्थानीय) तथा मुख्य राजस्व अधिकारी (पादाग्र) से की जाती थी। जबकि उसकी मत्रिपरिषद मे अन्य मत्री सम्मिलित होते थे। प्रशासन को भली-भॉति सचालित करने के लिये स्थानीय प्रशासनिक अधिकारी भी नियुक्त किये जाते थे।[१३८]

प्रधानमंत्री राज्य का सर्वोच्च प्रशासनिक पद होता था।[१३९] प्रथम लोहर वश के प्रारम्भ मे पूर्व बद्दिवास निवासी खशजातीय तुग सर्वाधिकारी बना जो राजा सग्रामराज के समय तक पदारूढ रहा किन्तु उसके कुप्रशासन से व्यथित जनता ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। अन्ततोगत्त्वा उसकी हत्या कर दी गयी।[१४०] राजा कलश के समय पहाडी राजाओ की सभा मे सभी के लिये समुचित व्यवस्था उसके प्रधानमत्री वामन ने किया था।[१४१] भिक्षाचर केवल नाम मात्र का शासक था—वास्त-विक शक्ति उसके प्रधानमत्री विम्ब के हाथो मे थी।[१४२]

राजस्थानाधिकारी[१४३] या राजस्थान राजतरङ्गिणी के अन्तिम दो तरंगो मे प्रयुक्त हुआ है। कम्पन (सेनापति) तथा द्वारपति के साथ प्रयुक्त होने के कारण इसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है।[१४४] किन्तु इसका अर्थ स्पष्ट नही होता। सी० वी० वैद्य[१४५] महोदय ने राजस्थानीय को जिला स्तर का अधिकारी

---

१३७ राज० पूर्वो० IV-४९१-४९५

१३८ वही V-४२२-४२३,VI-१०२-१०३,११५,कथा०-खण्ड V पृ० ९८,९९ खण्ड VII पृ0 १३७

१३९ वही VI-३३३, VII-२०७-२०८,३६४,५६८ VIII-५६०,८६२,१८५०,२३६०,२४६०,२४७०

१४० वही VII-१३,१४,७४,८४

१४१ वही VII-५६८

१४२ वही VIII-८६२

१४३ राज० VII-६०१, VIII-१८१, ५७३, १०४६, १९८२

१४४ वही VIII-१७१-१८१, ५७३-५७५ स्टेइन-खण्ड I, VII ६०१ टिप्पणी

१४५ सी०वी०वैद्य—'हिस्ट्री ऑव मेडिवल हिन्दू इण्डिया' पूना १९२१, खण्ड I, पृ० १५७

माना है जो अन्य राज्यो के साथ सम्बन्ध स्थापित करता था। क्षेमेन्द्र[१४६] लिखते है—**प्रजापालनार्थ मुद्वहति रक्षयति स राजस्थानीयः**—जो प्रजा का सरक्षण व पालन करता है उसे राजस्थानीय कहा जाता है। स्टेइन[१४७] महोदय ने इसी आधार पर राजस्थानाधिकार का तादात्म्य न्यायिक प्रशासन से लगाया है। राजा जयसिह के समय अलंकार के पास राजस्थान का कार्यभार था, जिसे राजगृहस्थ[१४८] राजस्थानीय[१४९] और बाह्यराजस्थानाधिकारभक[१५०] कहा गया है। एक अन्य स्थल पर राजस्थानीय-मत्रिण[१५१] तथा कुछ राजगृह्य[१५२] का उल्लेख है जिन्हे स्टेइन महोदय ने प्रधान न्यायाधीश (राजस्थानीय) का सहायक माना है।[१५३] राजा उच्चल ने चुड्डा और उसके भाई जो राजसी पद प्राप्त करना चाहते थे—को राजदरबार (राजस्थानट) से निकाल दिया था।[१५४] यहाँ राजस्थानट का स्पष्ट रूप से अर्थ दरबार है।

'पादाग्र' पद का सर्वप्रथम उल्लेख राजा अनन्त देव के राज्यकाल (१०२८-१०६३ ई०) मे प्राप्त होता है। जव प्रधानमत्री हलधर ने इसे सभी पदो मे श्रेष्ठ बना दिया था।[१५५] राजा कलश ने मत्री नोनक को 'पदाग्र' पद उसकी क्रूरता को देखते हुये नही प्रदान किया।[१५६] इससे भी इस पद की महत्ता सदर्भित होती है। स्टेइन महोदय के अनुसार पादाग्र का शाब्दिक अर्थ ऐसे अधिकारी से है जो राजा के पैरो के सामने खड़ा रहे किन्तु विभिन्न उद्धरणो के आधार पर इसका सम्बन्ध 'राजस्व' से प्रतीत होता है।[१५७] इसी पद पर रहते हुए चित्ररथ का उल्लेख कल्हण ने कई बार किया है।[१५८]

राजतरङ्गिणी मे कई स्थलो पर **कम्पन** या कम्पना शब्द प्रयुक्त हुआ है। स्टेइन महोदय ने इसे

---

१४६ लोकप्रकाश इण्डि० एन्टी० खण्ड V, पृ० २०७
१४७ स्टेइन खण्ड I, VII-६०१
१४८ राज० VIII-२६७१, २९२५
१४९ वही VIII-२६१८
१५० वही VIII-२५५७
१५१ वही VIII-७५६
१५२ वही VII-१५०१,VIII- ३१३२
१५३ स्टेइन खण्ड I, VII-६०१ टि०
१५४ राज० VIII-२७०
१५५ राज० VII-२०३, २०८-२१०
१५६ वही VII-५७१
१५७ स्टेइन० – खण्ड I, VII-२१० (पा०टि०)
१५८ राज० VIII-२२२४-२२२६,१४३६,१९६४

सेनापति माना है, जिसके लिये कम्पनाधिप, कम्पनार्धीश, कम्पनापति, कम्पनेश शब्द प्रयुक्त हुये है।[१५९] क्षेमेन्द्र ने राज्य के महत्त्वपूर्ण पदाधिकारियो की सूची मे 'कम्पनापति' को द्वारपति तथा अश्वपति के बीच रखा है।[१६०]

पॉच मुख्यमत्रियो मे अन्तिम महत्वपूर्ण पद 'द्वाराधिप'[१६१] का था, जिसका साहित्यिक अभिप्राय 'द्वार-प्रमुख' है जिसके समानार्थी शब्द द्वारपति[१६२], द्वारेश[१६३], द्वारनायक,[१६४] द्वाराधिकारी[१६५], द्वाराधीश्वर[१६६], प्रयुक्त हुये है—

कम्पनेश व द्वाराधीश दोनो पदो पर एक ही व्यक्ति के पदारूढ होने के भी साक्ष्य प्राप्त होते है।[१६७] कृष्णा मोहन[१६८] के अनुसार द्वाराधीश पद विशेष रूप से कश्मीर मे ही प्राप्त होता है जबकि अन्य पद हमे प्राचीन भारत के अन्य राज्यो मे भी मिलते है—क्योकि कश्मीर के राजनैतिक इतिहास तथा घाटी की ओर जाने वाले मार्गो की सामरिक महत्ता ने एक ऐसे अधिकारी की नियुक्ति को आवश्यक बना दिया जो विशेष रूप से सीमा सुरक्षा का दायित्व निभाये—इसी को 'द्वाराधिप' या 'आक्रमणो का निरीक्षक' कहा गया। सभवत शत्रु के आक्रमण के समय शीघ्रता से निर्णय लिया जा सके इसीलिए इसे कम्पनेश (सेनापति) पद से सयुक्त कर दिया गया।

कल्हण महोदय ने लिखा है कि हर्ष के राज्यकाल मे द्वारेश सुज्जक उच्चल के अचानक हमले के कारण कैद कर लिया गया था। जिस समय उच्चल क्रमराज्य के रास्ते से कश्मीर मे प्रवेश कर रहा था—लोहरप्रान्त मे हर्ष का द्वारपति कपिल ने उसे देखकर भी नही रोका बल्कि आगे पर्णोत्स प्रदेश मे

---

१५९ राज० V-४४७,V-२२८,२३०,२३३,२३७,२५९,VII-१५४,२६७,३६५,३९९,५७९,८८७,९२३,१३१९, १३६२,१३६६,VIII-१७७,१८०,६२७,६४७,६५२,६८५,६९८,८६०,९६०,१०४६,१६२४

१६० लोकप्रकाश अध्याय IV पृ० ५९

१६१ राज० V-२१४, VII-५७६, VIII-६३३

१६२ वही VI-१७९,२८१, VII-२२३,५८४,९१२,११७२, VIII-७५६

१६३ वही VII-१३०१, VIII-२२५४,२४९३,२६६२,२८५२,२९३७

१६४ वही VI-३२५, VIII-१८५

१६५ वही VII-२१६, ९९५, ११७८, VIII-१०४२

१६६ वही VIII-१७८,२५०१-२५०३

१६७ राज० VII-१३१९

१६८ कृष्णा मोहन-पूर्वो० पृ० १००-१०१

पहुँचकर उच्चल की सेना का सामना किया।[१६९] इससे यह भ्रम उत्पन्न होता है कि क्या द्वारेश तथा द्वारपति पृथक्-पृथक् पद थे। स्टेइन ने इसका स्पष्टीकरण करते हुये लिखा है कि राजा जयसिह के राज्यकाल मे (११२८-११४९ ई०) राजा सुस्सल का हत्यारा उत्पल जब कश्मीर मे पुन प्रवेश कर रहा था तभी वह विजदेव से आते समय शूरपुर के 'द्रगाधिप' द्वारा मार डाला गया।[१७०] यहाँ कल्हण ने सुरक्षा चौकी (वाच स्टेशन) के प्रमुख के लिये द्रगाधीश्वर, द्रगाधिप तथा द्रगेश जैसे शब्दो का प्रयोग किया है।[१७१] इसी प्रकार तोशमैदान के मार्ग पर कार्कोटद्रग पर भी द्वारेश था। दूसरी ओर हर्ष के शासनकाल मे कल्हण के पिता चम्पक द्वारपति थे।[१७२] इससे सिद्ध होता है कि द्वारेश व द्वारपति पृथक्-पृथक् पद थे। द्वारेश कई होते थे जबकि द्वारपति केवल एक ही व्यक्ति होता था—जो सम्पूर्ण सचालनो का निरीक्षण करता था। द्वारेश का पद काफी खतरनाक होता था। अनन्त के शासनकाल (१०२८-१०६३ ई०) मे द्वाराधिकारी बिम्ब ने खशो से युद्ध करते हुए अपने प्राण दे दिये थे।[१७३] उसके बाद भद्रेश्वर पुत्र राजेश्वर जो उसी पद पर आरूढ़ हुआ था क्रमराज्य के डामरो के विरुद्ध वीरगति को प्राप्त हुआ।[१७४] इन खतरो के बावजूद लोगो के प्रति इस पद के प्रति आकर्षण बना रहता था। राजा हर्ष के काल मे अनन्त जिसे पादाग्र पद मिला था—द्वाराधिकारी बनना चाहता था।[१७५]

पॉच मत्री पदो के अतिरिक्त जो अन्य पद महत्त्वपूर्ण थे उनमे सान्धिविग्रहिक (युद्ध एव सन्धि मत्री), नगराधिप, गृहकृत्य तथा खेरी है।

सान्धि विग्रहिक युद्ध एव शान्ति का मत्री होता था—जिसका प्रमुख कार्य युद्ध व सन्धि के बारे मे राजा को सलाह देना था।[१७६] राजा ललितादित्य ने अपने सान्धिविग्रहिक मत्री मित्रशर्मा की सलाह पर कान्यकुब्जनरेश यशोवर्मा के सन्धिपत्र को स्वीकार नही किया था।[१७७] राजा सुस्सल-विद्रोही

१६९ राज० VII-१३००-१३०१
१७० वही VII-१५७७-१५८०, स्टेइन खण्ड I, VI-१४०, टि० खण्ड II, पृ०-२९२,३९९
१७१ वही
१७२ राज० VII-११७७
१७३ वही VII-२१६-२१७
१७४ वही VII-२२३,३६४,५७६
१७५ वही VII-९९३-९९५
१७६ वही IV-७११, VI-३२०, VIII ३३५४ कथा० खण्ड I
१७७ वही IV-१३७-१४०

उत्पल से एकान्त मे मिलने के समय तक जब किसी आप्तजन को आया हुआ नही पाया तो उन्हे राजद्रोही घोषित कर दिया, किन्तु तभी सान्धिविग्रहिक राहिल के आने पर उन्हे अन्दर आने की अनुमति प्रदान कर दी।[१७८] इन प्रसङ्गो से इस पद की महत्ता स्पष्ट होती है।

सिन्धु का भ्राता भुय्य-दिद्दा रानी का **नगराधिपति** था जो उसकी धार्मिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता रहता था किन्तु उसे अपने आनन्द मे बाधक समझकर रानी ने विष देकर मरवा दिया तथा उसकी जगह अपने लिये कौटिन्य का कार्य करने वाले देवकलश को नगराधिकृत बनाया।[१७९] राजा सग्रामराज ने दुर्बुद्धि पार्थ को नगराधिकृत बनाया था जिसने भगवान प्रवरेश्वर के रगपीठ पर पशुहिसा जैसा पापकर्म शुरु करवा दिया।[१८०] इसी प्रकार राजा कलश ने प्रजा से धन इकट्ठा करने के लिये एक के स्थान पर चार नगराधिकृत नियुक्त किया, जो स्पर्धावश एक दूसरे से अधिक धन सग्रह करते थे।[१८१] राजा कलश ने विजयपाल को जब से 'नगराधिप' बनाया था तब से राज्य के सब चोरो का भय भाग गया था।[१८२] इन प्रसङ्गो से स्पष्ट होता है कि नगर की सम्पूर्ण व्यवस्था की जिम्मेदारी नगराधिपति की होती थी। कश्मीर मे खेरी[१८३] पद भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। कल्हण ने खेरी-कार्य का उल्लेख महत्त्वपूर्ण पद के रूप मे किया है[१८४] किन्तु स्टेइन महोदय ने खुर-नारवव परगना के आधार पर खेरी को जिला माना है।[१८५]

राजा शकरवर्मन (८८३-९०२ ई०) ने कायस्थो की सलाह पर गृहकृत्य[१८६] (घरेलू मामलो का प्रमुख) तथा अट्टपतिभाग (बाजार प्रमुख)[१८७] नामक नये विभाग स्थापित किये। प० मधुसूदन कौल के अनुसार गृहकृत्यपति—नागरिक तथा सैनिक विभागो के साथ-साथ धार्मिक तथा दान सम्बन्धी

१७८ राज० VIII-१३०३-१३०४
१७९ राज० VI-२९६,३२२,३२४
१८० वही VII-१०८-१०९
१८१ वही VI-७०
१८२ वही VII-५८०
१८३ वही I-३३५, VIII-९६०,१११८,१४८२,१६२४
१८४ वही VIII-१४८२
१८५ स्टेइन खण्ड I, I-३३५ (टि०)
१८६ राज० V-१६७-१७७
१८७ वही V-१६७

मामलो को भी नियंत्रित करता था यद्यपि वह घरेलू मामलो का प्रमुख था।[१८८] कल्हण ने लिखा है कि गृहविभाग के कार्यो को करने के लिये पॉच दिविर तथा एक गजवर (खजानची) होता था।[१८९] क्षेमेन्द्र लिखते है कि प्रत्येक कायस्थ की सर्वोच्च्व इच्छा गृहकृत्याधिपति बनना होती थी।[१९०] जिसे अपने अधीनस्थ सात मुख्य अधिकारी तथा आठ कार्यालयीय कर्मचारियो की नियुक्ति का अधिकार होता था। इसके अतिरिक्त परिपालक, नियोगी, गजदिविर तथा ग्रामदिविर भी गृहविभाग के अधीन कार्य करते थे।[१९१] परिपालक को प्रान्तीय गवर्नर कहा गया है।[१९२] जबकि स्टेइन ने इसका मुख्य कार्य धार्मिक कार्य व दान बताया है।[१९३] राजा संग्रामराज के शासनकाल (१००३-१०२८ ई०) मे प्रधानमंत्री तुंग ने निम्नजातीय भद्रेश्वर नामक कायस्थ को गृहकृत्याधिपति बना दिया था, जिसने राजपरिचरो, देवताओं, गायो, ब्राह्मणो, गरीबो तथा विदेशियों को प्राप्त होने वाली मदद समाप्त कर दी थी।[१९४] क्षेमेन्द्र ने गृहकृत्याधिपति को महत्तम भी कहा है[१९५], जिसका उल्लेख राजतरङ्गिणी मे कई स्थलो पर हुआ है।[१९६] जहॉ स्पष्टतया इसका सम्बन्ध राजस्व प्रशासन से माना गया है।[१९७] क्षेमेन्द्र जी लिखते है कि गृहकृत्य विभाग से भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिये राजा अनन्त ने गृहकृत्याधिपति से नीचे के सभी पदो को समाप्त कर दिया किन्तु उन्ही के शासनकाल मे क्षेम नाम नाई-जिसे गंजाधिकारी (वित्त विभाग का अधिकारी) बनाया गया था—ने द्वादशभाग जैसे नये-नये कर लगाकर राजकोष भरने लगा तथा पादाग्र नामक नये पद को सृजित किया।[१९८] इसके बाद नये-नये विभागो की स्थापना करके राजकोष भरने की राजाओ मे जैसे होड़ लग गयी। कुय्य नामक कहार के पुत्र सिन्धु—जिसे

---

१८८ नर्ममाला-अनु० मधुसूदन कौल प्रस्तावना पृ० १२
१८९ राज० V-१७७ नर्म अ० I, श्लोक ३२
१९० नर्म० अ० I, श्लोक ३२
१९१ वही श्लोक ३४,३७,५१
१९२ कौल-प्रस्तावना पृ० १२
१९३ स्टेइन VII-९९४ (टि०)
१९४ राज० पूर्वो० VII-४२-४३
१९५ नर्म० पूर्वो० अ० I, श्लोक ६०
१९६ राज० VII-११७०-११७१
१९७ कृष्णा मोहन-पूर्वो० पृ० ११०
१९८ राज० VII-२०३,२१०

रानी दिद्दा ने गजाध्यक्ष बनाया था—अपने पद पर रहते हुये राजकोष भरने के लिये सिन्धुगज नामक विभाग स्थापित किया।[१९९]

हर्ष का अर्थनायक गौरव सदाचारी होते हुये भी राजा की आज्ञा मे देवमन्दिरो की सेवा के लिये अर्पित ग्रामो का अपहरण करने लगा। समरस्वामी मन्दिर का पार्षद सहेल ने जब राजा हर्ष को दूना कर वसूल करके दिया तो राजा ने उसे 'अर्थनायक' पद प्रदान किया।[२००] इसी राजा ने देवसम्पत्ति लूट लेने के बाद देवताओ की धातुनिर्मित मूर्तियो का अपहरण करने के बदले 'उदयराज' को 'देवोत्पाटन नायक' का पद दिया।[२०१] राजा हर्ष ने कर प्राप्ति के लिये 'पुरीपनायक' (मल-मूत्र की सम्भाल करने वाला अधिकारी) की नियुक्ति की।[२०२]राजा कलश ने लोभवश अवन्तिस्वामी आदि के मदिरो के नाम लगे गॉवो को जब्त करके 'कलशगज' नामक नयी कचहरी स्थापित की।[२०३]राजा जयपीड ने यात्रा के समय स्थायी कोष दूर रहने के कारण 'चलगज' नामक नया विभाग स्थापित कराया जिसमे हाथियो पर आवश्यक धन लादकर निश्चित स्थान पर पहुँचा दिया जाता था।[२०४]राजा सग्रामराज की रानी श्रीलेखा ने मयग्रामीणगज तथा एक अन्य अधिकारी जयाकर ने 'जयाकर गज' नामक नये विभाग राजकोष को भरने के लिये स्थपित किया।[२०५]

अनशन सम्बन्धी अधिकारियो को प्रायोपवेशन कहा जाता था।[२०६] राज्य मे प्रविष्ट करने वालो की देख-रेख के लिये एक अधिकारी नियुक्त किया जाता था।[२०७] राजा की आज्ञा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का कार्य हरकारे करते थे परन्तु ये लोग जनसामान्य के लिये भी कार्य करते थे या नही यह स्पष्ट नही होता।[२०८] राजा के पास गुप्तचर भी होते थे जो उसके लिये कार्य

---

१९९ राज० VI २६४-२६६
२०० वही VII ११०३-११०६
२०१ वही VII ११२९
२०२ वही VII ११०७
२०३ वही VII ५७०
२०४ वही IV ५८९
२०५ वही VII १२५-१२६
२०६ वही VII १४
२०७ वही VIII २७८
२०८ वही III-२१२,IV-३४०, VI-३१८-३२०, VIII-१७९३,१८१३

करते थे।[२०९] राजतरङ्गिणी मे सूत या सारथी का भी उल्लेख हुआ है।[२१०]

राजा के आज्ञापत्र लेखन का कार्य लेखाधिकारी करता था।[२११] राजा विक्रमादित्य के आदेश पर लेखाधिकारी ने कवि मातृगुप्त को कश्मीर पर शासन करने सम्बन्धी आज्ञापत्र लिखकर दिया था। जबकि दानादि लेखन का कार्य पट्टोपाध्याय[२१२] किया करते थे। इन राजकीय लेखो को सुरक्षित रखने के लिये राजा नरेन्द्रादित्य ने नया विभाग स्थापित किया था।[२१३] राजकीय लेखो को रखने के लिये सचिवालय होता था-जिसे अक्षपटल कहा जाता था।[२१४] यहाँ सम्पत्ति का बैनामा कराने के लिये 'शुल्क' भी देना पड़ता था। राजा यशस्कर के काल मे एक वैश्य ने बैनामा लिखाने के लिये अधि-करणलेखक को एक हजार दीनार दिया था।[२१५] यहाँ लेखन कार्य करने तथा उन्हे सुरक्षित रखने वाले अधिकारियो को 'दिविर' कहा जाता था—जिसके लिये क्षेमेन्द्र ने गजदिविर, नगरदिविर, ग्रामदिविर, खवासदिविर शब्दो का प्रयोग किया है।[२१६] क्षेमेन्द्र ने दिविर की व्याख्या मे लिखा है—दिवि अर्थात् आकाश मे 'र' अर्थात् रोना यानि जो आकाश मे रोता है वह दिविर है। उन्होने लिखा है कि दैत्यो के गृह सम्बन्धी बहीखातो के लिये 'दिविर' थे, परन्तु विष्णु के हाथों जब दैत्यो की समाप्ति हो गयी तब दिविर आकाश में इतना फूट-फूटकर रोने लगे कि कलियुग को भी उन पर दया आ गयी और उसने देवो को आतंकित करने के लिये उसके (दिविर) के हाथ मे कलम दे दिया।[२१७] राज्य कर्मचारी जनता का जिस प्रकार शोषण करते थे, उससे यह कहानी बिल्कुल सही संकेत करती है। इनके लिए कायस्थ शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। इनकी सलाह पर राजाओ ने जनता पर नाना प्रकार के कर लगाकर इतना त्रस्त किया कि गॉवों और नगरों में मिट्टी भी राजकीय कर से नही बच सकी।[२१८] कमजोर शासकों

---

२०९ राज० IV-३२३, VI-८२, VII-५११, VIII-४२,६३

२१० वही VII-१६०३

२११ वही III-२०६

२१२ वही III-३९७

२१३ वही III-३८५

२१४ वही V-३०१,३८९,३९८, VII-१६२,२८७,१६०४

२१५ वही VI-३८

२१६ वही V-१७६,१७७, VI-१३०, VII-१११,११९, VIII-१३१ लोकप्रकाश अ० III,पृ०११

२१७ नर्ममाला अ० I, श्लोक ९-१५,३२

२१८ राज० VII-१४९,१२२६

के समय ये कायस्थ अत्यधिक कर वसूल कर राजकोष मे स्वल्प भाग देकर बाकी सब स्वय हडप लेते थे।[२१९]

प्रारम्भ मे ही कश्मीर घाटी दो प्रमुख भागो मे विभाजित थी—कमरज (क्रमराज्य) तथा मरज (माडवराज्य)[२२०] इन दोनो भागो पर देखभाल की जिम्मेदारी गवर्नर या मण्डलेश की होती थी।[२२१] प्रशासनिक दृष्टि मे कश्मीर घाटी को कई छोटे-छोटे जिलो मे बाटा गया था जिन्हे पहले 'विशय' कहा जाता था अब वही 'परगना' कहे जाते है।[२२२] क्षेमेन्द्र जी ने लिखा है कि उनके समय मे कश्मीर मे सत्ताईस 'विशय' थे परन्तु अब उन सबका तादात्म्य नही स्थापित किया जा सकता।[२२३] स्टेइन महोदय ने लॉरेन्स द्वारा प्रस्तुत सारिणी को सबसे प्रामाणिक माना है—इसमे ब्रिटिश शासन के आधार पर निर्मित ग्यारह तहसीले भी बतायी गई है।[२२४] सेन्सस रिपोर्ट। १९४१ के अनुसार कश्मीर राज्य के केन्द्रीय प्रान्त मे पन्द्रह जिले थे।[२२५]

क्षेमेन्द्र तथा कल्हण के अनुसार प्राचीन कश्मीर मे गॉवो की सख्या ६६,०६३ थी।[२२६] जोनराज ने भी यही सख्या बतायी है।[२२७] परन्तु १९४१ के सेन्सस रिपोर्ट मे कहा गया है कि कल्हण, क्षेमेन्द्र तथा जोनराज ने गॉवो की सख्या का अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेख किया है वास्तव मे प्राचीन कश्मीर मे गॉवो की सख्या ३५१८ थी।[२२८] प्राचीन भारतीय लेखको ने दस गॉव, एक सौ गॉव, एक हजार गॉव तथा दस हजार गॉव मे ग्रामीण क्षेत्र के विभाजित होने का उल्लेख किया है किन्तु हमे कश्मीर मे इस प्रकार का कोई उल्लेख नही मिलता।[२२९] कल्हण व क्षेमेन्द्र ने कर्मचारियो से युक्त स्थानीय प्रशासन

---

२१९ राज० IV-६२८-६२९
२२० स्टेइन खण्ड I, II-९५ (टि०)
२२१ राज० VII-९९६,११७८,१२२७,१२३१,१२४०,VIII-१२२८,१८१४,२०२९,२६९७
२२२ वही V-५१, VIII-१२६०,१४१३,२६९७
२२३ लोकप्रकाश पृ० ६०
२२४ स्टेइन खण्ड II, पृ० ४३६-४३७
२२५ **'सेन्सस ऑव इण्डिया'** कश्मीर १९४१, पृ० ७२
२२६ लोकप्रकाश पृ० ६०,
२२७ जोनराजकृत राज० V-१५३
२२८ **सेन्सस ऑव इण्डिया,** कश्मीर १९४१, पृ० ७२-७३
२२९ अर्थ० खण्ड II, अ० I, मनु० अ० VII, श्लोक ११४-११५, विष्णु III-७,८,९ शुक्र० अ I ३८३-८४ वी पक्ति (शुक्र ने केवल दस हजार गॉवो के सगठन का उल्लेख किया है।)

की चर्चा की है, जिसकी सबसे छोटी ईकाई ग्राम थी जिसका अधिकारी ग्रामकायस्थ कहा जाता था।[२३०]

केन्द्रीय सरकार व सचिवालय का एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य प्रान्तीय, जिला तथा स्थानीय प्रशासन का निरीक्षण एवं नियत्रण करना था परन्तु यह इस बात पर निर्भर करता था कि उसके अधिकारी कितनी यथार्थता से आदेशो का पालन करते है।[२३१]

कल्हण ने कश्मीर मे द्वैराज्य का भी उल्लेख किया है।[२३२] उन्होने लिखा है कि दो राजाओ के शासन अर्थात् द्वैराज की आशकावश राजा हर्ष का राजवैभव कुछ दिनो के लिये सकुचित सा हो गया किन्तु भाई विजयमल्ल के मरने पर वह फिर उन्नति की ओर बढ़ा।[२३३]

राजाओ का मार्ग बडा दुर्गम होता है क्योकि उन्हे हाट से बोझा ढोने वाले बैलो की तरह राज्य का भार वहन करना पड़ता है, नही तो कहॉ बड़े-बड़े नीतिज्ञ द्वारा ज्ञेय शासन कार्य और कहॉ खल बुद्धि लोगो का जमावड़ा नियमों का उलंघन करते हुये जिह्वा के वशीभूत ये परपिण्डोपजीवी खलरूपी कुत्ते न जाने कैसे राजाओ के पास आ धमकते है।[२३४] राजा ललितादित्य ने अपने विजय अभियान के समय राज-कार्य ठीक प्रकार से संचालित करने के लिये अपने मंत्रियों को कुछ सिद्धान्त बताये थे—जिसके अनुसार राज्य कार्य मे लगे हुए अधिकारियो से अपने भेद की सदा रक्षा कीजिये क्योंकि जैसे चावकि के मतानुयायियों को परलोक का भय नही होता वैसे ही कार्यकर्ताओं को भय नही लगता। अपने क्षेत्र के पर्वतीय प्रदेशो के दुर्गम स्थानों मे रहने वाले दुर्गाश्रित लोगों को वश मे रखना बड़ा कठिन कार्य है। इसलिये यदि वे निर्दोष हों तब भी उन्हें बराबर दण्ड देते रहना चाहिए नही तो वे धनी होकर वश से बाहर हो जायेगे। किसानो के पास केवल साल भर भोजन के लिए अन्न तथा खेती के लिए जितने आवश्यक हो, उतने बैल रहने देना चाहिए, इससे अधिक होने पर वे क्रूर, प्रबल, डामर, हठी तथा दुःखदायी हो जायेंगे और राजाज्ञा की अवहेलना करने लगेंगे। यदि उन्हे नागरिकों

---

२३० राज० पूर्वो० V-१७५
२३१ कृष्णा मोहन पूर्वो० पृ०-११७
२३२ राज० पूर्वो0 VIII-१९०५,२२१५,२२१९,२४५९,३०२७
२३३ वही VII-९१९
२३४ राज० पूर्वो० VIII-२१०७-२१०८

की तरह अच्छे वस्त्र, मिठाई, सुन्दर स्त्रियॉ, घोडे आदि की सवारी और अच्छे घर मिलने लगे, राजे अत्यन्त रक्षणीय दुर्ग की रक्षा न करे, राजसेवक विवेक भ्रष्ट हो जाय, घुडसवार तथा पैदल सेना के सैनिक एक ही प्रान्त के हो। कायस्थादि अधिकारी गण विवाहादि सम्बन्ध करके ऐक्यबद्ध हो जॉय और राजे भी कायस्थो के समान लोभी और प्रजापीडक बनकर अन्याय करने लगे तो यह समझ लेना चाहि कि वह प्रजा के दुर्भाग्य का उदयकाल है।[२३५]

राजा की सेवा करना बेताल को जगाने, खन्दक लाघने, विष चबाने तथा सर्प का आलिङ्गन करने से भी टेढा काम है। जिस राजा के यहॉ एक भृत्य के दण्डित होने पर अन्य सशक हो उठते है वहॉ उस समझदार राजा के अपराध करने पर उसी को अपमान सहना पड़ता है क्योकि राजे अपने सेवको के अन्तर्मन की बात नही समझ पाते जिसका परिणाम होता है कि निरपराध राष्ट्र को दुख भोगना पडता है।[२३६]

राजा उच्चल के सुप्रशासन की प्रशंसा करते हुए कल्हण लिखते है कि वह राजा लोककल्याण के निमित्त सबेरे ही घर से निकल पडता था और शाम को सूर्यास्त तक राज्य की स्थिति देखता हुआ घूमता रहता था। वह यदि अर्द्धरात्रि मे भी शत्रु की कोई कार्यवाही सुनता तो तुरन्त जाकर उस विप्लव को वही कुचल देता था। प्राय वह राजा वेष बदलकर घोडे पर सवार होकर राज्य की गतिविधि देखने के लिये अकेला ही निकल पडता था—उस समय जिस किसी अधिकारी को वह दोषी पाता उसे तुरन्त नौकरी से पृथक कर देता था। पूर्ण तन्मयता व मेहनत के साथ काम करने वाले उसके सेवक रात्रि के समय भी तीन-चार बार उससे मिलते थे। अपने राज्य निवासियो के वह कष्ट सुनता तो क्षण भर मे अपना सारा काम छोडकर उनका कष्ट दूर कर दिया करता था, जैसे पिता पुत्र की विपत्ति दूर करता है। यदि कभी दुर्भिक्ष पड जाता तो सचित अन्न को सस्ते भावो मे बेचकर दुर्भिक्ष के उत्पन्न होते ही उसका अन्त कर देता था। राज्य मे किसका विभाजन करना है और किसकी विपत्ति दूर करनी है—गुप्तचरो से इसका पता लगवाकर वह समस्याओ के समाधान की विधि पर विचार करता था।[२३७]

---

२३५ राज० IV-३४४, VII-९७८,१०७०,१३९४-९५
२३६ वही VIII-२१८७,१०५०,२०३४
२३७ वही VIII-४५-८७

इसी प्रकार राजा हर्ष ने प्रार्थियो की प्रार्थना सुनने के लिये अपने महल के चारो द्वारो पर बड़े-बड़े घण्टे बधवा दिये थे—जिनकी ध्वनि सुनते ही वह प्रार्थी से मिलने के लिये चल पड़ता था।[२३८]

इस प्रकार कश्मीर मे सुप्रशासन के साथ-साथ कुप्रशासन भी देखने को मिलता है किन्तु कल्हण महोदय ने बडी सूक्ष्मता से इनका विवेचन किया है।

सैन्य-व्यवस्था

सेना की महत्ता को स्वीकराते हुए कौटिल्य ने इसे राज्य के सात अंगो मे से एक माना है।[२३९] शुक्र [२४०] के अनुसार लोगो व पशुओ का ऐसा समूह जो अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित होता—सेना कहलाती है। कश्मीर घाटी भौगोलिक दृष्टिकोण से पहाड़ो से घिरी होने के कारण सुरक्षित थी किन्तु यहाँ चारों तरफ से आने वाले मार्गो की सुरक्षा पर इसकी सुरक्षा निर्भर थी क्योकि बाह्याक्रान्ताओ, अर्थलोलुप पड़ोसी राजाओ, तथा सत्ता के विद्रोही दावेदारो के साथ सन्धि करने वाले उद्दण्ड व नीच डामरो के कारण इन मार्गो की सुरक्षा करना एक कठिन कार्य था—इसीलिये कश्मीरी नरेशो को एक सुदृढ सुसंगठित एवं शक्तिशारी सेना की परमावश्यकता थी।

भारतीय सेना के चार परम्परागत अंग माने गये है—पैदल, अश्वसेना, गजसेना तथा रथ।[२४१] विवेच्यकालीन कश्मीर में रथो के अतिरिक्त हमे सेना के शेष तीनो अगों के साक्ष्य मिलते है किन्तु रथो की अनुपस्थिति सभवत: यहॉ की भौगोलिक स्थिति-पहाड़ो की ऊबड़-खाबड़ भूमि में रथ-संचलन की असुविधा—के कारण रही होगी। इसके स्थान पर हमे एक अन्य प्रकार के रथ-कर्णिरथ-का उल्लेख प्राप्त होता है जो मनुष्यो के द्वारा कन्धो पर ढोया जाता था। राजा ललितादित्य की सेना में सवा लाख जबकि राजा जयपीड के पास केवल अस्सी हजार कर्णिरथ थे।[२४२] उरशा से राजा शंकरवर्मन की लाश ऐसे ही कर्णिरथ पर लायी गई थी।[२४३] तथा राजा जयसिह के विरुद्ध विद्रोही राजकुमार भोज

---

२३८ राज० पूर्वो० VII-८७९
२३९ अर्थशास्त्र खण्ड VI अ० I, विष्णु० अ० III, श्लोक ३३
२४० शुक्र० अ० IV, सभाग ७, पक्ति २
२४१ अर्थ० खण्ड X, अ० IV, मनु० अ० VII, श्लोक १८५, नीलमत० श्लोक ९८१-९८३
२४२ राज० पूर्वो० IV ४०७
२४३ वही V २१९

डामरो की मदद मे राजा के सैनिक पडाव तक इसी प्रकार के कर्णिरथ मे पहुँचा था।[२४४] विलयम्म महोदय ने 'कर्णि' का अर्थ 'तीर या प्रक्षेपास्त्र' से लगाया है—इस प्रकार 'तीरो को ले जाने वाले वाहन' को कर्णिरथ कहा है।[२४५] किन्तु यह अर्थ ग्राह्य नही प्रतीत होता। सभवत 'कर्णिरथ' कश्मीर की दुर्गम पहाडी मार्गो—जहाँ अश्वो द्वारा वाहन खीचना काफी कठिन होता रहा होगा—मे मनुष्यो द्वारा माजो-सामान ले जाने के लिए प्रयुक्त वाहन रहे होगे।

श्री रामतेज शास्त्री जी ने अपने राजतरङ्गिणी के हिन्दी अनुवाद मे ऐसी सैन्य टोलियो का उल्लेख किया है जिनके समान द्रुतगामी घोडो पर तथा शस्त्रादि युद्धोपकरण घोडो द्वारा खीची जाने वाली गाडियो पर लदे होते थे।[२४६] कल्हण ने कई स्थलो पर 'युग्य' शव्द प्रयुक्त किया है, जिसका अर्थ रथ से लगाया जाता है।[२४७] जबकि आप्टे महोदय ने इसका अर्थ 'जुते हुए से' लगाया है (युगाय हित यत् यग्य)।[२४८] इस प्रकार कश्मीर मे रथ प्रयुक्त किये जाने की स्थिति स्पष्ट नही है।

प्राचीन भारत मे अश्वसेना को कभी भी उत्तम लडाकू नही माना गया बल्कि इनकी अपेक्षा गजसेना तथा रथो को अधिक महत्त्व दिया जाता था।[२४९] कल्हण ने घुडसवारो के लिये अश्वारोह, हयारोह या तुरगानीक शब्द प्रयुक्त किया है, इससे पता चलता है कि कश्मीर मे अश्वसेना सेना का स्थायी भाग होती थी।[२५०] हर्ष के पुत्र भोज तथा कल्हण के पिता चम्पक के मध्य एक घोड़ी के कारण हुए विवाद का उल्लेख प्राप्त होता है।[२५१] राजा शकरवर्मन की सेना मे एक लाख अश्वारोही थे।[२५२] इससे इस समय अश्वसेना के महत्त्व का परिचय प्राप्त होता है। अपनी महत्ता के कारण घोडा बहुमूल्य जानवर माना जाता था—जिन्हे काफी ऊँचे दामो मे खरीदा जाता था।[२५३] राजाओ को अश्वारोहण

---

२४४ राज० पूर्वो० VIII ३१६१-३१६५
२४५ मोनियर विलियम्स **'ए सस्कृत इगलिश डिक्शनरी'** पृ० २५७
२४६ राज० पूर्वो० VIII-७३६
२४७ राज० पूर्वो० VII-९३४, VIII-३१६५
२४८ सस्कृत हिन्दी कोश पृ०-८३६
२४९ जी० टी० दाते **'द आर्ट ऑव वार इन एन्शिएन्ट इण्डिया'** बम्बई १९२९, पृ० ४५
२५० राज० V-१५७, VII-३६०,९०२,९०५,९११,१३६०,१४३०,१५६८-१५६९, VIII-४०,३९४,९३७,७४३
२५१ वही VII १५९१
२५२ वही V-१४३-१४४
२५३ वही VII-१३६०,१५६८-६९, VIII-७३,५२७,७४४-७४५,१०९४,११००,२०९४

का प्रशिक्षण दिया जाता था—हर्ष जब अपने दादा (अनन्त) से मिलने विजयेश्वर क्षेत्र जा रहा था उस समय राजा कलश के अश्वरोही उसकी तीव्रता को नही पा सके।[२५४] कम्बोज देश के घोडे विशेष रूप से प्रसिद्ध थे, वहॉ की उत्तम नस्ल के घोडे देश के अन्य भागो मे भेजे जाते थे।[२५५]

अश्वसेना का अधिकारी हयसेनापति या अश्वपति होता था।[२५६] तथा घोड़ो की देख-रेख के लिये अश्वघासकायस्थ नामक अधिकारी नियुक्त किया जाता था जबकि घोडो से सम्बन्धित लेखा-जोखा रखने वाले अधिकारी को अश्वशाला दिविर कहा जाता था।[२५७] कुछ अश्वसेना अधिकारियो की कल्हण ने प्रशसा की है।[२५८]

भारतवर्ष मे लडाकू सेना के रूप मे गजसेना की सर्वत्र प्रशसा की गई है।[२५९] ललितादित्य मुक्तापीड की सेना मे असख्य हाथी थे।[२६०] कल्हण ने कलिग प्रदेश को हाथियो का जन्मस्थल माना है सभवत यही से हाथी कश्मीर मे आयात किये जाते रहे होगे।[२६१] उच्चल व सुस्सल के विरुद्ध हर्ष द्वारा मुकुटयुक्त हाथी पर सवार होकर युद्ध करने का उल्लेख है—इस युद्ध मे हर्ष के हाथी ने अपने ही पक्ष के पैदल सैनिको तथा अश्वसैनिको को कुचल दिया था।[२६२] ऐसी ही स्थिति का उल्लेख कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव[२६३] ने पोरस तथा सिकन्दर की सेनाओं के बीच हुये झेलम (वितस्ता) युद्ध का किया है, जिसमे एरियन को उद्धृत करते हुए उन्होने लिखा है कि चार हजार अश्वारोही, तीन सौ रथ, दो सौ हाथी तथा तीस हजार पैदल सिपाहियो के होते हुए पोरस हार गया क्योकि उसके सैनिको के तीर बारिश के कारण जमीन मे धस जाते थे तथा पोरस के ही हाथियो ने अपने ही पक्ष के सैनिको को कुचल डाला। कृष्णा मोहन के अनुसार[२६४] गजनी के महमूद के हाथो काबुल के शाही की हार से शिक्षा लेकर कश्मीर मे हाथियो का युद्ध मे प्रयोग बन्द सा हो गया।

---

२५४ राज० पूर्वो० VII-३९३-३९४, १३३३
२५५ वही IV-१६५-१६६, १८८,२१३, VIII-४९३
२५६ राज० VII-७६६-७६९, VIII-३३९,५२८
२५७ वही III-४८९
२५८ वही VIII-५२८
२५९ वही I-३६६, V-१४३-१४४, VII-६५,७७२
२६० वही III-३२७
२६१ वही IV-१४७-१४८
२६२ वही VII-१५५३-१५५५
२६३ 'कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव'—**'प्राचीन भारत का इतिहास'**—यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद १९८३, पृ० १२०-१२१
२६४ कृष्णा मोहन पूर्वो० पृ० १२३

सैन्य सगठन मे पैदल सैनिको का सदैव से प्रवेश रहा है। राजा शकरवर्मन की सेना मे नौ लाख पैदल सैनिक (पत्तीना) थे।[२६५] युद्धकाल मे इनकी भर्ती के लिए राजा राज्य के भ्रष्ट धनिकों का धन हडप लेता था—राजा कलश के सर्वाधिकारी जयानन्द ने ऐसा ही किया था।[२६६] भिक्षाचर के पक्ष मे डामरो के सम्मिलित हो जाने पर सुस्सल ने प्रचुर धन व्यय करके पैदल सैनिको की भर्ती आरम्भ कर दी—उसके धन को देखकर राज्य के कारीगरो व गाडीवानो ने भी शस्त्र ग्रहण कर लिया।[२६७]

उपरोक्त चार शाखाओ के अतिरिक्त सेना मे **रसद विभाग, यातायात** तथा **चिकित्सा सेवाओं** की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती थी। राजपुरी राज्य के विरुद्ध सैन्य अभियान के समय सुस्सल के घोडो को घास की आपूर्ति यातायात विभाग, सैनिको को अस्त्र-शस्त्र की पूर्ति रसद विभाग तथा घायल यात्रियो की सेवा चिकित्सा विभाग द्वारा की जाती थी।[२६८] राजाओ द्वारा सैन्य अभियानो के समय अपने साथ कोष ले जाने के भी उल्लेख है।[२६९] सैनिको को घायलावस्था मे वेतन अक्षपटल जाने के बजाय घर पर ही दे दिया जाता था।[२७०] प्रवासकाल मे सैनिको को प्रवास भत्ता भी दिया जाता था।[२७१]

कौटिल्य[२७२] ने सेना मे भर्ती की जाने वाली छ. प्रकार की टुकडियो का उल्लेख किया है—परम्परागत (मौल), भृतक, श्रेणी, मित्र, अमित्र, आटविबल। रामायण[२७३] मे भी चार प्रकार की टुकडियो के उल्लेख है—मौल, मित्र, आटवि, भृत्य। यत्र-तत्र दी गई सूचनाओ को एकत्र करने से ज्ञात होता है कि कश्मीर मे महामात्य (प्रधान सलाहकार), राजपुत्र, तत्री, अश्वारोही, सामत-प्रमुख और उसकी सेना, डामर, तथा दूसरे सैनिक मिलकर कश्मीर की सेना की अठारह टुकडियाँ बनती थी।[२७४] सुस्सल

---

२६५ राज० V-१३७,१४३-१४४
२६६ वही VII-३६७-३६८
२६७ वही VIII- ७२६-७२८
२६८ दाते पूर्वो० पृ० ५९, राज० VII-११९१, VIII-६२९,७३५,७४३
२६९ राज० IV-५८९
२७० वही VII-१६२-१६३
२७१ वही VII-११५६, VIII-७५७,८०८,१४५७,२७५३
२७२ अर्थशास्त्र पूर्वो० खण्ड IX, अ० ११
२७३ **रामायण**-वाल्मीकिकृत युद्धकाण्ड अ० १७,श्लोक २४
२७४ राज० V-१४५-१४७, VII-४८,३२५,१३७१,१५१२,१५१४, VIII-२६६,१०७२

के विरुद्ध भिक्षाचर ने पजाब के तुर्को से सन्धि की थी।[२७५] राजा जयसिह अपनी सेना मे यवनो की भर्ती करते हुए उल्लिखित है।[२७६] बी० के० मजूमदार के अनुसार कश्मीरी राजाओ ने राजपूताना के सैनिको को अपनी सेना मे भर्ती किया था। इनमे चम्पा, वल्लापुर तथा कश्मीर के दक्षिणी पहाडी क्षेत्रो के राजपूत सैनिको के साथ सैन्धव तथा यवनो के भी सम्मिलित होने के उल्लेख प्राप्त होते है।[२७७]

राजतरङ्गिणी मे एकाग नामक सैनिक वर्ग का उल्लेख-प्राप्त होता है। अपनी नियुक्ति तथा कार्यो मे से राजा की स्थायी सेना (मौल) के महत्त्वपूर्ण भाग प्रतीत होते है।[२७८] स्टेइन महोदय के अनुसार ये पैदल सैनिक थे जिन्हे पुलिस सम्बन्धी कार्य प्रदान किये गये थे।[२७९] इनका सर्वप्रथम उल्लेख रानी सुगन्धा के राज्यकाल मे प्राप्त होता है जिनकी मदद से उन्होने दो वर्ष शासन किया था।[२८०] इसी प्रकार अपनी माँ श्रीलेखा की अनुमति के बगैर अनन्त एकागो द्वारा सत्तारूढ कर दिया गया था।[२८१] इसी राजा अनन्त के विरुद्ध सेनापति त्रिभुवन ने डामरो के साथ मिलकर विद्रोह कर दिया था किन्तु एकागो तथा घुडसवारो ने उसका साथ नही छोडा इससे प्रसन्न होकर राजा ने उन्हे वेतन के लिए अक्षपटल पर अनिश्चित अनिर्भरता के बजाय छियानवे करोड़ दीनार एकमुश्त प्रदान कर दिया।[२८२] इससे सिद्ध होता है कि ये राजा के वेतनभोगी सैनिक के रूप मे कार्य करते थे।

सेना के अठारह विभागो मे से एक तत्रिन थे—जिनके सेना के अन्य टुकडियो के साथ सैन्य अभियान मे जाने का उल्लेख है जबकि एकागो के इस प्रकार की किसी कर्तव्य के बारे मे कोई जानकारी नही मिलती।[२८३] कृष्ण मोहन ने इनका प्रमुख कार्य राजा के अगरक्षक के रूप मे माना है।[२८४] रानी सुगन्धा ने एकागो, मत्रियो तथा सामत प्रमुखो की एक परिषद् निजितवर्मन को गद्दी मे

---

२७५ राज० पूर्वो० ८८५-८८७

२७६ वही VII-११४९, VIII-२२६४

२७७ वही VIII-१८६४,१८६८,२२६४, बी० के० मजूमदार **"द मिलिट्री सिस्टम इन ऐन्शिएन्ट इण्डिया"** कलकत्ता, १९५५ पृ० ९० (टि०)

२७८ वही V-२४९,२५०,२५१,२६१,२८८,VII-९१,१२०,१२४,१३०,१३३,VII-९४,१३५,१५५,१६१,१६२,१०४

२७९ स्टेइन खण्ड I, V-२४९(टि०)

२८० वही V-२४८-२५५

२८१ वही VII-१३५

२८२ वही VII-१५५,१६१-१६२,१६०४

२८३ राज० VII-१४५७, VIII-५९७

२८४ कृष्णा मोहन पूर्वो० पृ० १२७

बैठाने के लिये बनाया किन्तु तत्रियो ने रानी की परिषद् के विरुद्ध विद्रोह करके निजितवर्मन की जगह उसके पुत्र पार्थ को राजा बनाया।[२८५] राजा हर्ष के समय उन्होंने अपनी सेना बना ली थी।[२८६] शक्तिशाली शासको ने इन्हे नियत्रण मे रखा किन्तु कमजोर शासको के समय सत्ता की बागडोर ये अपने हाथो मे रखने की कोशिश करते थे।[२८७] राजा सुस्सल ने जब सत्ता प्राप्त की तब ये राजसी सेना के अग बन गये जिन्हे वेतन के बदल हुण्डी दी जाती थी।[२८८] इसीलिये कल्हण कटाक्ष करते हुये लिखते है कि ग्राम्य कायस्थो की भाँति राज्य के अधिकारी तत्रियो को घूस-दे देकर लोगो को आपस मे लडाने लगे। जिस देश के वीर राजाओ ने कान्यकुब्ज आदि देशो पर विजय पायी थी वही अब तत्रियो से हुण्डी ले-लेकर अपनी उदरपूर्ति करने लगे। इन्ही की हुण्डी को ऊँचे दामो मे बेचकर जो अधिकाधिक धन कमाता था वही मत्रीपद प्राप्त करता था।[२८९]

कश्मीर नरेशो की सेना का एक महत्त्वपूर्ण भाग सामतो द्वारा दी गयी सामती सेना थी।[२९०] राजा से प्राप्त भूमि से उपलब्ध राजस्व पर ये सेनाये गठित की जाती थी। कश्मीर के मत्रियो द्वारा अपनी स्वय की सेनाये बनाने के भी उद्धरण प्राप्त होते है। दिद्दारानी से अपमानित मत्री फल्गुण अपने सैनिको के साथ-वराह क्षेत्र जा पहुँचा।[२९१] राजा कलश के मत्री कन्दर्प ने अपने धन से सैन्य सग्रह करके अत्यन्त दुर्ग्राह्य स्वापिक दुर्ग पर कब्जा कर लिया। इसी की प्रतिद्वन्द्वितावश प्रशस्तकलश ने अपने धन से सेना गठित कर अपने भाई रत्नकलश को उसका सेनापति बनाया।[२९२]

सैनिको की अनिवार्य भर्ती के साक्ष्य नही मिलते किन्तु लोग स्वेच्छा से सैन्यवृत्ति अपना लेते थे। जज्ज के अत्याचारो से पीडित ग्रामीण तथा भील (आटविक) समुदाय ने जयापीड की ओर से युद्ध मे भाग लिया था।[२९३]

---

२८५ राज० V-२५०,२५९-२६२,२८७,२९०-२९२,२९५,३०२,३२८-३३५,४३१, VI-१३२
२८६ वही VII-१५१३
२८७ वही V-२८०-२९७,३०२-३०४ VII-२९२
२८८ वही V-२६६,२७५,२९३, VIII-३१३,३१६,५१०,५९७
२८९ वही V-२६५-२६६, २७४-२७५
२९० राज० IV-४०७-४१४, VIII १९८०
२९१ वही VI-२०४
२९२ वही VII-५९६-५९९
२९३ वही IV-४७४

सेना की वास्तविक सख्या हमे उपलब्ध नही होती किन्तु कुछ ऐसे दृष्टान्त प्राप्त हाते है जिनसे इस बारे मे अनुमान लगाया जा सकता है। राजा जयसिंह ने लोहर दुर्ग के विरुद्ध दस हज़ार सैनिक भेजे थे किन्तु वे सब समाप्त हो गये।[२९४] ललितादित्य की सेना मे सवा लाख कर्णिरथ तथा राजा जयापीड की सेना मे अस्सी हजार कर्णिरथ थे।[२९५] राजा शंकरवर्मन की सेना मे ९,००,००० पैदल सैनिक, ३०० हाथी, १,००,००० अश्वारोही थे तथा उसमे स्थान-स्थान से सामती सेनाये आ-आकर मिली थी।[२९६] ये आकड़े वस्तुत. अतिशयोक्तिपूर्ण है। राजा सुस्सल (१११२-११२० ई०) ने जब सत्ता प्राप्त की थी। उस समय लगभग ५,०००-६,००० सैनिक उसके साथ थे।[२९७]

कल्हण ने-सैन्य रणनीति, गुप्तचरो की नियुक्ति, रात्रिकालीन निरीक्षक तथा सैनिक अभ्यास को महत्त्वपूर्ण माना है तथा शाही राजा को गजनी के महमूद के विरुद्ध युद्ध मे जाने वाले सेनापति तुग ने शाही नेता की चेतावनी के बावजूद तुर्को की रणनीति समझे बिना युद्ध मे भाग लिया फलस्वरूप कश्मीरी सेना की हार हुई—की निन्दा की है।[२९८] कश्मीरी सेना के पराजित होने का दूसरा कारण सम्पूर्ण सेना का अपने नेता पर निर्भर रहना था—फलस्वरूप सेनापति के हारने या मरने पर सम्पूर्ण सेना पराजित हो जाती थी।[२९९] कल्हण के विवरण से अप्रत्यक्ष रूप से यह मालूम होता है कि कश्मीरी सेनापति युद्ध सम्बन्धी रणनीति बनाते थे।[३००] कल्हण ने अनुपयुक्त समय (मौसम) मे प्रारम्भ करने वाले अभियानो की भी निन्दा की है।[३०१]

दुर्ग प्रारम्भिककाल से ही सुरक्षा के प्रमुख साधन के रूप मे मान्य रहे है। सैधव सभ्यता मे उच्च वर्ग के लोग दुर्गीकृत स्थान मे रहते थे जिसे 'सिटडेल' कहा जाता था। वैदिक वाड्मय मे इसके लिये 'पुर' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[३०२] शुक्र ने पूरा एक खण्ड ही दुर्ग पर लिखा है।[३०३] जबकि

२९४ राज० पूर्वो० VIII-१९०५-१९०६
२९५ वही IV-४०६-४१४
२९६ वही V-१३७-१४०, १४३-१४४
२९७ वही VIII-८१८
२९८ वही VII-४९-५५
२९९ वही VII-९०
३०० वही VIII-२२०५
३०१ वही VII-५९८,१३७३,१८३६-१८३९
३०२ ऋग्वेद I-५३,७,५८,८,१३१,४,१६६,८, III-१५४, IV-२७१ तैत्तरीय I-७७७५, शतपथ III-४.४.३
३०३ शुक्र० अध्याय IV सभाग ६

अग्निपुराण मे विभिन्न प्रकार के दुर्गो का उल्लेख किया गया है जिनमे 'गिरिदुर्ग' सर्वोत्तम माना गया है।[३०४] कश्मीरनरेश भी दुर्ग का उपयोग आपत्ति के समय करते थे। आपत्तिकाल मे अपना परिवार तथा खज़ाना वे इन्ही दुर्गो मे सुरक्षित रखते थे।[३०५] लोहर दुर्ग सुरक्षा की दृष्टि से सबसे उत्तम माना गया है जिसकी प्रशसा मुस्लिम लेखको ने भी की है।[३०६]

कल्हण ने दुग्धघाट,[३०७] शिरहशिला,[३०८] वाणशाल[३०९] तथा कर्णाह[३१०] दुर्गो का उल्लेख किया है। कुछ शासक गॉवो की भी किलेबंदी कराते थे, जिसका अधिकारी कोट्टेश कहलाता था।[३११]

किलो मे शरण लिये हुये विपक्षी की घेरावन्दी करना कश्मीर मे युद्ध का एक स्थायी गुण रहा है। कल्हण ने राजा हर्ष द्वारा राजपुरी स्थित पृथ्वीगिरि दुर्ग तथा लोहरप्रात मे स्थित दुग्ध घाट की घेरावदी करने का उल्लेख किया है।[३१२] उच्चल के पुत्र सहस्त्रमगल को राजा सुस्सल गर्ग से वापस चाहता था किन्तु गर्ग इसके लिये तैयार नही था अत सुस्सल ने उसे रत्नवर्ष नामक किले मे घेरकर आत्मसमर्पण के लिये बाध्य किया।[३१३] इसी प्रकार डामर विद्रोहियो द्वारा श्रीनगर की घेराबन्दी करने का उल्लेख है।[३१४]

आक्रमण के समय आक्रमण की सूचना देने, अपने सैनिको का उत्साह बढाने तथा विपक्षी सेना मे आतक फैलाने के लिये वाद्ययत्र बजाये जाते थे। कल्हण ने कई वाद्ययंत्रो का उल्लेख किया है, जिनमे दुन्दुभि को प्रमुखता दी गई है।[३१५]

---

३०४ अग्निपुराण-खण्ड II अ० CCXXII पृ० ७९४
३०५ राज०-पूर्वो० VIII-५१९,५६७,६३९,७१७
३०६ स्टेइन खण्ड II, पृ० २९५,२९८, इलियट खण्ड II पृ० ४५५,४५६ब्रिग्स-पूर्वो खण्ड I, फरिश्ता पृ० ५५
३०७ राज० VII-११७१
३०८ वही VIII-२५५६,२७०६
३०९ वही VIII-१६६६, १६७५, १८४१
३१० वही VIII-२५२५
३११ वही VIII-२१९४
३१२ वही VII-११५२,११७९-८०, III-१६८१,१८४१,२२०५
३१३ वही VIII-५००-५०२, ५१५-५१६
३१४ वही VIII-७२३,११५५,११८६,१४७४,१५४५
३१५ वही IV-१२९, VI-२४६, VIII-७३५,९४७-९५३, १०८०-१०८१, ११७३,१८७९

कश्मीरी शासको द्वारा शस्त्रपूजन का आयोजन किया जाता था। राजा अनन्त का पुत्र कलश राजदरबार तथा शस्त्रपूजन जैसे राजोचित कृत्य सम्पन्न करने के समय अनन्तदेव का सहायक बनकर पोरोहित्य जैसा काम करता था।[३१६] कश्मीरी सेना द्वारा प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख युद्धोपकरणो मे तलवार (असि, खड्ग, खग),[३१७] धनुष और तीर,[३१८] चाकू (छूरी),[३१९] शूल (त्रिशूल),[३२०] भाला (कुन्त),[३२१] कुल्हाडी (परशु),[३२२] कटार,[३२३] अग्नेयास्त्र[३२४] क्षेपणीय,[३२५] पत्थरो की वर्षा करना[३२६] थे। औजारो से सुरक्षा के लिये सैनिक कवच (तनुतै) का प्रयोग किया करते थे।[३२७] इसके अतिरिक्त ढाल (खेटक),[३२८] शिरस्त्राण[३२९] तथा पशुओ के लिये भी कवच का उपयोग किया जाता था।[३३०] कश्मीरी सैनिक तेल से बुझाये गये इस प्रकार के बाणो का प्रयोग करते थे जिनसे आग लग जाती थी। हर्ष के सेनापति कन्दर्प ने राजपुरी के विरुद्ध युद्ध के समय इसी प्रकार के बाणो का प्रयोग किया था—तेल से भीगे जलते हुए इन बाणो को देखकर राजपुरी की सेना ने कन्दर्प को आग्नेयास्त्र का ज्ञाता समझा।[३३१] आग्नेयास्त्र का उल्लेख महाकाव्यो मे हुआ है जिसके बारे मे कश्मीर तथा पड़ोसी राज्य के लोगो को जानकारी थी।[३३२] लोग बाणो पर अपना नाम अकित करवाकर युद्धभूमि मे उनका प्रयोग किया करते थे।[३३३]

---

३१६ राज०
३१७ वही ३८८-३९०, V-३३२, VI-१२९, VII-१०३२,१३००,१३२२, VIII-३४६
३१८ वही V-२१८,VII-१५९, VIII-२५,४३५,२५३०,१४१७,१६७७
३१९ वही V-४४०, VII-१७७१,VIII-२१३९
३२० वही IV-३०१,VII-१५६७, VIII-११६१
३२१ वही IV-३०१,३०६, VI-१८०, VIII-११६१
३२२ वहीVIII-२३१६,२३३२
३२३ वही VII-९२७
३२४ वही ९८३-९८४
३२५ वही IV-४७७, VIII-१४७५,१६७७,१६८०
३२६ वही VIII-१४७५,१६७७,२५३०
३२७ वही VI-४०५-५०६, VI-२४८-२४९, VII-६६९,१३२२,१५४८, VIII-२२०७
३२८ वही VII-१४८३,१५४८,१३२२, III-४०५-४०६, VI-२४८-४९, VIII-२२०७
३२९ वही VII-१५४४
३३० वही VII-१५५३, VIII-७२८
३३१ राज० VII-९८३-९८४
३३२ पी०डब्ल्यू० खण्ड I, पृ० ६००, इलियट-पूर्वो० खण्ड VI,पृ० ४८०-४८१
३३३ राज० VIII-१६७८

क्षत्रियो के लिये धर्मयुद्ध सर्वोत्तम माना गया है। प्राचीन भारतीय विद्वानो के अनुसार जब साम, दाम (घूस), भेद नीतियाँ व्यर्थ हो जाय, तथी राजा को दण्ड (युद्ध) का प्रयोग करना चाहिये।[३३४] कल्हण महोदय ने मल्हण के हितैषी गर्ग व राजा सुस्सल के दूतो का जब रात्रि मे आवागमन होने लगा तब सामनीति अगीकार किये गर्गचन्द्र को सुस्सल ने राजद्रोही घोषित कर दिया।[३३५] इससे सिद्ध होता है कि रात्रि के समय युद्ध करना निषिद्ध था तब दोनो पक्ष दूतो के माध्यम से आपसी सवाद कायम करते थे। सूर्यास्त के समय राजा सुस्सल ने सैनिको से कहा कि शत्रु ऐसी चपेट मे आ गये है कि उनकी भेदनीति यहाँ कारगर नही हो सकेगी।[३३६] संगठित डामरो एव भिक्षु के नागरिको को दान-मान से प्रसन्न करके राजा सिहदेव ने उमाला आदि को हस्तगत करने का कुचक्र रचा।[३३७] राजा जयसिह द्वारा अपमानित सुज्जि ने सोमपाल से मिलकर राज्य हस्तगत करना चाहा, किन्तु राजा ने सोमपाल के साथ अपनी बहन की पुत्री का विवाह करना स्वीकार करके शत्रु पर साम, दाम नीति का एक साथ प्रयोग किया।[३३८]

कल्हण ने युद्ध मे कुछ तीव्र शस्त्रों का उपयोग अवैध तथा युद्धभूमि मे मृत सैनिक पर प्रहार को निन्दनीय माना है।[३३९] जो राजा युद्ध मे पीठ दिखाये बिना वीरगति को प्राप्त करता था, उसे 'वीरस्वर्ग' या नायको का स्वर्ग प्राप्त होता था।[३४०] क्षेमेन्द्र ने भी युद्ध भूमि मे मरने वाले नायको की प्रशसा की है।[३४१] इसके विपरीत जो अपने कर्तव्य का पालन नही करते उसके जीवन को धिक्कार है क्योकि तनिक भी कष्ट का सामना होते ही भयभीत होकर स्थायी सौख्य से मुख मोड लेना कायरो का काम है। धैर्यशाली वीरपुरुषो का नही।[३४२]

---

३३४ राज० पूर्वो० VIII-७५४, मनु० अ० VII. श्लोक ९०, महा० शातिपर्व अ० LXIX-२४
३३५ वही VIII ३९१
३३६ वही VIII ४६५
३३७ वही VIII-१५१७,१९२८
३३८ वही VIII-१६४३-१६४४
३३९ वही VIII-१७७३-१७७४
३४० राज० IV-५७४,५८३, V-६०,१३१,२२७,३४९, VI-२२१,२३९, VII-१४८४,१५६१-६२, VIII-८२,१९७,१४११-१४१४,१७७८,२१४२,२६२२,८३३०
३४१ क्षेमेन्द्र, कला० X-३७, राज० VII-१४०२-१४०४
३४२ राज० IV-४११, VI-२२०,२३८, VIII-७६६-७१०,१८८६,२०७३,२१९३,२५१४,२८१९,२३२२

सम्पूर्ण कश्मीरी इतिहास नागरिक व सैन्य अधिकारियों के असन्तोष, मत्रियो की आपसी ईर्ष्या, कश्मीरी राजसत्ता के दावेदारो के विद्रोह तथा युद्धकाल मे सेना द्वारा विपक्ष मे मिल जाने जैसे दृष्टान्तो से ओत-प्रोत है। राजा हर्ष ने राजपुरीनरेश सग्रामपाल की कठोर घेराबन्दी कर रखी थी, किन्तु उसका सेनापति सुन्न इसी समय सग्रामपाल से घूस लेकर अपने सैनिको को राजा हर्ष से अधिक प्रवासवेतन प्राप्ति हेतु उकसाया। हर्ष सीमित कोष के कारण ऐसा करने मे असहाय था किन्तु उसने सैनिको की अव्यवस्था को ठीक करने का प्रयास करने लगा तभी सुन्न ने तुर्की आक्रमण की अफवाह फैलाकर हर्ष को रास्ते मे ही अपना कोष व रसद त्यागकर घेराबन्दी समाप्त करने के लिए वाध्य किया। अन्ततोगत्त्वा यही सुन्न हर्ष के पतन का कारण बना।[३४३] हिरण्यपुरनिवासी ब्राह्मणो ने उच्चल को राजा बना दिया—इनके विरुद्ध हर्ष ने तत्रियो की जो सेना भेजी उस ने नगर मे रहते हुए प्रवासभत्ता मागा तथा बहुतेरे राजसेवक उसे छोडकर शत्रु से मिल गये।[३४४] राजा जयसिह का मत्री सुज्जि प्रतिहार लक्ष्मक से द्वेष रखने के कारण राजा का विरोधी हो गया।[३४५] दिन के समय जो सेवक राजा सुस्सल की सेवा करते थे निर्लज्ज भाव से वही रात्रि को भिक्षाचर के सम्मुख दिखाई पडते थे।[३४६]

शत्रु को परास्त करने के लिये लूटपाट तथा आग लगाने जैसी गतिविधियाँ की जाती थी—यद्यपि इस प्रकार की आगजनी से कभी-कभी सम्पूर्ण नगर नष्ट हो जाते थे।[३४७] फल्गुन के मरने के बाद राजपुरीनरेश पृथ्वीपाल ने कश्मीर की अधीनता मानने से इकार कर दिया—इसे पराजित करने के लिये तुग गया किन्तु पराजित होने पर नगर मे आग लगा दी जिससे बाध्य होकर पृथ्वीपाल को कर देना स्वीकार करना पडा।[३४८] राजा कलश ने अपने पिता अनन्तदेव के दान से चिढ़कर उनके द्वारा निर्मित विजयेश्वर क्षेत्र मे आग लगा दी थी।[३४९]

---

३४३ राज० VII-११५४-११६२,१५९७-१५९९
३४४ वही VII-१३८५,१४२७,१४५७-५८,१५४२-४६
३४५ वही VII-१८५२-५३,१९२१-२५,१९८०
३४६ वही ७९३
३४७ वहीV-१७१,४०३, VI-३४८, VII-१४१,१३२७,१५८३, VIII-५१४,७३४,९७३-९९४,११५७,११६६-११८५,१२०३,१२६३-१२६४
३४८ वही VI-३४८-३५३
३४९ वही VII-४०८-४०९

आक्रमणकारी सेना टुकडियो मे बटी होती थी। राजा के साथ रानियाँ भी युद्ध भूमि मे जाती थी, तथा राजा अपनी सेना मे अपने मित्रो की भी सेना सम्मिलित करता था।[३५०] राजा व सामन्तो की सुरक्षित सेना जो अन्त तक युद्धभूमि मे टिकी रहती थी—**उत्तम सेना**, जो तत्कालिक लाभ के लिये राजा के पक्ष से युद्ध करते थे वे **मध्यम सेना** तथा जो युद्ध भूमि से कभी भी राजा का साथ छोडकर या तो भाग जाते थे या शत्रुपक्ष मे सम्मिलित हो जाते थे—**अधम सेना** कहलाती थी।[३५१] यद्यपि नागरिको तथा ग्रामीणो को लूटना सेना द्वारा अनुचित माना जाता था फिर भी कभी-कभी इस प्रकार के कार्य किये जाते थे।[३५२]

कल्हण ने लिखा है कि शत्रु को कभी भी छोटा नही समझना चाहिये किन्तु कभी भी विजिगीषु राजा के हृदय मे शत्रु के प्रति भय नही करना चाहिए अन्यथा उसकी पराजय होती है।[३५३] उन्होने एक अन्य स्थल पर लिखा है कि व्यर्थ अहकार भी व्यक्ति को नष्ट कर देता है।[३५४]

उगली का काटना मान-मर्दन एव आत्म समर्पण का प्रतीक माना जाता था।[३५५] शस्त्र सहित समर्पण करना,[३५६] गले मे पगडी लपेटने या सिर मे जूता रखने को भी आत्म समर्पण का प्रतीक माना जाता था।[३५७] तुरुष्क लोग वन्धन मुद्रा सूचित करने के लिए अपने दोनो हाथ पीठ पर रखते, आधा सिर मुडाये रखते तथा अपने धोती का पुछल्ला जो बराबर धरती को छूता रहे—लटकाये रखते यह भी समर्पण की मुद्रा होती थी।[३५८] विजेता राजा के चरण छूना भी समर्पण का एक प्रकार था।[३५९]

समर्पण करने वाले राजे अपने पुत्रो या सगे सम्बन्धियो को विजेता राजा के पास नीवि (धरोहर) के रूप मे रखकर राज्य-कार्य सचालन का अधिकार प्राप्त कर लेते थे। मल्लराज अपने कई पुत्रो को हर्ष के पास नीवि (जमानत) के रूप मे रखकर शातिपूर्वक राज-कार्य संचालित किया था।[३६०]

---

३५० राज० पूर्वो० VII-५८८-५९०, ९०५,९०९,१३७१,१५१३, VIII-५३८-५४१
३५१ वही VII-११५७
३५२ वही VII-१३२३-१३२५,२५१३,२५१८
३५३ वही VII-१३९५-९७, VIII-१८
३५४ वही VII-१७०४-१७०५
३५५ वही VIII-२२७२, V-२३०८
३५६ वही VIII-६०४,६०५,६१०
३५७ वही VIII-२२७३
३५८ वही IV-१७८-१८०
३५९ वही VIII-२६५३-२६६०
३६० वही V-१४५-१४७, VII-१४७३

न्याय एवं दण्ड व्यवस्था—न्याय एव दण्ड व्यवस्था की स्थापना करना राजा के प्रमुख कर्तव्यो मे से एक माना गया है। कानूनी साहित्य मे व्यवहार शब्द सामान्य रूप से 'अभियोग', 'न्यायालय के मुकदमे' अथवा 'कानूनी कार्यवाही' के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसका समानार्थी शब्द 'विवाद' माना जाता है।[३६१] सूत्र एव स्मृतियो मे इसका अर्थ किसी मामले के कार्य सम्पादन के साधनों से लगाया गया है।[३६२] एच० भट्टाचार्य ने सोमदेव सूरी की कृति नीति वाक्यामृत को उद्धृत करते हुये इसका अभिप्राय 'अच्छा व्यवहार' माना है।[३६३] राजतरङ्गिणी मे व्यवहार शब्द कानूनी प्रशासन या विशेष रूप से सविदात्मक अधिकार के लिये प्रयुक्त हुआ है जबकि 'विवाद' शब्द 'मुकदमे' के लिये प्रयुक्त हुआ है।

व्यवहारपाद का सैद्धान्तिक अभिप्राय विवाद या मुकदमेबाजी की विषयवस्तु है। प्राचीन भारतीय सविदा मे मुकदमो को सामान्य रूप से अट्ठारह शीर्षको मे विभाजित किया गया है।[३६५] कश्मीरी साहित्य मे यद्यपि इस प्रकार के किसी विभाजन के साक्ष्य नही मिलते किन्तु कल्हण द्वारा उल्लिखित अट्ठारह कर्मस्थानो[३६६] की तुलना मनुस्मृति के व्यवहारपाद से करते हुए ट्रॉयर महोदय ने इसे मुकदमे से सम्बन्धित अट्ठारह विषय माने है।[३६७] इस तादात्म्य को असगत मानते हुए जॉली[३६८] ने लिखा है कि ये अट्ठारह कर्मस्थान राज्य के अधिकारियो के लिये प्रयुक्त हुए है जिन्हे महाभारत मे 'तीर्थ' कहा गया है न कि मनुस्मृति के 'व्यवहारपाद' के लिये प्रयुक्त हुए है। यह बात उचित प्रतीत होती है।

हिन्दू साहित्यकारो ने राजा के न्यायालय के लिये धर्मस्थान, धर्मासन अथवा धर्माधिकरण शब्द प्रयुक्त किये हैं। पवित्र कानूनो के आधार पर जहाँ सत्य का निर्णय किया जाता है वह स्थान धर्माधिकरण कहलाता है।[३६९] कल्हण ने राजा के न्यायालय के लिये सभा और धर्मासन का प्रयोग किया है।[३७०]

---

३६१ काणे० पी०वी०—**'धर्मशास्त्र का इतिहास'** पूना, १९३०-५३, खण्ड III, पृ० २४६, नारद स्मृति I ५

३६२ महाभारत-उद्योगपर्व अ० XXXVI. ३०, शुक्र०-अ० IV खण्ड ५, ७८, मनु० अ० VIII-१, पृ० २४६, अर्थ० खण्ड III, अ० १,११

३६३ एच० भट्टाचार्य—**'कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया'** कलकत्ता १९५३-६२ खण्ड II, पृ० ४६३

३६४ VII-१२३,१२९-१३०,१५८

३६५ मनु० अ० VIII-३-७, नारद I-९,१६-१९

३६६ राज० I-१२०

३६७ ट्रायर एम०ए०-राज० फ्रान्सीसी अनुवाद-पेरिस १८४०-५२, खण्ड II, पृ० ४८४-५०४

३६८ जे०जोली-अनु० बी०के०घोष-**हिन्दू लॉ ऐण्ड कस्टम्स,** कलकत्ता, १९२८, पृ ८४

३६९ काणे० पूर्वो० खण्ड III, पृ० २४३, नारद- I-३४, मनु० अ० VIII-25, शुक्र अ० IV-खण्ड ५,४६

३७० राज० VI-२८,४०,६०

जबकि क्षेमेन्द्र द्वारा प्रयुक्त धर्माधिकरणदिविर, आस्थानदिविर, अधिकरणद्विज, आस्थानभट्ट शब्दो से प्रतीत होता है कि न्यायालय को धर्माधिकरण, अधिकरण और आस्थान कहा जाता था।[३७१]

स्मृतियो मे कहा गया है कि राजा को सदैव अकेले न्याय नही करना चाहिए बल्कि राज्य के योग्य मत्रियो तथा विद्वान ब्राह्मणो की सहायता उसे लेनी चाहिए।[३७२] कात्यायन ने लिखा है कि जो राजा-न्यायाधीशो, मत्रियो, विद्वान ब्राह्मणो, पुरोहितो, तथा सभासदो की उपस्थिति मे मुकदमो का निरीक्षण, परीक्षण करता है, उसे स्वर्ग प्राप्त होता है।[३७३] कल्हण राजा विक्रमादित्य के दरबार का उल्लेख करते हुए लिखते है कि उसके दरबार मे ऐसा कोई सेवक (आप्त) नही था जिसके गुणो की मिथ्या ख्याति हुई हो और उसके मत्रीगण (अमात्य) न तो कलहप्रिय थे और न ही न्यायाधीश (स्थेयो) असत्य मे लीन।[३७४] प्रस्तुत उद्धरण मे आप्त का अर्थ विश्वसनीय, विश्वासयोग्य व्यक्ति अथवा विश्वस्त पुरुष से है।[३७५] जबकि 'स्थेयो' को आर० एस० पण्डित ने राजा की मत्रिपरिषद का सदस्य माना है।[३७६] आप्टे ने इसका अर्थ—झगड़ा का फैसला करने के लिये नियुक्त व्यक्ति, विवाचक , पच अथवा निर्णायक से किया है।[३७७] इससे पता चलता है कि राज्य मे मुकदमो की सुनवाई के लिये न्यायाधीशो की नियुक्ति की जाती थी किन्तु राजा अन्तिम न्यायालय था वह ऐसे मामलो का निर्णय करता था, जो वादी द्वारा उसके सम्मुख अन्य न्यायालयो के निर्णयो से असन्तुष्ट होने पर लाये जाते थे। कल्हण[३७८] ने राजा उच्चल के सम्मुख लाये गये एक मुकदमो का उल्लेख किया है जो इस प्रकार था। एक व्यापारी-जो बैकर का काम करता था—के पास एक व्यक्ति ने एक लाख दीनार (न्यास) जमा कराये थे। जमाकर्ता उस धन मे से समय-समय पर कुछ अपने खर्च के लिये ले लिया करता था। बीस-तीस वर्ष बाद जब जमाकर्ता ने अपने शेष धन की माग की, तब पहले तो व्यापारी ने कुछ बहाने बनाये और अन्त मे यह कहते हुए 'जिसकी—भलाई (श्रेय)[३७९] करो, उसी से बुराई मिलती है' कहकर

---

३७१ नर्ममाला० अ० II,श्लोक ११७,१२१,१२८,१२९,१३७,१४४
३७२ काणे पूर्वो० पृ० २६८, मनु० अ० VIII-१२८, नारद I-३५, नीलमत० ८३३
३७३ ५५-५६ याज्ञ० II-२
३७४ राज० III-१३९, VIII-१२३,१४९
३७५ वही V-२०३, VIII-६८१,१३८९
३७६ राज०-अनु० आर०एस०पण्डित III-१३९
३७७ सस्कृत हिन्दी कोश-मोतीलाल बनारसीदास, १९७१, पृ० ११४५
३७८ राज० VIII-१२३-१५८, नारद० अ० II-८, याज्ञ० II-६७-
३७९ आप्टे-पूर्वो० पृ० १०३८

अपने हिसाब की वही दिखाते हुए जमाकर्ता पर अपना बाकी बताया—इससे क्षुब्ध जमाकर्ता न्यायालय की शरण मे गया, किन्तु निर्णय व्यापारी के पक्ष मे रहा अन्ततोगत्वा जमाकर्ता राजा की शरण मे गया तब राजा ने अपनी बुद्धि कौशल से व्यापारी से धरोहर के रूप मे अवशिष्ट सिक्के मगाये, जिनमे राजा कलश के समय के सिक्को के साथ राजा उच्चल के समय के भी सिक्के मिले तब राजा ने व्यापारी से इस बात का पता लगा लिया कि उसने धरोहर के सिक्को का उपयोग न्यासी से पूछे बिना किया है। अत राजा ने न्यासी को वापस एक लाख सिक्के देने का आदेश व्यापारी को दिया तथा समय-समय पर न्यासी द्वारा लिखे गये धन को न्यासी का ब्याज माना। किन्तु यहाँ एक भ्रम उत्पन्न होता है कि जब व्यापारी ने न्यासी के धरोहर को समाप्त बताया था तब फिर उसके पास अवशिष्ट धन कहाँ से आ गया।

मनु[३८०] को उद्धृत करते हुए स्टेइन[३८१] महोदय लिखते है कि धरोहर दो प्रकार की होती थी—निपिद्ध धरोहर (क्लोज्ड) तथा मुक्त धरोहर (ओपेन)। क्षेमेन्द्र ने[३८२] धरोहर के लिये 'निक्षेप' शब्द का प्रयोग किया है। अन्य स्मृतियो मे कहा गया है कि न्यासी जिस रूप मे धरोहर जमा करे उसे उसी रूप मे धरोहर पाने का अधिकार है, यदि जमाकर्ता से पूछे बिना बैंकर न्यास का उपयोग करता है तो उसे सम्पूर्ण लाभ देना पडता है।[३८३] राजा उच्चल के अनुसार जिस मामले मे सदेह की गुंजाइश हो उसके फैसले मे राजा को क्षमानीति से काम करना चाहिये किन्तु जिसमे वादी या प्रतिवादी अनीति के पथ पर चल रहे हो उसमे शासक को यमराज के समान कठोर बनकर न्याय करना चाहिए।[३८४]

राजा यशस्कर (९३९-९४८ ई०) के राज्य काल मे एक व्यक्ति कर्ज से मुक्त होने के लिये अपने मकान के समीप स्थित कुँए के अतिरिक्त मकान बेच दिया, किन्तु क्रेता ने राजकीय अधिकरण लेखक को एक निश्चित राशि की जगह एक हजार दीनार देकर 'कूपरहितं' की जगह 'कूपसहित' अपने बैनामे मे लिखवा दिया और कूप पर भी अधिकार कर लिया। विक्रेता ने इसके विरुद्ध न्यायालय मे

३८० मनु० VIII १८५
३८१ स्टेइन-पूर्वो० खण्ड II, VIII १२३ (पा०टि०)
३८२ समय० VIII ६५, ८७, काणे-पूर्वो० खण्ड III पृ० ४५४, ४५५
३८३ नारद० अ० II २-३ ,८ वृहस्पति० अ० XII २-३, मनु० अ० VIII १८०-१८८, याज्ञ० II ६- लल्लन जी गोपाल "द इकनॉमिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया" वाराणसी, १९६५, पृ० १७७
३८४ राज० पूर्वो० VIII १५८ मनु० अ० VIII १८९-१९२, नीलमत-८३९

अपील की किन्तु निर्णय क्रेता के ही पक्ष मे गया, अन्त मे जब मामला राजा के पास पहुँचा तब उसने क्रेता की बहाने से 'मुद्रिका' लेकर चुपके से उसके राजाध्यक्ष से उस वर्ष का बहीखाता मगवाया जिस वर्ष बैनामा हुआ था। उसमे अधिकरण लेखक को अधिक पैसा देने के प्रमाण के आधार पर राजा ने इस धोखा को पुष्टित करते हुए कूपसहित मकान विक्रेता को दे दिया तथा धोखेबाज क्रेता को देश से निकाल दिया [३८५] इसी राजा के समय एक व्यक्ति द्वारा परिश्रम से परदेश से कमाकर लाये धन से भरा थैला कुए मे गिर गया, उसे बाहर निकालने वाले अपरिचित व्यक्ति ने पारिश्रमिक के रूप मे अट्ठानबे मुद्राए ले ली जबकि उसे दो मुद्राए दी—इस धोखा का समाधान राजा ने पारिश्रमिक के रूप मे दो तथा मालिक को अट्ठानबे मुद्राए देकर न्याय किया।[३८६]

राजा हर्ष ने अपने महल के चारो द्वारो (सिंहद्वार) पर घटियाँ बँधवा रखी थी। फरियादी जब उन घटियो को बजाता था तो उसकी आवाज सुनकर हर्ष तुरन्त मामले की सुनवाई के लिए उपस्थित हो जाता था।[३८७] बृहस्पति ने चार प्रकार के न्यायालय बताये हैं।[३८८]

१ निश्चित स्थान पर स्थित—प्रतिष्ठिता

२ एक स्थान पर जो स्थायी न हो—अप्रतिष्ठिता

३ राजा द्वारा नियुक्त न्यायाधीश जिसे शाही मुद्रा के उपयोग का अधिकार हो।

४ न्यायालय जिसका अध्यक्ष स्वय राजा हो (शासिता या शास्त्रिता)

क्षेमेन्द्र ने भी चार प्रकार के न्यायालय बताये है,

पतिता का प्रतिष्ठा का मुद्रिता शासिता तथा,

चतुर्विधा सभा प्रोक्ता सभ्यश्चैव चतुर्विधः।

प्रतिष्ठिता पुरे ग्रामे चलत्वाद प्रतिष्ठिता,

मुद्रिता सत्यार्थसम्युक्ता राजयुक्ता तु शासिता॥[३८९]

---

३८५ राज० VI-२५-४१

३८६ वही VI-४२-६७

३८७ राज० VII-८७९-८८०

३८८ काणे० पूर्वो० खण्ड III, पृ० २७७

३८९ लोकप्रकाश अ० IV ५८, स्टेइन खण्ड I, VII-६०१ (टि०)

इनका उल्लेख राजस्थानीय और राजमहत्तम के साथ हुआ है। कल्हण ने भी इनका यत्र-तत्र उल्लेख किया है।

स्मृतियो मे कहा गया है कि अपरिहार्य परिस्थितियो मे राजा को न्यायिक प्रशासन मे सम्मिलित होने की अपेक्षा लोगो के मामलो को निपटाने के लिये विद्वान ब्राह्मण के साथ तीन सभ्यो को नियुक्त करना चाहिए।[३९०] कल्हण ने ऐसे ब्राह्मण के लिए राजस्थानीय शब्द प्रयुक्त किया है।[३९१] राजा जयसिह के शासनकाल मे अलकार इस पद पर प्रतिष्ठित था जिसे वाह्यराजस्थानाधिकारभक[३९२] कहा गया है। राजदरवार मे आस्थानद्विज, आस्थानव्राह्मण, और आस्थानभट्ट शब्द सभासदो के लिये प्रयुक्त हुए है।[३९३]

ऐसा कहा जाता है कि वह वास्तविक सभा नही होती जिसमे अनुभवी लोग नही होते[३९४] कृष्णा मोहन ने अनुभवी लोगो मे मुख्य न्यायाधीश, सभ्यजनो तथा विद्वान ब्राह्मणो को माना है।[३९५] काणे महोदय[३९६] ने सभ्यजनो व ब्राह्मणो मे अन्तर करते हुए लिखा है कि सभ्यजन वे न्यायाधीश होते थे जो राजा द्वारा नियुक्त होते थे जबकि ब्राह्मण वे व्यक्ति थे जिनका गुणगान धर्मशास्त्रो मे हुआ है तथा जो दरवार मे उपस्थित होते थे एव कठिन मामलो मे उनके सुझावो को न्यायाधीश सम्मानपूर्वक स्वीकार करते थे। राजा कलश के काल मे (१०६३-१०८९ ई०) राजस्थान नामक अधिकारी का उल्लेख है।[३९७] राजस्थानीयमन्त्रिण तथा राजगृह्य को स्टेइन ने सहायक न्यायिक अधिकारी माना है।[३९८]

अलवेरूनी ने न्यायप्रणाली के अन्तर्गत लेख्यपत्र, साक्षी, उनकी संख्या, शपथ पत्र तथा दिव्य प्रमाणो का वर्णन किया है। मौखिक प्रमाण लेख्य पत्रों के विरुद्ध मान्य नही[३९९] परन्तु जहॉ लिखित

---

३९० काणे खण्ड III, पृ० २७१, मनु० VIII-९-१०, याज्ञ० II-३, शुक्र० अ० IV, खण्ड ५,१२

३९१ राज० पूर्वो० VIII-१८१,१०४६, १९८२, लोकप्रकाश पृ० ५८

३९२ वही VIII-२५५७

३९३ वही VII-८५,८६,१५०५, समयमातृका-VI-२६

३९४ राज० पूर्वो० VII-६०१, नारद० प्रस्तावना, III- १६-१८

३९५ कृष्णा मोहन पूर्वो० पृ० १६०

३९६ काणे-पूर्वो० खण्ड, III-पृ० २७४

३९७ राज० VII-६०१,VIII-१८१,१०४६,१९८२,२६१८

३९८ वही VI-६०१,१५०१, VIII-७५६,३१३२, स्टेइन खण्ड I, VII-६०१ (टि०)

३९९ जयशङ्कर मिश्र-'**ग्यारहवीं शती का भारत**' पृ० ७९

प्रमाण नही होता वर्हां साक्षी का सहारा लिया जाता है। प्राचीन परम्परा मे निर्णय के निमित्त क्रमश लिखित, भुक्ति, साक्षी और दिव्य को आनुक्रमिक रूप से प्रमाण माना जाता था।[४००] मनु[४०१] के अनुसार वह प्रमाण जिसे किसी व्यक्ति ने देखा हो और दूसरे ने कान मे सुना हो तो कान से सुनने वाला व्यक्ति साक्षी रूप मे वैधानिक प्रमाण नही हो सकता। जब देखने वाला व्यक्ति उपस्थित न हो तब सुनने वाला प्रमाण दे सकता है।[४०२]

मनु[४०३] ने तीन प्रमाण माने है—जल परीक्षा, अग्नि परीक्षा तथा अपनी व बच्चो के सिर छूकर शपथ लेना। नारदस्मृति[४०४] मे नौ प्रमाण-तुला-परीक्षा, अग्नि-परीक्षा, जल-परीक्षा, विष-परीक्षा, शपथ, चावल के दानो से परीक्षा, तप्तस्वर्ण-परीक्षा, फाल (हाल)[४०५], धर्म-परीक्षा-बताये गये है। विभिन्न स्मृतियो[४०६] मे पॉच प्रकार के प्रमाण वर्णित है—तुला-परीक्षा, अग्नि-परीक्षा, जल-परीक्षा, विष-परीक्षा एव पवित्र जल-परीक्षा (कोश)। डॉ जयशङ्कर मिश्र[४०७] ने विष-परीक्षा, जल-परीक्षा, देव-परीक्षा, तुला परीक्षा, तप्तमास-परीक्षा, दिव्य परीक्षा, तप्तलौह-परीक्षा, का विस्तृत विवेचन किया है। कल्हण ने[४०८] एक ऐसे दिव्य या दैवीय न्याय का वर्णन किया है जो अन्यत्र प्राप्त नही होता, उन्होने लिखा है कि राजा चन्द्रापीड के समय एक ब्राह्मणी के पति की हत्या सोते समय कर दी गई थी, जिसका आरोप वह अपने पति से द्वेष रखने वाले एक दूसरे ब्राह्मण पर लगा रही थी-जो खर्खोद विद्या (अभिसारिकी क्रिया) का ज्ञाता था किन्तु प्रमाण के अभाव मे राजा किसी निर्णय पर नही पहुँच पा रहा था। राजा ने मात्रिक ब्राह्मण को दिव्य कर्म से स्वय को निर्दोष सिद्ध करने के लिये कहा किन्तु विधवा ब्राह्मणी ने यह कहते हुए इसका विरोध किया कि यह ब्राह्मण मांत्रिक है अत दिव्य कर्म भली-भॉति कर सकता

---

४०० **'प्रमाणं लिखित भुक्ति साक्षिणश्चेति कीर्तितम्', एषामन्यतमाभावे दिव्यान्तर मुच्यते।** याज्ञ० २,२२
४०१ मेधातिथि-मनु० ८,७५
४०२ विष्णुधर्मसूत्र ८,१२
४०३ मनु० VIII-११४, वाटर्स खण्ड I, पृ० १७२-
४०४ नारद I-२५२
४०५ फाल से परीक्षा का अर्थ अस्पष्ट है सभवत यह तप्त लौह-परीक्षा का रूप रहा होगा, क्योकि हल का फाल लोहे का बना होता था।
४०६ याज्ञ० II-९५, विष्णु० अ० IX-११, व्यवहार चिन्तामणि-पृ० ५३८-५८५
४०७ जयशङ्कर मिश्र पूर्वो० पृ० ८२-८८
४०८ राज IV-८२-१०५, स्टेइन-खण्ड I, IV ९४ (टि०)

है। ऐसी असमजस की स्थिति मे राजा ने न्याय के लिये विष्णु त्रिभुवनस्वामिन के चरणो मे अनशन शुरु कर दिया। अन्त मे भगवान विष्णु ने परीक्षण की विधि राजा को बतायी। जिसके अनुसार रात्रि के समय मदिर के अहाते मे चावल का आटा फैलाकर ब्राह्मण को प्रतिमा की तीन परिक्रमा करने को कहिए, यदि उसके पीछे ब्रह्महत्या के चरण चिन्ह दिखाई पडे तो ब्राह्मण को दोषी माना जाय। ऐसा ही किये जाने पर ब्राह्मण दोषी निकला जिसे प्राणदण्ड के अतिरिक्त अन्य दण्ड देकर राजा ने ब्राह्मणी को सन्तुष्ट किया। यहाँ कल्हण ने दण्ड के स्वरूप का उल्लेख नही किया है।

पवित्र तर्पण (कोशापान) प्रमाण की एक अन्य विधि मानी गयी है।[४०९] इस विधि के अन्तर्गत देवप्रतिमा का शोध्य जल पीने के लिये दिया जाता था, यदि व्यक्ति को कुछ नही होता तथा उसके लडके, पत्नी व निकट सम्बन्धी मे से किसी को कोई क्षति नही पहुँचती तो वह निर्दोष माना जाता था।[४१०] स्वय को निर्दोष सिद्ध करने के अतिरिक्त प्रगाढ मित्रता के लिये भी कोशपान किया जाता था।[४११] शपय लेने का एक स्वरूप यह भी था कि शपथकर्त्ता अपने पशुओ, बच्चो की शपथ लेता था और कहता था कि यदि वह झूठ बोल रहा हो तो वे मर जॉय—ऐसी परम्परा आज भी देखने को मिलती है।[४१२] राजा चक्रवर्मन (९३५ ई०) पदच्युत हो जाने के बाद पुनः सत्ता प्राप्ति की इच्छा से श्री ढक्क के डामर सग्राम से सहायता प्राप्ति के बदले उनकी मदद करने के प्रमाण स्वरूप रक्ताक्त मेषचर्म पर खडे होकर कोशपानपूर्वक शपथ ली थी।[४१३] इसी प्रकार जयसिह के शासनकाल मे भोज का भय दूर करने के लिए खशो ने रक्ताक्त चर्म पर पैर रखकर कोशपान किया था।[४१४] इन दोनो प्रसङ्गो के आधार पर कृष्णा मोहन लिखती है कि रक्ताक्त चर्म पर पैर रखकर कोशपान करने की परम्परा पहाडी जनजातियो मे थी।[४१५] कल्हण ने कहा है कि कोशपान चरित्रवान व्यक्तियो के लिए होता है न कि अविश्वसनीय व्यक्तियो के लिए।[४१६] भारतवर्ष के न्यायालयो मे आज भी पवित्र ग्रथो के ऊपर हाथ रखकर शपथ लेने के पश्चात् साक्षी द्वारा प्रमाण देने की परम्परा दृष्टिगोचर होती है।

४०९ राज० V-३२६, VI-२११, VII-८,४९२, VIII-२८०,२०९१,२२२२,२२३७,३००६,३०९५
४१० जयशङ्कर मिश्र-पूर्वो० पृ० ८४-८५
४११ राज० VIII-२२२२,२२३७
४१२ जे० हेस्टिग-'**इनसाइक्लोपीडिया ऑव रेलिजन ऐण्ड इथिक्स**' इडेनवर्ग-१९०८-२६, खण्ड IX,पृ ४३१
४१३ राज० V-३०६,३२४,३२६
४१४ वही VIII-३००६
४१५ कृष्णा मोहन पूर्वो० पृ० १६४
४१६ राज० IV-९४

अलबेरूनी के अनुसार समाज मे बहुत से अज्ञानी व भूल करने वाले है जो खड्ग व कोडे के विना मन्मार्ग पर नही रखे जा सकते।[४१७] निश्चय ही अगर देखा जाय तो प्रत्येक युग मे और प्रत्येक समाज मे ऐसे लोग विद्यमान रहे है जिनके अपराधो को अवरुद्ध करने के लिये समाज मे दण्ड की व्यवस्था की गई। व्यक्ति के अपराध सिद्ध होने पर हिन्दू व्यवहार मे दण्ड देते समय अपराध की प्रकृति को ध्यान मे रखते हुए देश, काल, कर्म, वर्ण, वय, विद्या, स्थानविशेष, शक्ति, वित्त आदि पर विचार किया जाता था।[४१८] समाज मे दण्ड के अनेक प्रकार प्रचलित थे—यथा—वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, अर्थदण्ड, रोधन, बन्धन, अङ्गताडन, अङ्गभग, अङ्गछेदन, निर्वासन एव प्राणदण्ड।

कौटिल्य का कथन है कि चोरी के अपराध मे चोर का अगूठा और उगली काट दी जाय, ५४ पण अर्थदण्ड दिया जाय, दूसरी बार के अपराध मे उसकी सारी उँगलियाँ काट दी जाये या १०० पण अर्थदण्ड दिया जाय, तीसरी बार के अपराध मे उसका बाया हाथ काट दिया जाय या ४०० पण का अर्थदण्ड दिया जाय और चौथी बार के अपराध मे राजा के निर्देशानुसार मृत्युदण्ड दिया जाय।[४१९] आपस्तम्ब धर्मसूत्र से विदित होता है कि चोरी के अपराध मे ब्राह्मण की ऑखे जीवन पर्यन्त बाध देनी चाहिए तथा अन्य तीन वर्ण के दोषियो को मृत्युदण्ड देना चाहिए।[४२०] अलबेरूनी के अनुसार चोरी के अपराध मे ब्राह्मण को अन्धा कर दिया जाय, क्षत्रिय का अङ्गछेदन कर दिया जाय तथा शेष दो वर्ण के चोरो को मृत्यु दण्ड दिया जाय।[४२१] धर्मग्रथो मे ब्राह्मण को मृत्युदण्ड से मुक्त रखा गया है तथा कठोर अपराध करने पर सम्पत्ति का अपहरण करके राज्य से निर्वासित करने का विधान है।[४२२] राजतरङ्गिणी मे राजा चन्द्रापीड के समय एक ब्राह्मण के हत्यारे दूसरे ब्राह्मण को भी राजा ने मृत्यु दण्ड के अलावा दण्ड दिया था।[४२३] कौटिल्य के अनुसार हत्या के अभियोग मे ब्राह्मण के मस्तक पर 'कबन्ध' का चिन्ह लोहे से दाग देना चाहिए।[४२४] कल्हण ने भी लिखा है कि राजा यशस्कर ने

४१७ सचाऊ-खण्ड II पृ० १६१
४१८ कृत्यकल्पतरु-व्यवहारकाण्ड पृ० ७७८
४१९ अर्थशास्त्र ४,१०
४२० २,१०,२७,१६-१७
४२१ सचाऊ-पूर्वो० पृ० १६२
४२२ गौतम०-१२,४३, अर्थशास्त्र-४८, मनु० ८,१२५,३८०,३८१, याज्ञ० २,२७७, नारद० ९-१०, विष्णु ५,१-८, वृद्धहारीत-७,१९१
४२३ राज० पूर्वो० IV-९६-१०६
४२४ अर्थ० ४,८

चक्रमेलक ग्रामवासी चन्द्रभानु नामक तपस्वी ब्राह्मण को भीषण अपराध के लिये धर्मशास्त्रोक्त विधि के अनुसार दण्ड देने के निमित्त उसके माथे पर कुत्ते (श्वान) के पदचिन्ह अकित कराया।[४२५] विश्वरूप ने कात्यायन को उद्धृत करते हुए लिखा है कि उस ब्राह्मण को प्राणदण्ड भी देना चाहिए जिसने गर्भपात कराया हो, चोरी की हो, तीक्ष्ण शस्त्र से ब्राह्मण स्त्री की हत्या की हो या पतिव्रता स्त्री का वध किया हो।[४२६] किन्तु अलबेरूनी ने ब्राह्मण हत्या, गोहत्या, सुरापान, व्यभिचार करने वाले ब्राह्मण व क्षत्रियो को उनकी सम्पत्ति का अपहरण करके राज्य से निर्वासित करने का विधान दिया है।[४२७]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक काल मे समाज की परिस्थिति के अनुसार नियमो का विधान किया जाता था।

सामती-व्यवस्था—सामतवाद शब्द इतना व्यापक है कि उसके लिये कोई एक परिभाषा निश्चित करना सम्भव नही है। मेरियन गिब्स[४२८] ने इसका प्रयोग तीन अर्थो मे किया है। **प्रथम**—सामतवाद लेटिन शब्द 'फ्यूडम' से निकला है जिसका अग्रेजी रूपान्तरण 'फी या शुल्क' होता है जो कोई व्यक्ति अपनी मालिक की सेवा (सैन्य सेवा) के बदले जमीन के रूप मे प्राप्त करता था। अंग्रेजी इतिहासविदो के अनुसार जहॉ शुल्क नही वहॉ सामतवाद नही। **द्वितीय**—सामतवाद शब्द का प्रयोग-यूरोप मे जर्मनी विजय के बाद विकसित सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए हुआ है जिसमे भू-स्वामियो और बधुआ किसानो अथवा भू-स्वामियो तथा मुक्त किसानो के मध्य के सम्बन्धो को महत्ता दी जाती थी। **तृतीय**—पूॅजीवाद के उदय से पूर्व यूरोप मे प्राप्त होने वाली एक प्रकार की आर्थिक व्यवस्था।

कौलबार्न के अनुसार[४२९] सामतवाद मूलरूप से आर्थिक अथवा सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षा प्रशासनिक व्यवस्था है जिसमे राजा और प्रजा, राज्य और नागरिक के बीच सम्बन्ध नही होते बल्कि मालिक व अधीनस्थो के बीच सम्बन्ध होते है। सामान्यतया 'सामतवाद' मे दो बातें निहित होती है—

---

४२५ राज० VI-१०८-१०९
४२६ याज्ञ० २,२८१
४२७ सचाऊ पूर्वो० खण्ड II, पृ० १६२
४२८ मेरियन गिब्स—**'फ्यूडल आर्डर'** लन्दन १९४९ पृ० २
४२९ आर० कौलबार्न—**'फ्यूडलिज्म इन हिस्ट्री'**, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५६ पृ० ४-७

(१) सैन्य या प्रशासनिक सेवाओ के बदले जमीन प्राप्त करना।

(२) स्वामी व अधीनस्थो के मध्य वफादारी के आधार पर व्यक्तिगत सम्बन्ध जिसमे दोनो महत्त्वपूर्ण माने जाते है।[४३०]

पूर्वमध्यकालीन भारत मे हुए सामाजिक परिवर्तनो के पीछे कतिपय आर्थिक घटनाओ का हाथ रहा है। इनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन भू-राजस्व और भूमि का बडे पैमाने पर-राजाओ तथा उनके अधीनस्थो द्वारा धर्म-निरपेक्ष तथा धार्मिक दोनो ही तत्त्वो को किया गया हस्तातरण था। इसके फल-स्वरूप नये सामाजिक वर्ग का उदय हुआ जिन्हे सामत कहा गया तथा इस व्यवस्था को सामतवाद नाम दिया गया।[४३१] पूर्वमध्यकाल मे जब वाणिज्य एव व्यापार का पतन हो रहा था तथा समाज शहरी करण की ओर बढ रहा था, सिक्को की कमी होने के कारण शासक वर्ग के पास अपने अधि-कारियो को उनकी सेवाओ के बदले भूमि देने के अतिरिक्त कोई विकल्प न बचा। ग्यारहवी-बारहवी शती मे मुद्रा के अधिक प्रचलन तथा वाणिज्य एव व्यापार के पुनरुत्थान होने से सामतवाद को प्रोत्साहन ही मिला।

सुलेमान[४३२] (९वी शती ई०) लिखते है कि विजेता राजा द्वारा पराजित राजा के निकट सम्बन्धी को समर्पण करने एव कर देने के बदले राज्य करने का दायित्व दिया जाने लगा। यही सामतवाद का प्रारम्भ था क्योकि इसके बाद आक्रमण अपने अधीनस्थो की सख्या बढाने के लिए किये जाने लगे। बी० एन० एस० यादव जी ने[४३३] लिखा है कि प्रारम्भिक काल मे सामतवाद के उदय के लिये आर्थिक शक्तियो ने मार्ग प्रशस्त किया क्योकि ईसा की प्रारम्भिक शती मे लौह उपकरणो के उपयोग तथा श्रम के विभाजन ने उत्पादन क्षमता को बढा दिया और यह कृषि-भूमि मे हुई बढोत्तरी के कारण सभव हो सका जो जगलो को काटकर बढाई गई थी। इसी समय से हमे सयुक्त परिवार टूटते हुए दिखाई पडते हैं। फलस्वरूप पूर्वजो की जमीन-पिता की इच्छा के विरुद्ध-पुत्रों मे बंटने लगी। कृषि-भूमि के बटने के कारण छोटे-क्षेत्रफल मे दासो व नौकरो को नही रखा जा सका और इस प्रकार वे स्वतत्र

---

४३० डब्ल्यू जे० एच० स्प्रोट— 'सोशियोलॉजी न० ३४, हचसन यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी सिरीज' पृ० ६३

४३१ रामशरण शर्मा— **पूर्वमध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तन,** दिल्ली १९७५, पृ० ४,९

४३२ इलियट एण्ड डाउसन **"द हिस्ट्री ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स"** पृ० ७

४३३ **'सम आस्पेक्ट ऑव द चेन्जिग आर्डर इन इण्डिया ड्यूरिग द शक कुषाण ऐज'** इलाहाबाद यूनिवर्सिटी सिरीज १९६८, रामशरण शर्मा **'इण्डियन फ्यूडलिज्म'** पृ० ६०

किसान बन गए। अस्तु कृषि पर दबाव के कारण पूर्वमध्यकाल मे वर्ण धर्म का सप्रत्यय परिवर्तित होने लगा।

डी० डी० कोशाम्बी[४३४] भारतीय सामतवाद को दो भागो मे विभाजित करते है—**'ऊपर से सामंतवाद' और 'नीचे से सामतवाद'**। 'ऊपर से सामतवाद' का अभिप्राय है, एक शक्तिशाली राजा अपने उन अधीनस्थो से कर प्राप्त करता था, जो अपने भू-भाग मे अपनी इच्छानुमार अपने अधिकारानुसार तब तक शासन करते थे जब तक कि वे सर्वोच्च शक्ति (राजा) को कर देते थे। ये अधीनस्थ शासन जनजाति प्रमुख हो सकते थे जो बिना किसी मध्यस्थ के प्रत्यक्ष प्रशासन करते थे।

'नीचे से सामतवाद' से अभिप्राय है ऐसा स्तर—जहाँ ग्रामीण कृषको व राज्य के मध्य ग्रामीणो के बीच से ऐसा भू-स्वामियो का वर्ग उदित हो जाता था जो स्थानीय जनता पर धीरे-धीरे शक्ति स्थापित कर लेता था चूँकि यह वर्ग सैन्य सेवा से सम्बन्धित होता था अत: बिना किसी बाधा के राज्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित कर लेता था। 'ऊपर से सामतवाद' नवीन तकनीकी को न अपना पाने के कारण असफल हो गया जबकि 'नीचे से सामतवाद' अग्रेजो के भारत मे आने तक प्रचलन मे रहा, जिसका नवीन स्वरूप राजपूत सामंतवाद के विकास के साथ हिन्दू शासको के अधीन विकसित होने लगा। कश्मीर मे इसका स्वरूप डामरो के उदय के रूप मे देखा जा सकता है। कृष्णा मोहन,[४३५] कोशाम्बी महोदय के उपरोक्त विभाजन की समीक्षा करते हुए लिखती है कि 'ऊपर से सामतवाद' प्रत्यय कश्मीर मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है क्योकि जब सर्वोच्च स्वामी सैन्य अभियान पर निकलता था तब उसके अधीनस्थो की सेनाए उसकी सेवा के लिए उसके साथ सम्मिलित हो जाती थी।[४३६] किन्तु 'नीचे से सामतवाद' प्रत्यय के अन्तर्गत कोशाम्बी महोदय का डामरो के रूप मे नवीन वर्ग का सामत रूप मे उदित होना ग्राह्य प्रतीत नही होता क्योकि सामतो व डामरो का एक साथ उल्लेख प्राप्त होता है और बाद में डामरो के साथ हमें एक दूसरे सामंती अभिजात्यवर्ग लवन्यो का उल्लेख प्राप्त होता है। पुनश्च डामरो ने सामंती स्तर राजा की सेवाओ या उसके द्वारा प्रदत्त जागीर के कारण नही प्राप्त किया था, बल्कि उनका स्तर अपने धन के कारण था। क्षेमेन्द्र ने भी ऐसी धनवान

४३४ **'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑव इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई'** १९५६, पृ०१,२७५,३२८
४३५ कृष्णा मोहन-पूर्वो० पृ० १९३
४३६ डी०डी० कोशाम्बी **'ओरिजिन्स ऑव फ्यूडलिज्म इन कश्मीर'** १८०४-१९५४ पृ० २

व्यापारियो का उल्लेख किया है जो केसर के व्यापार मे सलग्न थे।[४३७] जबकि लवन्य का अभिप्राय ऐसे लोगो से था जो कृषि कार्य मे संलग्न थे। स्टेइन[४३८] ने लिखा है कि घाटी के पूर्वी माडवराज्य मे बहुत से डामर लवन्य समूह से आये थे।

कश्मीर मे हमे ऐसा कोई काल नही प्राप्त होता जब यह कहा जाय कि शुद्ध रूप से सामनवाद किस प्रकार का था। राजतरङ्गिणी के विभिन्न उद्धरणो के आधार पर हमे इसके निम्न रूप प्राप्त होते है—

प्रशासनिक वर्ग, सामत या जागीरदार जो राजा द्वारा विदेशी या डामरो के विरुद्ध सैन्य अभियान के समय सैन्य सहयोग करता था, तथा गॉव के छोटे प्रमुख जो समाज के निम्न सामाजिक स्तर मे उच्च सामाजिक स्तर प्राप्त किये थे। कृष्णा मोहन ने[४३९] सामतवाद की निम्न विशेषताए बतायी है।

अ मध्यकालीन इग्लेण्ड मे शासनभूमि की तरह राजा की अपनी भूमि थी जिसे 'खेरि' कहा जाता था।

ब ब्राह्मण सामत (सामत द्विज) सहित सामत प्रमुख

स कर देने वाले राज (नृप.) सामत

द. अग्रहार के रूप मे ब्राह्मण सामत

य डामर, र. कृषक

हर्षचरित[४४०] से भी पता चलता है कि प्रभाकरवर्द्धन का राज्य उसके अधिकारियो के बीच विभाजित था। चीनी सामतवाद मे राजा अपनी भूमि जागीर के रूप मे रिश्तेदारो तथा सम्बन्धियो को बॉट देता था।[४४१] कश्मीरनरेश अवन्तिवर्मन ने अपने राज्य को अधिकारियो व सम्बन्धियो मे विभाजित कर रखा था।[४४२] साम्राज्यनिर्माण, राजत्त्व के आदर्शो तथा राज्य की सकल्पना मे हमे सामंतवाद के विकास के साथ परिवर्तन दिखाई पड़ता है। इस समय के साहित्य मे राजा पूर्णत: सर्वोच्च शक्ति प्राप्त व्यक्तिगत सम्प्रभु होता था, जिसका जनसामान्य के प्रति कोई कर्तव्य व दायित्व नही रह गया था बल्कि

---

४३७ समयमातृका पूर्वो० II-३६

४३८ स्टेइन-राज० VII-१२२९, कोशाम्बी पूर्वो० पृ० २७

४३९ कृष्णा मोहन-पूर्वो० पृ० १७२

४४० हर्षचरित अनु० ए०ए० फ्यूहरर पृ० १७५

४४१ इन्स० सो०सा० खण्ड VI पृ० २७३

४४२ राज० पूर्वो० V-२१

उसके प्रति वफादार सामत तथा अधीनस्थ शासक अपने-अपने भू-भागो मे शासन के लिए जिम्मेदार थे।[४४३] राजतरङ्गिणी मे स्वमण्डल व मण्डलान्तर के सन्दर्भ मिलते है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि राजा अपने मण्डल मे प्रत्यक्ष प्रशासन करता था जबकि मण्डलान्तर क्षेत्रो मे उसके अधीनस्थ शासक या सामत जो कर देते थे शासन कार्य सचालित करते थे।[४४४] कल्हण ने प्रान्तीय गवर्नर के लिए मण्डलेश उपाधि प्रयुक्त की है जो अन्यत्र उच्च श्रेणी के सामतो के लिए प्रयोग की गई है।[४४५] इसके अतिरिक्त हमे कश्मीर मे अधीनस्थ शासको तथा सामतो की उपाधियॉ—अधीश्वर,[४४६] मण्डलेश्वर,[४४७] देशठक्कुर,[४४८] ठक्कुर,[४४९] राजा,[४५०] सामत[४५१] तथा राजन्य[४५२] भी प्राप्त होती है। कुछ क्षेत्रो मे डामरो का व्यापारिक गतिविधियो तथा सिक्को के प्रचलन पर पूर्ण आधिपत्य था, वे अपने नाम के सिक्के भी चलाते थे। ये सामतगण अपनी शक्ति व व्यक्तित्त्व के प्रदर्शन के लिए राजा द्वारा प्रदत्त विभिन्न प्रकार के प्रतीक चिन्हो—छत्र, चवर, घोडा, हाथी, पालकी का उपयोग करते थे।[४५३] वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने तो—महाराजाधिराज, परमेश्वर उपाधिधारी सम्राट के दरबार मे—४ मण्डलेश्वर १२ माण्डलिक, १६ महासामत, ३२ सामत, १६० लघु सामत, ४०० चतुरशिक तथा अनेक राजपुत्रो (ग्रामप्रमुखो) के उपस्थित होने का उल्लेख किया है।[४५४] कथासरित्सागर[४५५] मे एक राजपुरोहित को एक हजार गॉवो का अधिकारी बताया गया है।

इस प्रकार यूरोप की भॉति भले ही कश्मीर मे सामंती व्यवस्था न प्रचलित रही हो किन्तु इसका एक अपना स्वरूप प्राप्त होता है।

---

४४३ जे० डब्ल्यू० हाल—'**द कम्परेटिव स्टडीज इन सोसाइटी ऐण्ड हिस्ट्री**'—अक्टूबर १९६२, पृ० ३४
४४४ राज० पूर्वो० VIII २१२-२१८
४४५ वही स्टेइन VI-७३,VII-९९६,VIII-१२२८,१८१४,२०२९
४४६ वही VIII-८,५३९
४४७ वही VIII-१८१४
४४८ वही VIII-५४८
४४९ वही VIII-५५४
४५० वही VIII-१५
४५१ वही VIII-१०२
४५२ वही VIII-५१०, स्टेइन (टि०)
४५३ रामशरण शर्मा—'**इण्डियन फ्यूडलिज्म**' कलकत्ता १९६५, पृ० २२,२३,९९
४५४ वासुदेव शरण अग्रवाल '**हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन**'—पटना-१९५३ पृ० १७८, पाद टि० ३
४५५ कथा० ३,१८,१२४-१२६

तृतीय अध्याय

आर्थिक स्थिति

- भूमि व्यवस्था
- कृषि व्यवस्था—सिचाई के साधन, फसल, वन-उपवन, दुर्भिक्ष,
- पशुपालन
- उद्योग—वस्त्र, धातु, चर्म, मृद्भाण्ड, प्रस्तर, काष्ठ, लघु उद्योग एवं शिल्प,
- श्रेणी
- वाणिज्य एव व्यापार,
- सिक्के
- कर-व्यवस्था

तृतीय अध्याय

आर्थिक स्थिति

भूमि-व्यवस्था

भूमि व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि स्वामित्त्व एक ऐसा प्रत्यय है जिस पर विद्वान लोग एकमत नही है। समय-समय पर होने वाले सामाजिक परिवर्तनो के कारण भू-स्वामित्त्व के सम्बन्ध मे निम्न मत प्राप्त हुये है—

१ भूमि पर व्यक्ति विशेष का स्वामित्त्व

२ भूमि पर राजा का स्वामित्त्व

३ भूमि पर सामुदायिक स्वामित्त्व

४ भूमि पर सामन्तो का स्वामित्त्व

५ भूमि पर राजा एव कृषक का सयुक्त रूप से स्वामित्त्व

६ भूमि सामाजिक न्यास (ट्रस्ट) होती थी।

श्रेडर,[१] मैक्डानल और कीथ,[२] बन्द्योपाध्याय[३], यू० एन० घोषाल[४] और के० पी० जायसवाल[५] का मत है कि प्रत्येक भूमि खण्ड का एक स्वामी होता था। ऋग्वेद मे खेतो के नापे जाने[६] और उनके पट्टियो से अलग होने का उल्लेख है।[७] छान्दोग्य उपनिषद[८] शतपथ ब्राह्मण[९] तथा विभिन्न बौद्ध

---

१ श्रेडर—प्रिहिस्टोरिक एन्टिक्विटीज पृ० २८९

२ मैक्डानल और कीथ वैदिक इंडेक्स भाग दो पृ० २१

३ वन्द्योपाध्याय, 'इकनॉमिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन ऐन्शिएण्ट इडिया,' भाग १ पृष्ठ ११२

४ हिन्दू पब्लिक लाइफ भाग १ पृष्ठ ६०

५ हिन्दू पॉलिटी (प्लेट II) पृष्ठ १७३

६ ऋग्वेद—१११०५

७ लल्लन जी गोपाल 'हिस्ट्री ऑव एग्रीकल्चर इन ऐन्शिएण्ट इडिया' पृष्ठ ४३

८ ८,४२,२

९ १३,७,१५

ग्रन्थो[१०] मे भी ऐसे प्रमङ्ग प्राप्त होते है जिनसे भूमि पर एक व्यक्ति के स्वामित्त्व का बोध होता है। कौटिल्य[११] ने खेतो के सीमा विवाद, सिचाई के लिये कुओं या नाली बनाने तथा खेतो के बेचने व गिरवी रखने का उल्लेख किया है। मनु[१२] ने भी लिखा है कि खेत का स्वामी वह व्यक्ति होता है जिसने जगल साफ कर उस भूमि को कृषि योग्य बनाया हो। स्मृतिकारो[१३] ने किसी चरवाहे की असावधानी से किसी खेत की हानि होने पर खेत के स्वामी को क्षतिपूर्ति दिलाने के जो नियम दिये है उनसे भी खेतो पर व्यक्तियो का स्वामित्त्व स्पष्ट होता है किन्तु गुप्तकाल मे भूमि के स्वामित्त्व के विषय मे जनसाधारण की भावना बहुत बदल गई थी तथा राजा को पृथ्वी का रक्षक होने के रूप मे अधिपति माना जाता था। वह ग्राम-सभा की सहमति से गॉव या भूमिखण्ड दान मे दे सकता था।

पूर्वमध्यकाल के टीकाकारो का मत था कि सवामित्त्व का अर्थ है कि स्वामी उस वस्तु को अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सके।[१४] विधि ग्रन्थो मे[१५] भूमि के पट्टे पर, दान मे, बटाई मे, गिरवी खेती मे देने तथा बेचने के उद्धरण प्राप्त होते है। राजतरङ्गिणी मे उल्लेख प्राप्त होता है कि एक उदार राजा ने एक छोटे से भू-स्वामी को उसके भूमि के बदले मुआवजा दिया था।[१६] यद्यपि यह अत्यन्त विरला उदाहरण है तथा ऐसी स्थिति राज्य प्रति राज्य भिन्न-भिन्न होती थी। विवेच्यकाल मे भूमि के व्यक्तिगत अधिकार की बात सत्य हो सकती है, जबकि राजा द्वारा केवल उनसे राजस्व लिया जाता था जिससे वे (भू-स्वामी) अपनी सम्पत्ति का शान्तिपूर्वक उपभोग कर सके। बी० एन० एस० यादव[१७] जी लिखते है कि गॉव की अधिकाश आबादी शूद्र-कृषको की थी जो बटाईदार के रूप मे भूमि पर खेती करते थे अथवा अशकालिक कृषक या भू-श्रमिक के रूप में कार्य करते थे। पूर्वमध्यकाल मे ये बडे कृषक प्रशासनिक अभिजात्यवर्ग मे अपना स्थान बना लिये थे जबकि छोटे कृषक शोषण तथा कर की अधिकता के कारण अधिक गरीब हो गये थे। ऐसे समृद्ध, एव महत्त्वाकांक्षी कृषको को कल्हण

---

१० दीघनिकाय १२, ७, विनयपिटक २, १५८, १५९, महावग्ग ३, ११, ४

११ कौटिल्य अर्थशास्त्र अनु० शामशास्त्री, मैसूर १९२४, ३, ७९, १०, २६

१२ मनु०—पूर्वो० ९४४

१३ मनु०—८ २४०-२४१, नारद ११, २८-२९, याज्ञ० २, १५९-१६१, कात्या० ६६४, ६६५-६६७

१४ यू० एन० घोषाल—**'दि एग्रेरियन सिस्टम इन ऐन्शिएन्ट इण्डिया'**, कलकत्ता, १९३०, पृष्ठ ६५

१५ कृत्य०—पृष्ठ ६८

१६ राज०—पूर्वो, IV ५५

१७ सोसाइटी पूर्वो० पृ० २५५

ने डामर कहा है, जो किलो मे रहते थे तथा प्राय राजाओं के विरुद्ध बगावत कर दिया करते थे। इसीलिये इस प्रकार की प्रवृत्ति पर रोक लगाने की बात कल्हण द्वारा की गयी है।[१८] प्राचीनकाल के विधिवेत्ता भूमि के स्वामित्व के विषय मे एकमत नही थे—प्रारम्भ मे वनो को काटकर जो व्यक्ति भूमि को कृषि योग्य बनाता था वही उसका स्वामी माना जाता था किन्तु बाद मे कृषि का स्वामी होने के लिये कानून द्वारा उसकी पुष्टि होना आवश्यक हो गई। इस प्रकार व्यक्ति विशेष भूमिखण्ड का स्वामी था किन्तु अधिपति के रूप मे उसे बिक्री या दान देने के लिये राजा और ग्रामवृद्धो की अनुमति लेनी पडती थी।[१९]

प्रारम्भ मे राजा को पूरे गॉव का स्वामी इसलिये माना गया कि वह समुदाय विशेष का अध्यक्ष होता था और इसीलिये उसे भूमि का अधिपति माना जाता था जो अपने विशेषाधिकारो को दान देते समय दान गृहीता को हस्तान्तरित कर देता था। कौटिल्य[२०] ने अपनी कालजयी रचना अर्थशास्त्र मे लिखा है कि भूमि दो प्रकार की होती थी, एक वह भूमि जो राजा की मानी जाती थी—जिसकी आय को 'सीता' कहा जाता था—इसका प्रमुख सीताध्यक्ष कहलाता था, वही इस भूमि पर खेती करवाता था। दूसरी प्रकार की भूमि वह थी जिसके स्वामी-व्यक्ति विशेष होते थे किन्तु उस पर राजा को अधिपति होने के नाते (भूराजस्व) 'भाग' की प्राप्ति का अधिकार होता था—उस भूमि खण्ड को बेचने का अधिकार कृषक को ही होता था किन्तु यदि व्यक्ति खेतो मे कृषि न करे तो राजा को उसे जब्त करने का अधिकार था। इस प्रकार झगडे वाली भूमि, जिस भूमि का उत्तराधिकारी न हो अथवा दान पाने वाला यदि दान की शर्तो को पूरा न करता हो तो राजा उन्हे जब्त कर सकता था।[२१] चारागाह पर सामूहिक स्वामित्त्व के अनेक साक्ष्य प्राप्त होते है जो कभी-कभी राजा द्वारा जब्त कर लिये जाते थे। राजतरङ्गिणी[२२] मे भी उद्धृत है कि राजा द्वारा दान मे दी गई भूमि के चारागाह को जब्त करने से

१८ राज०—पूर्वो० IV ३४६, ३४७, VII ४९४

१९ प्राचीन भारत—पूर्वो० पृष्ठ ३४

२० अर्थशास्त्र—पूर्वो० २, ६, ३, २, १५, २, २, २४
ए० एन० बोस **'सोशल एण्ड रूरल इकॉनमी ऑव इण्डिया'** भाग I, १९४५, पृष्ठ ३२, ४९ एग्रीकल्चर—पूर्वो० पृष्ठ ६२, ७२

२१ प्राचीन भारत—पूर्वो०—पृष्ठ ३६-३७

२२ राज०—पूर्वो०-III १०११

एक ग्वाला इतना दुखी हुआ कि उसने आत्मदाह कर लिया—इससे जहाँ भूमि के सामुदायिक स्वामित्व की पुष्टि होती है वहीं भूमि पर अन्तिम अधिकार राजा के होने की भी बात पुष्टित होती है, जिनको वह भूमिदान के समय दानगृहीता को हस्तातरित कर दिया करता था। देशोपदेश[२३] मे भी राजा के भूमि-स्वामी होने का उल्लेख प्राप्त होता है। ओमप्रकाश[२४] जी ने लिखा है कि भूमि का स्वामी तो किसान ही होता था—राजा तो भूमि का रक्षक होने के रूप मे प्रजा से उपज का छठा भाग पारिश्रमिक के रूप मे लेता था।

बौद्ध ग्रथो[२५] से हमे इस वात के स्पष्ट सकेत मिलते है कि ग्राम समुदाय कृषि योग्य खेती के स्वामी माने जाते थे। कौटिल्य,[२६] आर० जी० बसाक[२७] ने भूमि का स्वामी गॉव को माना है जिसकी पुष्टि अल्टेकर तथा आर० सी० मजूमदार ने भी किया है। राजतरङ्गिणी मे[२८] सामूहिक अधिकार के सकेत प्राप्त होते है। जहॉ ग्रामदान के साथ चारागाह दिये जाने पर ग्वालो ने विरोध किया था—इससे कुछ भूमि पर सामूहिक स्वामित्त्व के साक्ष्य मिलते है। कल्हण ने एक स्थल पर लिखा है कि राजा चक्रवर्मा ने जव रगडोम को अग्रहार के रूप मे हेलूग्राम इनाम मे दिया तो पट्टोपाध्याय दानपत्र लिखने को तैयार नही था।[२९] इससे स्पष्ट होता है कि वास्तव मे राजा ग्राम या जमीन का स्वतत्र स्वामी नही था।

पूर्वमध्यकाल मे जब वाणिज्य एव व्यापार का पतन हो रहा था तथा समाज शहरीकरण की ओर बढ रहा था, सिक्को की कमी होने पर शासक वर्ग के पास अपने अधिकारियो को उनकी सेवा के बदले जमीन देने के अतिरिक्त कोई विकल्प न बचा।[३०] इस प्रकार के दान मे दानगृहीता को सम्बन्धित भूमि से कर वसूलने के अतिरिक्त पुलिस, प्रशासन तथा न्यायिक अधिकार भी मिल जाते

---

२३ देशोपदेश—क्षेमेन्द्र—कश्मीर सिरीज ऑवटैक्स्ट्स एण्ड स्टडीज न० ४०, १९२३, II ६
२४ प्राचीन भारत-पूर्वो० पृष्ठ ३९
२५ दीघनिकाय—३२, ७, **बुद्धिस्ट इडिया**-रिजडेविड्स—अध्याय-३
२६ अर्थ०—पूर्वो०—३,१०
२७ आशु० मु० सि० जुलाई जिल्द ३ भाग २ पृष्ठ ३८६-४८७
२८ राज० पूर्वो०— VIII-२२२६
२९ राज०—पूर्वो० V-३९७
३० सोसाइटी—पूर्वो०-पृष्ठ २५६, **'इडियन फ्यूडलिज्म'** आर० एस० शर्मा—कलकत्ता, १९६५, पृष्ठ १४०

थे। इस प्रकार के वर्ग को—सामत कहा गया जो राजा व किसानो के बीच भूमि के तीसरे स्वामी बन गये। इस प्रकार की भूमि के अन्तर्गत आने वाले लोग (किसान) दूसरे क्षेत्रो मे जाने के लिये स्वतत्र नही होते थे, अत छोटे किसान अपनी भूमि—राजा अथवा सामत प्रमुखो का सरक्षण पाने के लिये उन्हे सौंप देते थे तथा उसी भूमि पर सामान्य काश्तकार के रूप मे खेती करते थे। अत्यधिक कर, ऋण के नियम तथा गिरवी ने सामान्य किसानो की गरीबी को बढा दिया—इस कारण ने भी उन्हे भूमि त्यागने पर मजबूर किया।[३१] अस्तु इस समय तीसरा वर्ग—सामत भी भू-स्वामी के रूप मे स्थापित हुआ। ओमप्रकाश जी ने लिखा है कि जब केन्द्रीय सरकार की शक्ति मे कमी आई तो सामत मनमानी करने लगे। पहले राजा को कुछ व्यक्तियो से बेगार कराने का अधिकार था, उसी के आधार पर पूर्वमध्यकाल मे राजस्थान, उडीसा, आसाम मे कुछ सामतो ने किसानो के साथ भूमि को दान मे दे दिया जो अपने खेतो को छोडकर अन्यत्र नही जा सकते थे, परन्तु देश के अन्य भागो के किसान पूर्णतया स्वतत्र थे क्योकि अन्य भागो मे केन्द्रीय सरकार की शक्ति पूर्णतया क्षीण नही हुई थी।[३२] भूमि दान कई प्रकार के व्यक्तियो को दिया जाता था। कौटिल्य[३३] ने राजा द्वारा निम्न व्यक्तियो को दान देने का उल्लेख किया है—

१ ब्राह्मणो को इस शर्त के साथ कि वे दान-पत्र की शर्तो को पूरा करेगे अन्यथा राजा भूमि को वापस ले लेगा।

२ राज्य के उन अधिकारियो को जो दी हुई भूमि की आय को दान कार्यो मे व्यय करे।

३ रानियो व राजकुमारो को उपहार के रूप मे।

४ अधिकारियो को वेतन के बदले मे जब तक वे सेवा मे रहे।

५ उन व्यक्तियो को जागीर के रूप मे जो सेना की टुकडियाँ देने का वचन दे।

---

३१ सोसाइटी—पूर्वो०-पृष्ठ २५६, 'इडियन फ्यूडलिज्म' आर० एस० शर्मा—कलकत्ता, १९६५, पृष्ठ १४०

३२ प्राचीन भारत—पूर्वो० पृष्ठ ४३-४४

३३ अर्थ०—पूर्वो० २, १

कल्हण[३४] ने राजा द्वारा प्रसन्न होन पर किसी को भी भूमि (ग्राम) दान मे देने का उल्लेख किया है। इस प्रकार के गॉवो से होने वाली आय दानगृहीता प्राप्त करने का अधिकारी होता था। लल्लन जी गोपाल[३५] ने ठीक लिखा है कि पहले किसान भूमि-कर व अन्य देय धन राजा को देते थे, अब वे दान गृहीता को देने लगे—इस प्रकार खेत दान देने पर खेत का स्वामी दान पाने वाला व्यक्ति हो जाता था जबकि गॉव दान देने पर दान पाने वाला व्यक्ति केवल उस गॉव की आय का उपभोग करने का अधिकारी होता था और ऐसे गॉव मे कोई भी सरकारी अधिकारी प्रवेश नही करेगा, उनमे से कोई भिक्षुओ को नही छुएगा, नमक नही खोदेगा तथा जिला पुलिस उनके कार्यो मे हस्तक्षेप नही करेगी ऐसे नियम बन जाते थे।[३६]

नासिक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उषवदात ने ४०,००० कार्षापण मे एक बौद्ध विहार को दान मे देने के लिये खेत खरीदा था।[३७] इन प्रकार के भूमि विक्रय का लिखित लेखा-जोखा रखा जाता था एव इसके लिये निश्चित पजीकरण शुल्क देना पडता था।

कल्हण[३८] ने लिखा है कि राजा यशस्कर के समय एक व्यक्ति ने कर्ज से मुक्ति पाने के लिये अपने मकान की सीढियो पर स्थित कूपरहित मकान बेच दिया किन्तु क्रेता ने राजकीय अधिकरण लेखक को निश्चित राशि के स्थान पर एक हजार दीनार अधिक देकर 'कूपसहित' लिखवाकर कुएँ पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रसङ्ग से दो बाते स्पष्ट होती है—**प्रथम**—कोई भी व्यक्ति अपनी भूमि-जिस पर उसका वास्तविक अधिकार हो बेच सकता था। **द्वितीय**—भूमि का सम्पूर्ण लेखा-जोखा राजकीय कार्यालय मे लिखित रूप मे होता था—स्वामित्त्व परिवर्तन का रिकार्ड यहॉ रखा जाता था तथा विक्रय के समय सरकार को निश्चित राशि देनी पडती थी। एपिग्राफिका इण्डिका[३९] मे भी उल्लिखित है कि पुस्तपाल की सहमति मिल जाने पर खरीददार भूमिखण्ड का मूल्य जब जिला कार्यालय मे जमा करा देता था। तब जिला परिषद के सदस्य उस भूमि खण्ड का निरीक्षण करते थे और बिक्री की अनुमति

---

३४ राज०—पूर्वो० V ३९७-३९८
३५ एग्रीकल्चर—पूर्वो०-पृष्ठ ६६-६८
३६ नासिक अभिलेख स० ३ प्लेट २
३७ वही स० १०
३८ राज०—पूर्वो० VI-१५-४१
३९ एपि० इण्डि०, दिल्ली २०, पृष्ठ ५९

देते थे तथा इस विक्री का अपने कार्यालय मे पजीकरण करते थे। धर्मादित्य और गोपचन्द्र के तीन अभिलेखो के आधार पर मैटी द्वारा निकाले गये निष्कर्ष को उद्धृत करते हुये ओमप्रकाश लिखते है कि ४८३-४८८ ई० मे ५३३-५३४ ई० के लगभग १०० वर्षो तक भूमि के मूल्य मे कोई परिवर्तन नही हुआ क्योकि इस समय कृषि योग्य भूमि की बहुत अधिक माग थी और तत्कालीन स्वामी इन्हे वेचना नही चाहते थे।[४०] रामशरण शर्मा[४१] ने लिखा है कि सामतोपसामतीकरण (सवइनफ्युडेशन) के कारण एक जमीन के चार-पाँच दावेदार बन जाते थे—**पहला** स्वामी के रूप मे, **दूसरा** स्वामी के अधीनस्थ के रूप मे **तीसरा** उप अधीनस्थ (सब वेसाल) के रूप मे, **चौथा** वास्तविक कृषक के रूप मे। इसलिये गाँव और जमीन का अभिलेख (खतिहान) सावधानी से रखना होता था ताकि भूमि का विवाद—जो प्राय हुआ करता था—रोका और तय किया जा सके। इस कार्य के लिये पूर्वमध्यकाल मे एक विशिष्ट लिपिक वर्ग का उदय हुआ जिसके लिये—कायस्थ, करण, करणिक, अधिकृत, पुस्तपाल, चित्रगुप्त, लेखक, दिविर, धर्मलेखिन्, अक्षरचण, अक्षरचचु, अक्षपटलिक, अक्षपटलाधिकृत सदृश शब्दो का प्रयोग हुआ है। यद्यपि इनका सर्वप्रथम उल्लेख चतुर्थ शताब्दी के स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने किया है।[४२] कल्हण ने भी इस वर्ग के बारे मे विस्तारपूर्वक लिखा है।[४३] इन्हे किस वर्ण मे रखा जाय इसकी अस्पष्टता है इसलिये हाल मे कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इन्हे शूद्र और इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ब्राह्मण कहा है।[४४] परन्तु यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि राजकीय दस्तावेजो के लेखन कार्य हेतु पूर्वमध्यकाल मे कायस्थ नामक वर्ग का उदय हुआ—जो प्रारम्भ मे अपने कर्मगत आधार पर जाना जाता था तथा जिसमे किसी भी वर्ग के योग्य व्यक्ति पद प्राप्त कर सकते थे। कल्हण[४५] ने लिखा है कि शिवरथ नाम का एक ब्राह्मण कायस्थ अधिकारी के रूप मे नियुक्त किया गया था। ऐसी स्थिति मे कायस्थो की ब्राह्मण ग्रन्थो द्वारा निन्दा किये जाने तथा उन्हे शूद्र वर्ण घोषित किये जाने

---

४० प्राचीन भारत—पूर्वो०—पृ० ५२

४१ **'इण्डियन फ्यूडलिज्म'**, पृष्ठ १५३-१५४

४२ याज्ञ० I ३२२

४३ राज०-पूर्वो०—IV-६२०, VIII-५६०

४४ रामशरण शर्मा—**'पूर्वमध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन'** अनु० सुशील झा० मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७५ पृ० १४

४५ राज०-पूर्वो०, VIII २२८३, स्टेइन पूर्वो० भाग दो पृ० १३४, काणे-पूर्वो० II ७७

के पीछे रामशरण शर्मा[४६] जी का तर्क सत्य प्रतीत होता है कि—कायस्थो के उद्भव मे पूर्व शिक्षा जगत एव ऐसे राजकीय पद-जिसमे योग्य व्यक्तियो की आवश्यकता होती थी पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था—कायस्थो ने उन्हे इन क्षेत्रो मे न केवल चुनौती दी होगी अपितु भूमिदानो तथा अग्रहारो के दस्तावेजो के लेखन मे ब्राह्मणो को परेशान किया होगा, इसीलिए अनेक ग्रन्थो मे उन्हे शूद्र घोषित किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि पूर्वमध्यकाल से सम्पूर्ण भूमि के लिखित दस्तावेज राजकीय कार्यालय मे होते थे।

कृषि

मानव अपने प्रारम्भिक चरण मे यायावर था। शिकार एव पशुपालन उसके आजीविका के साधन थे। धीरे-धीरे वह वन्य फसलो का उपभोक्ता बना जिससे प्रभावित होकर उसने कृषिकर्म प्रारम्भ किया—जिसने न केवल उसे उत्पादक वना दिया अपितु उसके जीवन को स्थिरता प्रदान की। पुरातात्विक साक्ष्यो से स्पष्ट होता है कि नवपाषाणकाल मे मानव ने खाद्य उत्पादन प्रारम्भ कर दिया था। सिन्ध और बलूचिस्तान की सीमा पर बोलन नदी के किनारे मेहरगढ नामक स्थान से ५००० ई० पू० के स्तर पर गेहूँ व जौ की विभिन्न किस्मे मिली है। अनाज के जो बड़े भण्डार हड़प्पा सस्कृति के अवशेषो मे मिले है उनसे स्पष्ट होता है कि इस समय आवश्यकता से अधिक अन्न उपजाया जाता था—जिसने इस सस्कृति को नगरीय बनाने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। लोथल और रगपुर से चावल, रगपुर से बाजरे तथा नवदा-टोली और सोनगॉव से गेहूँ, चावल, मसूर, मूँग, उड़द के अवशेष मिले है। कश्मीर मे ईसा पूर्व २५०० के आस-पास बुर्जहोम मे गेहूँ और जौ की खेती की जाती थी।[४७]

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था मे कृषि, व्यापार एव पशुपालन वार्ता के प्रमुख साधन माने जाते थे—जिसमे से कृषि-प्राचीनकाल से ही अधिकांश भारतीयो द्वारा आजीविका के रूप में अपनायी जाती थी।[४८] भूमि का विभाजन भौगोलिक स्थिति एवं उत्पादकता के आधार पर प्राचीनकाल से किया

---

४६ शर्मा—पूर्वो०—पृ० १४
४७ प्राचीन भारत—पूर्वो० पृष्ठ ३
४८ शर्मा०—पूर्वो० पृष्ठ १४०

जाता रहा है।[४९] इस काल मे अधिकतर व्यक्तियो के पास छोटे-छोटे खेत थे जिनमे उनके स्वामी स्वय अपने परिवार के सदस्यो की सहायता से खेती करते थे।[५०] प्राचीन भारतीय क्रमिक (चक्रीय) खेती से पूर्णतया परिचित थे।[५१] अर्थशास्त्र से हमे खाद के प्रयोग करने के साक्ष्य प्राप्त होते है।[५२] लोहे और लौह निर्मित कृषि उपकरणो ने कृषि के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया क्योकि इनकी सहायता से जगली भूमि को कृषि योग्य बनाया गया।[५३] पाराशर की कृति कृषि-सग्रह तथा बगाली साहित्य से पता चलता है कि हल, कुदाल, हसिया, छडी सदृश कृषि उपकरण ग्रामीणो, लोहारो तथा बढइयो द्वारा बना लिये जाते थे।[५४] ए० पी० ओझा जी ने महाभारत के खाण्डववन-दाह की कथा के आधार पर जगली भूमि को साफ करने के साधन के रूप मे अग्नि की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना है।[५५] उन्होने आगे लिखा है कि कृषि के विकास एव कृषि योग्य भूमि की वृद्धि से अधिक कृषको की आवश्यकता पडी-इन्ही परिस्थितियो मे शूद्र भी कृषक होने लगे। यद्यपि ये स्वतत्र कृषक के रूप मे न होकर आर्धिको के रूप मे होते थे। फिर भी इनकी सख्या इतनी अधिक हो गई कि इन्होने अपना पृथक् समुदाय बना लिया जिसका उल्लेख पराशरस्मृति (६००-९०० ई०) मे मिश्रित जाति के रूप मे हुआ है।[५६] स्वतत्र कृषिजीवियो के समुदाय का उल्लेख करते हुए वराहमिहिर ने इन्हे—कृषीबलानाम्, कृषिरतानाम्, कृषिकर और कृषिजीविन् कहा है।[५७] जबकि ज्योतिष ग्रन्थो के आधार पर ए० पी० ओझा ने इन तीन योगो-हलयोग, कृषीबलवृद्धिदम् योग तथा केदार योग—मे जन्म लेने वाले व्यक्ति

---

४९ इण्डि० हिस्ट० क्वा० १९३०, पृ० ७३९

५० एस० के० मैटी०—**'इकानॉमिक लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया इन द गुप्ता पीरियड'** दिल्ली १९७०, पृ०१००

५१ के० वी० आर० आयगर—**'आस्पेक्ट्स ऑव ऐन्शिएण्ट इकानॉमिक थाट'**—बनारस-१९३४ पृष्ठ ७८

५२ अर्थशास्त्र-कौटिल्य अनु० आर० शामशास्त्री—मैसूर १९१९, पृष्ठ १४१

५३ कोसम्बी डी० डी० **'द कल्चर ऐण्ड सिविलाइजेशन ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया'** पृ० १७१-१७२ जायसवाल सुवीरा **"कास्ट इन सोशियो-इकानॉमिक फ्रेम वर्क ऑव अर्ली इण्डिया"** अध्यक्षीय सम्भाषण इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस, १९७७ पृष्ठ १४, यादव बी० एन० एस० **कुषाण स्टडीज,** पृ० ८३-८४

५४ लल्लनजी गोपाल—ए० यू० एस० १९६३-६४ पृ० २७-२९, टी० सी० दास गुप्ता **"आस्पेक्ट्स ऑव बंगाली सोसाइटी** पृ० २२९-३०

५५ ओझा ए० पी०—**प्राचीन भारत में सामाजिक स्तरीकरण** पृ० ८३ पाद टि० ७३

५६ वही पृष्ठ ८८, यादव बी० एन० एस०—**'इम्मोबिलिटी ऐण्ड सब्जेक्शन ऑव इण्डियन पीजेंट्री इन अर्ली मिडीवल काम्प्लेक्स'** इ० हि० दि० ११, पृ० २३, पराशर० ११, २५

५७ वृहत्सहिता १५, २८, ८, ५२, ३३, ३१, ४, ओझा-पूर्वो० पृष्ठ ११४

के स्वतन्त्र एव समृद्ध कृषक होने की बात कही है। बी० के० सरकार[५८] ने एक हल मे ब्राह्मणो द्वारा सोलह, अन्य द्वारा चार तथा अन्त्यजो द्वारा दो बैल जोतने का उल्लेख किया है—इससे भी स्पष्ट होता है कि कृषि कर्म सभी वर्णो का सामान्य कर्म बन गया था। परन्तु एक ही हल मे सोलह बैलो को एक साथ क्यो जोता था—यह स्पष्ट नही होता, यद्यपि बी० एन० एस० यादव जी ने हल के भारीपन या भूमि की उत्पादकता के सम्बन्ध का इससे अनुमान लगाया है किन्तु यह स्पष्ट रूप मे उन्होंने भी नही लिखा है।[५९]

सिंचाई

भारत मे सिचाई के साधनो की प्राचीनकाल से ही अत्यधिक महत्ता थी—पैदावार सिचाई से काफी प्रभावित होती है।[६०] इसी लिये शुक्रनीतिसार[६१] मे बॉध, नहर, नदी, कुँओ को सन्दर्भित करते हुये कृषियोग्य भूमि पर राजस्व उनकी सिचित सुविधा के आधार पर लगाने का उल्लेख किया गया है। बितस्ता नदी व महापद्मा झील मे बाढ आने के कारण कश्मीर मे बहुधा बाढ आ जाती थी इसलिए वहॉ के शासक ललितादित्य ने (७४०-७७६ ई०) पानी खीचने के लिये पहिये लगाकर नदियो के जल का सिचाई के लिये उपयोग किया।[६२] कल्हण ने सुय्य नामक व्यक्ति—जो बाद मे अभियन्ता बना—द्वारा राजा अवन्तिवर्मा के राज्य काल मे बितस्ता नदी की सफाई कराने तथा उस पर बॉध निर्मित कराने का बडा ही रोचक प्रसङ्ग प्रस्तुत किया है। उन्होने लिखा है कि बितस्ता नदी मे दोनो तटों के पहाडो की चट्टाने लुढक-लुढककर उसके प्रवाह को रोक दी थी—उसकी सफाई के लिये सुय्य ने मडव देश के माडव ग्राम एव क्रमराज्य के यक्षदर ग्राम मे चट्टानों के बीच पानी मे दीनारे डाल दिया। दुर्भिक्षग्रस्त ग्रामवासी दीनारे खोजते हुए प्रवाहमार्ग की चट्टानो की सफाई कर दिया। इससे नदी अपने प्राकृतिक मार्ग मे बहने लगी। इस प्रकार खाली हुए स्थान पर अवन्तिवर्मा ने अनेक जलसकुल ग्राम बसाये। सुय्य ने नवीन बांध बनवाने के बाद उससे नहरें निकलवाया तथा प्रत्येक गांव की मिट्टी मॅगवाकर उन्हे

५८ शुक्रनीति० अनु० बी० के० सरकार पृष्ठ १५१, सोसाइटी पूर्वो० पृष्ठ ३०४ पाद टि० ७१
५९ सोसाइटी-पूर्वो०—पृष्ठ २५७
६० सोशल हिस्ट्री-पूर्वो०—पृष्ठ १३५
६१ शुक्र०-अनु० सरकार पृष्ठ १४८
६२ राज०-पूर्वो० IV-१९१, V-६९-७२

अलग-अलग सींचा जो मिट्टी जितनी देर से सूखी उतनी देरी से फिर उसको सीचने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस प्रकार अन्न का भाव अत्यन्त कम हो गया।[६३] विल्हण ने राजकलश द्वारा अगुरु के बाग, निर्मल जल वाले कूप तथा पौसरे और शास्त्र की व्याख्या करने वाले घर बनवाने का उल्लेख किया है।[६४] प्रवरपुर के प्रत्येक बाग मे क्रीड़ासर था। सम्भवत बाग की सिचाई इन्ही तालाबो से की जाती रही होगी।[६५] ९४६ ई० के एक अभिलेख मे रहट (अरहट) और चमड़े के चरसो से सिचाई का स्पष्ट उल्लेख है। कल्हण लवन्य डामरो द्वारा रहट खीचने व चक्की पीसने का कार्य करने का उल्लेख करते है।[६६]

फसल

चावल प्रारम्भिककाल से ही भारत वर्ष की मुख्य फसल थी। हेमचन्द्र की कृति द्वायाश्रय तथा मानसोल्लास मे धान की विभिन्न प्रजातियॉ उद्धृत की गई है।[६७] टी० सी० दासगुप्ता ने बगाल मे धान (चावल) की पचास से अधिक प्रजातियो के पैदा किये जाने का उल्लेख किया है।[६८] राजतरङ्गिणी से पता चलता है कि चावल कश्मीर की मुख्य फसल थी।[६९] जिसके लिये धान्य, शालि, तन्डुल, व्रीहि, अक्षत व कलम शब्द प्रयुक्त हुए है।[७०] कल्हण ने एक स्थल पर 'यवकोद्रवपूपादि' का प्रयोग किया है जिसे गरीब लोग खाते थे।[७१] क्षेमेन्द्र ने मुद्गा नामक दाल[७२] जबकि कल्हण ने उड़द की दाल का उल्लेख किया है। लोहरप्रान्त के राज्यमत्री शूर के पुत्र के सेवक धन्व-डामर ने भूतेश्वर मन्दिर के सभी अग्रहार छीन लिये थे। अत धनाभाव के कारण भूतेश भगवान के पुजारियो ने जंगली व कडुवी उत्पलक शाक का भोग लगाया।[७३] तिलद्वादशी के अवसर पर कश्मीरवासी तिल खाते थे।[७४]

---

६३ राज० V-८०-१२१
६४ विक्रम० पूर्वो० XVIII ७८
६५ वही XVIII २०
६६ एपि० इण्डि० १४, १८२, राज० पूर्वो० VII-१२३२
६७ '**द्वायाश्रय**-हेमचन्द्र-बाम्बे सस्कृत सिरीज १९२१, III-४, **मानसोल्लास** III-१३४६-४८, १३५८'
६८ दासगुप्ता—पूर्वो० पृष्ठ २४९-२५८
६९ सोसाइटी पूर्वो० पृ० २५८
७० राज० पूर्वो० I २४६, II १८, III २२, IV २९५, V७१, ११६-१७, VI I ४९६
७१ वही VII-१६२१, VIII-२५९६
७२ नर्म०—पूर्वो० अध्याय I -१२४
७३ राज० V-४८-५२
७४ राज० पूर्वो० III ४२६, V-३९५

क्षेमेन्द्र ने भोजन पकाने के लिये तेल के प्रयोग किये जाने का उल्लेख किया है। सम्भवत यह सरसो का तेल रहा होगा क्योंकि राजा प्रवरसेन के मुकुट की तारिकाओ की तुलना सरसों के दानो से की गई है।[७५] इससे स्पष्ट है कि कश्मीर मे इस समय सरसो व तिल का उत्पादन किया जाता था।

अलबेरूनी ने[७६] पॉच प्रकार की शाक-प्याज, लहसुन, कद्दू, पौधे की जड, नाली के आस-पास पैदा होने वाली शाक—ब्राह्मणो के लिये निषिद्ध बताया है। कमलनाल (बिस) कश्मीरियो द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली प्रमुख शाक थी।[७७] कश्मीरी साहित्य से सतरा, अगूर, सेव, खजूर, केला, नीबू, अनार, कपित्थ (कैथा) अखरोट (अक्षोटफलम्), द्राक्षासव फलो के उत्पादन के साक्ष्य प्राप्त होते है[७८] कश्मीर प्राचीनकाल से ही अगूर व केसर (काश्मीर)[७९] के लिये प्रसिद्ध रहा है। कल्हण ने कश्मीर मे गन्ने के उत्पादन का उल्लेख किया है।[७९अ]

नमक[८०] मिर्च[८१] हीग[८२] हल्दी[८३] अदरक[८४] प्याज तथा लहसुन[८५] जैसे मसाले कश्मीरियो द्वारा प्रयुक्त किये जाने के प्रसङ्ग प्राप्त होते है—इनमे से किनका उत्पादन किया जाता था—यह स्पष्ट नही है—किन्तु स्टेइन महोदय कहते है कि इनका आयात किया जाता रहा होगा।

कल्हण[८६] लिखते है कि पान कश्मीरवासियो द्वारा भोजन के पश्चात् प्रयोग किया जाने वाला प्रमुख खाद्य था—यद्यपि यह स्पष्ट नही होता कि पान तथा उसके साथ मिलाये जाने वाले अन्य

---

७५ वही III ३३८ समय०-पूर्वो० VIII ७९-८०

७६ सचाऊ-पूर्वो० II पृष्ठ १३५

७७ राज० पूर्वो० VIII ६७६ नर्म०-पूर्वो० अध्याय I-१२४

७८ वही I ४२, II ६०, IV १९२, २१९, २२०, २२२, २३७,५०१, VI ३५६, VII ४९८, १२२०, VIII १८६६, २३८६ लोक०-पूर्वो० पृष्ठ ५३, नर्म०-पूर्वो० I १२४, इलियट-पूर्वो० I, पृष्ठ ३८-३९, ६७ विक्रम-पूर्वो० XVIII ७२, स्टेइन-भाग I, IV २१९, VI-३५६

७९ डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डे इलाहाबाद से मुझे निर्देश मिला कि कश्मीर-प्रदेश के लिये तथा काश्मीर—वहाँ उत्पन्न होने वाली केसर के लिये प्रयुक्त होने वाले शब्द है। विक्रम०-पूर्वो० XVI १, XVIII-१६, ७२

७९अ राज०—II ६०, VII-१५७४

८० राज० (स्टे०) भाग II पृ० ३९५ (पाण्डेय)-VII-१२२१, नर्म० (अ. I) १२७, देशो II ८, ९,१५

८१ राज० पूर्वो० VIII २१५० नर्म—अ. I १२३

८२ वही VII १२२१

८३ वही VIII २१५०

८४ वही VIII १४१, नर्म अ. I १२३

८५ वही VIII १४३, समय० II २६ देशो० III ३२

८६ राज०—IV-४२७, VII-५४४, ७८७, १०६७, VIII १७३६, १९४७, नर्म० ८६४ विक्रम० X-३८

तत्व—सुपाडी, कपूर, कस्तूरी, इलायची यही उत्पादित किये जाते थे, या बाहर से आयात किये जाते थे। इदरिसी के अनुसार इलायची मालावार मे पहाडियो के ढालो पर प्रचुर मात्रा मे पैदा होती थी।[८७] याकूत के अनुसार कपूर, किलो और मदुरा के बीच की पहाडियो मे उगता था।[८८] कपास प्राचीनकाल से भारतवर्ष की नकदी फसल मानी जाती रही है—जिसका समृद्ध व्यापार होता था। नकदी फसलो का अत्यधिक उत्पादन व्यापार मे समृद्धि का कारक था जिससे किसानो की दशा व आर्थिक स्थिति मे सुधार का पता चलता है।[८९]

वन-उपवन

विल्हण ने लिखा है कि राजकलश ने अगूर के बाग, निर्मल जल वाले कूप तथा पौसरे और शास्त्र की व्याख्या करने वाले घर बनाये थे।[९०] एक अन्य स्थल पर उन्होने लिखा है कि प्रवरपुर के प्रत्येक बाग मे क्रीडासर था।[९१] राजा, रानियो, राजकुमारो तथा राजकुमारियो के मनोरञ्जन के साधन के रूप मे उपवन-विहार प्रमुख माना जाता था। इन उपवनो मे सब प्रकार के फूलो व फलो के वृक्ष होते थे जो सब ऋतुओ मे फूलो व फलो मे लदे रहते थे। इनमे छायादार लता-कुञ्ज, कृत्रिम तालाब, झीले तथा नदियाँ होती थी।[९२]

वन-सम्पदा किसी भी राज्य की समृद्धि के लिये बहुत आवश्यक माना गया है जहाँ से न केवल विभिन्न प्रकार के फल-फूल, बहुमूल्य लकडी, औषधि, विभिन्न उद्योगो के लिये कच्चा माल, ईधन प्राप्त होता था बल्कि ये अनेक दुर्लभ जीवो के शरणस्थली तथा तपस्वियो एव प्राचीन गुरुकुलो के लिये अनुकूल स्थल थे। सोमदेव ने लिखा है कि जब राजा को बहुत दिनो से युद्ध का सामना न करना पडा हो, तो उसे विभिन्न प्रकार के शस्त्रो के अभ्यास के लिये वन मे आखेट के लिये जाना चाहिए—इससे उसे व्यायाम के साथ-साथ शस्त्रो को चलाने की निपुणता प्राप्त होती है।[९३] कल्हण ने

८७ नैनार—'अरब ज्योग्रफर्स नालिज ऑव सदर्न इडिया-अध्याय १'
८८ वही
८९ इण्डि० फ्यू०—पूर्वो० पृष्ठ २५१
९० विक्रम०-XVIII ७८,
९१ वही XVIII-२०
९२ मानसोल्लास—पूर्वो० ५, १, ४-९९, १००-१०४
९३ कथा० पूर्वो० VI, I, पृष्ठ १२१, १२४

जयवन का उल्लेख किया है जिसके समीप स्थित खोनमुख गॉव वेदाध्ययन, अगूर तथा केसर के लिये विशेष प्रसिद्ध था।[९४]

दुर्भिक्ष

विविध ग्रथो मे दुर्भिक्ष (अकाल) का बडा ही भयानक चित्रण किया गया है। विवेच्यकाल मे यातायात के साधनो की कमी के कारण दुर्भिक्षग्रस्त क्षेत्र मे शीघ्रता से अन्न न पहुँच पाने के कारण दुर्भिक्ष की भयानकता बढ जाती थी। इन दुर्भिक्षो के अनेक कारण थे—अधिक वर्षा होना,[९५] वर्षा का न होना (सूखा),[९६] नदियो मे बाढ[९७] – निर्दयी शासको द्वारा अत्यधिक कर लगाये जाने[९८] लालची व्यापारियो द्वारा लाभ कमाने के उद्देश्य से बाजार मे सामान की कमी करने[९९] तथा अग्निकाण्ड [१००] बृहन्नारदीय पुराण[१०१] मे लिखा है कि दुर्भिक्ष के कारण मनुष्य अपने प्रदेशो को छोडकर ऐसे स्थानो को चले जाते थे जहॉ गेहूँ और जौ बहुतायत से प्राप्त होते थे। बी० एन० एम० यादव ने लिखा है कि अकाल प्रभावित क्षेत्र मे धर्म का पतन हो जाता था एव राजा और उसकी प्रजा नष्ट हो जाते थे। उनकी बात का समर्थन जैन धर्म के विभाजन से पुष्टित होता है—३०० ई० पू० मे मगध मे १२ वर्षीय अकाल पडा, इसमे 'स्थलबाहु' के नेतृत्त्व मे जैन मतावलम्बियो का एक वर्ग वही रह गया जबकि 'भद्रबाहु' के नेतृत्त्व मे दूसरा वर्ग मगध छोडकर कर्नाटक (श्रवणबेलगोला) चला गया था, जो 'दिगम्बर' कहलाये तथा अपने को शुद्ध बताते हुए नग्न रहने मे विश्वास करते थे। दूसरा वर्ग 'श्वेताम्बर' कहलाया।[१०२] कुछ ऐसे राजाओं का पता चलता है जिनके द्वारा अत्यधिक कर लगाने के कारण जनता परेशान हो जाती थी जबकि ऐसे भी राजा थे जो अकाल के समय अपने संचित कोष से अन्न खरीदकर

---

९४ विक्रम०—पूर्वो० XVIII-७१, ७२
९५ कथाकोष पृ० १६१, राज०-पूर्वो०-VII १२१९
९६ अपराजितपृच्छा-पृ० १८७-१८८,
९७ राज० पूर्वो० V-६८-७१, ८०
९८ वही VII-१२२६
९९ वही V-२७४, देशो०-पूर्वो० २, ३३
१०० वही VII १२२५, अपराजित पृष्ठ १८७
१०१ ३८, ८७
१०२ के०सी०श्रीवास्तव **भारत की सस्कृति तथा कला,** पृ० १८५

प्रजा का पालन किया करते थे। कल्हण ने[१०३] लिखा है कि राजा तुर्जीन के समय भयकर अकाल पड़ा तब उसने अपने तथा मन्त्रियो के सचित कोष मे अन्न खरीदकर प्रजा का पालन किया। अत्यन्त बर्फ के कारण पडे इस अकाल का कल्हण ने बडा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होने लिखा है कि उस भीषण अकाल के समय क्षुधा के कारण पेट पालने की लालसावश लोग पत्नी का प्रेम, पुत्र का स्नेह एव पिता के प्रति भक्तिभाव आदि सब भूल गये, दुर्बल तथा भूख से कण्ठ तक प्राण आ जाने पर भोजन मागते हुए पुत्र की उपेक्षा करके पिता अपना पेट भरता था उसी प्रकार क्षुधा से तडपते हुए पिता की ओर न निहारकर पुत्र अपना उदर भर लिया करता था। राजा के सम्पूर्ण कोष खाली हो जाने पर भी जब वह अकाल समाप्त नही हुआ, तव उसने अग्नि मे जलने का निर्णय लिया—क्योकि वह अपनी जनता को तडपते हुए नही देख सकता था, किन्तु उसकी रानी वाक्पुष्टा ने अपने पातिव्रत धर्म के बल पर किसी प्रकार प्रजा को जीवित रखा। एक अन्य स्थल पर उन्होने लिखा है कि लौकिक सवत ३९९२ मे इतना भयकर अकाल पडा कि एक खारी चावल का दाम एक हजार दीनार हो गया। मत्रियो व तत्रियो ने अपना बचा हुआ अन्न बहुत महगे दाम पर बेचकर अत्यधिक धन कमाया।[१०४] इसी प्रकार ४१७५ लौकिक वर्ष मे पडे अकाल मे एक खारी चावल का दाम ५०० दीनार हो गया।[१०५] ओमप्रकाश[१०६] जी ने लिखा है कि सामन्तवाद के कारण किसानो पर करो का भार इतना बढ गया था कि किसानो को सामान्य दशा मे भी अपना पेट भरना कठिन हो गया था फिर दुर्भिक्षो मे तो उनके जीने की क्या आशा हो सकती थी।

कृषक समाज के आधारस्तम्भ माने जाते थे, क्योकि उनकी अतिरिक्त आय से राजा, सामत जमीदार, पुरोहित तथा अन्य जमीदारी वर्ग तथा बहुत से ग्राम्य सेवक नाई, बढ़ई, भगी, धोवी, अपनी आजीविका चलाते थे। वाणिज्य एवं व्यापार के पतन तथा सिक्को के अल्पप्रचलन के कारण पूर्वमध्यकाल मे अर्थव्यवस्था भूमि पर ज्यादा आधारित हो गई। इस समय अन्य वर्गो द्वारा कृषि अपनाये जाने के कारण वैश्य वर्ग मे निम्नवत् सामाजिक गतिशीलता स्थापित हो गई जो शूद्रो की स्थिति में

१०३ राज०-पूर्वो० II १८-५०
१०४ वही V-७१, २७१, २७४
१०५ वही VII १२१९-१२२१, १२२६
१०६ प्राचीन भारत-पूर्वो० पृष्ठ २८ एव अध्याय ३ पाद टि. ३४७

प्रार्थना करते थे। पुत्री के लिए 'दुहितृ' शब्द का प्रयोग किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि दूध निकालने का कार्य अधिकतर लडकियाँ करती थी। गाय विनिमय के लिये प्रयुक्त की जाती थी तथा उसका पालन दूध के लिये किया जाता था।[१११] गायो का पालन पुण्य प्राप्ति हेतु, ब्राह्मणो का दान देने के लिये भी किया जाता था।[११२] अतिथियो को गोमास दिये जाने के सन्दर्भ प्राप्त होते है किन्तु कल्हण ने लवन्यो द्वारा म्लेच्छ राज्य मे गोमास खाने का उल्लेख किया है जो रहट खीचने तथा चक्की पीसने का कार्य करते थे।[११३] विल्सन महोदय ने लवन्य का अर्थ 'काटना' बताया है।[११४] जबकि विलियम ने इसे ऐसी जनजाति माना है जो फसल की कटाई करती थी।[११५]

भैस का दूध और सभवत: मास ऋग्वैदिक आर्यो के भोजन के महत्त्वपूर्ण अग थे।[११६] खेती के लिये बलो का अत्यधिक महत्त्व था।[११७] इसीलिये इसके मास के खाने पर प्रतिबन्ध था।[११८] युद्धो के लिये घोडा बहुत उपयोगी पशु माना जाता था—जिन्हे रथो व गाडियो मे भी जोता जाता था। जयापीड के साले जज्ज ने कश्मीर विजय के उपलक्ष मे प्रयाग मे एक लाख घोड़ो का दान दिया था। लोग व्यक्तिगत सवारी के लिए भी घोडे पालते थे। ईरान, अरब और काम्बोज के घोडे उत्तम माने जाते थे।[११९] अश्वसेना के अतिरिक्त घोड़ो को शिकार के लिए प्रयोग किया जाता था।[१२०]

हर्ष ने भीमनायक के पटहवाद्य से प्रसन्न होकर उसे एक हाथी व हथिनी दिया। हाथियो का युद्ध मे बहुत महत्त्व था। धनी लोग शिकार मे भी इनका प्रयोग करते थे।[१२१] हाथी-दॉत का व्यापार करके भारत विदेशो से काफी आय प्राप्त करता था।[१२२] मेगस्थनीज ने हाथी व घोड़ो के पालने का

१११ वदिक ऐज पृ० ३९९, ४६५
११२ प्राचीन भारत - पूर्वो० पृ० १५ राज VI ६९८-६९९ VIII ७६
११३ वदिक एज - पृ० - ५३० राज०-पूर्वो० VII-१२३२
११४ विल्सन **'ग्लोजरी ऑव जुडिसियल एण्ड रेवेन्यू टर्म्स'**, लन्दन, १८५५ पृ० ३१०
११५ विलियम **'ए सस्कृत-इगलिश डिक्शनरी'**, ऑक्सफोर्ड १९५१, पृ०-८९८
११६ ऋग्वेद-५, २९, ८, ६, १७, ११, ७, १२, ८, ८, ७७ राज०—VI ३१८-३२०, VII ७७२
११७ अमर० ८, ४४-४७
११८ अर्ली मेडिवल०-पूर्वो०-पृष्ठ २५०
११९ रघुवश—कालिदास ४, ६०-७१, राज० IV-४१५-४१७
१२० राज० १४२-१४३ (महाअश्वशाला)
१२१ ऋग्वेद ८, ३८, ८ -राज० I ३६६, VII १११६, VIII ९६
१२२ देशोपदेश पूर्वो० II ३०, बी०एस० शर्मा, पूर्वो० पृ० १४६

एकाधिकार राजा को दिया है।[१२३] ऊँटो का मालवाहक के रूप मे प्रयोग किया जाता था।[१२४] विभिन्न स्रोतो से विदित होता है कि भेड (मेष) और बकरी (चाग) को मासाहार के लिये पाला जाता था।[१२५] परन्तु इनके बाल से बने ऊनी वस्त्र बहुत गर्म होते थे, आज भी पश्मीना बकरी के बालो से निर्मित कश्मीरी शाल विशेष आकर्षक होते है। राजा हर्ष को पालतू सुअर (ग्राम्य सूकर) का मास खाने वाला बताया गया है।[१२६] यह स्पष्ट नही है कि सुअर का मास खाना सामान्य रूप से प्रचलित था अथवा केवल राजा की व्यक्तिगत रुचि थी।

मध्यकालीन विभिन्न स्रोतो से स्पष्ट होता है कि मछली कश्मीर के सभी लोगो द्वारा पसद की जाती थी। विशेष रूप से यह नदियो तथा झीलो के किनारे रहने वाले लोगो के द्वारा विशेष पसद की जाती थी।[१२७] झेलम (वितस्ता) नदी मे अपने मौसम मे विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पायी जाती थी जो कश्मीर के गरीब वर्ग के भोजन का प्रमुख हिस्सा थी।[१२८]

विल्हण[१२९] ने मृग के रोवो से बने कस्तूरी की सुगन्ध देने वाले कम्बल का उल्लेख किया है—इससे स्पष्ट होता है कि मृग को भी कश्मीर के लोग पालते थे। परन्तु एक अन्य स्थल पर सुअर, मृग, मोर, शेर व हरिण के शिकार का उल्लेख उन्होने किया है।[१३०] शिकार के समय शिकारी अपने साथ पालतू कुत्ते भी ले जाते थे।[१३१] कश्मीरवासियो द्वारा पक्षियो का मांस खाये जाने के भी साक्ष्य प्राप्त होते है।[१३२] परन्तु कृष्णा मोहन[१३३] ने एस० सी० रे[१३४] की इस बात का खण्डन किया है कि

---

१२३ स्ट्रैबो, १५,१,४१ के आगे
१२४ अमर० १०२३, पृ० २३०
१२५ समय० II-७४, नर्म०-अ I १२४, अ III ८ राज० VIII १८६६-६७
१२६ राज०-VII-११४९, १५१०,VIII १८६६-६७, २२५१
१२७ वही VII ५२२, (स्टे) भाग I, VII ५२२ समय—II २६ देशो III ३२
१२८ वैली-पूर्वो० १५७-१५८ अर्ली मेडिवल-पूर्वो० पृ० २५३ (पाद टि ५)
१२९ विक्रम०-XVIII-३१-३४
१३० वही XVI-३५-४४
१३१ वही XVI-३९,
१३२ राज० II ५०-५२, नर्म० अ I श्लोक १२४
१३३ अर्ली मेडि-पृष्ठ २५२
१३४ इडियन हिस्ट्री काग्रेस, १९४९, पृ० १३४

मध्यकालीन कश्मीर मे कश्मीरियो द्वारा पक्षियो का मास खाया जाता था। अलबेरूनी को उद्घृत करते हुए उन्होने लिखा है कि पश्चिमोत्तर भारत मे सभी प्रकार के पालतू पक्षियो तथा उनके अण्डो का खाना निषिद्ध था—विशेषरूप से रूढिवादी परिवारो मे।[१३५] महाभारत मे गाय, बकरी, भेड, घोडा, खच्चर और गधा को घरेलू पशु कहा गया है।[१३६]

उपरोक्त विवरण मे स्पष्ट होता है कि कश्मीरी समाज मे पशुपालन भी एक प्रकार की आजीविका का साधन था—जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अन्य व्यवसायो से सम्बन्धित था। घोडे व हाथी का पालन विशेष रूप से सेना के लिये किया जाता था—इसके अनेक प्रसङ्ग राजतरङ्गिणी मे प्राप्त होते है।

उद्योग

जब से मनुष्य ने आवासी जीवन प्रारम्भ किया तभी से लोगो ने विशिष्ट शिल्प का विकास किया। विवेच्यकाल मे अधिकाश स्मृतियो मे शिल्प और उद्योग को शूद्रो का व्यवसाय माना गया है। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद सामतवाद के उदय के साथ-साथ व्यापार एव वाणिज्य मे अवनति आई। किसान, कारीगर व व्यापारी अपने-अपने वासस्थानो से ही जुडे रहे इसलिए अर्थव्यवस्था अवरूद्ध हो गई और एक दृढ स्थानीयता की भावना पनपी। मध्यकाल मे कारीगरो और व्यापारियो को सैनिक और प्रशासनिक दर्जा बताने वाली सामती उपाधियाॅ प्रदान की जाती थीं—शूद्र केवल दास, कारीगर और खेतिहर मजदूर के रूप मे ही सामने नही आते बल्कि उन्होने कृषक के रूप मे वैश्यो का स्थान ले लिया था।[१३७] स्कन्दपुराण मे शूद्र को अन्नद (अन्न देने वाला) और गृहस्थ कहा गया है। इसी मे कहा गया है कि वैश्य व्यापारियों का एक वर्ग तेली और अन्न की ओसाई-फटकन (तण्डुलकारिण.) करने वाले हो जायेगे—जिसका स्पष्ट अर्थ है कि ये कार्य स्थानीय महत्त्व के थे।[१३८] अन्य स्रोतो से

---

१३५ अलबेरूनीज इण्डिया भाग II पृ० १५१ राज० III-७६ 'राक्षसों को पिशिताशन (मासाहारी) कहा गया है'
१३६ ६, ४,१३
१३७ पूर्व मध्यकालीन भारत में सामा० परिवर्तन-रामशरण शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास १९७५, दिल्ली पृ० १५
१३८ सचाऊ खण्ड II पृ० १३६

भी स्पष्ट होता है कि शूद्र नगरो या राज्यो के किनारे रहते थे—जिनकी गतिशीलता पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये थे । इन परिस्थितियो मे उत्पादन स्थानीय व क्षेत्रीय महत्त्व का होता था ।[१३९] ग्यारहवी व बारहवी शती मे पुन व्यापार एव वाणिज्य की स्थिति मे सुधार हुआ । आन्तरिक एव बाह्य व्यापार की समृद्धि के कारण नगरो की स्थिति उन्नत हुई ।

वस्त्र उद्योग

सैन्धव सभ्यता से कपडे के प्रयोग के स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होते है । ईसा पूर्व पॉचवी शताब्दी के पाणिनि ने कपास का उल्लेख किया है ।[१४०] मनु[१४१] ने लिखा है कि ब्राह्मण को यज्ञोपवीत रूई का, क्षत्रिय को क्षुमा का, वैश्य को ऊन का पहनना चाहिये । अर्थशास्त्र से भी पता चलता है कि वस्त्र उद्योग प्राचीनकाल से ही एक सुविकसित उद्योग था । यद्यपि इस कार्य मे उन्होंने अनाथ स्त्रियो को लगाने का उल्लेख किया है ।[१४२] कश्मीर के ठण्डे वातावरण के कारण ऊनी पहनावा यहॉ की आवश्यकता थी । पाटन कपड़ा बुनाई का प्रसिद्ध नगर था । बुने हुए ऊनी वस्त्र व्यापार एव व्यवसाय की प्रधान वस्तु थे ।[१४३] कम्बल (ऊनी लबादा) कश्मीर के साथ-साथ असम मे भी प्रयुक्त होता था ।[१४४] अल-इदरीसी ने लिखा है कि मुल्तान मे सूती वस्त्र बनाया जाता था, जो पूरे देश मे बेचा जाता था । अरबयात्री सुलेमान ने बगाल के बने कपडे की भूरि-भूरि प्रशसा की है । उन्होने लिखा है कि यहॉ का वना कपडा इतना मुलायम होता था कि पूरा थान छोटी मुद्रिका से निकल जाता था ।[१४५] कल्हण ने कश्मीरनरेश राजा हर्ष के दरबारियो के कीमती व रग-विरगे वस्त्रो की चर्चा की है ।[१४६] ह्वेनसांग के अनुसार मथुरा मे बढिया किस्म का धारीदार सूती वस्त्र तथा कश्मीर में सफेद लेनिन बनाई जाती थी ।[१४७] इस काल

---

१३९ सुलेमान
१४० अष्टाध्यायी-४, ३, १४१
१४१ मनु०-२, ४४,
१४२ अर्थ०-पूर्वो०—
१४३ राज०-पूर्वो०—V-१६२, VII १२२
१४४ **कलिका पुराण** अध्याय ६९, श्लोक २, राज०-पूर्वो०—VII ३९
१४५ **इलि०** एव डाउ०-पूर्वो० पृष्ठ ३६१
१४६ राज०-पूर्वो०—VII ९२५-९२७
१४७ प्राचीन भारत-पूर्वो० पृ० ९५

के साहित्य मे जुलाहे, दर्जी और रगरेज का उल्लेख है।[१४८] बी० एन० शर्मा के अनुसार पुरुष लोग धोती पहनते थे। स्त्रियो के विभिन्न प्रकार के पहनावे—(ब्लाउज) तथा पुरुषो के ऊपरी पहनावे कुशल दर्जियो के होने का प्रमाण प्रस्तुत करते है।[१४९] परिहासपुर की प्रसिद्धि-कपडे के कारखाने तथा पशुओ के क्रय-विक्रय के हाट लगने के कारण थी।[१५०]

धातु उद्योग

इस काल मे धातुओ का पूर्ण उपयोग किया जाता था। रसरत्नसमुच्चय मे लोहे के तीन प्रकार बताये गये है—मुण्ड (शुद्ध लोहा), तीक्ष्ण (स्टील) तथा कान्त।[१५१] रसार्णव[१५२] मे लोहे को बुझाये जाने की विधि बतायी गई है। तलवार, भाले, व अन्य युद्धोपकरण लोहे के बनाये जाते थे। इससे विभिन्न प्रकार की मशीने, कृषि उपकरण, वाट व माप तथा लोहारो के उपकरण बनाये जाते थे।[१५३] धार का लोहे का खम्भा जो ५० फीट से थोडा छोटा है विश्व का सबसे ऊँचा खम्भा है।[१५४] जबकि दिल्ली के समीप मेहरौली का लौह स्तम्भ शदियो से खुले आसमान के नीचे खड़े होने के बावजूद जगविहीन है—इससे इस काल की उन्नत तकनीकी का परिचय प्राप्त होता है।

कासा व ताबा नामक दो धातुओ का उल्लेख घर के वर्तन बनाने की धातु के रूप मे हुआ है।[१५५] कल्हण ने लिखा है कि जयापीड को नागराज महापद्म ने ताम्रपर्वत बताया था—उससे उसने ताबा निकलवाकर एक कम सौ करोड दीनार नामक सिक्के ढलवाये तथा शर्त लगाई कि जो राजा पूरे सौ करोड दीनार ढलवायेगा वही मुझे जीत सकेगा।[१५६] इससे सिद्ध होता है कि तांबे का प्रयोग सिक्के के रूप मे भी किया जाता था—तथा टकसाल राजा की होती थी।

---

१४८ अभिधान० २,४३३, याज्ञ०—२, २८९-९०
१४९ सोशल—बी० एन० शर्मा पृ० १३८
१५० राज०-पूर्वो० V-१६२
१५१ रसरत्नसमुच्चय—आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज V-७० पृ० ४३-४४
१५२ रसार्णव—LXXIX पृ० ५६, पा० टि० २४९
१५३ सोशल-पूर्वो०—पृ० १३९
१५४ आर्क० सर्वे० १९०२-०३ पृ० २०५-२१२
१५५ सोशल-पूर्वो० पृ० १३९
१५६ राज०-पूर्वो०—IV-६१७-६१८

सोना तथा चॉदी जैसी मूल्यवान धातुओ का उपयोग मुद्रा के लिये किया जाता था। राजा मातृगुप्त ने राज्य मे प्रचलित प्राचीन सिक्के की जगह करम्भक नामक स्वर्णमुद्रा प्रचलित करवाया।[१५७] इसके अतिरिक्त इन मूल्यवान धातुओ का उपयोग समाज के धनी वर्ग द्वारा आभूषण के रूप मे धारण किये जाने के साक्ष्य उपलब्ध है। ये आभूषण अत्यन्त व्यक्तिगत उपयोग के लिये निर्मित करवाये जाते थे—विशेष रूप से अगूठी (अङ्गुलीयक) जिसका उपयोग कोई दूसरा व्यक्ति नही कर पाता था। कल्हण ने कम से कम दो प्रसङ्ग प्रस्तुत किये है—एक धनी ने एक मकान जो समीप के कुँए के रहित बेचा गया था—कूपसहित लिखवाकर हडप लिया। इसके निर्णय के लिये राजा ने उसकी अगूठी भेजकर उसके मुनीम से बहीखाता मगवाया था।[१५८] राजा उत्कर्ष ने हर्ष की हत्या करने वाली अगूठी के बदले उसे मुक्त करने की अगूठी भेज दी जिससे सन्तरियो ने उसे मुक्त कर दिया।[१५९]

राजा हर्ष ने अपने बंधनमुक्त होने पर सूर्य भगवान की सौवर्णी (स्वर्ण की) प्रतिमा बनवाने की मनौती मानी थी—इससे स्पष्ट होता है कि स्वर्ण, ताम्र धातुओ का उपयोग देवप्रतिमाओ के निर्माण के लिये भी किया जाता था।[१६०] अगूठी तथा देवप्रतिमाओ को बनाने का कार्य व्यापक स्तर पर होता था—जिसे एक विशेष वर्ग के लोग करते थे। राजतरङ्गिणी मे स्वर्ण, रजत एवं कासे की प्रतिमा निर्मित किये जाने के उल्लेख प्राप्त होते है।[१६१] राजा कलश ने मन्दिरो के शिखर पर स्वर्णछत्र लगवाये।[१६२] तुर्की का (तुरुष्कदेशज) एक ऐसा व्यापारी उस राजा से मिला था, जिसे ताबे पर स्वर्णपत्र चढाने की विद्या आती थी।[१६३] स्वर्ण का उपयोग कपडो को सजाने के लिये बेलबूटा बनाने मे भी किया जाता था।[१६४] स्वर्ण उद्योग काफी विकसित अवस्था मे था। राजा ललितादित्य के दरबार मे भु.खार देश

---

१५७ राज० III २५६
१५८ राज०-पूर्वो० VI-२५-४१
१५९ वही VII-८००-८०३
१६० वही VII-६९६, ७१५, १०८३, १०९१
१६१ वही V- १९४, १९६-१९७, २०३, VIII-९०२
१६२ वही VII-५२५-५२७
१६३ वही VII-५२९
१६४ वही VII-१५७५, III-११८५-११८६, १६९१

का महान रसशास्त्री चंकुण रहता था, जो रासायनिक प्रयोगो के द्वारा सुवर्ण बनाना जानता था।[१६५] क्षेमेन्द्र की कृति कलाविलास का आठवॉ अध्याय स्वर्णकारो के धूर्त प्रदर्शन पर आधारित है, जिसमे उनकी ६४ कलाओं का उल्लेख किया गया है।[१६६] पीतल का कार्य करने वाले कारीगरो को पीतलहार कहा जाता था।[१६७]

चर्म-उद्योग

१२वी शदी मे गुजरात मे चर्म उद्योग के विकसित अवस्था मे होने का उल्लेख मार्कोपोलो ने किया है। उन्होने लिखा है कि इस समय बकरी, भैंस तथा जगली बैलो की खाल जूता तथा चमडे के अन्य सामान बनाने मे प्रयुक्त किये जाते थे।[१६८] दक्षिण भारतीय लेखो से भी तन्तुवायो, लोहकारो, चर्मकारो और नापितो की जानकारी होती है।[१६९] ए० पी० ओझा जी ने लिखा है कि सभवत आर्येतरो से सम्बन्धित वे जनजातियॉ जो सास्कृतिक दृष्टि से हीन थी और घृणित व्यवसायो द्वारा जीवन यापन कर रही थी, अस्पृश्य मानी जाने लगीं—वेदव्यास ने न केवल भिल्लो और शैलूषो को अन्त्यज कहा है बल्कि रजक तथा चर्मकारो की भी गणना इसी कोटि मे की है।[१७०] कल्हण ने भी लिखा है कि राजा चन्द्रापीड त्रिभुवन स्वामी के मन्दिर-निर्माण के समय मन्दिर-परिसर मे पड़ने वाले चर्मकार की झोपडी को खाली कराने के लिये उससे राजदरबार से बाहर मिला था। यहीं पर उस चर्मकार ने धर्मराज द्वारा कुत्ते का रूप धारण कर महाराज युधिष्ठिर की परीक्षा लेने का प्रसङ्ग वताते हुए स्वय को अस्पृश्य कहा है।[१७१] कल्हण ने चर्मकार के लिये पादुकार (पादूकृत) शब्द का प्रयोग किया है जो उसके व्यवसाय का परिचायक है अर्थात् चर्मकार का कार्य जूते बनाना था।[१७२] बी० एन० एस० यादव जी ने लिखा है कि लोग लाल तथा नीले चमडे से सुन्दर चटाइयॉ बनाते थे जिनका किनारा सोने तथा

---

१६५ राज०—पूर्वो० IV २४६-२४७
१६६ कला० काव्यमाला सिरीज न० I
१६७ इपी० इण्डि० IV, पृ० १५३-१७० (परमार्दि का सेमरा दानपत्र)
१६८ सर हेनरी यूले—**दि बुक ऑव सर मार्को पोलो** २ खण्ड, लन्दन १९०३, भाग दो पृ० ३८३
१६९ ए० पी० ओझा—**प्राचीन भारत में सामा०स्तरीकरण,** एक्सिलेस पब्लिशर्स, इला०—१९९२, पृ० ९०
१७० वही पृ० ७४, वेदव्यास १, १२-१३ '**रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च। कैवर्तमदेभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजा स्मृंता ॥**
१७१ राज०-पूर्वो०—IV ६१, ६२ & ७६
१७२ राज०-पूर्वो०—IV-६१-६२

चाँदी के धागों से सजाया जाता था। लोग इनका उपयोग सोने (शयन) के लिये करते थे।[१७३] चर्मकार फटे जूतों की सिलाई का भी कार्य करते थे।[१७४]

मृदभाण्ड शिल्प उद्योग

मिट्टी के बर्तन तथा मिट्टी की मूर्तियाँ प्राचीनकाल से मृदा उद्योग के प्रमुख उत्पाद थे। अहिछत्र की खुदाई से मूर्तियों के अतिरिक्त बहुत से घरेलू बर्तन प्राप्त होते हैं जो अपने सस्तेपन के कारण सामान्य जनता के बीच काफी लोकप्रिय थे।[१७५] बी० एन० शर्मा ने लिखा है कि यह उद्‌भव काल से ही स्त्रियों की कला थी। राजतरङ्गिणी में भी कुम्हार-स्त्रियों का उल्लेख हुआ है।[१७६] नैषधीयचरितम् में कुम्हार के चाक, छड़ी तथा भट्ठे में बर्तनों के पकाने की विधि का उल्लेख हुआ है।[१७७] अभिलेखों में कुम्हार को सुसंगठित श्रेणी कहा गया है—यह एक दिन से सम्बन्धित शिल्प नहीं थी—क्योंकि इसमें मिट्टी के चयन, कच्चा माल तैयार करना, चाक का प्रयोग, बर्तन बनाना, रंग तैयार करना, चित्र उकेरना, भट्ठे का प्रयोग करना—एक विशिष्टि तकनीकी के अन्तर्गत किया जाता था। बर्तनों को पकाते समय लाल किये जाने के पीछे वैज्ञानिक कारण था। भट्ठे में एक बड़ा सा छेद किया जाता था जिससे ऑक्सीजन अन्दर जाती थी—इस प्रकार ऑक्सीकरण की क्रिया के कारण बर्तन पकने के बाद लाल हो जाते थे। मृदभाण्ड शिल्प यद्यपि लोककला थी किन्तु इसमें दूरदर्शिता व सावधानी के साथ दैनिक विज्ञान का प्रयोग किया गया, जिसने गाँव की झोपड़ी से नगर के महल तक के समाज की प्रत्येक तरह की सेवा की।[१७८] कल्हण महोदय ने लिखा है कि राजा प्रवरसेन के पुत्र हिरण्य व तोरमाण, पिता के बाद शासन करने लगे। राजा तोरमाण ने प्राचीन 'बालाहत' सिक्के के स्थान पर 'दीनार' नामक सिक्का चलाया—इससे क्रुद्ध होकर उसके अग्रज हिरण्य ने उसे कारागार में डाल दिया। इसी समय तोरमाण ने अपनी गर्भिणी पत्नी को एक कुलाल के घर में जाकर प्रसव करने का आदेश दिया। उस

---

१७३ सोसाइटी पूर्वो० पृ० २६६
१७४ राज०-पूर्वो० VIII-१३७
१७५ आर० सी० मजूमदार-**हिस्ट्री ऑव बंगाल,** खण्ड I पृ० ६५६
१७६ राज०-पूर्वो० VIII-१३८, सोशल०-पूर्वो० पृ० १४१
१७७ **नैषधीयचरितम्**-श्रीहर्ष एन० एस० वी० बम्बई १९३३, VII ७५
१७८ सोशल०-बी० एन० शर्मा पृ० १४४

कुलाल पत्नी ने तारेमाण के पुत्र का नाम प्रवरसेन रखा जो खेल-खेल मे बर्तन बनाने के लिये (भाण्डादिकर्तु) जो मिट्टी तैयार की जाती थी उससे शिवलिङ्ग बना डालता था। अन्त मे वह अपनी मा के साथ तीर्थयात्रा में चला गया।[१७९] इस विवरण से यह स्पष्ट होता है कि विवेच्यकाल मे कुम्हारो की आर्थिक व सामाजिक स्थिति उन्नत थी। यदि ऐसा न होता तो राजा अपनी पत्नी को एक कुम्हार के यहाँ आश्रय लेने के लिये कभी आदिष्ट न करता। कल्हण ने एक अन्य स्थल पर लिखा है कि राजा उच्चल के समय एक कुम्हारिन (कुलाल्या) जो मिट्टी के बर्तनो का बोझा लिये जा रही थी—के सारे बर्तन एक धनी व्यक्ति की टक्कर लगने से टूट गये, उसका हर्जाना धनी व्यक्ति ने तीन सौ दीनार (शतत्रयम्) देकर चुकाया।[१८०]

प्रस्तर उद्योग

इस समय की धार्मिक इमारतो, महलो, घरो, सुन्दर मूर्तियो की निर्माण प्रवृत्ति के आधार पर प्रस्तर उद्योग के उन्नत होने का परिचय प्राप्त होता है। कश्मीर की गगनचुम्बी इमारतो और मदिरो के बारे मे अनेक प्रसङ्ग है।[१८१] **आख्यानकमणिकोष** मे पत्थरो की प्रतिमा तराशने का उल्लेख किया गया है, इस प्रकार के कारीगर को 'शिल्पी' या रूपकार कहा जाता था। शीलाश्री शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि मेधावी शिल्पकार अपनी प्रतिभा से अमूर्त प्रस्तर को मूर्त रूप प्रदान करते थे।[१८२] कश्मीर मे शिल्प कला के लिये काले पत्थर का प्रयोग किया जाता था।[१८३]

कल्हण ने चक्की पीसने का उल्लेख किया है—यह चक्की सभवत. पत्थर की ही बनी होती थी[१८४] सूत्र साहित्य से विदित होता है कि पत्थर से चक्की के पाट, खरल, मूसली, बर्तन बनाये जाते थे।[१८५]

---

१७९ राज०-पूर्वो०—III-१०२-१२३
१८० वही VIII-१३८
१८१ राज० I ८६,१०५, VI-१७२-१७३, VII-६०८,
१८२ आख्या०—७६, १७६, एपी० इण्डिका—VIII पृ० ९६ XXXI पृ० ८५
१८३ 'नेशनल म्यूजियम—६१, १६४४, ६७, १६२
१८४ राज०-पूर्वो०—VII-१२३२
१८५ **'वैदिक ऐज'** पृ० ५३

काष्ठ उद्योग

काष्ठ का उपयोग शदियो से होता रहा है। कल्हण ने कश्मीर मे काष्ठ भवनो व इमारतो को उद्धृत किया है।[१८६] सौराष्ट्र मे सोमनाथ की प्रसिद्ध इमारत सीसे से ढके हुए लकड़ी के ५६ खम्भो से बनायी गयीं थी।[१८७] लकडी को तराशकर मूर्तियॉ बनायी जाती थी। लकड़ी से व्यापक स्तर पर विभिन्न प्रकार के घरेलू उपकरण—मेज, स्टूल कुर्सी, चारपाई, तख्त, गाड़ी, खिलौने, नाव वनाये जाते थे। लकडी के व्यवसाय मे सलग्न कारीगरो को बढ़ई कहा जाता था। ग्राम्यजीवन मे इसका विशेष महत्त्व था क्योकि कृषि-कर्म के लिये आवश्यक उपकरणो का निर्माण इन्ही कारीगरो द्वारा किया जाता था। कामसूत्र[१८८] मे इसकी गणना ६४ कलाओ मे से एक कला के रूप मे की गई है। वढई महल भी बनाते थे। सरकडे और बेतो से कुर्सियॉ आदि बनाई जाती थी। लकड़ी की बनी नावो का राज्य के लिये अत्यधिक महत्त्व था इनका उपयोग व्यापार के लिये किया जाता था—जिससे प्राप्त होने वाला राजस्व राजा की आय का महत्त्वपूर्ण स्रोत था।[१८९] नावो का उपयोग राजा लोग पुल वनाने मे भी करते थे। कल्हण ने लिखा है कि सुज्जि ने अवन्तिपुर से नौकाए (तरणी) मंगवाकर गम्भीरा नदी मे उनसे पुल बनवाकर नदी पार करके शत्रुसेना को परास्त किया था।[१९०] इसी प्रकार राजा हर्ष ने वितस्ता नदी पार करने के लिए नाविको (नाविकान) की मदद लिया था।[१९१] जयापीड का दूत जलपोत से लका गया था।[१९२] इससे स्पष्ट होता है कि लकडी राज्य के लिये बहुत ही उपयोगी होती थी।

लघु उद्योग एवं शिल्प

हाथी दाँत-उद्योग समान रूप से महत्त्वपूर्ण था। इससे अनेक वस्तुएं खूँटी[१९३] पीढे[१९४] मुहरें[१९५] बनाई जाती थी। हर्षचरित मे हाथी दांत से निर्मित शालभंजिकाओ का उल्लेख हुआ है।

---

१८६ राज०-पूर्वो० VIII-२३९०
१८७ इलि० एण्ड डाउ०—I ९८
१८८ **कामसूत्र**-वात्स्यायन अनु० जी० डी० शास्त्री अध्याय ३ पृष्ठ २३
१८९ सोशल-पूर्वो० पृ० १४५ राज०—VIII-२३९०
१९० राज० पूर्वो० VIII – १५०२
१९१ वही VII – १६२५
१९२ वही IV-५०४
१९३ **कामसूत्र**-वात्स्यायन अनु० जी० डी० शास्त्री बनारस १९२९, १, ४-१५, पृ० २८
१९४ **रघुवश**-कालिदास १७, २१

क्षेमेन्द्र[१९६] ने गदे हाथी दॉत (दंतेषुमलपूर्णेषु) से निर्मित चित्रो का उल्लेख किया है। हाथी दात व्यापार की एक महत्त्वपूर्ण वस्तु थी-जिसका प्रमुख केन्द्र उडीसा था, जहॉ से अरव देशो को प्रचुर मात्रा मे हस्तिदत निर्यात किया जाता था।

नमक के व्यापार का उल्लेख करते हुए क्षेमेन्द्र ने इमका प्रमुख क्षेत्र समयामातृका मे उत्तरी पर्वतश्रृखला (रेज) वताया है। जबकि दशरथ शर्मा[१९७] ने राजस्थान की साभर झील को इसका प्रमुख स्रोत माना है। यद्यपि अमरकोश[१९८] मे नमक समुद्र के तथा चट्टान के रूप मे प्राप्त होने का स्पष्ट सकेत मिलता है।

कॉच उद्योग के बारे मे कल्हण ने स्पष्ट लिखा है कि पद्मराज नामक व्यापारी मालवानरेश भोज को प्रतिदिन पापसूदन तीर्थ का जल कॉच के बर्तनो मे भेजता था।[१९९] युक्तिकल्पतरू[२००] मे स्वर्ण, रजत, लेड, लौहे के दर्पणो का उल्लेख किया गया है किन्तु अष्टधातु का दर्पण सर्वोत्तम माना जाता था।

छत्र उद्योग की गणना लघु उद्योग के अन्तर्गत इसलिये की जाती है क्योकि रग-बिरगे छत्रो का प्रयोग न केवल राजे, राजकुमार व अन्य राजसी लोग करते थे बल्कि राजा द्वारा विशेषाधिकार प्राप्त सामान्य जन भी इसका उपयोग करते थे। विल्हण ने लिखा है कि राजा विक्रमादित्य नीले छत्र का प्रयोग करते थे जबकि अपने प्रधानपण्डित विल्हण को उन्होने काले छत्र के उपयोग का विशेषाधिकार दे रखा था।[२०१]

सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में अगराग, इत्र व उबटन के प्रयोग के उल्लेख प्राप्त होते है। कश्मीर प्राचीनकाल से ही काश्मीर (केसर) तथा अंगूर के लिये प्रसिद्ध रहा है।[२०२] इनका उपयोग

---

१९६ देशो०-पूर्वो०—II-३०
१९७ **'राजस्थान थ्रू द एजेज'**—I बीकानेर १९६६, पृष्ठ ४९०
१९८ अमर० ९,४१,४२, पृ० २०८-२०९
१९९ राज० पूर्वो०-VII-१९०-१९३
२०० **युक्तिकल्पतरू**—भोज अनु० आई० सी० शास्त्री कलकत्ता १९१७ पृ० ८०
२०१ विक्रम०-पूर्वो० XVI-२२, XVIII-१०
२०२ वही XVIII-७२, समय-पूर्वो० I ६, १३, १४, VII १० नीलमत-पूर्वो० श्लोक ४१७, ४२३, ७८७ राज-पूर्वो० VII ९२९, VIII १११९, १८९७, ३१६६

दोनो-स्त्री व पुरुष करते थे। इनके अतिरिक्त अन्य लघु उद्योगो मे पान उद्योग[२०३] माली, तेली, कसाई, धोबी, नाई, पेन्टर, मछुवारे, चीनी उद्योग, बास की टोकरी बनाने वालो का उल्लेख किया जा सकता है। मैक्स वेबर[२०४] ने भारतीय अर्थव्यवस्था मे प्राचीनकाल से चार प्रकार के शिल्पकारो के उपलब्ध होने का उल्लेख किया गया है—

(१) एक गॉव मे रहने वाले जो श्रम के बदले सामान पाते थे।

(२) राजा, प्रमुख व धार्मिक सगठनो द्वारा अपने स्थान पर बसाये गये।

(३) जो अपना पृथक गॉव बना लेते थे।

(४) नगर के निश्चित क्षेत्रो मे रहने वाले स्वतत्र कलाकार।

लेखपद्धति[२०५] मे भी वर्णित है कि एक छोटे से गॉव मे भी पॉच शिल्पकार या कलाकार—लोहार, कुम्भकार, नाई, धोबी, बढई रहते थे जो किसानो से सेवा के बदले सामान (वाचकानि) प्राप्त करते थे। अलबेरूनी ने व्यवसाय पर आधारित आठ श्रेणियो का उल्लेख किया है।[२०६] यद्यपि व्यवसाय वशानुगत होते थे किन्तु कभी-कभी अच्छी स्थिति हेतु लोग अपना व्यवसाय परिवर्तित कर लेते थे यथा ग्वालियर क्षेत्र मे ब्राह्मणो द्वारा कृषि कार्य करने तथा कश्मीर भूमि मे ब्राह्मणो द्वारा सैनिकवृत्ति अपनाने का उल्लेख मिलता है।[२०७]

श्रेणी

लौकिक सामाजिक स्तरीकरण के सर्वोच्च स्तर पर विद्यमान शासक समुदाय के बाद दूसरा स्तर श्रेष्ठियो, सार्थवाहो एवं व्यापारियो का था। यहॉ यह प्रश्न विचारणीय है कि सामान्य राज्यकर्मचारियो की अपेक्षा श्रेष्ठियो, सार्थवाहो एव व्यापारियो का स्थान ऊँचा रहा होगा परन्तु साहित्यिक एव आभिलेखिक साक्ष्यों की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यापारियों के लिये प्रयुक्त अभिधाऐं—

---

२०३ राज०-पूर्वो० VII १९३, ३८०
२०४ **'दि रेलिजन ऑव इण्डिया'**—मैक्स वेवर पृ० ९५
२०५ लेखपद्धति पृ० १९
२०६ सचाऊ-पूर्वो० I पृ० १०१
२०७ राज०-पूर्वो० VI-९

वर्णक्, वणिज्, अर्थपति, पण्याश्रिन् उनकी आर्थिक सम्पन्नता की परिचायक है, जिसका प्रभाव उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा पर भी पड़ा तथा लौकिक सामाजिक स्तरीकरण मे वे अपेक्षाकृत उच्च स्तर प्राप्त कर सके।[२०८] कल्हण ने लिखा है कि कश्मीरनरेश प्रतापादित्य ने रोहितदेशनिवासी नोण वणिक् को अपने भवन मे बुलवाकर राजोचित आतिथ्य प्रदान कर उसे अपने यहा एक दिन के लिये रोक लिया। प्रातःकाल राजा द्वारा सेठ से कुशलक्षेम पूछने पर उसने कहा "दीपको के काजल से रातभर मेरा सिर दुखता रहा।" कुछ समय पश्चात् उस वैश्य ने राजा को अपने घर आमन्त्रित किया—वहाँ वैश्य की विलासिता, अपार वैभव तथा रात्रि के समय जलते हुये रत्नमय दीपको से सत्कृत होता हुआ राजा वहाँ दो-तीन दिन रुक गया।[२०९] इसी तरह राजा अनन्तदेव ने पद्मराज नामक विदेशी तमोली (पान वाले) से बहुत अधिक ऋण ले रखा था। उसके बदले उसने राजा के पचचन्द्रकयुक्त राजमुकुट और राज-सिहासन अपने पास गिरवी रखे थे। वह राजसिहासन व राजमुकुट हर आधे-आधे महीने पर दरवार लगने के समय उसके यहाँ से राजभवन लाये जाते थे।[२१०] इन दोनो प्रसङ्गो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वणिक् इतने सम्पन्न थे कि इसी के कारण उनका राजा के यहाँ से आना जाना सामान्यरूप से होता था और वे राजा को ऋण तक देने की स्थिति मे होते थे। मनु का अनुसरण करते हुए मनुस्मृति के टीकाकार भारुचि (५००-६५० ई०) द्वारा शिल्पियो को धन सग्रह न करने का जो विधान प्रस्तुत किया गया है, वह न केवल इस समुदाय की आर्थिक समृद्धि अपितु लौकिक दृष्टिकोण से शिल्पियो के बढते हुए सामाजिक महत्त्व का भी द्योतक है।[२११]

जब उद्योगो और व्यापार मे लगे व्यक्ति सगठित होकर अपने हितो की रक्षा के लिये एक संस्था बनाते है तो वही श्रेणी या निगम होती है। श्रेणियो का प्रादुर्भाव नगरीकरण की प्रक्रिया से जुडा है। सिन्धु सभ्यता से प्राप्त होने वाले विभिन्न प्रकार के अवशेषो से हमे श्रेणियों के पूर्ण स्वरूप की झलक मिलती है।[२१२] उत्तरवैदिक काल के साहित्य में 'श्रेष्ठिन्' व श्रेष्ठिय शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो उद्योगो या व्यापारियो के संघों, श्रेणियों या निगमो के अध्यक्ष के लिये प्रयुक्त हुए है।[२१३] इस

२०८ ए० पी० ओझा-पूर्वो० पृ० ११२
२०९ राज० पूर्वो० IV १३-१६
२१० वही VII १९५-१९६
२११ अर्थशास्त्र-शामशास्त्री-पूर्वो० पृ० ३०५, राज०-पूर्वो०—VII-४९५ मनु०-१०,१२९

प्रकार के सगठनो के लिये श्रेणी, पूग, गण, सघ, सार्थवाह सदृश शब्दो का प्रयोग किया गया है। धर्मशास्त्रो मे श्रेणी व पूग का अन्तर स्पष्ट किया गया है—श्रेणी के सभी सदस्य एक ही व्यवसाय या शिल्प करने वाले होते थे, भले ही उनकी जातियॉ अलग-अलग क्यो न हो जबकि पूग के मदस्य एक स्थान पर रहने वाले होते थे, भले ही उनकी जातियॉ व व्यवसाय अलग-अलग ही हो।[२१४] जातको के अध्ययन से ज्ञात होता है कि शिल्पियो मे पैतृक व्यवसायो की परम्परा के कारण उनका सगठन अधिक विकसित था एवं व्यापारी परम्परागत परिवार के जेट्ठक के नेतृत्त्व मे 'निगम' का सगठन करते थे।[२१५] निगम का प्रधान **श्रेष्ठि,** श्रेणी का प्रधान **प्रमुख** तथा पूग का प्रधान **जेट्ठक** कहा जाता था।[२१५अ]

विभिन्न प्रकार की औद्योगिक श्रेणियॉ जो व्यावसायिक जातियो का रूप धारण करने लगी थी। इस प्रकार की जातीय श्रेणियो का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिसमे एक जाति अथवा विभिन्न जातियो के लोग सम्मिलित होते थे। कारीगरो तथा शिल्पकारो की निम्न जातियो को भी 'श्रेणी' शब्द से अभिहित किया गया है।[२१६] काशिका को उद्धृत करते हुए ए० पी० ओझा जी ने लिखा है कि शिल्पी दो प्रकार के होते थे। **प्रथम**—स्वतत्र शिल्पी जो अधिकाशत. नगरो मे निवास करते थे तथा जिनके प्रधान को प्रथम कुलिक के रूप मे प्रशासनिक समिति का सदस्य होने का गौरव प्राप्त होता रहा होगा। **द्वितीय**—प्रतिबद्ध शिल्पी अधिकाशत. गॉवो मे रहता था—इसीलिये इसे ग्रामशिल्पिन् की सज्ञा दी जा सकती है। ग्रामशिल्पिन् की अपेक्षा राजशिल्पिन् लौकिक दृष्टिकोण से अधिक प्रतिष्ठित रहे होगे।[२१७] प्राचीन बौद्ध साहित्य मे १८ श्रेणियो का उल्लेख है। इससे स्पष्ट होता है कि श्रेणियो की गणना अब नीच जातियो में की जाती थी। अठारह श्रेणियो को दो वर्गो मे बॉटा गया है—**एक**

२१४ गौतम० १५,१६,१८— **'एकेन शिल्पेन पण्येन वा ये जीवन्ति तेषा समूह. श्रेणी'**—आपस्तम्ब० १,१८,१६-१७ विज्ञानेश्वर टीका याज्ञ० २, ३० **'पूगा समूहा भिन्नजातीना भिन्नवृत्तिनामेकस्थान निवासिना यथा ग्रामनगरादय'**—मिताक्षरा २, ३१

२१५ जातक **१**, ३२०, **२**, १८, **३**, २८१, **४**, ८१, १५९, २०७

२१५अ के० सी० श्रीवास्तव—**'भारत की सस्कृति तथा कला'**—इलाहाबाद १९८८—पृ० १४७

२१६ लल्लन जी गोपाल—**'दि इकनॉमिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया'**—वाराणसी-१९६५, पृष्ठ ८३ **'श्रेष्ठिनोऽष्टादशाश्रेणिप्रश्रेणिर्दुर्गपालकान्'** त्रिशिष्टि०

२१७ ए० पी० ओझा—पूर्वो० पृ० २१५, २१९

स्पृश्य वर्ग और **दूसरा अस्पृश्य**। इसका अर्थ है कि इस काल मे श्रेणियो की समाज मे प्रतिष्ठा बहुत कम रह गई थी और सभवत उनकी आर्थिक स्थिति भी खराब हो गई थी।[२१८] कल्हण ने राजा जयसिह के राज्य की सीमा मे रहने वाले चौसठ वर्णो (वर्णाश्चतु षष्टि) द्वारा भव्य भोगो का उपभोग करने का उल्लेख किया है।[२१९] कौटिल्य ने क्षत्रियो की कुछ ऐसी श्रेणियो का उल्लेख किया है जो व्यापार तथा युद्ध करके आजीविका प्राप्त करती थी।[२२०] श्रेणियो के स्पृश्य एव अस्पृश्य वर्गो मे विभाजित होने का स्पष्ट उल्लेख ए० पी० ओझा जी ने किया है। उन्होने लिखा है कि पालिग्रथो के रचनाकाल तक 'निम्न जाति' और 'निम्न शिल्प' मे भेद किया जाता था, इसी कारण ल्यूडर सूची मे तन्तुवायो (सौतिक) की गणना निर्जातीय व्यवसाय (Castless Professions) के अन्तर्गत की गई है।[२२१] परन्तु कालान्तर मे निम्न शिल्प को भी निम्न जाति माना जाने लगा। नासिक गुहालेख (१२० ई०) मे तन्तुवाय को उत्तम व्यवसाय की श्रेणी माना गया है किन्तु ११वी शताब्दी के अरब यात्री अल्बरूनी ने इनकी गणना अन्त्यजो मे की है जिसके अनेक कारण माने जाते है—

(१)पूर्वमध्यकाल मे वस्त्र व्यापार बाधिक होने से तन्तुओ की आर्थिक स्थिति मे गिरावट आयी।

(२) कुछ निम्न व्यवसाय के लोगो ने उच्च व्यवसाय अपना लिया।

(३) पूर्वमध्यकाल मे इस्लाम धर्म के प्रचलन के कारण-विभिन्न आर्थिक सगठन जिन्हे हिन्दू वर्ण-व्यवस्था मे अपेक्षित स्थान नही मिला था ने इस्लाम धर्म को अपना लिया फलस्वरूप वे तत्कालीन समाज द्वारा अन्त्यज घोषित किये गये।[२२२]

(४) अन्त्यज लोग नगर के बाहर रहते थे—कुछ श्रेणियो ने अपनी व्यावसायिक सुविधा हेतु नगर के बाहर रहना शुरू कर दिया था। यथा तन्तुवाय श्रेणी के लोग-सूत कातने व ढरकी चलाने के लिये खुले मैदान की आवश्यकता के कारण नगर के बाहर रहने लगे—इसलिये भी उन्हें अन्त्यज की

---

२१८ ओमप्रकाश-पूर्वो० पृ० १४१-१४२

२१९ राज०-पूर्वो० VIII-२४०७

२२० शामशास्त्री-पूर्वो० पृ० ३७६ **'कांबोज सुराष्ट्र क्षत्रिय श्रेण्यादयों वार्ता शस्त्रोपजीविन·'**

२२१ ल्यूडर सूची स० ३३१, **ए० पी० ओझा-प्राचीन एव पूर्वमध्यकालीन भारत में तन्तुवायों की सामाजिक स्थिति-एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण** पृ० २०६

२२२ बी० एन० एस० यादव-पूर्वो० पृ० २७० एव ओझा पृ० २११

श्रेणी मे रखा जाने लगा।[२२३] रामशरण शर्मा ने लिखा है कि भूमिदान और सामतोपसामन्तीकरण की प्रक्रिया के कारण बड़े पैमाने पर भूमि और शक्ति का असमान वितरण हुआ और नये मामाजिक वर्ग और श्रेणियॉ बनी जिनका विद्यमान चतुर्वर्ण-व्यवस्था के साथ अधिक मेल नही बैठता था।[२२४]

श्रेणियॉ धार्मिक उद्देश्यो के लिये अपने **सदस्यों पर कर** लगाती थी—इसके अतिरिक्त इन्हे कुछ कार्यकारी तथा न्यायिक शक्तियॉ भी प्राप्त थी। विधि ग्रथो मे इसे **श्रेणी धर्म** कहा गया है।[२२५] आर्थिक सकट के समय राजा इन श्रेणियो से सम्पत्ति उधार ले सकता था।[२२६] धनी व्यापारी तथा औद्योगिक श्रेणियो के पास अपनी सेना होती थी—जिसे **श्रेणी बल** कहा जाता था। कभी-कभी सम्राट इस श्रेणीबल की मदद युद्ध के समय लेता था, परन्तु छोटे दस्तकारो के पास अपनी सेना इस समय या पूर्वकाल मे थी या नही यह स्पष्ट नही होता।[२२७] इस श्रेणीबल की मदद से इसके सदस्य निर्विघ्न रूप से व्यापार करते थे।

श्रेणियॉ **बैकों के रूप में कार्य करती** थी तथा सदस्यो को ब्याज सहित धन वापस करती थी। यही कार्य कालान्तर मे व्यापारियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से किये जाने लगे थे। कल्हण ने लिखा है कि राजा उच्चल के समय एक धनिक ने एक व्यापारी के पास एक लाख दीनार धरोहर (न्यास) के रूप मे रखे थे। व्यापारी ने उस धन का उपयोग व्यापार मे किया और धनिक द्वारा समय-समय पर लिये गये धन के आधार पर उसका हिसाब कर दिया, किन्तु राजा उच्चल ने धनिक द्वारा लिये गये धन को ब्याज के समान मानते हुये वणिक को मूल धन वापस करने का आदेश देकर न्याय किया।[२२८]

श्रेणियो द्वारा **धार्मिक तथा लोककल्याण सम्बन्धी कार्य** भी समय-समय पर सम्पन्न किये जाते थे। मठो, मन्दिरो, मूर्तियो, अग्रहार, नगर विहार, तालाब, नहर, पुल का निर्माण तथा धार्मिक कार्यो के निमित्त दान देना इनमें प्रमुख है।

---

२२३ ओझा० पृ० २१२
२२४ रामशरण शर्मा०—पूर्व मध्यकाल—पृ० १०
२२५ मनु० ८, ४१, विष्णु V-१६८, महाभारत, शान्ति० ३६, १९, अर्थशास्त्र VII अ० VII पृ० २३४
२२६ अर्थशास्त्र० पूर्वो० पृ० ३०५
२२७ आर० सी० मजूमदार **'कारपोरेट लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया'**—कलकत्ता १९२२, पृ० ३०-३१
२२८ राज०-पूर्वो० VIII १२४-१४९

इस प्रकार प्राचीनकाल मे श्रेणी सगठन अत्यन्त सुदृढ, समृद्ध, सगठित एवम् शक्तिशाली थे किन्तु पूर्वमध्यकाल मे राजपूतो के उत्थान व सामतवाद के विकास के कारण उत्तरी भारत मे इनका ह्रास हुआ जबकि दक्षिण भारत मे १५वी शती तक ये महत्त्वपूर्ण मानी जाती रही। इसीलिये के० सी० श्रीवास्तव ने इनकी तुलना 'इण्डियन चैम्बर ऑव कामर्स' से की है।[२२९]

पुरातात्त्विक उत्खननो से बडी सख्या मे प्राप्त गुप्तकालीन मुहरे श्रेणियो के अस्तित्त्व की सूचना देती है। राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त मुहर पर 'नेगम' अथवा जनपद लेख उत्कीर्ण है।[२३०] इसी प्रकार बसाढ (वैशाली) से प्राप्त मुहरो पर 'श्रेष्ठि-कुलिक-निगम', 'श्रेष्ठि-सार्थवाह-कुलिक-निगम', श्रेष्ठि-सार्थ-वाह-प्रथम कुलिक निगम' मुद्रालेख अकित है।[२३१] इन मुद्रालेखो से स्पष्ट होता है कि 'निगम' समृ-द्धिशाली व्यापारियो और व्यावसायिको का सम्मिलित सगठन था, क्योकि 'कुलिक' व्यापारी न होकर व्यवसायी (शिल्पी) था[२३२] जिसकी राज्य की अर्थव्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। आलोच्यकाल के अन्त तक आते-आते अर्थव्यवस्था के ह्रास के कुछ चिह्न भी दिखाई पडने लगते है। उनका स्पष्ट स्वरूप—व्यापार एव वाणिज्य मे ह्रास,[२३३] व्यापारिक एव व्यावसायिक श्रेणियो का अपेक्षाकृत ह्रास और उनका लोप,[२३४] मौद्रिक अर्थव्यवस्था का सकुचित होना,[२३५] नगरो का अपकर्ष,[२३६] अवरुद्ध ग्रामीण अर्थव्यवस्था[२३७] और कृषक वर्ग की गतिहीनता एव दमन[२३८] आदि पूर्वमध्यकाल मे ही देखने को मिलता है। व्यापारिक ह्रास की इस प्रक्रिया के प्रारम्भ का सकेत प्रथित शिल्पवाली पट्टवाय श्रेणी[२३९] का गुजरात क्षेत्र के लाट विषय से हटकर पश्चिमी मालवा के दशपुर (मन्दसोर) मे जाकर बसने से ही मिल जाता है।[२४०] इसके अतिरिक्त पट्टवाय श्रेणी के सदस्यो को अपना व्यवसाय छोडकर

२२९ श्रीवास्तव-पूर्वो०—पृ० १५२, ओमप्रकाश-पूर्वो० पृ० १४४-१४५
२३० मोतीचन्द्र **'काशी का इतिहास'** पृ० ९१-९३
२३१ ओझा ए० पी०, पूर्वो पृ० ४८ पाद टि० २४८
२३२ वही
२३३ लल्लनजी गोपाल-पूर्वो० अध्याय ५, ६, ७, सोसाइटी-पूर्वो०—पृ० २७०
२३४ वही अध्याय ४, वही पृ० २७५
२३५ सोसाइटी पृ० २७५
२३६ ठाकुर विजय कुमार **'अरबनाइजेशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया'**—नई दिल्ली १९८१ अध्याय-७
२३७ आर० एस० शर्मा—**सामाजिक परिवर्तन**—पृ० ४
२३८ यादव बी० एन० एस० **इम्मोबिलिटी ऐण्ड सब्जेक्शन ऑव इण्डियन पीजेन्ट्री इन अर्ली मेडिकल काम्प्लेक्स** इ० हि० रि०, १,१ पृ० १८-२७
२३९ मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख, का० इ० इ०, ३, १८, ७९, से० इ० पृ० २९९

धनुर्वेत्ता, कथाविद् और ज्योतिर्विद् होना पड़ा[२४१] इस प्रकार का ह्रास कश्मीरी समाज मे भी निश्चित रूप से देखा जा सकता है।

वाणिज्य एवं व्यापार

कृषि और उद्योग की भाँति व्यापार भी गुप्तकाल से पहले काफी उन्नत स्थिति में था। श्रेष्ठि नगर व ग्राम की आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे जबकि सार्थवाह देश-विदेश का माल एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँचाया करते थे। इस प्रकार श्रेष्ठियो को देशी थोक विक्रेता तथा सार्थवाहों को विदेश से माल लाने वाले थोक विक्रेता कहा जा सकता है, जो विदेश गमन द्वारा अपनी पूँजी बढ़ाते थे[२४२] किन्तु उत्तर गुप्त काल मे बैजेन्टाइन साम्राज्य के साथ रेशम के व्यापार के समाप्त हो जाने— जिसमे उत्तर भारत की विशिष्ट भूमिका थी,[२४३] अरबों की विस्तारवादी नीति एवं पश्चिम की अव्य-वस्थित दशा, समुद्री यात्राओ के बढते खतरे[२४४], राजनैतिक अन्तर्विरोधों एवं गुप्तकाल के पूर्णत: पतन[२४४अ] तथा नागरिक जीवन के ह्रास[२४५] ने भारत के आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार को अवनति की ओर अग्रसर किया। तत्कालीन साहित्य से भी यह स्पष्ट होता है कि इन कारणों से भारतीय व्यापारी समुद्री व्यापार में भाग लेने तथा पश्चिमोत्तर क्षेत्र के व्यापार में भाग लेने से डरने लगे। क्षेमेन्द्र ने बोधिसत्त्वावदानकल्पलता में लिखा है कि नाग नामक समुद्री डाकुओ के कारण बहुत से व्यापारियो ने अपने व्यवसाय का परित्याग कर अन्य व्यवसाय अपना लिया था। यद्यपि भारतीय समुद्र में अरबों का बढ़ता प्रभाव भी इसका एक कारण था।[२४६] स्थल राजमार्गो पर व्यापारियों को डाकुओं के अतिरिक्त छोटे सामंत भी लूट लिया करते थे।[२४७] भारतीय नरेश अपने लाभ अथवा अपने सीमित संसाधनो के कारण व्यापारियो के हितों की रक्षा करने में असमर्थ थे, अस्तु भारतीय व्यापार का पतन

---

२४१ का० इ० इ० ३, १८, ८२ से० इ० पृ० ३०२-३०३
२४२ ओझा० पूर्वो० पृ० ९१ अजय मित्र शास्त्री **'इण्डिया ऐज सीन'** दिल्ली १९६९ पृ० ३१५
२४३ शर्मा—'इण्डि० फ्यू०' पृ० ६६
२४४ जी० एफ० होउरानी **'अरब सीफरिंग'** पृ० ७०
२४४अ लल्लल जी गोपाल—पूर्वो० पृ० १०४
२४५ जी० सी० पाण्डे **'पोपुलेशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया'** द जर्नल ऑव द बिहार रिसर्च सोसाइटी, ४५, १-४, ३८८
२४६ बी० एन० एस० यादव—सोसाइटी-पूर्वो० पृ० २७१
२४७ ओम प्रकाश-पूर्वो० पृ० १२२

हुआ। कथासरित्सागर मे एक कहानी मे उल्लिखित है कि एक व्यापारी अपने माता-पिता की सलाह के विरुद्ध सुवर्णद्वीप की यात्रा पर जाता है जहाँ उसका जहाज क्षतिग्रस्त हो जाता है।[२४८] इस प्रकार ग्रथ मे अन्य स्थलो पर भी खतरनाक समुद्री यात्राओ का उल्लेख हुआ है। कथासरित्सागर मे ही एक अन्य कहानी से पता चलता है कि एक वैश्य जो उज्जयिनी से पुष्कलावती जा रहा था—को तीन यात्रियो ने बदी बनाकर एक तात्रिक के हाथो बेच दिया। पूर्वमध्यकाल (८००-१२०० ई०) मे व्यापार के लाभप्रद न रह जाने तथा भूमि पर आधारित अभिजात्य वर्ग के बढ़ते महत्त्व, सामतवाद के उदय ने स्थानीय व्यापारियों का ध्यान आकर्षित किया।[२४९] राजतरङ्गिणी मे उल्लिखित है कि बिहार मे गया के समीप एक प्रमुख डाकू जो अपने दल-बल के साथ यात्रियो के लिये विपत्ति बन गया था को कश्मीर के एक सामत ने समाप्त करके यात्रियो के लिये पूर्वी क्षेत्र को भयमुक्त कर दिया।[२५०]

पूर्वमध्यकाल मे राज्यो तथा सामतो की सख्या मे बढोत्तरी हुई। इस प्रकार के राजा, राजकुमार व सामत अपने क्षेत्र से होने वाले व्यापार पर अधिक कर लगाते थे। इसके कारण व्यापार मे अवनति आयी। कथासरित्सागर मे पता चलता है कि व्यापारी अत्यधिक शुल्क देने के भय से स्वाभाविक रास्तो की अपेक्षा जगली रास्तो से व्यापारिक यात्राये किया करते थे।[२५१]

धर्मशास्त्रो ने इस काल मे समुद्रयात्रा न करने पर बल दिया है। बृहन्नारदीयपुराण मे लम्बी यात्राये (महा-प्रस्थानगमनम्) तथा लम्बी समुद्री यात्राये (समुद्रीयात्रास्वीकार) इस समय धर्म-विरुद्ध घोषित की गई थी।[२५२] इसके कारण स्थानीयता की भावना का अभ्युदय हुआ किन्तु वाणिज्यिक एव सामाजिक तथा सास्कृतिक सहभागिता को काफी नुकसान पहुँचा। इसके अतिरिक्त ओमप्रकाश जी ने लिखा है कि भारतीय जहाज चीन के जहाजो से छोटे थे एव चाल मे भी धीमे थे, इसके कारण भी व्यापारिक गतिविधियों मे कमी आयी।[२५३]

---

२४८ कथा० IX ६
२४९ बी० पी० मजूमदार, **"लैण्ड सिस्टम ऐण्ड फ्यूडलिज्म इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया"** पृ० ६२
२५० राज०-अनु० स्टेइन VII-१००९
२५१ कथा०-पूर्वो० VI ३-१०५
२५२ बृहन्नारदीय पुराण-२२,१३
२५३ प्राचीन भारत-पूर्वो० पृ० १२४

इसके अतिरिक्त पूर्व मध्यकाल मे लगातार होने वाले विदेशी आक्रमणो, युद्धो, सामतो द्वारा केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध किये गये विद्रोहो तथा टूटी-फूटी सड़को ने तत्कालीन व्यापारिक गतिविधियो को अत्यधिक प्रभावित किया।[२५४] सडको की बाधाये, असुरक्षा के भय, वित्तीय दबाव व अन्य समस्याओ के बावजूद व्यापारियो के कारवॉ सशस्त्र सुरक्षाबलो के साथ अपनी सम्पत्ति तथा जान जोखिम मे डालकर यात्राए किया करते थे। बनिया, महाजन, श्रेणियॉ एव उनकी दुकानो के सन्दर्भ प्राप्त होते है।[२५५] महाजन लोग कस्वो की महत्त्वपूर्ण दुकानो (बाजारो) को नियत्रित किया करते थे।[२५६] व्यापारियो की दुकानो को वणिक हट्ट कहा जाता था—जिनके माध्यम से गॉवो का व्यापार चलाया जाता था।[२५७] यद्यपि सप्ताह के निश्चित दिनो मे तथा त्योहार, उत्सव आदि के समय अस्थायी बाजारे लगती थी—जिसमे पडोसी गॉवो के व्यापारी अपनी वस्तुओ को बेचने के लिये लाते थे तथा राज्य को चुगी, उत्पादन कर, सडक कर, जल (नौका) कर तथा बिक्री कर अदा करत थे[२५८] बड़े शहरो व राजधानियो मे बहुत सी बाजारे होती थी, जिनमे से प्रत्येक मे विशिष्ट वस्तुए बेची जाती थी।[२५९] कल्हण ने लिखा है कि परिहासपुर कपड़ा बुनने के कारखाने तथा पशुओ की हाट (पट्वान) के लिये प्रसिद्ध था—राजा शकरवर्मा ने ये दोनो व्यवसाय अपने द्वारा बसाये नगर शंकरपुर मे स्थानान्तरित कर दिया था।[२६०] एक अन्य स्थल पर उन्होने लिखा है कि सेल्यपुरवासी नयन पुत्र जय्यक दूर-दूर के प्रदेशो मे अन्न और अन्यान्य पण्य वस्तुए बेचकर कुबेर से स्पर्धा करने वाली विपुल सम्पत्ति एकत्र कर ली थी।[२६१] टक्कदेश निवासी बुल्लिय नामक व्यापारी ने तुर्की के व्यापारियो से विभिन्न देशो से लाई हुई बहुतेरी सुन्दरी बालिकाओ को खरीदकर राजा कलश को उपहार मे दिया था।[२६२] अरब इतिहासकारो ने भारत के स्थल मार्गो का पूरा विवरण दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि मुसलिम

२५४ बी० एन० एस० यादव—सोसाइटी पृ० २७२
२५५ इपि० इण्डिका—XI पृ० ३५, ४४
२५६ वही I १६२
२५७ वही IX २७७, XIX ६९, XXII १५०
२५८ बी० एन० शर्मा० सोशल०-पृ० १४९
२५९ इपि० इण्डिका०—XIX. पृ० ५२
२६० राज० V-१६२
२६१ वही VII-४९३-९४
२६२ राज०-पूर्वो० VII ५२०

व्यापारी इन प्रदेशो मे अपना माल बेचने आते थे। यद्यपि इस व्यापार मे भारतीय व्यापारियो को आर्थिक हानि होती रही होगी इसी कारण गाहडवालो ने मुसलिम व्यापारियो से तुरुष्क दण्ड नामक कर वसूल किया था।[२६३] मध्यकालीन यूरोप मे हमे तत्कालीन सरकारो द्वारा स्थानीय व्यापार की सुरक्षा हेतु आयात पर सरक्षी कर (**Protective Tariffe**) लगाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[२६४]

सास्कृतिक आदान-प्रदान का दूसरा रूप हमे व्यापारियो के अतिरिक्त विद्वान-ब्राह्मणो के भ्रमण, धर्म शिक्षको के आवागमन, कवियो, विद्वानो, छात्रो तथा बेरोजगारो द्वारा सरक्षण प्राप्ति हेतु की जाने वाली यात्राओं के माध्यम से प्राप्त होते है। क्षेमेन्द्र तथा कल्हण ने गौड छात्रो द्वारा विद्याध्ययन हेतु कश्मीर की यात्राओ का उल्लेख किया है।[२६५] इसी तरह राजा हर्ष ने अपने दक्षिण भारत अभियान के बाद कश्मीर मे दक्षिणी पहनावे तथा सिक्को को प्रोत्साहन दिया।[२६६] १२वी शती के प्रसिद्ध कश्मीरी कवि विल्हण ने चालुक्यनरेश विक्रमादित्य का सरक्षण प्राप्त किया था[२६७] इसी समय दक्षिण मे याज्ञवल्क्य पर लिखी गई अपरार्क की टीका दो वर्ष बाद ही कश्मीर मे प्रसिद्ध हो गई।[२६८] इस प्रकार ११वी १२वी शती मे विभिन्न क्षेत्रो के मध्य सांस्कृतिक सम्बन्धो को बढावा मिला।

पूर्वमध्यकाल के आरम्भिक चरण मे मुहम्मद गोरी के आक्रमण के कारण भारतीय व्यापार बाधित हुआ किन्तु जब पंजाव गजनी साम्राज्य का स्थायी प्रान्त बन गया तदुपरात मुसलिम व्यापारियो ने भारत की व्यापारिक गतिविधियो को प्रोत्साहित किया फलस्वरूप अनेक नगर व्यापारिक केन्द्रो के रूप मे उभरे। पश्चिमोत्तर क्षेत्र पर मुसलिमो का अधिकार हो जाने के कारण भारत के, पश्चिम एशिया मध्य एशिया तथा चीन से होने वाले व्यापार पर मुसलिम शासको का अधिकार हो गया।[२६९] स्थलमार्ग से करवॉ के रूप मे होने वाले व्यापार का विस्तृत विवेचन त्रिशिष्टिशलाकापुरुषचरित में दिया गया है।[२७०] कल्हण ने वितस्ता नदी मे नावो के आने जाने का उल्लेख किया है, उन्होने अन्य स्थल पर

---

२६३ लल्लन जी गोपाल-पूर्वो० पृ० ११७-११८
२६४ **'सभ्यता की कहानी'** भाग एक एन० सी० ई आर टी० दिल्ली, पृष्ठ
२६५ देशो० एव राज० VI ८७,८८
२६६ राज० पूर्वो० VIII ८८१-८८३, ८९५,९२८-९३
२६७ विक्रम०-ब्यूहलर XVIII ७५, ८२
२६८ काणे-भाग I पृ० ३३३-३३४
२६९ लल्लनजी गोपाल-पूर्वो० अध्याय VI, VII, पी० नियोगी **"कन्ट्रीब्यूशन्स टू द इकानॉमिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न**

लिखा है कि राजा अनन्त अपने पुत्र कलश से अलग होने के बाद विजयक्षेत्र नाव से गया था, इसी प्रकार मृत्युवरण हेतु मार्तण्ड मन्दिर जाते समय उसने नाव का उपयोग किया था।[२७१] अस्तु बितस्ता (झेलम) नदी यातायात का एक प्रमुख मार्ग थी। युक्तिकल्पतरु[२७२] मे भोज ने जहाजो या नावो को दो वर्गो मे बॉटा है—**प्रथम**—जो नदियो मे चलायी जाती थी, **द्वितीय** जो समुद्र मे चलायी जाती थी। उन्होने इसी ग्रन्थ मे लिखा है कि समुद्र के अन्दर चुम्बकीय खानो के कारण जहाजो मे लोहे की तश्तरी या कीलो के बजाय रस्सियो का प्रयोग किया जाता था।

कश्मीर मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये राजा, रानियॉ, मन्त्रीगण व अन्य दरबारी कर्णिरथ अथवा युग्म का प्रयोग किया करते थे, जो लोगो के द्वारा ले जाये जाते थे।[२७३] अलबेरूनी[२७४] ने कश्मीरियो द्वारा अधिकाशत: पैदल यात्राये करने का उल्लेख किया है। वे जानवरो या हाथियो की सवारी नहीं किया करते थे। पैदल चलने मे असमर्थ या टट्टुओ की सवारी न कर सकने वाले व्यक्ति लोगो के कधो से ढोई जाने वाली पालकियो (सिक) का उपयोग किया करते थे, जिन्हे कट्ट कहा जाता था। इसी प्रकार का बोझा ढोने वाले लवट नामक व्यक्ति को राजा की कृपा से प्रतिदिन दो हजार दीनार दिया जाता था।[२७५]

यातायात के साधन के रूप मे घोडो के उपयोग की चर्चा है परन्तु यह बहुत कम मात्रा मे धनी लोगो द्वारा प्रयोग किया जाता था।[२७६] हाथियो का उल्लेख केवल राजाओ द्वारा उपयोग मे लाये जाने के सदर्भ मे हुआ है।[२७७] राजा ललितादित्य की सेना मे गौड़ देशीय हाथी सम्मिलित किये गये थे।[२७८] राजा जयापीड ने अपने अश्वो को एकत्र कर एक कम एक लाख घोड़े ब्राह्मणो को दान मे दक्षिणा के साथ दिया—साथ ही उसने यह भी आदेश दिया कि 'जो राजा पूरे एक लाख घोड़ों का

२७१ राज० पूर्वो० I २०१-२०२, V-८४, VII-३४७, ३८७, ७१४, १६२८
२७२ युक्तिकल्पनरू—पृ० २२३, आर० के० मुकर्जी **'ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन शिपिंग एण्ड मेरीटाइम एक्टिक्विटी लंदन,** १९१२, पृ० २२-२३
२७३ राज० पूर्वो०—VIII-९४०, १५७२, २२९८, २३०८, २६३६, २६७३, ३१६८, समय०—VI-२५-२६
२७४ सचाऊ-पूर्वो० भाग I पृ० २०६
२७५ राज०-पूर्वो०-V-२०५
२७६ वही VIII-१५७२-७३
२७७ वही III-३२७, IV-७१२, VII-७७२, १५५३-५५
२७८ राज०-पूर्वो—IV-१४८

दान करेगा वही विदेश जाने वाले गगाजल के कलशो पर 'श्रीजयापीडदेवस्य'नामक मुद्रा की जगह अपने नाम की मुद्रा प्रचलित कर सकता है।[२७९] ब्राह्मणो द्वारा इतने अधिक घोड़ो का उपयोग किस कार्य के लिये किया जाता रहा होगा। इसका अनुमान लगाना सरल नहीं है। एक चाहमान अभिलेख से ज्ञात होता है कि कस्बे को बैलो पर ले जायी जाने वाली प्रत्येक टोकरी पर एक प्रकार का कर (आदान) देना पडता था।[२८०] इसी प्रकार मगरोल (काठियावाड) अभिलेख से स्पष्ट होता है कि गाँवो से कस्बो को ले जायी जाने वाली बैलगाड़ी, ऊँटगाड़ी तथा गधो पर लदे सामानो का नकद कर देना पडता था।[२८१] त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित[२८२] मे धन नामक व्यापारी को अपने मित्र मणिभद्र के साथ व्यापारियो का कारवॉ क्षितिप्रतिष्ठ से वसन्तपुर ले जाते हुये उद्धृत किया गया है—जिसमे व्यापारिक वस्तुए, ऊँटो, भैसो, बैलो, गधो, हाथियो तथा खच्चरो पर लदी थी।[२८३]

इस प्रकार आतरिक व्यापार मे जहॉ उपरोक्त यातायात के साधनो का प्रयोग किया जाता था वही बाह्य व्यापार मे नावो का उपयोग किया जाता था, जिसका उल्लेख पूर्व मे किया जा चुका है। राजतरङ्गिणी मे दो ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते है जिनसे पता चलता है कि कश्मीर मे न केवल बाह्य देशो के व्यापारी आते थे बल्कि कश्मीरी व्यापारी भी बाह्य देशो मे व्यापार हेतु जाया करते थे। **प्रथम**[२८४] के अनुसार प्रतापपुर मे अनेक देशो के बहुत से व्यापारी नानाप्रकार के क्रय-विक्रय का व्यापार करते हुए रहा करते थे। **द्वितीय**[२८५] प्रसङ्ग के अनुसार सेल्यपुरवासी नयन का पुत्र जय्यक नामक डामर दूर-दूर के प्रदेशो मे अन्न तथा अन्यान्य पण्य वस्तुए बेचकर कुबेर से स्पर्धा करने वाली विपुल सम्पदा एकत्र कर ली थी। विदेशी तथा देशी दोनो प्रकार के साहित्य मे भारत के विदेशी व्यापार के प्रसङ्ग प्राप्त होते है। मार्को पोलो[२८६] के अनुसार भारतीय जहाज चीन मे फु-चाउ (फुजू)

---

२७९ राज० पूर्वो० IV-४१५-४१७
२८० इपि० इण्डिका—XI पृ० ३७, दशरथ शर्मा-पूर्वो०-पृ० २०८
२८१ **'कलेक्शन ऑव प्राकृत ऐण्ड संस्कृत इन्शक्रिप्शन'**—पृ० १५८
२८२ भाग I, पृ० ८
२८३ वही पृ० १२, २८-२९
२८४ राज० पूर्वो ० IV-११
२८५ वही VII-४९५
२८६ मार्को पोलो—II २३१

तथा फारस की खाडी मे हार्मोस जाते थे जहॉ से वे अन्य देश के व्यापारियो से समानो का आदान-प्रदान करते थे। वृहत्कथामञ्जरी, अवदान कल्पलता, तिलकमञ्जरी तथा कथासरित्सागर से भी समुद्री यात्राओ तथा समुद्री व्यापार के उल्लेख प्राप्त होते है।[२८७]

कश्मीर मे बहुत सी अप्राप्य वस्तुये व्यापारियो द्वारा बाहर से लायी जाती थीं। बी० एन० एस० यादव जी नें लिखा है कि इस समय विदेशो से आयात की जाने वाली वस्तुओ मे सबसे मंहगी वस्तु घोडा था[२८८] कल्हण महोदय लिखते है कि टक्कदेश निवासी बुल्लिय नामक व्यापारी ने तुर्की के व्यापारियो से विभिन्न देशो से लायी हुई बहुतेरी सुन्दरी बालिकाओ को खरीदकर राजा कलश को उपहार मे दिया।[२८९]

सिक्के

विभिन्न साहित्य मे सिक्को के लिये दीनार, सुवर्ण, निष्क, पारुट्थ द्रम, द्रम्मार्ध, रूपक, काकिणी, वरात्तिका, कवद्धिक नाम प्राप्त होते है।[२९०] दीनार एक पुराना सोने का सिक्का था जिसका उद्भव रोमन डेनरियस् से हुआ प्रतीत होता है।[२९१] अल्टेकर महोदय[२९२] के अनुसार दीनार का भार सोने के एक तोले के चौथाई के बराबर होता था, किन्तु कल्हण ने लिखा है कि राजा जयापीड को महापद्म नामक नागराज ने ताम्रपर्वत बताया था, जिससे ताबा निकलवाकर उस राजा ने एक कम एक करोड दीनार नामक सिक्के ढलवाये।[२९३] इस प्रकार के दीनार सिक्को का प्रचलन युवराज तोरमाण ने प्राचीन सिक्को **'बालाहत'** का प्रचलन बद करवाकर किया था।[२९४] राजा अनन्तदेव शाही राजा के पुत्र रूद्रपाल को प्रतिदिन डेढ लाख दीनार तथा दिद्दापाल को अस्सी हजार दीनार दिया करता था। फिर भी उनकी दरिद्रता दूर नही होती थी।[२९५] राजा हर्ष ने अपने राज्य में गोलाकार टंक (सिक्के) चलाये

---

२८७ वृहद्०-II ७७-१६५, XV-२०२-२१८, अवदान०-IV-२, तिलक-५७, ७५, ११४-१४७ कथा०-IX-४.८७, X-५
२८८ बी० एन० एस० यादव—पूर्वो० पृ० २८१
२८९ राज० पूर्वो० VII ५२०
२९० वृहद्कथाकोष, द्वायाश्रय, लल्लनजी गोपाल, जन०न्यू सोसा०, वाराणसी XXV पृ० १-१६
२९१ समरैच्चकहा-पृ० १४१,१७१, बी०एन०शर्मा पूर्वो० पृ० १५२
२९२ अल्टेकर **'गुप्त वाकाटक ऐज'** पृ० ३६०
२९३ राज० पूर्वो० IV-६१७-६१८
२९४ वही III-१०३
२९५ वही VII-१४५-१४६

थे तथा राज्य का सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार सोने-चॉदी के दीनारो से होता था। ताम्र सिक्को का प्रयोग वहुत कम किया जाता था।[२९६] इन प्रसङ्गो से स्पष्ट होता है कि दीनार सिक्को के लिये प्रयुक्त होने वाला शव्द था जो ताम्र-चॉदी व सोने के वने होते थे तथा जिनका मूल्य पृथक-पृथक् होता था। राजा मातृगुप्त ने राज्य मे प्रचलित सिक्के के स्थान पर 'करम्भक' नामक स्वर्णमुद्रा का प्रचलन कराया था।[२९७] जबकि भिक्षु के समय पुराने दीनारो का प्रचलन बन्द हो गया तथा १०० पुराने दीनारो के बदले नये अस्सी दीनार ही मिलते थे।[२९८] इस प्रकार अव्यवस्था के कारण क्रय-विक्रय के व्यवहार मे दीनार की कीमत घट गयी थी, किन्तु नगर का मुख्याधिकारी कुलराज ने दीनार को फिर से मूल्यवान सिक्का बना दिया।[२९९] बी० एन० एस० यादव जी ने लिखा है कि विवेच्यकाल मे चॉदी के सिक्के बहुत कम मात्रा मे प्राप्त हुये है, सामान्यत. चॉदी के स्थान पर चॉदी तथा कॉपर के मिश्रण का प्रयोग किया जाता था—कुछ विद्वानो की मान्यता है कि ऐसा संभवत चॉदी की कम उपलब्धता के कारण रहा होगा। परन्तु यादव जी का तर्क है कि यदि ऐसी बात थी तव केवल मथुरा मे दो सौ चॉदी की मूर्तियॉ कैसे बनी। यही स्थिति सोमनाथ व अन्य मन्दिरो की भी है।[३००]

मुद्राओ की अल्प उपलब्धता के आधार पर कहा जाता है कि ग्यारहवी, बारहवी शती मे वाणिज्य एवं व्यापार मे ह्रास हुआ था—किन्तु इस ह्रास का स्पष्ट कारण यादव जी निम्न मानते है—

(१) मुस्लिम आक्रमण के कारण

(२) ब्याज की दर मे हुई वृद्धि[३०१] (पूर्व मे १५% वार्षिक का वढकर २४% हो जाना।

(३) मंदिरो की समितियो तथा अभिजात्य वर्गो के पास अत्यधिक मात्रा मे धन तथा सिक्को का सग्रह होना।[३०२]

---

२९६ राज० पूर्वो० VII-९२६, ९५०
२९७ वही III-२५६
२९८ वही VIII-८८३
२९९ राज० पूर्वो०-VII-३३३५
३०० यादव-पूर्वो० पृ० २८२
३०१ वही पृ० २८३,
३०२ रामशरण शर्मा **"उसूरी इन अर्ली मेडिवल इण्डिया इन कम्परेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एण्ड हिस्ट्री"** भाग VIII अक II, अक्टूबर १९६५, पृ० ७५

(४) इस काल मे सिक्को की अविश्वसनीयता—क्षेमेन्द्र ने अपने समय मे मुद्रा के अपकर्ष की स्थिति पर लिखा है कि कश्मीर नरेश जयसिह के काल मे मुद्रा का इतना अवमूल्यन हो गया था कि कुछ समय के लिए व्यावसायिक क्रियाकलापो मे नकदी का प्रयोग लगभग बन्द सा हो गया था।[३०३]

सामान्य लेन-देन मे उत्तरभारत मे कौड़ी का प्रयोग किया जाता था जो मौद्रिक इकाई का सबसे निम्नतम स्वरूप था। कल्हण ने लिखा है कि राजा संग्रामदेव कौड़ी की स्थिति से प्रारम्भ करके करोडो का स्वामी बन गया था।[३०४] क्षेमेन्द्र के अनुसार कौडी का प्रयोग दैनिक कार्य-व्यापार के लिये किया जाता था।[३०५] स्टेइन[३०६] महोदय ने भी लिखा है कि प्रारम्भिक काल से ही कौडी कश्मीर सहित भारत के अन्य भागो मे प्रयुक्त की जाती रही है। लीलावती[३०७] मे एक उदाहरण दिया गया है।

२० वराटक (कौड़ी) = १ काकिणी

४ काकिणी = १ पण

१६ पण = १ द्रम = १२८० कौडी

१६ द्रम = १ निष्क

स्टेइन[३०७अ] महोदय ने कश्मीरी मुद्रा की गणना के लिये निम्न तालिका प्रस्तुत की है—

१२ दीनार = १ द्वादश (बहगनी) = १/८ दाम या १/३२० रुपया

२ द्वादश = २५ दीनार (पचविशतिका) = १/४ दाम या १/१६० रुपया

४ पचविशतिका = १०० दीनार (१ सतहथ) = १ दाम या १/४० रुपया

१० सतहथ = १००० दीनार (१ सहस्रससुन) = १० दाम या १/४ रुपया

---

३०३ कला० 'दीनारव्यवहार'

३०४ राज०-पूर्वो० VII-११२

३०५ समय०—VIII-८०, कला०—II-५७, नर्म०—I-१०३

३०६ राज०-पूर्वो० II (परि०) पृ० ३२३

३०७ लीलावती—पृ० ४, उद्धृत आर० सी० अग्रवाल ज० न्यू० सो० इ० XVIII पृ० ७७

३०७अ स्टेइन-राज० पूर्वो० भाग दो, परिशिष्ट पृ० ३३२-३२४

१०० सहस्र = १,००,००० दीनार (१ लक्ष या लाख) = २५ रुपया

१०० लक्ष = १,००,००,००० दीनार (१ कोटि, करोड) = २५०० रुपये

यद्यपि क्षेत्रीय आधार पर इसमे परिवर्तन सम्भव था।

प्राचीन काल की भॉति इस समय भी क्षेत्रीय एव स्थानीय वाणिज्य मे अदला-बदली प्रथा प्रचलन मे थी। यद्यपि मुद्रा के प्रचलन ने आर्थिक विकास को गति प्रदान की किन्तु इसी के समानान्तर व्यापारियो के मध्य 'हुण्डिका' नामक एक ऐसी विश्वास की व्यवस्था चल रही थी जिसमे धन की कमी के कारण आने वाली व्यापारिक रुकावटो को दूर कर लिया गया था। क्षेमेन्द्र[३०८] तथा कल्हण[३०९] ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। राजा चक्रवर्मा द्रव्याभाव के कारण तत्रियो की हुण्डी का मूल्य न चुका पाने के कारण राज्य छोडकर भाग गया था। इससे स्पष्ट होता है कि व्यापारिक गतिविधियो के अतिरिक्त भी हुण्डी का उपयोग किया जाता था। **लोकप्रकाश** मे दीनारहुण्डिका, क्रियाकारणहुण्डिका तथा अनाज व अन्य वस्तुओ के लिए हुण्डिका का उल्लेख हुआ है।

कर-व्यवस्था

राज्य की समृद्धि एव स्थायित्व के लिये प्राचीन भारतीय चिन्तको ने कोष को महत्वपूर्ण माना है। कौटिल्य ने इसे राज्य के सप्ताग मे स्थान दिया है।[३१०] कश्मीर नरेश अनन्तदेव अपने पुत्र के पक्ष मे राज्य का त्याग कर विजयक्षेत्र जाते समय अपने कोष को ले जाना अति आवश्यक बताते है।[३११] इससे स्पष्ट होता है कि जब राज्य छोडकर जाने वाले राजा के लिये कोष महत्त्वपूर्ण हो सकता है, तो राज्य करने वाले के लिये वह कितना महत्त्वपूर्ण रहा होगा। इसीलिए कल्हण राजा कलश को अपने पुत्र हर्ष से बात करे हुए लिखते है—'मैने तुम्हारे पितामह तथा अपनी सम्पत्ति की रक्षा इसलिये की क्योकि इसके बिना राजा अपनी प्रजा तथा शत्रुओ दोनो से तिरस्कृत होता है।[३१२]

---

३०८ लोकप्रकाश

३०९ राज०-पूर्वो० V-२६६-३०२

३१० अर्थ०-पूर्वो०—VI अध्याय १, मनु० अ० IX २९४, विष्णु अ० III ३३, याज्ञ० अ० I ३२७-३२८

३११ राज०-पूर्वो० VII ३४२-३४४

३१२ वही VII ६४५

इस प्रकार राज्य के कल्याण तथा सुरक्षा के लिये कोष आवश्यक माना गया है—जिसे परिपूर्ण रखने के लिये प्राचीनकाल से ही भारत मे एक प्रकार की कर-व्यवस्था प्रचलित थी। प्राचीन स्मृतिकारो[३१३] के अनुसार राजा को अपनी प्रजा पर उसकी सुरक्षा के बदले कर लगाने का अधिकार है। आन्तरिक प्रशासन, डामरो के विरुद्ध सघर्ष तथा शत्रुओ के विरुद्ध अभियान के लिये भी कोष की अत्यन्त आवश्यकता बताई गई है। कल्हण जी ने राजा कलश की प्रशसा करते हुये लिखा है कि वह एक व्यापारी की भॉति सदैव अपने व्यय के प्रति सचेष्ट रहता था एव एक आशुलिपिक की तरह-अपने वर्तमान एव भविष्य के आय-व्यय के हिसाब के लिए भूर्ज पत्र और खडिया रखता था।[३१४] किन्तु कल्हण ने राज्यव्यवस्था का परित्याग कर सदैव राज्यकोष का दर्शन, धन की गणना तथा सोने-चॉदी की नाप-तौल मे समय नष्ट करने वाले लोभी राजा उत्कर्ष की खिल्ली भी उडायी है।[३१५]

कश्मीर मे राज्य की आय का प्रमुख साधन राजकीय भूमि—'खेरि' थी जिसकी देखभाल करने वाले अधिकारी खेरिकार्य की स्थिति बहुत अच्छी थी।[३१६] विभिन्न स्रोतो से राजस्व के लिये-भाग, कर, भोग, हिरण्य, दशापराध, उद्रङ्ग तथा उपरिकर सदृश शब्दों का प्रयोग किया गया है। अलबेरूनी लिखता है "जो कुछ वह फसलो से या पशुओ से कमाता है, उसमे सबसे पहले वह देश के शासक को कर देने के लिये बाध्य है, जो कृषि भूमि या गोचरण भूमि के साथ लगा रहता है। फिर वह आय का छठवॉ भाग(१/६) प्रजा की सम्पत्ति तथा उनके परिवारो की रक्षा के बदले पाता है—यही कर्तव्य साधारण जनता के सिर पर है। ऐसे ही समान तर्क पर व्यापारी लोग भी राजस्व देते है।[३१७] **भाग,** सामान्यतया कृषि उत्पाद मे राजा के हिस्से को कहा जाता था जो भूमि की प्रकृति, उत्पादक क्षमता तथा शासक की स्थिति द्वारा निश्चित होते थे। घोषाल[३१८] ने भी लिखा है कि यह सदैव १/६ ही रहता रहा हो—ऐसा आवश्यक नही है। जबकि **'भोग'** ग्रामीणो द्वारा राजा के लिये फल, फूल, जलाने

---

३१३ गौतम०—X-२८, मनु० अ० VII श्लो० १२८, नारद XVIII-४८

३१४ राज० पूर्वो०-VII-५०६-५०९

३१५ वही VII-७५६-७५९

३१६ वही VIII ९६०,१००९,१११८,१४८२,१६२४

३१७ सचाऊ० पूर्वो० पृ० १४९

३१८ 'घोषाल'—'कन्ट्रीब्यूशन्स टू द हिस्ट्री ऑव द हिन्दू रिवेन्यू सिस्टम' कलकत्ता, १९२९, पृ० ६० पाद टि० ५

की लकडी व अन्य इसी प्रकार की स्थानीय उपयोग की वस्तुओ के लिये प्रयोग किया जाता था। पश्चिम भारत व राजस्थान मे भूमि कर के लिये सामान्यतया उद्रङ्ग तथा दानी शब्दो का प्रयोग किया जाता था।[३१९] अर्थशास्त्र मे भूमिकर के लिये बलि या 'कर' शब्द प्रयुक्त हुये है।[३२०] आनन्द कौल[३२१] ने प्राचीन क्रमराज्य तथा माडवराज्य मे उत्पादन का १/१० भाग कर के रूप मे दिया जाना बताया है जबकि लॉरेन्ज[३२२] ने इसे प्राचीन काल की तरह १/६ ही स्वीकार किया है।

कल्हण के अनुसार राजा उच्चल ने अकाल के समय अपने अन्नागार का अन्न सस्ते मूल्य पर बेचकर अकाल का सामना किया[३२३] इससे सिद्ध होता है कि उत्पादक से कर के रूप मे अन्न (वस्तु) लिया जाता था ऐसी स्थिति अन्य कालो मे भी दृष्टिगोचर होती है। आनन्द कौल लिखते है कि करसंग्रहकर्ता कर्मचारियो को **वेतन भी वस्तु के रूप** मे दिया जाता था।[३२४] घोषाल[३२५] 'कर शब्द को राजस्व के रूप मे सम्पत्ति पर लगाया जाने वाला कर मानते है जबकि लक्ष्मीधर[३२६] ने इसे कारीगरो तथा किसानो से नकद रूप मे लिया जाने वाला निर्धारित राजस्व माना है। गुप्तकाल व परिवर्तीकाल मे सामत व अधीनस्थो द्वारा राजा को भेट मे दी जाने वाली वस्तुओ के लिये कर शब्द प्रयुक्त होता था।[३२७] राजतरङ्गिणी [३२८] मे ऐसे अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते है यथा कलश द्वारा राजपुरी नरेश से कन्दर्प द्वारा राजपुरी नरेश से तथा जयसिह द्वारा मल्लार्जुन से 'कर' लिया गया था। इस प्रकार के नकद कर के लिये 'हिरण्य' शब्द प्रयुक्त किया गया है। ब्यूहलर, शामशास्त्री, फ्लीट, आर० डी० बनर्जी, डी० आर० भण्डारकर, मजूमदार इसे स्वर्ण मानते है।[३२९] जबकि सेनार्ट[३३०] इसे धन के रूप मे लिया जाने

---

३१९ दशरथ शर्मा—पूर्वो० पृ० २११
३२० अर्थ० पूर्वो० खण्ड दो अध्याय १५
३२१ जर्नल ऑव रॉयल ऐशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल खण्ड IX पृ० २००
३२२ लॉरेन्ज **'वैली ऑव कश्मीर'** श्रीनगर १९६७, पृष्ठ ४०२-४०३
३२३ राज० पूर्वो०-VIII ६१-६५
३२४ कौल-पूर्वो० पृ० २००
३२५ घोषाल-पूर्वो० पृ० ६०
३२६ गृहस्थ काण्ड पृ० २५५
३२७ यादव—सोसाइटी पृ० २८९
३२८ राज०-पूर्वो० VII-२६५-२६७, ९९१, VIII-१९७०
३२९ घोषाल-पूर्वो० पृ० ६०
३३० इपी० इण्डि० VII पृ० ६१-६२

वाला राजस्व मानते है। वोगल की[३३१] मान्यता है कि 'हिरण्य' नकदी रूप मे दिया जाने वाला राजस्व था। एन० सी० बन्दोपाध्याय[३३२] ने इसे सम्पत्ति पर लगाया जाने वाला कर माना है, जो अधिक उचित प्रतीत होता है। अलबेरूनी[३३३] ने भी लोगो की सम्पत्ति पर लगाये जाने वाले राजस्व को 'हिरण्य' कहा है।

अमरकोश[३३४] मे राजस्व के एक अन्य रूप का उल्लेख है जिसे **'शुल्क'** कहा जाता था। अलबेरूनी[३३५] ने इसे विक्रय कर माना है। जो व्यापारिक माल पर १/२० लगता था। के० पी० जायसवाल[३३६] लिखते है कि 'शुल्क' व्यापारिक वस्तुओ के मूलधन पर न लगकर लाभ पर लगता था। कल्हण ने लिखा है कि हर्ष के राज्यकाल मे सुस्सल ने माणिक्य नामक द्रग (जहाँ शुल्क वसूल किया जाता था) अधिकारी को परास्त कर प्रभूत धन प्राप्त किया था।[३३७] इसी प्रकार जयसिह के समय डामर प्रमुख मल्लकोष्ठ इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसने द्रग के कर्मचारियो को बंदी बना लिया तथा स्वयं चुगी वसूल करके चुगी दिये सामान पर अपने नाम की सन्दूरी मुहर इस प्रकार लगाने लगा मानो वही राजा हो।[३३८] इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जिन वस्तुओ पर शुल्क अदा कर दिया जाता था उनमे राजा की मुहर लग जाती थी। क्षेमेन्द्र ने समयमातृका[३३९] की नायिका ककाली द्वारा शुल्क स्थान के अधिकारियो को जगली विषैले फूलो व लताओ से मूर्छित किये जाने का उल्लेख किया है जिससे उसे शुल्क न देना पडे। कथासरित्सागर मे भी सन्दर्भित शुल्क देने के भय से व्यापारी जंगली रास्तो से सामान लेकर आते थे।[३४०]

नौघाटों पर शुल्क लिया जाता था—इसका उल्लेख कल्हण ने किया है[३४१] किन्तु यह शुल्क राज्य के पास जाता था या नाव मालिक के पास यह स्पष्ट नही होता।

---

३३१ **'इन्टीक्विटीज ऑव द चम्बा स्टेट'** भाग I आरक्यॉ खण्ड XXXVI, कलकत्ता, १९११, पृ० १६७-६९
३३२ कौटिल्य-भाग I पृ० १३९-१४०
३३३ सचाऊ भाग दो पृ० १४९
३३४ अध्याय दो ८, २७
३३५ सचाऊ भाग दो पृ० १४९
३३६ **हिन्दू पॉलिटी**-पृ० ३३९
३३७ राज०-पूर्वो० VII १३५२-१३५३
३३८ वही VIII २०१०
३३९ समय० पूर्वो० II १०२
३४० कथा० पूर्वो० VI ३-१०५
३४१ राज०-पूर्वो० VIII १३६

न्यायालयों द्वारा अपराधियो पर लगाया जाने वाला **अर्थदण्ड** भी राज्य की आय का प्रमुख साधन था। कल्हण ने लिखा है कि राजा उच्चल राज्य की सत्ता को स्थिर करने के लिये दण्डनीय व्यक्तियो को दण्ड देता था किन्तु पाप के सम्पर्क से बचने के लिये प्रजा से धन नही लेता था।[३४२]

उत्तराधिकारीविहीन मृतक की सम्पत्ति राज्य द्वारा अधिगृहीत कर ली जाती थी। सेल्यपुरनिवासी जय्यक नामक डामर की हत्या के बाद उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति राजा कलश द्वारा हडप ली गयी थी।[३४३] राजा जयापीड़ द्वारा क्रमराज्य की खान की कहानी से स्पष्ट होता है कि खानो पर राज्य का अधिकार होता था।[३४४]

तीर्थस्थलो व देवस्थानो पर कर लगाना ११वी-१२वी शती की एक सामान्य विशेषता थी। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि शासक आपात्काल मे मर्यादाविरुद्ध होकर धनप्राप्ति हेतु भविष्यवक्ता तथा देवप्रतिमाये स्थापित करवाते थे। जहॉ सीधे-सीदे ग्रामीण लोग अपनी भेट चढाते थे। कल्हण ने लिखा है कि रानी दिद्दा के समय गयातीर्थ मे कश्मीरियो से लिया जाने वाला शुल्क (श्राद्ध के अवसर पर) बन्द करा दिया गया था। एक अन्य स्थल पर पुन उल्लिखित है कि राजा हर्ष के समय मे कन्दर्प ने एक सामन्त को मारकर दूसरे को गद्दी पर बैठा दिया तथा गयाक्षेत्र मे श्राद्ध करने के लिये आने वाले कश्मीरियो से लिया जाने वाला 'कर' बन्द करा दिया।[३४५] लालची राजा बिना किसी सदेह व सशय के अपना राजकोष भरने, व्यक्तिगत अभियानो तथा निरर्थक व अत्यन्त खर्चीले युद्धो के लिये मन्दिरो की सम्पत्ति का अपहरण करते थे। कश्मीरनरेश हर्ष ने **मन्दिरों की सम्पत्ति के अपहरण** के लिये 'देवात्पाटननायक' पद भी सृजित कर दिया था—इतना ही नही उन मदिरो के ब्राह्मण पुरोहित **'रूढ़भारोढ़ि'** नामक **बेगार** करने के लिये बाध्य किये जाते थे।[३४६] राजा शंकरवर्मन ने 'रूढभारोढि' प्रथा चलायी थी[३४७] कल्हण ने बेगार के तेरह स्वरूप बताये है।[३४८] यह परम्परा जयसिह के काल तक ही नही अपितु अफगान तथा मुगलो के काल तक चलती रही।[३४९]

---

३४२ राज० पूर्वो० VIII ६५, ३३३६, V-१७२ (वर्षमेक दण्डयत्)
३४३ वही VII ४९९
३४४ वही V-६१७
३४५ राज० पूर्वो० VI २५४, VII १००८
३४६ वही VII १०९१
३४७ वही VII १०८८
३४८ वही V १७२-१७४

उपनयन, विवाह तथा वैदिक यज्ञो पर भी कर लगाये जाने के उल्लेख प्राप्त होते है।[३५०]
अलवेरूनी ने **वेश्यावृत्ति से प्राप्त आय** को राज्य के राजस्व का प्रमुख साधन माना है।[३५१]
द्यूतगृहों से प्राप्त होने वाला कर भी राजस्व का प्रमुख अग माना जाता था।[३५२]
राजतरङ्गिणी मे **इमारती लकड़ी** को कोषवृद्धि का साधन माना गया है।[३५३]
उपलब्ध साक्ष्यो के आधार पर बी० एन० एस० यादव जी ने राजस्व प्राप्ति के निम्न प्रमुख साधन उल्लिखित किये है[३५४]–

(१) भूमि कर जो प्राय. १/१२, १/८, १/६, होता था अर्थात् उत्पादन के आधार पर किन्तु सामती व्यवस्था के प्रभाव से सिद्धान्त रूप मे यह स्थिति भिन्न थी।

(२) सम्पत्तिकर के अन्तर्गत स्वर्ण राशि (हिरण्य), पशुओ, हल, अरघट्ट, तेल-मशीन मे प्राप्त राजस्व

(३) व्यावसायिक कर यथा वेश्याओ पर लगाया गया कर

(४) आयात एव निर्यात पर प्रचलित कर

(५) प्रशासनिक कर

(६) बगीचे, जगल, खान, नमक, मछली जैसे एकाधिपत्यपूर्ण व्यापार पर कर

(७) अर्द्ध जागीर जैसी भूमि द्वारा प्राप्तियॉ

(८) सार्वजनिक मनोरञ्जन स्थलो—यथा द्यूतक्रीडा स्थलो से प्राप्त राजस्व

(९) विविध कर—नाव कर, बंदरगाह कर, तीर्थयात्रा कर

(१०) कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये कुछ राज्यो मे स्थानीय प्रशासन द्वारा लागये जाने वाले कर

---

३५० इपि० इण्डि० भाग XX पृ० ६४

३५१ हबीब **'हिन्दुस्तानी पत्रिका'** १९३१, पृ० २७३-२७४

३५२ अर्थ० शामशास्त्री १९१५, पृ० २४९

३५३ राज०-पूर्वो० VIII २३९०

३५४ यादव-पूर्वो० पृ० २९५-२९६

(११) नजराना, अनौचित और अनियत शेप धन, बलपूर्वक लिया गया कर युद्ध मे लूट-खसोट कर लिया गया धन

(१२) सामन्तो द्वारा प्रदत्त भेट

इस तरह यादव जी ने विवेच्यकाल के राजस्व के सम्पूर्ण स्वरूपो को समाविष्ट कर लिया है।

राजस्व एकत्र करने का तंत्र—प्रारम्भिक काल से भूमि राजस्व के एकत्र करने का अधिकार गॉव के मुखिया को होता था। वाचस्पति मिश्र[३५५] के अनुसार गॉव का मुखिया विभिन्न परिवार के प्रमुखो से राजस्व एकत्र करके उसे विषय प्रमुख को देता था, जो राजस्व को सर्वाध्यक्ष को सौपता था। उससे राजस्व राजा के पास पहुँचता था। कश्मीर मे इस प्रकार के कर सग्रह के लिये पुलिस चौकियो (द्रग) की स्थापना की गयी थी।

कश्मीर मे कर-सग्रह के लिये नियुक्त कर्मचारी (कायस्थ) लोगो के धन का अपहरण करके अत्यधिक धनवान हो गये थे क्योकि वे राजा को बहुत कम हिस्सा सौपते थे।[३५६] राजा शंकरवर्मन ने राजस्व सग्रह के लिये अट्टपतिभाग (बाजार प्रमुख) तथा गृहकृत्य (घरेलू मामलो का प्रमुख) नामक दो अधिकारी नियुक्त किये थे। वह देवपूजन के उपकरण धूप, चन्दन, तेल आदि पर बहुत बडा कर लगाकर उनकी विक्री की आय को छलपूर्वक स्वय लेने लगा था।[३५७] ग्रामस्कन्दक (जमीदार)[३५८] तथा ग्रामकायस्थ (पटवारी) के मासिक वेतन का भार ग्रामीणो पर डालकर उसने उन्हे और कगाल बना दिया था।[३५९] राजा गोपालवर्मन के समय केवल व्यक्ति सास मुफ्त लेता था—इससे कल्हण भी सहमति प्रकट करते है।[३६०] राजा संग्रामराज स्वय कहते है कि उनका धन वैध रूप से नही वसूला जाता था।[३६१] राजा जयसिह के राज्यकाल मे चित्ररथ ने प्रजा को सताकर धन एकत्र किया था।[३६२]

---

३५५ साख्यतत्त्वकामुदी अनु० जी० एन०झा० पृ० ५३, II १७-२१

३५६ राज०-पूर्वो० IV-६२९

३५७ वही V-१६८

३५८ वही V १६७ स्टेइन महोदय ने स्कन्दक का तादात्म्य आधुनिक मोकद्दम या लम्बरदार से किया है—समयमातृका VI-१५, लॉरेन्ज-वैली पृ० ४४७ मे भी यह शब्द प्रयुक्त है

३५९ राज० V-१७५

३६० वही V-१८४, २२८-२३२

३६१ वही VII-११०-१२२

३६२ वही VIII-२०४३

राजा अनन्त के समय (१०२८-१०६३ ई०) क्षेम ने पादाग्र नामक राजस्व विभाग स्थापित कर राजकोष मे १/१२ कर (द्वादशभाग) और जमा करवाया जो सभवत पूर्व १/६ के अतिरिक्त था।[३६३] शुक्रनीतिसार[३६४] मे कहा गया है कि शत्रु को नष्ट करने के लिये सैन्य अभियान के समय राजा दण्ड का दर तथा राजस्व वढा सकता है तथा भरण-पोषण का हिस्सा छोड़कर धनिको का धन ले सकता है किन्तु सकट के बाद उसे धन ब्याज सहित वापस करना चाहिए।

इससे स्पष्ट होता है कि राजस्व-एकत्र करने का अधिकार राजा की ओर से नियुक्त अधिकारियो को ही होता था।

---

३६३ राज० VII-१३०, २०३, २१०

३६४ शुक्र० अध्याय IV वर्ग २, १८

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक स्थिति

- शैव धर्म,
- वैष्णव धर्म
- अन्य हिन्दू देव-देवियॉ
- बौद्ध धर्म,
- जैन धर्म
- शाक्त सम्प्रदाय
- नाग-पूजा
- तीर्थ एवं तीर्थयात्रा
- व्रत एवं उत्सव

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक स्थिति

भारतीय सस्कृति मे धर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है—एक प्रकार से यह उसका प्राण है। प्राचीनकाल से भारत-भूमि मे धर्म को पवित्र-प्रेरक तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया जाता रहा है। भारत अनेक धर्मो व सम्प्रदायो की क्रीडास्थली रही है जहॉ की धार्मिक सहिष्णुता विश्व की किसी अन्य सस्कृति मे दुर्लभ है। अपनी इसी विशेषता के कारण भारत विश्व का आध्यात्मिक गुरु माना गया है। प्रत्येक धर्म ने भारतीय-सस्कृति के विकास मे अपना-अपना योगदान दिया है—विवेच्यकालीन कश्मीरी समाज मे इनकी स्थिति निम्न रूप मे 'दृष्टिगोचर' होती है।

शैव धर्म

शिव को इष्टदेव मानकर पूजा करने वालो को 'शैव' तथा इससे सम्बद्ध धर्म को 'शैव धर्म' कहा जाता है। सैन्धव सभ्यता की खुदाई मे मोहनजोदडो से एक मुद्रा पर पद्मासन मे विराजमान योगी जिसके सिर पर त्रिशूल जैसा आभूषण तथा तीन मुख है—की पहचान सर जॉन मार्शल ने 'शिव' से की है। ऋग्वेद मे इन्हे रुद्र कहा गया है—जो विध्वंशक शक्ति माने गये है।[१] अथर्ववेद मे इनके लिये भव, उग्र, पशुपति, महादेव शब्द प्रयुक्त हुए है।[२] पुराणो, ब्राह्मणो तथा महाकाव्यो मे इनका विशेष उल्लेख किया गया है। गुप्तकाल में शैव धर्म की महती उन्नति हुई। हर्ष चरित मे लिखा है—'गृहे-गृहे अपूज्यत भगवान खण्ड परशु.' अर्थात प्रत्येक घर मे भगवान शिव की पूजा होती थी। बनारस के विश्वनाथ, उज्जैन के महाकाल, खजुराहो के कदरिया महादेव, काठियावाड के सोमनाथ, तंजौर के राजराजेश्वर तथा दक्षिण भारत के रामेश्वरम् के अतिरिक्त बगाल, असम, राजस्थान, गुजरात कश्मीर मे शिव-मंदिरों के हजारो साक्ष्य प्राप्त होते है।

---

१ कीथ 'रेलिजन ऐण्ड फिलॉसफी ऑव द वेद' हर्बर्ट ओरिएटल सिरीज—ख० ३१-३२, पृ० १४२

२ आर० जी० भण्डारकर 'वैष्णाविज्म, शैविज्म ऐण्ड माइनर रिलीजियस सिस्टम्स' पूना, १९२९ पृ० ४७

शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की पूजा का प्रारम्भ पूर्वमध्यकाल मे सम्पूर्ण भारत मे प्रचलित हो गया था।[३] कश्मीर मे सुरेश्वर मे अर्द्धनारीश्वर के मदिर का सन्दर्भ प्राप्त होता है।[४] कल्हण अपनी कालजयी कृति 'राजतरङ्गिणी' के आठो तरगो को अर्द्धनारीश्वर की वन्दना से प्रारम्भ करते है।[५] समान्यरूप से शैव सम्प्रदाय के लोग शिवलिङ्ग की पूजा अर्चना करते थे। मध्ययुगीन समाज मे साधारणत इनके चार समप्रदाय थे[६] शैव या शैव सिद्धान्त को मानने वाले, पाशुपत, कापालिक और कालामुख[७] इसके अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय तथा उप-सम्प्रदाय भी थे।[८] पूर्व मध्यकाल में नवी शती मे कश्मीरी शैव तथा दक्षिण भारत मे बारहवी शती मे बासव द्वारा स्थापित लिगायत सम्प्रदाय शैव धर्म के दो महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय थे।[९] विवेच्यकालीन उत्तर भारत मे लकुलीश द्वारा स्थापित पाशुपत सम्प्रदाय की मान्यता सर्वाधिक थी, जिसकी स्थापना पाञ्चरार्थिक—कार्य, कारण, योग, विधि, दुःखान्त, के व्यवहरण के निमित्त की गई थी।[१०]

कापालिक सम्प्रदाय के लोग भैरव को शिव का अवतार मानकर उसकी उपासना करते थे। श्रीशैल नामक स्थान इनका प्रमुख केन्द्र था। ये बड़े क्रूर स्वभाव के होते थे तथा अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए मनुष्यो तक की बलि दे देते थे। सुरा-सुन्दरी का पान करना, जटा-जूट रखना, मासाहार करना, शरीर पर श्मशान की भस्म लगाना तथा हाथ मे नरमुण्ड धारण करना इनके प्रमुख आचरण थे।[११]

दक्षिण भारत के सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र को सर्वाधिक लिगायत सम्प्रदाय के शिव-लिङ्ग उपासको ने प्रभावित किया। ये शिवलिङ्ग को चॉदी के सम्पुट मे रखकर गले मे धारण किया करते थे।

---

३ जी० शिवराममूर्ति **"ऐन्शिएन्ट इडिया"** अङ्क ६, १९५०, पृ० ५६
४ राज०—पूर्वो० VIII ३३६५
५ राज० के आठो तरगो के पहले श्लोक
६ वी० एस० पाठक **"हिस्ट्री ऑव शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया"** (७००-१२०० ई०) वाराणसी १९६०, पृ० ३
७ ब्राह्मण पर यमुनाचार्य का आगम प्रामाण्य और रामानुज का श्रीभाष्य, निर्णय सागर प्रेस, १९१४ II २-३५
८ पाठक-पूर्वो० पृ० २३-२५
९ भण्डारकर-पूर्वो० पृ० १८६
१० वही—पृ० १७६
११ वही पृ० १८१ तथा रामानुज पूर्वो० खण्ड I पृ० ५०१

शिव को परमतत्त्व मानते हुए ये निष्काम कर्म मे विश्वास करते थे तथा जॉति-पॉति, वेदो तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त को अमान्य ठहराते हुए गुरु की महिमा को मानते थे। इनके उपदेश जनभाषा मे थे।[१२]

कश्मीरी शैव धर्म का प्रारम्भ राजा अवन्तिवर्मन के शासन काल (८५५-८८४ ई०) से माना जाता है, जिसके शान्तिपूर्ण प्रशासन तथा विद्वानो के सरक्षण की कल्हण ने प्रशसा की है। कश्मीरी शैव सम्प्रदाय का उदय अन्य धर्मो की स्पर्धा स्वरूप नही हुआ था। अपितु यह ज्ञान के विकास का परिणाम था। कश्मीर मे हमे विभिन्न धर्मो के प्रति सद्भावना दिखाई पड़ती है। राजा अवन्तिवर्मन अपने शैव मन्त्री शूर का इतना सम्मान करता था कि हृदय से वैष्णव होते हुए भी अपने मन्त्री की प्रसन्नता के लिए वह शिव की पूजा किया करता था[१३] इससे स्पष्ट होता है कि कश्मीर मे धार्मिक दृढता नही होती थी।

कश्मीरी शैव सम्प्रदाय की दो शाखाये थी—स्पन्दशास्त्र एव प्रत्याभिज्ञाशास्त्र। स्पन्दशास्त्र के प्रवर्तक वसुगुप्त तथा इनके शिष्य कल्लट माने जाते है, जिनकी दो कृतियो—**इक्यावन श्लोकों की स्पन्दकसूत्र** या **स्पन्दकारिका** तथा **शिवसूत्र में त्रिक् दर्शन** या **अद्वैत दर्शन** का उल्लेख हुआ है। भट्ट कल्लट राजा अवन्तिवर्मन के राज्यकाल मे थे। अपने गुरु की कृति स्पन्दकारिका की टीका स्पन्द सर्वस्व उन्होने लिखी जिसका उद्घाटन ब्यूहलर ने कश्मीर मे सस्कृति हस्तलिपियो की खोज के दौरान किया।[१४] इसके अनुसार त्रिक् या अद्वैत शैव दर्शन एक आध्यात्मिक दर्शन है जिसमें मानव, विश्व तथा वास्तविकता के सिद्धान्त, आध्यात्मिक अनुभव की समृद्धि से निर्धारित है न कि व्यक्ति के सामान्य अनुभवो से।[१५] इसीलिए यह कापालिक व कालामुख सम्प्रदायो की मान्यताओ की आलोचना करते हुए ज्ञान को ही परमात्मा की प्राप्ति का एकमात्र साधन मानते हैं।

कश्मीरी शैव मत मे शिव को अद्वैत शक्ति माना गया है। सम्पूर्ण ससार उसी का रूप है तथा शक्ति के साथ मिलकर वह सृष्टि की रचना करता है। चित्, आनन्द, ज्ञान, क्रिया, इच्छा उसकी शक्तियॉ मानी गई है। प्रत्येक जीव शिव का ही रूप है किन्तु अज्ञानता के कारण उसे इसका बोध नही हो

---

१२ सी० वी० वैद्य **'मेडिवल हिन्दू इण्डिया'** पूना १९२४, १९२६, पृ० ४२१

१३ राज०-V-१२४

१४ ब्यूहलर रिपोर्ट—बम्बई १८७७, पृ० ७८

१५ जे० सी० चटर्जी **कश्मीर शैविज्म** श्रीनगर १९१४ खण्ड I, पृ० १५
एच० भट्टाचार्य **'कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया'** खण्ड (I-IV) १९५३-६२ कलकत्ता, खण्ड IV पृ० ७९

पाता। अज्ञानता का आवरण हटते ही जब उसे वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है तब जीव को इस ससार मे बार-बार के आवागमन से मुक्ति मिल जाती है—यही मोक्ष की स्थिति है। इसमे भक्ति की महत्ता को भी स्वीकार किया गया है। कल्हण के पिता चम्पक ने नन्दिक्षेत्र के सभी शैव पवित्र स्थलो की यात्रा की थी।[१६] अभिनवगुप्त के तत्रलोक के टीकाकार जयरथ—जिनके गुरु कल्याण (कल्हण) थे- के अनुसार कश्मीरी शैव दर्शन मे तीन सिद्धान्त माने जाते है—शिव (सर्वोच्च), शक्ति (शिव की शक्ति) तथा अणु (व्यक्तिगत आत्मा)। इनमे शक्ति बहुत शक्तिशाली है किन्तु बिना शिव के वह व्यर्थ है।[१७] राजतरङ्गिणी मे स्वय कृष्ण ने कहा है—कश्मीर भूमि पार्वती है तथा इसका राजा साक्षात् शिव का स्वरूप है।[१८] इस तरह कश्मीरी लोगो के सम्पूर्ण जीवन दर्शन को शक्ति (पार्वती) का स्वरूप माना गया है।

यद्यपि कश्मीरी, शैव दर्शन की तुलना वेदान्त से की जाती है किन्तु वेदान्त दर्शन जहाँ ससार को मिथ्या मानता है वही—कश्मीरी शैव दर्शन मे इसे सर्वोच्च सत्ता की कृति होने के कारण वास्तविक माना गया है। पुन. वेदान्त के अनुसार स्व-अनुभूति (वास्तविक ज्ञान प्राप्त) होने पर जो कुछ भी हम जानते है वह विस्मृत हो जाता है जबकि कश्मीरी शैव दर्शन के अनुसार जब 'स्व' की अनुभूति होती है, तो यह विश्व अपने वास्तविक रूप मे दिखाई पड़ने लगता है—यही अनुभूति **'प्रत्याभिज्ञा'** कहलाती है।[१९] और इसीलिए कश्मीरी शैव दर्शन के लिए 'प्रत्याभिज्ञा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अपनी सम्पूर्ण शुद्धता एव सूक्ष्मता के कारण कश्मीरी शैव दर्शन अन्य शैव सम्प्रदायो की तुलना मे अधिक तर्कसगत एव सहिष्णु प्रतीत होता है।[२०] भगवान शिव को विष्णु से श्रेष्ठ माना गया है—इसके उद्धरण प्राप्त होते है। महाभारत के द्रोणपर्व से पता चलता है कि कृष्ण तथा अर्जुन ने शिव से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिए हिमालय पर्वत जाकर शिव आराधना किया था। इसी प्रकार कृष्ण ने पुत्रप्राप्ति

---

१६ राज० VII ९५४, VIII २३६४-२३६५

१७ एस० के० दास० **शक्ति ऑर् डिवाइन पॉवर कलकत्ता** १९३४, पृ० ६३

१८ नीलमत २३७, राज० I ७२

१९ के० सी० पाण्डेय—**अभिनवगुप्त ऐन हिस्टोरिकल ऐण्ड फिलॉसफिकल स्टडी** बनारस, १९३६, पृ० १७२-१७३

२० भण्डारकर पूर्वो० पृ० १२९

हेतु हिमालय पर्वत जाकर शिवाराधना किया था। राजतरङ्गिणी मे शिव को सर्वोच्च मानते हुए उनके अश अर्थात् कश्मीरनरेश का विरोध न करने का उपदेश दिया गया है।[२१] कल्हण के अनुसार, कश्मीर के राजाओ, मन्त्रियो, रानियो तथा अन्य लोगो ने धर्मप्राप्ति हेतु अनेक शिवमदिरो की स्थापना करवाई। कश्मीर मे निर्माणकर्ताओ ने अपने नाम पर शिवमन्दिरो, मठो, विहारो या अन्य निर्माणकार्यो का नामकरण किया। मिहिरकुल ने मिहिरेश्वर शिव,[२२] राजा गोकर्ण ने गोकर्णेश्वर शिव[२३] तथा इसी प्रकार विजयेश्वर, ईशानेश्वर, प्रवरेश्वर, रणेश्वर व रणस्वामी, अमृतेश्वर, विम्बेश्वर, नरेन्द्रेश्वर, जयेष्ठेश्वर, मित्रेश्वर, शूरेश्वरी क्षेत्र मे अर्द्धनारीनटेश्वर, काव्यदेवीश्वर, त्रिपुरेश्वर, सुगन्धेश, रत्नवर्धनेश्वर, पर्वगुप्तेश्वर, सोमेश्वर सदृश अनगिनत मदिरो एव शिवलिङ्गो की स्थापना की गई।[२४]

ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश त्रिदेव का उल्लेख कल्हण ने किया है।[२५] नीलमतपुराण मे गणेश का उल्लेख दो बार हुआ है।[२६] जबकि राजतरङ्गिणी मे कार्तिकेय, गणेश, पार्वती, उमेश के दर्शन, स्पर्श से मोक्ष की प्राप्ति सभव बताया गया है। विनायक भीमस्वामी की प्रवरसेन II के समय नित्य पूजा होती थी।[२७]

वैष्णव धर्म

विष्णु की उपासना करने वालो को वैष्णव कहा जाता है। यह ऋग्वैदिक देवता है जो अन्य देवताओ के समान प्रकृति के देवता है। ऋग्वेद मे इनकी पॉच स्तुतियॉ प्रस्तुत की गई है।[२८] शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है कि बौने रूप मे असुरो से तीन पग जमीन प्राप्ति का वरदान पाकर वह किस प्रकार शरीर बढ़ाकर तीन पग मे तीनो लोको को नाप लिया था।[२९] इसीलिए अन्य देवो से इनका अधिक महत्त्व है। तैत्तरीय आरण्यक मे इनकी पहचान नारायण या वासुदेव के रूप मे की गई है[३०] जो महाभारत

---

२१ राज० I ७२
२२ वही I ३०६
२३ वही I ३४५
२४ वही II १४, ६२, १३४, १३५, III ९९, ४३९, ४६०, ४६४, ४७४, ४८२, IV ३८, १९०, २०९, V ३८, ४१, ४५, १५८, १६३, VI १३७, १४२, १७२, VII १८०, ५२४, ५३२, १६३५, VIII. २४०९, २४३२, ३३४८, ३३५४, ३३६५, ३३९१
२५ वही I २६-२७
२६ नीलमत, ९९४,१०३३
२७ राज० I २९, ३२, III ३५२
२८ भण्डारकर पूर्वो० खण्ड IV पृ० ४७, कीथ—पूर्वो० पृ० १०८, ऋग्वेद १, २२, ७
२९ भण्डारकर पृ० ३३, सूर्यकान्त **'द एसेन्स ऑव वैष्णविज्म'** इ० हि० क्व०, ३२, १९५६, खण्ड ४, पृ० ३५९-३६७

मे पूर्णतया स्थापित हो जाती है क्योंकि इसमे विष्णु के विभिन्न अवतारो का उल्लेख है जिनमे से एक कृष्ण वासुदेव है, जो मथुरा निवासी वसुदेव के पुत्र तथा घोर अगिरस के शिष्य थे। इनके अनुयायी इन्हे भगवत् (पूज्य) कहते थे इसलिए इनके द्वारा प्रवर्तित धर्म भागवत कहलाया जो कालान्तर मे वैष्णव धर्म मे प्रवर्तित हो गया।[३१] पाणिनि ने भी वासुदेव के भक्तो के सन्दर्भ दिये है।[३२] भागवत धर्म से सम्बन्धित प्रथम प्रस्तर-स्मारक विदिशा (बेसनगर) का गरुड स्तम्भ है, इससे पता चलता है कि तक्षशिला के यवन राजदूत हेलियोडोरस ने भागवत धर्म ग्रहण किया था तथा इस स्तम्भ की स्थापना की थी। इसमे हेलियोडोरस को 'भागवत' तथा वासुदेव को 'देवदेवस' (देवताओ के देवता) कहा गया है।[३३] ईसा पूर्व से ही इसके ख्यातिप्राप्त होने के साक्ष्य हमे घोषुडी,[३४] नानाघाट[३५] तथा बेसनगर[३६] के अभिलेखो से होती है। नारायण के उपासको को **'पाञ्चरात्र'** कहा जाता था। अत. महाभारत के शान्तिपर्व मे नारायण का तादात्म्य जब वासुदेव-विष्णु से स्थापित किया गया तब वैष्णव धर्म की एक सज्ञा **'पाञ्चरात्र धर्म'** हो गई।

गुप्तकाल मे वैष्णव धर्म का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हुआ। गुप्तनरेशो ने वैष्णव धर्म को राज-धर्म तथा विष्णु के वाहन गरुड को अपना राजचिह्न ही नही घोषित किया अपितु 'परमभागवत, परमवैष्णव, परमदैवत' सदृश वैष्णव उपाधिया धारण किया। इस काल मे लिखे गये पुराणो मे विष्णु के दशावतारो का विस्तृत वर्णन किया गया है। कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने भी विष्णु के विभिन्न अवतारो को आधार मानकर 'दशावतारचरित' की रचना की थी।[३७] कश्मीरनरेश अवन्तिवर्मन (८५५-८८४ ई०) को परम-वैष्णव कहा गया है।[३८] अजमेर प्रस्तर अभिलेख[३९] में दशावतार निम्न बताये गये है।

कूर्म, मीन, वराह, नृसिह, वामन, जमदग्न्य (परशुराम) दाशरथी राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्लि। गीत गोविन्द तथा वर्णरत्नाकर में कृष्ण को दस अवतारो की सूची मे नही रखा गया है। यद्यपि उसका

३१ विष्णु पुराण ७-१२
३२ अष्टाध्यायी IV, ३ ९८
३३ डी० सी० **सरकार सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स**—खण्ड I अ० I ३ पृ० २०
३४ वही "
३५ **ऑर्क्यालॉजिकल सर्वे ऑव वेस्टर्न इण्डिया,** खण्ड V पृ० ७४
३६ सरकार पूर्वो० खण्ड I सर्ग २, पृ० ९०
३७ कीथ—**'ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर'** ऑक्सफोर्ड—१९६1 पृ० १३६, दशावतारचरित काव्य माला २६
३८ सी० वी० वैद्य—पूर्वो० खण्ड III पृ० ४१५
३९ इपि० इण्डि०—२३ स० २५

तादात्म्य विष्णु मे किया गया है।[४०] दन्तिदुर्ग ने एलोरा मे दशावतार का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया था जिसमे विष्णु के दस अवतारो की कथा मूर्तियो मे अंकित है। भगवद्गीता[४१] मे दस अवतारो को औचित्य प्रदान करते हुए कहा गया है 'जब जब धर्म का पतन होगा और अधर्म बढेगा, मै पाप आत्माओ की समाप्ति के लिए बार-बार जन्म लूगा, बारहवी शती मे धार्मिक जीवन के केन्द्र मे राम व श्रीकृष्ण को स्थापित करने के पीछे भक्ति आन्दोलन के अवतारवाद की ही पृष्ठभूमि थी।[४२] पूर्वमध्यकाल मे विष्णु के वराह अवतार की पूजा काफी प्रसिद्ध थी।[४३] भोज प्रतिहार ने आदिवराह उपाधि धारण कर रखी थी तथा अपने सिक्को पर आदिवराह के चित्र उत्कीर्ण करवा रखे थे।[४४] चन्देल शासको द्वारा निर्मित खजुराहो-समूह के मदिरो मे आदिवराह का मदिर प्राप्त होता है।[४५] राजतरङ्गिणी[४६] मे उल्लेख है कि आदिवराह भगवान की तरह पृथ्वी को जल से उद्धार करके वहाँ नाना प्रकार के जल सकुल ग्राम बसाये गये।

कृष्ण सम्प्रदाय (अवतार) पूर्वमध्यकाल मे लगभग पूरे भारत मे प्रचलित था जिसे अपनी-अपनी पद्धति से जयदेव, निम्बार्क व अन्य भक्तो ने प्रचारित-प्रसारित किया। माउन्ट आबू (राजस्थान) के लून वसही जैन मदिर मे कृष्ण जीवन से सबधित चित्र अंकित किये गये है।[४७] श्रीकृष्ण से सम्बन्धित अनेक मदिर कश्मीर मे प्राप्त होते है जो राजाओ, रानियो, मत्रियो तथा अन्य श्रद्धालुओ द्वारा बनवाये गये।[४८] श्रीराम का लक्ष्मण व सीता के साथ विवेच्यकाल में पूजन किया जाता था, इसकी पुष्टि इनके बने मदिरो से होती है।[४९] पवनसुत हनुमान के पूजन के भी साक्ष्य प्राप्त होते है।[५०]

---

४० जयदेव—'गीत गोविन्द' निर्णय सागर प्रेस, I १.१.१२

४१ **यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
अभ्युत्थानऽधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥ भगवद्गीता IV ८

४२ **दशावतारचरित**—पूर्वो० पृ० १६०

४३ शिवराममूर्ति—पूर्वो० स० ६ जनवरी १९५०, पृ० ४२

४४ मेमो० आर्क्या सर्वे इण्डि०—स०११ (१९२२) पृ० १३

४५ के० भुजबली शास्त्री **'जैन एन्टिक्वायरी'** अक १९, स० १ जून १९५३ पृ० ५२

४६ राज० V १०६

४७ **क्रैमरिच स्टेला 'द आर्ट ऑव इण्डिया'** प्लेट १३९

४८ राज० III २६३, ३५०, ४४४-४५८, IV ४, ६, १०, ७८-८१, १८३-१८८, १९३-१९८, २०१-२०२, २०८, २७५, ४८४, ५१७ ६४७, V २५, २४४, २४५, VI १७८, २९९, VIII. ७९, ८०, ३३६८

४९ राज० I २९८ III ४७३-४७५, ५०५, ६४१, IV २७४, ३२७, ३३४, ३३५, VII १२०२, VIII १०५५, १८०६, ३३७२

५० राज० VIII ४०९

बुद्ध व अन्य सम्प्रदायो को अवतारवाद के माध्यम से वैष्णव धर्म मे समाहित करके धार्मिक सहिष्णुता को स्थापित करने का जो प्रयास किया गया वह अन्यत्र दुर्लभ है। रामानुजाचार्य ने दक्षिण मे नारायण की पूजा का उपदेश देकर उसे नई प्रेरक शक्ति प्रदान की तथा निम्बार्क सहित इस धर्म को दार्शनिक आधार प्रदान किया। कृष्ण की पूजा को जयदेव तथा निम्बार्क ने नया स्वरूप दिया जिसे आगे चण्डीदास व चैतन्य ने बढाया।[५१] आगे चलकर विष्णु का रामावतार काफी लोकप्रिय हुआ, जिसके लिए तुलसीदास का सबसे अधिक योगदान है जिन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना कर समाज मे रामभक्ति की महत्ता को प्रतिष्ठित किया।

ज्ञान, कर्म एव भक्ति को मोक्ष-प्राप्ति के साधन माना जाता है किन्तु वैष्णव धर्म मे केवल भक्ति द्वारा ईश्वर प्राप्ति को सभव बताया गया है। गीता मे कहा गया है कि जो सम्पूर्ण कर्मो को मेरे मे अर्पण करके मुझे ही अनन्य भाव से भजते है उनका मै शीघ्र ही मृत्युरूपी ससार सागर से उद्धार कर देता हूॅ।[५२] वैष्णव धर्म मे मूर्ति-पूजा तथा मन्दिरो का महत्वपूर्ण स्थान है। ब्रत, उत्सव, तीर्थ यात्रा भक्ति के अवयव माने जाते है।

पाञ्चरात्र धर्म मे वासुदेव विष्णु की उपासना के साथ-साथ जिन अन्य चार देवो की पूजा की जाती है उन्हे 'चतुर्व्यूह'[५३] कहा जाता है। जो निम्न है—

अ. सकर्षण — वासुदेव के रोहिणी से उत्पन्न पुत्र

ब. प्रद्युम्न — कृष्ण के रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र

स. साम्ब — कृष्ण के जाम्बवन्ती से उत्पन्न पुत्र

द. अनिरुद्ध — प्रद्युम्न के पुत्र

पाञ्चरात्र सम्प्रदाय को भागवत सम्प्रदाय से भिन्न माना गया है।[५४] पाञ्चरात्र को अवैदिक तथा ब्राह्मण विरोधी माना गया है तथा माना जाता है कि यदि कोई ब्राह्मण पाञ्चरात्र धर्म मे स्थानान्तरित

---

५१ एस० के० डे० **"अर्ली हिस्ट्री ऑव द वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेन्ट इन बगाल"** कलकत्ता १९४२, पृ० २१

५२ श्रीमद्भागवद्गीता १२६७

५३ इन्डि० हिस्ट० क्वा० VI १९३०, पृ० ३१५, ४३७, VII १९३१, ३९३, ३४३, ७३५

५४ भण्डारकर—पूर्वो० पृ० ११

हो जाता है तो वह न केवल अपने वैदिक कर्मकाण्डो से वचित हो जाता है अपितु उसे रौरव नरक भोगना पड़ता है।[५५] इस आधार पर कहा जा सकता है कि शैव व वैष्णव दोनो ही धर्म हिन्दूपरक तथा वैदिक थे जिनकी विवेच्यकालीन कश्मीर मे अत्यन्त मान्यता थी।

अन्य हिन्दू देव एवं देवियाँ

सूर्य—सूर्य पूजा की परम्परा काफी प्राचीन है। ऐसी मान्यता है कि सूर्य पूजा के पूर्वी ईरानी स्वरूप को मग राजा अपने साथ लाये थे।[५६] अलबेरुनी के अनुसार ये मग शासक ही थे जो सूर्य प्रतिमा के प्रति समर्पित थे। पाटन दानपत्र (११९९ ई०)[५८] तथा अन्य अभिलेखो से विदित होता है कि अनेक राजा सूर्य उपासक थे जिन्होने सूर्य मदिरो को अग्रहार दान दिया था।[५९] सूर्य देवता का सम्बन्ध विष्णु, शिव, ब्रह्मा के साथ जोडा जाता है। पश्चिम भारत मे जैनियो जैसे ब्राह्मणेतर सम्प्रदायो द्वारा इनकी पूजा करने के साक्ष्य प्राप्त होते है।[६०]

कश्मीर मे सूर्य पूजा का सम्बन्ध राजा ललितादित्य द्वारा निर्मित प्रसिद्ध मार्तण्ड मदिर से स्थापित किया जाता है।[६१]इस मदिर मे तीन मूर्तियो को प्रतीक माना गया है—प्रात.काल उत्पत्तिकर्ता के रूप मे ब्रह्मा, दोपहर मे पालनकर्त्ता रूप मे विष्णु तथा सायकाल मे सहारक के रूप मे शिव।[६२] इनके लिए 'महीश्वर' नाम भी प्राप्त होता है।[६३]

चन्द्र—चन्द्रमा को देवरूप में उल्लिखित किया गया है[६४] नीलमतपुराण के अनुसार सुचन्द्र नामक राजा ने चन्द्रदेव की प्रतिमा उत्कीर्ण करवायी थी।[६५]

---

५५ एस० एन० दासगुप्ता **'ए हिस्ट्री ऑव इन्डियन फिलासफी'** कैम्ब्रिज, १९४०, खण्ड III पृ० १९-२०

५६ वृहत्सहिता

५७ सचाऊ खण्ड I पृ० १२१

५८ एस० सी० रे०—**डाइनेस्टिक हिस्ट्री**—खण्ड II पृ० १००६

५९ एच० डी० सकालिया **'आर्क्यालॉजी ऑव गुजरात'** पृ० २४६

६० **'प्रबन्ध चिन्तामणि'** (सि० जै० ग्र) पृ० ८२

६१ राज०—पूर्वो० I २९९ III ४६२ IV/१९२ VII ७०९, ७१५, ७७२, १०९६, ३२८१, ३२८८, ३२९५

६२ जन० एशि० सोसा० बगाल—१८४८, पृ० २६६

६३ राज० VII ७१०

६४ राज० IV ३९९

६५ नीलमत—श्लोक १००९

ब्रह्मा—राजस्थान मे ब्रह्मा जी के स्वतत्र पूजन के साक्ष्य प्राप्त होते है।[६६] जबकि राजतरङ्गिणी मे इनका उल्लेख त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप मे हुआ है।[६७]

वरुण—वरुण को मध्यलोक का प्रभु माना गया है।[६८] कीथ महोदय ने इन्हे जल का देवता माना है।[६९] नीलमत पुराण मे बलि द्वारा वरुण देव की पीठ तथा ऋषि पुलस्त्य द्वारा प्रतिमा के अनावरण कराने के उल्लेख प्राप्त होते है।[७०]

इन्द्र—वैदिक देवो मे इन्द्र महत्त्वपूर्ण देवता थे किन्तु बाद मे ब्रह्मा व शिव के महत्त्व के कारण इन्द्र की स्थिति उपदेवता की हो गई। कल्हण ने इन्द्र को क्रुद्ध व पर्वतनाशक बताया है।[७१] इन्होने ही अपने ग्रथ मे सन्ध्या देवी[७२] तथा वाग्देवी (सरस्वती)[७३] का उल्लेख किया है। सुरगुरु बृहस्पति का भी कई स्थलो पर उल्लेख हुआ है।[७४]

कल्हण ने अन्य प्रमुख हिन्दू देव-देवियो मे शेषनाग[७५] कल्लिदेव[७६] अग्निदेव[७७] चामुण्डा[७८] शारदा देवी[७९] भ्रमरवासिनी भगवती[८०] शारिका देवी[८१] का उल्लेख किया है।

बौद्ध धर्म

छठी शती ई० पू० की धार्मिक क्रान्ति मे बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रवर्तक गौतम बुद्ध ने उपदेशो मे जनमानस को अपनी ओर आकर्षित किया। मौर्यनरेश अशोक के प्रयासो

---

६६ दशरथ शर्मा—'**अर्ली चौहान डाइनेस्टीज**'—दिल्ली १९५९ पृ० २२९
६७ राज० I २६-२७
६८ वही II १४८, III ५३, ६२-६३
६९ कीथ '**रेलिजन एण्ड फिलॉसफी ऑव द वेद**'—हर्वर्ट ओरिएटल सिरीज, लदन, १८९५ पृ० १७५
७० नीलमत १००४-१००६
७१ राज० I ९१-९२, II ४७, IV २२२-२२४, २३९, ३७२, VII ५३२, VIII १६५२
७२ वही I ३३
७३ वही I. ३५-३७ V १५९
७४ वही VI २७४, VII ९४
७५ राज० पूर्वो० VI ३६८
७६ वही III १२८
७७ स्टेइन—I, ३४, VIII २५० (पा० टि०) मे अग्निदेव के मदिर का उल्लेख है।
७८ वही VII १७०७
७९ वही IV ३२५, VIII २५५६
८० वही III ३९४
८१ वही III ३४९

के कारण यह विश्वधर्म के रूप मे स्थापित हो सका, किन्तु विवेच्यकाल मे अनेक कारणो से बौद्ध धर्म अपनी ही जन्मस्थली से विलुप्त हो गया। यद्यपि—ग्यारहवी-बारहवी शती मे कश्मीर मे इसकी स्थिति ठीक थी, जहॉ राजा, रानियॉ, मत्रीगण, शैव अथवा वैष्णव मतावलम्बी होते हुए भी बौद्ध धर्म को सरक्षण प्रदान किया तथा इस धर्म से सम्बन्धित अनेक मठो, विहारो, बौद्ध प्रतिमाओ का निर्माण करवाया। कश्मीर नरेश अशोक ने अनेक स्तूप, चैत्य तथा विहार निर्मित करवाया था।[८२] एक मान्यता के अनुसार राजा सुरेन्द्र ने दरद देश के सोरक नगर मे नरेन्द्र भवन तथा सौरस नामक दो विहार बनवाये—इसे ही कश्मीर मे बौद्ध धर्म का प्रारम्भ माना जाता है।[८३] नीलमतपुराण के अनुसार[८४] बुद्ध को भगवान विष्णु का अवतार माना गया है—इसलिए वैशाख माह की पूर्णिमा को बुद्ध का जन्म दिवस मनाने का उल्लेख है, जिसमे बुद्ध की प्रतिमा की विभिन्न प्रकार की जडी-बूटियो, हीरे-जवाहरातो, सुगन्धित पदार्थो से शाक्यो द्वारा सजाकर सफेदी की गई चैत्य की दीवारो—जिसमे देवताओ के चित्र लगे होते थे तथा जिसकी फर्श शहद से लीपी जाती थी—पूजा की जाती थी। इस अवसर पर बौद्धो को वस्त्र, भोजन तथा पुस्तके उपहारस्वरूप दी जाती थी। इस प्रकार का उत्सव तीन दिनो तक चलता था। इसी प्रकार का उद्धरण कृत्यकल्पतरु मे भी प्राप्त होता है।[८५]

सातवी शती के चीनी यात्री ह्वेनत्साग ने यद्यपि कश्मीर मे बौद्ध धर्म के बारे मे कुछ नही लिखा किन्तु इस समय के राजा ने बौद्ध धर्म के प्रति अपनी सम्मानित भावना प्रदर्शित करने के लिए बौद्ध भिक्षु का सम्मान करने कपिशा आया था।[८६] कल्हण ने लिखा है कि बुद्ध भगवान के निर्वाण से १५० वर्ष बाद कश्मीर मे बौद्ध भिक्षुओ का प्राधान्य था।[८७] मेघवाहन तथा उनकी रानियॉ अमृतप्रभा, मूकदेवी एव इन्द्रदेवी ने अनेको बौद्ध विहार बनवाये।[८८] प्रवरसेन द्वितीय के मामा जयेन्द्र ने जयेन्द्रविहार बनवाया

---

८२ राज० पूर्वो० I, १०१, १०३
८३ वही I ९३-९४
८४ नीलमत० ६८४-६८९
८५ लक्ष्मीधर पृ० १५९-१६०, काणे—खण्ड II पृ० ७२२
८६ स्टेइन—राज० पूर्वो० III ३५५
८७ राज० पूर्वो० I १७२
८८ वही III ८-१४

तथा वही एक बहुत बड़ी बुद्ध प्रतिमा का अनावरण करवाया।[८९] दुर्लभवर्द्धन की पत्नी अनगलेखा ने विहार बनवाया था।[९०] इसी प्रकार राजा ललितादित्य ने ८४ हजार सेर कासे की बुद्ध प्रतिमा बनवाया[९१] जयापीड ने जयपुर मे तीन बुद्ध की मूर्तियाँ, कुषाण नरेश हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क ने विभिन्न विहार, मठ व चैत्य बनवाये।[९२] यद्यपि पुरातात्त्विक साक्ष्यो से आठवी शती की बुद्ध इमारते प्राप्त होती है।[९३] किन्तु बुद्ध व बोधिसत्त्व की प्रतिमाए घाटी से प्रारम्भिक काल की ही प्राप्त हुई है।[९४]

क्षेमेन्द्र ने जातक कथाओ के आधार पर बोधिसत्त्वावदान-कल्पलता की रचना की। उनके पुत्र सोमेन्द्र ने इसी कृति के प्रस्तावना मे लिखा है कि उनके पिता ने एक ब्राह्मण सज्जनानन्द तथा उसके मित्र नक्क की प्रार्थना पर इसकी रचना की थी।[९५] कथासरित्सागर[९६] बौद्ध धर्म की विशेषताओ से भरी हुई है।

भारत मे बौद्ध धर्म के पतन पर विस्तृत सर्वेक्षण करने वाले आर० सी० मित्रा की मान्यता है कि ग्यारहवी शती मे बौद्ध धर्म कश्मीर मे काफी समृद्ध था। वे फाउचर के इस मत से सहमत नही है कि इस समय बौद्ध धर्म काफी कमजोर हो गया था।[९७] किन्तु विभिन्न साक्ष्यो से यह स्पष्ट होता है कि इस समय बौद्ध धर्म पतनोन्मुख था।

के० सी० पाण्डेय के अनुसार नवी शती के दूसरे दशक मे महान शैव दार्शनिक शकराचार्य ने बौद्ध धर्म पर अन्तिम प्रहार किया, इसी के परिणामस्वरूप नया तत्र सम्प्रदाय शक्तिशाली हुआ तथा लोगो की जिज्ञासा इसके बारे मे और अधिक जानने की हुई।[९८] बौद्ध धर्म मे बुराइयाँ आ गई तथा सभी राजा इसके विरुद्ध हो गये।[९९] किन्तु विल्सन महोदय कहते है कि कश्मीर मे शैव दर्शन का

---

८९ वही III ३५५
९० वही IV ३
९१ वही IV १८८, २००, २१०, २११, २१४, २५९-२६९
९२ वही I १७०
९३ आर्क्या, सर्वे० रि० १९१५-१६, पृ० ५२
९४ आर० सी० काक—हैण्डबुक पृ० ११-२४, २७-३४, ३८
९५ बोधिसत्त्व—अनु० शरतचन्द्र दास एण्ड प० हरिमोहनविद्याभूषण, कलकत्ता १८८८ खण्ड I पृ० ३
९६ कीथ—पूर्वो० पृ० २४९
९७ आर० सी० मित्रा—**'डिक्लाइन ऑव बुद्धिज्म इन इण्डिया'** कलकत्ता १९५४ पृ० १३५
९८ के० सी० पाण्डेय **'अभिनवगुप्त...'** बनारस १९६३ पृ० १५३, २६४-२६५
९९ वही पृ० १५१

प्रारम्भ राजा अवन्तिवर्मन (नवी शती) के शासनकाल मे हुआ और ऐसे कोई सकेत नही मिलते जिससे सिद्ध हो कि शैव धर्म के कारण बौद्ध धर्म का पतन हुआ—इसके विपरीत कश्मीरी शैव दर्शन मे अधिक सहृदयता तथा मानवता बौद्ध धर्म के कारण ही आयी।[१००] कश्मीरी राजाओ, रानियो, मन्त्रियो तथा जनसामान्य की बौद्ध धर्म के प्रति भावनाओ का अदाज उनके द्वारा बनवाये गये बौद्ध विहारो, चैत्यो तथा बुद्ध प्रतिमाओ से लगाया जा सकता है।[१०१] राजा क्षेमगुप्त (९५०-९६८ ई०) ने प्रसिद्ध जयेन्द्र विहार मे आग लगवा दिया तथा बुद्ध की कास्यप्रतिमा का उपयोग अपने द्वारा बनवाये गये शिव मदिर मे किया।[१०२] परन्तु डॉ सुनील रे तथा आर० सी० मित्रा इस विहार पर आग लगाये जाने को सदेहास्पद मानते है तथा इस घटना को धार्मिक की अपेक्षा राजनीतिक मानते है,[१०३] क्योकि विद्रोही डामर सग्राम तथा पदच्युत होने के बाद राजा पार्थ (९०६-९२१ ई०) ने इसी विहार मे शरण लिया था।[१०४]

राजा कलश (१०६३-८९ ई०) ने बौद्ध विहार से कॉस्य प्रतिमाओ को जब्त कर लिया था किन्तु उसका व्यवहार अन्य धर्मो के प्रति भी बुरा था।[१०५] राजा हर्ष द्वारा देव प्रतिमाओ के विनाश तथा मदिरो, विहारो के अपहरण के सन्दर्भ मे कल्हण ने लिखा है कि उसने ऐसा करने के लिये पृथक अधिकारी (देवोत्पाटननायक) नियुक्त कर रखा था जो सभवत बिना किसी भेदभाव के मूर्तियो तथा मदिरो, विहारो के धन का अपहरण करता था। कनक तथा भिक्षु कुशल श्री के अनुरोध पर हर्ष ने रणस्वामी तथा मार्तण्ड प्रतिमाओ के साथ परिहासपुर तथा श्रीनगर की दो बुद्ध प्रतिमाओ को भी नष्ट नही किया।[१०६] इससे स्पष्ट होता है कि उसका दृष्टिकोण सभी धर्मो के प्रति एक समान था। कुछ चीनी तथा तिब्बती स्रोतो से हर्ष के बौद्ध लेखन के साक्ष्य प्राप्त होते है।[१०७]कल्हण ने भी हर्ष की साहित्यिक क्षमता की प्रशसा की है किन्तु हर्ष ने बौद्ध रचनाए कब की यह स्पष्ट नही होता।

---

१०० आर० सी० मजूमदार **द स्ट्रगल फार एम्पायर'** बम्बई १९५७ पृ० ४२१
१०१ के० सी० पाण्डेय—पृ० २६५-२६६
१०२ राज० पूर्वो० VI १७१
१०३ आर० सी० मित्रा-पूर्वो० पृ० २२, एस० सी० रे **'अर्ली हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव कश्मीर'** पृ० १६६
१०४ राज० V ४२८, VI १७१-१७३
१०५ वही VII ६९६
१०६ राज०—VII १०९७ स्टेइन-राज० खण्ड I पृ० ७
१०७ मजूमदार—पूर्वो० पृ० ४१९

कश्मीर की धार्मिक सहिष्णुता अद्वितीय थी। एक राजा एक साथ सभी धर्मो के प्रति आदर रखता था। राजा ललितादित्य ने दर्पितपुर मे केशवदेव तथा क्रीडाराम विहार, ललितपुर में आदित्य भगवान, हुष्कपुर मे श्रीमुखस्वामी, ज्येष्ठेश्वर रुद्र, मार्तण्ड भगवान, परिहासपुर मे परिहास केशव, विष्णु, बराह भगवान, बुद्ध भगवान तथा जिनदेव की मूर्तियॉ समान लागत से बनवाई।[१०८]

जब भारत मे बौद्ध धर्म पतनोन्मुख था उस समय कश्मीर मे इसका अस्तित्व था। बौद्ध धर्म इस समय अपने वास्तविक स्वरूप तथा सिद्धान्तो से हट गया था एवं उसमे तत्रवाद के विचारो तथा मान्यताओ का अत्यन्त प्रभाव पड़ा। रंगपुर और ढाका जिलो से पत्थर व धातु के अनेक तांत्रिक यंत्र मिले है जो हिन्दू धर्म के विष्णु चक्रो के समान है इससे बौद्ध तत्रवाद पर हिन्दू तत्रवाद का प्रभाव प्रतीत होता है। शैव देवी चामुण्डा भी बौद्ध धर्म मे सम्मिलित कर ली गई थी।[१०९]

बौद्ध धर्म के पतन का कारण उसका कई भागों मे विभाजित होना है।[११०] प्रारम्भ मे बौद्ध धर्म हीनयान एव महायान सम्प्रदायो मे विभाजित हुआ था—इनका उद्भव क्रमश स्थविर तथा महा-साघिक से हुआ था। कश्मीर के कुण्डनवन मे होने वाली-वसुमित्र की अध्यक्षता वाली चतुर्थ बौद्ध सङ्गीति मे ये सम्प्रदाय अस्तित्व मे आये। आगे चलकर हीनयान—वैभाषिक तथा सौत्रान्तिक एव महायान-शून्यवाद (माध्यमिक) तथा विज्ञानवाद (योगाचार) मे विभाजित हो गये। सातवीं—आठवी शती मे वज्रयान नया सम्प्रदाय बना जिस पर तत्र-मत्र तथा शाक्त धर्म का प्रभाव था।

वैभाषिक मत की उत्पत्ति मुख्य रूप से कश्मीर मे हुई। विभाषाशास्त्र पर आधारित होने के कारण उसे वैभाषिक नाम दिया गया। इसमे चित्त एव बाह्य वस्तु के अस्तित्त्व को स्वीकार करते हुए वस्तुओ का ज्ञान केवल प्रत्यक्ष द्वारा संभव माना गया है। इसीलिये इसे 'बाह्य प्रत्यक्षवाद' भी कहा जाता है। इसके अनुसार प्रत्येक वस्तु का निर्माण परमाणुओ से हुआ है जो प्रतिक्षण अपना स्थान बदलते रहते है—अस्तु जगत का अनुभव इन्द्रियो द्वारा होता है।

---

१०८ राज०—IV १८३-२०४
१०९ ए० घोष—**'गाइड टू नालंदा'** पृ० ४७
११० मित्रा—पूर्वो० पृ० १४३

ग्यारहवी शती से कालचक्रयान का प्रभाव वगाल, मगध, दक्षिणी विहार तथा कश्मीर मे विकसित हुआ तथा इसके साथ-साथ बज्रयान सम्प्रदाय की बड़ी सख्या मे मूर्तियॉ मदिरो मे स्थापित होने लगी।[१११]

बौद्ध धर्म अपने मठीय (मठ सबधी) चरित्र के कारण पतन को प्राप्त हुआ। मठो मे व्याप्त अनैतिकता के कारण जनसामान्य से इसका स्वस्थ सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया।[११२]

क्षेमेन्द्र ने दशावतारचरित[११३] मे बुद्ध को विष्णु का एक अवतार माना है। यद्यपि छठी शती ई० से ही अवतारवाद की अवधारणा का विकास हुआ किन्तु ११वी-१२वी शती मे बौद्ध धर्म पूर्णतया हिन्दू धर्म मे आत्मसात् कर लिया गया। उड़ीसा का जगन्नाथ मदिर इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।[११४] कुछ विष्णु मूर्तियॉ भी ऐसी प्राप्त होती है जिनका मुकुट बोधिसत्त्वो की ध्यानी बुद्ध की तरह का है।[११५]

पूर्वमध्यकाल मे बौद्ध धर्म ने तत्रवाद से प्रभावित होने के कारण शासकवर्ग का समर्थन खो दिया जबकि समाज के निम्न तथा विशेषाधिकार मुक्त वर्ग इससे सम्बन्धित हुआ, परिणामस्वरूप एक प्रकार का सामाजिक सघर्ष होने के कारण बौद्ध धर्म को नुकसान हुआ।[११६]

तुर्की आक्रमण ने बौद्ध धर्म को सर्वाधिक हानि पहुॅचाई। मगध व बगाल के विहारो के ध्वसावशेष इसके प्रमाण है। बहुत से बौद्ध विद्वान तिब्बत व नेपाल भाग गए।[११७] ऐसी सामान्य अवधारणा है कि पूर्वमध्यमकाल में होने वाले मुस्लिम आक्रमणो तथा मध्यकालीन मुस्लिम शासको की धार्मिक कट्टरता के कारण भारत के अन्य धर्मो को अपूरणीय क्षति पहुॅची।

---

१११ मजूमदार—पूर्वो० पृ० ४१३
११२ मित्रा—पृ० १४७
११३ वही पृ० १३५
११४ हरे कृष्ण मेहताब **'द जगन्नाथ ऑव उड़ीसा'** पृ० २०
११५ बी० एन० एस० यादव—पूर्वो० पृ० ३४६
११६ मित्रा—पूर्वो० पृ० १३३
११७ बी० भट्टाचार्या—**'द इण्डियन बुद्धिस्ट इकोनोग्राफी'**, कलकत्ता, १९५८, पृ० ३९
काणे—हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र-पूना, १९३०, खण्ड V पृ० १०२५
जी सी पाण्डे **'बुद्ध धर्म के विकास का इतिहास'** लखनऊ १९६३, पृ० ४८६

जैन धर्म

छठी शती ई० पू० मे बौद्ध धर्म की तरह प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला सम्प्रदाय जैन धर्म माना जाता है। इसके प्रवर्तक महावीर की अहिसावादी उपदेशो के कारण तत्कालीन समाज मे इसे स्वीकार किया गया किन्तु कालान्तर मे किन्ही कारणो से इसका विकास स्थिर सा हो गया। राजस्थान व गुजरात मे यह अधिक प्रसिद्ध था तथा अनेक राजाओ ने विशाल जैन मदिरो की स्थापना करवायी। कश्मीर मे जैन धर्म का बहुत कम प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। श्रीनगर के संग्रहालय से तेरहवीं शती की पार्श्वनाथ की एकमात्र कास्य प्रतिमा प्राप्त होती है।[११८] राजा ललितादित्य ने परिहासपुर मे ८४ तोले सोने से चैत्य व विशाल जिन मूर्तियॉ बनवाई थी।[११९] उसके मत्री चिकुण ने चिकुण विहार बनवाया जिसमे जिन भगवान की स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित की गई।[१२०] अशोक जैन धर्मावलम्बी था जिसने शुष्कक्षेत्र व वितस्तात्र मे स्तूप बनवाये, वही उसने धर्मारण्य विहार मे ऊँचा जैन मदिर भी बनवाया।[१२१]

उपरोक्त कृतियो से स्पष्ट होता है कि कश्मीर मे जैन धर्म का प्रभाव भले ही व्यापक स्तर पर न रहा हो किन्तु कुछ लोग निश्चित रूप से इसके सिद्धान्तो से प्रभावित थे।

शाक्त-तंत्र सम्प्रदाय

शक्ति को ईष्ट देवी मानकर पूजा करने वालो का सम्प्रदाय 'शाक्त' कहा जाता है। प्राचीन भारतीय देवसमूह मे देवताओ के साथ-साथ देवियो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है तथा शक्ति की पूजा अत्यन्त प्राचीनकाल से कई रूपो—काली, दुर्गा, भवानी, चामुण्डा, रुद्राणी, लक्ष्मी, सरस्वती मे होती रही है। देवी को सभी प्राणियो मे—विष्णु-माया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, लज्जा, जाति, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, मातृ तथा भ्रान्ति रूपो मे—स्थित बताकर उनकी उपासना की गयी है। शाक्त धर्म का शैव धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है तथा शिवपत्नी पार्वती को जगज्जननी कहा गया है। राजतरङ्गिणी मे स्वयं कृष्ण ने कहा है कि कश्मीर भूमि

---

११८ आर० सी० काक—पूर्वो० पृ० ७६-७७
११९ राज०—पूर्वो० IV २००-२०१
१२० वही० IV २११-२१५
१२१ वही० I १०२-१०६

शक्तिस्वरूपा पार्वती है तथा इसका राजा साक्षात् शिव का अश है।[१२२] भट्टाचार्या जी के अनुसार तत्रवादी प्रवृत्ति यद्यपि बौद्ध धर्म की देन थी किन्तु किसी न किसी रूप मे वह प्रागैतिहासिक काल से विद्यमान रही है।[१२३] पी० सी० बागची[१२४] लिखते है कि परम्पराविरोधी हिन्दुओ तथा बौद्ध तत्रवाद मे विदेशी (चीनी व तिब्बती) तथा अनार्य आदिम (पुलिन्द, किरात, बर्बर) तत्त्व सम्मिलित थे। ग्यारहवी शती मे कश्मीरी शैव दर्शन जो काफी प्रसिद्ध था—स्पष्ट रूप से तत्रवादी था। उस समय वैष्णव तथा जैन सम्प्रदाय भी इसके प्रभाव से नही बच सके।[१२५]

तत्रवाद हिन्दू धर्म-ग्रथ का चौथा स्वरूप माना जाता है, तीन-श्रुति, स्मृति और पुराण है—ये पचम वेद माने जाते है।[१२६] मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट श्रुति के दो रूप मानते है—वैदिक एव तात्रिक।[१२७] तत्रवाद को श्रुति या आगम माना जाता है जो स्मृति या निगम का विरोधी है जिसे वेद का एक वर्ग कहा गया है।[१२८] विवेच्यकाल मे तंत्रवाद के अन्तर्गत भारतीय रसायन, आयुर्वेद, ज्योतिषविज्ञान, जन्मपत्री, धर्मशास्त्र के सम्मिलित हो जाने से इसकी परिभाषा करना कठिन हो गया यद्यपि इसे दर्शन एव धर्म दोनो माना जाता है। कश्मीरी शैव दर्शन-जहाँ शक्ति को महादेव की शक्ति का केन्द्र माना जाता है, बौद्ध तत्रवाद के उपाय और प्रज्ञा के समतुल्य माने गये है। तंत्रवाद का उद्देश्य सिद्धि, ज्ञान, स्वास्थ्य, धन तथा शक्ति प्राप्त करना है जिसमे जप और शब्द अथवा मत्र पर जोर दिया गया है।[१२९]

आगम (शैव तत्र) का विकास पृथक रूप से दो धाराओं में हुआ है—बाह्य एव गूढ। बाह्य धारा पूर्णतया शुद्ध शैववाद पर आधारित है—जिसमे मोक्षप्राप्ति हेतु शिव या पशुपति के प्रति सम्पूर्ण समर्पण पर बल दिया गया है जबकि गूढ धारा शक्तिवाद पर जोर देती है—मोक्ष प्राप्ति पर नही बल्कि

---

१२२ राज०—पूर्वो० I-७२
१२३ भट्टाचार्या—पूर्वो० प्रस्तावना पृ० X
१२४ पी० सी० बागची "इन्डि० हिस्टो० क्वा० अङ्क VII मार्च १९३१, स० १ पृ० ४-५"
१२५ वही०प्रस्तावना
१२६ **'इन्साइक्लोपीडिया ऑव रेलिजन ऐण्ड इथिक्स'** अङ्क XII, पृ० १९२-१९३
१२७ कुल्लूकभट्ट—II १
१२८ भट्टाचार्या—पूर्वो० पृ० २११-२१२
१२९ टी० वी० आर० मूर्ति—**"द सेन्ट्रल फिलॉसफी ऑव बुद्धिज्म"** पृ० २८४

प्रकृति की शक्तियो पर प्रभुत्त्व स्थापित करने हेतु तथा उनकी कार्य विधि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए, इसी को तत्रवाद कहा गया है जो दसवी शती मे विकसित हुआ।[१३०]

सम्मोहतत्र मे दिये गये विवरण के अनुसार तत्रवाद को भौगोलिक आधार पर चार वर्गो मे बॉटा गया है—केरल, कश्मीर, गौड तथा विलास। कश्मीरी वर्ग मद्र से लेकर नेपाल तक सभी देशो मे प्रचलित था।[१३१]

तत्र दर्शन के अनुसार आनन्द भैरव या महाभैरव जो तात्रिको द्वारा शिव का नाम है—नौ पदार्थो के समूह की आत्मा है। ये नौ पदार्थ है—व्यूह (कालव्यूह, कुलव्यूह, नामव्यूह, ज्ञानव्यूह) तथा पॉच शक्तियॉ—चेतना, हृदय, इच्छा, बुद्धि, मस्तिष्क। महाभैरव, देवी (महाभैरवी) की आत्मा है, इसलिए देवी भी इन नौ समूहो की आत्मा है। ये जब साम्यरस मे होते है तभी सृष्टि या विनाश होता है। सृष्टि के समय भैरवी का जबकि विनाश के समय महाभैरव का प्राधान्य होता है।[१३२]

अपने अनुयायियो को सही दीक्षा देने वाले धार्मिक शिक्षक को गुरु कहा जाता है। शाक्त सम्प्रदाय मे देवी की स्तुति प्राय तीन प्रकार से की जाती है—

प्रथम—महापद्मवन (कमल के बगीचे) मे शिव की गोद मे बैठी हुई देवी का ध्यान किया जाता है। उनका ध्यान हृदय तथा मन को आह्लादित करता है क्योकि देवी स्वय आनन्दस्वरूपा है।[१३३]

द्वितीय—चक्रपूजा भूर्जपत्र, रेशमी वस्त्र अथवा स्वर्णपत्र की सहायता से नौ योनियो का वृत्त बनाकर उसके मध्य मे एक योनि का चित्र खीचकर चक्र बनाया जाता है जिसे 'श्रीचक्र' कहते है। इसमे वृत्तो तथा दलो के अन्दर एक दूसरे से जुड़े नौ दल होते है। चार त्रिभुज ऊपर की ओर सकेतित करते है जो शिव को प्रदर्शित करते है तथा पॉच त्रिभुज नीचे की ओर शक्ति को प्रदर्शित करने वाले होते है। त्रिभुज—शुद्ध दैवीय शक्ति द्वारा विश्व की उत्पत्ति, सरक्षण तथा सहार को प्रदर्शित करता है

---

१३० भट्टाचार्या—पूर्वो० पृ० २१६
१३१ वही० पृ० २१९
१३२ आर० जी० भण्डारकर—पूर्वो० पृ० १४५
१३३ भण्डारकर—पूर्वो० पृ० १४६

तथा चक्र का केन्द्रीय बिन्दु कामेश्वरी के साथ कामेश्वर अथवा शक्ति के साथ शिव की एकता को प्रदर्शित करता है।[१३४]

तृतीय—दार्शनिक ढग से ज्ञान के द्वारा देवी की उपासना की जाती है—इसमे ज्ञान को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है तथा कुत्सित आचरणो को त्याज्य बताया गया है।

इसमे दूसरे प्रकार को शाक्त माना गया है जिसके उपासक शक्ति की पूजा करने के कारण शाक्त कहे जाते है।[१३५] कश्मीर मे यह देवीचक्र या मातृचक्र के रूप मे सदर्भित है।[१३६] देवी की उपासना तीन रूपो मे की जाती थी—शान्त या सौम्य रूप, उग्र या प्रचण्ड रूप तथा काम प्रधान रूप ! इसमे सामान्यत देवी के सौम्य रूप की उपासना की जाती थी—जिसका प्रसिद्ध मन्दिर जम्मू के निकट वैष्णो देवी का है जहॉ शारदा की मूर्ति है—इसी प्रकार का मदिर सतना (म० प्र०) के निकट मैहर की पहाडी पर स्थित देवी का मदिर है। कलकत्ता स्थित काली का मदिर देवी के उग्र रूप का है तथा असम का 'कामाख्या मन्दिर' देवी के कामप्रधान रूप का प्रतिनिधित्त्व करता है। शक्ति से समीकृत मॉ की पूजा कश्मीर मे प्राचीनकाल से प्रचलित रही है जिसमे तात्रिक कर्मकाण्ड की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। तत्रशास्त्र के अनुसार शक्ति पूजन मे मदिरा, मास, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन का प्रयोग किया जाता है। आज भी कश्मीर मे घरो तथा मंदिरो मे मातृचक्र निर्मित किये जाते है।[१३७]

आठवी शती तक तारा बौद्ध धर्म की ही नही बल्कि हिन्दुओ की भी प्रिय देवी बन गई थी।[१३८] उनकी अनेक मूर्तियॉ बंगाल, बिहार, महोबा तथा कश्मीर से प्राप्त हुई है।[१३९] कल्हण ने मातृचक्र के साथ भैरव के मंदिर बनाये जाने का उल्लेख किया है।[१४०]

---

१३४ जे वुडरोफ—**'शक्ति ऐण्ड शाक्त'** मद्रास १९५१ प्राक्कथन पृ० XX

१३५ भण्डारकर— पृ० १४४

१३६ राज०—पूर्वो० I १२२, ३३३, ३३५, ३४८, III ९९

१३७ स्टेइन—राज० पूर्वो० खण्ड I, I १२२ (टि०)

१३८ **मेमोरीज ऑव द ऑर्क्यालाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया**—स० ११ (१९२२) पृ० ११

१३९ रामचन्द्र काक—हैण्डबुक-पृ० १००

१४० राज० V-५५ क्रुक **"पॉपुलर रेलिजन ऐण्ड फोल्कलोर ऑव नार्दर्न इण्डिया खण्ड I, पृ० १४४-१४८"**

सम्मोह तत्र मे साधना के आधार पर तत्रवाद के तीन वर्ग माने गये है—दिव्य, कौल तथा वाम।[१४१] क्षेमेन्द्र ने भी कौल सम्प्रदाय का उल्लेख किया है।[१४२] ग्यारहवी शती मे कौल सम्प्रदाय काफी विकसित हो गया था जिसमे विभिन्न मत उद्भूत हो गये थे।[१४३] कल्हण ने तात्रिक गुरुओ की निन्दा की है।[१४४] क्षेमेन्द्र ने भी एक ऐसे लिपिक की चर्चा की है जो पहले बौद्ध था, बाद मे वह वैष्णव हो गया तथा अन्त मे उसने अपनी पत्नी के स्वास्थ्य की रक्षा हेतु कौलाचार किया था।[१४५] तत्रवाद मे तात्रिक कर्मकाण्ड-महासमय था, जो अर्द्धरात्रि के समय किया जाता था का अत्यधिक महत्त्व था।[१४६]

नाग-पूजा

विश्व के प्रारम्भ से ही मनुष्य का सम्बन्ध छोटे जानवरो से रहा है, जो उसके लिए लाभदायक व हानिकारक दोनो रहे है।[१४७] प्राचीन मिस्र[१४८] यूनान[१४९] रोम[१५०] चीन[१५१] जापान तथा अरब राष्ट्रो[१५२] के धार्मिक सम्प्रदायो मे सर्प का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतवर्ष मे मोहनदोजड़ो की एक मुहर मे एक नाग तथा मानवीय भक्त को प्रदर्शित किया गया है।[१५३] चीनी यात्री फाह्यान और ह्वेनत्साग ने भी सर्प-पूजा के सदर्भ दिये है।[१५४] कश्मीर सहित भारत मे शिवमूर्तियो के साथ नाग का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है।[१५५] कल्हण ने लिखा है कि बोधिसत्त्व एव नागार्जुन ने

---

१४१ भट्टाचार्या—पूर्वो० खण्ड IV पृ० २२१, बागची पी-सी '**स्टडीज इन तत्राज**' पृ० ९६
१४२ नर्ममाला—पूर्वो० अ० II १००-११६
१४३ के० सी० पाण्डेय—पूर्वो० पृ० ५४२, भट्टाचार्या-पूर्वो० खण्ड IV पृ० २२३
१४४ राज०—VII २७७-२७८, २७९-२८४, ५२३
१४५ नर्ममाला—अ०II १००-११६, समयमातृका VI २५
१४६ राज०—VII २७९-२८४, ५२३
१४७ सी० एच० टाय—'**इन्ट्रोडक्शन टू दि हिस्ट्री ऑव रेलिजन्स**' न्यूयार्क, १९१३ पृ० २०७
१४८ 'हेस्टिंग्स—**इनसाइक्लोपीडिया ऑव रेलिजन ऐण्ड इथिक्स**' XI पृ० ४०२
१४९ वही XI पृ० ४०४
१५० वही XI पृ० ४०४
१५१ वही XI पृ० ४०२
१५२ वही XI पृ० ४०२
१५३ मार्शल '**मोहनजोदडो ऐण्ड इण्डस सिविलाइजेशन**' लदन १९३१, III प्लेट CXVI
१५४ जे० लेग्गे '**ट्रैवल्स ऑव फाह्यान**'— पृ० २९, ५२, ६७, ६८-६९, ९६
१५५ टॉड '**एनल्स ऑव राजस्थान पर्सनल नैरेटिव**' लदन, १९१४, पृ० ५६९

शास्त्रार्थ मे बडे-बडे वादियो को परास्त करके नीलमत पुराणोक्त सिद्धान्तो, बलिदान पूजा, तथा शास्त्रोक्त कर्मो का अन्त कर दिया—इससे कश्मीर देश के रक्षक नागराज नील ने कुद्ध होकर बर्फ बरसाते हुए प्रजा का सहार करना शुरु कर दिया किन्तु इससे होमादि कर्म करने वाले ब्राह्मणो को कोई नुकसान नही हुआ। कश्यपगोत्रीय चन्द्रदेव ब्राह्मण की तपस्या से प्रसन्न होकर नीलनाग ने नीलमत पुराणोक्त विधि बताई। गोनन्द तृतीय ने पहले की तरह नागपूजन, नागयज्ञ एव नागयात्रा शुरू करवाया।[१५६] राजा सग्रामराज की तुलना भगवान शेषनाग से की गई है।[१५७]

तीर्थ एवं तीर्थयात्रा

पवित्र नदियॉ, तालाब, पर्वत तथा देवस्थल लोगो के बीच तीर्थ के रूप मे आकर्षण के केन्द्र होते थे। हिन्दू धर्म मे तीर्थयात्रा का विशेष महत्त्व माना गया है।[१५८] ग्यारहवीं शती मे अलबेरुनी ने भी तीर्थयात्रा का विशेष महत्त्व बताया है।[१५९] बारहवी शती के लेखक लक्ष्मीधर ने अपनी कृति कृत्यकल्पतरु के आठवे अध्याय को तीर्थविवेचनकाण्ड नाम दिया है, जिसमे सम्पूर्ण भारत के असख्य तीर्थो का उल्लेख किया गया है।

तीर्थो के विभाजन की प्राचीन अवधारणा हेतु ब्रह्मपुराण को आधार मानते हुए लक्ष्मीधर ने हिन्दू समाज मे चार प्रकार के तीर्थो का उल्लेख किया है—दैव, असुर, आर्ष एव मनुष्य।[१६०]

दैव तीर्थ के अन्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु और महेश से सम्बन्धित तीर्थ आते है जिसमे काशी, पुष्कर और प्रभास प्रमुख है। पवित्र नदियॉ गङ्गा यमुना, सरस्वती भी दैव तीर्थ मानी जाती है। गया को असुर तीर्थ माना गया है।

आर्ष तीर्थ वे तीर्थ माने जाते है जिनकी उत्पत्ति एव पवित्रता ऋषियो से मानी जाती है तथा **मनुष्य तीर्थ** वे तीर्थ माने गये है जो—सूर्यवशी अथवा चन्द्रवशी शासको द्वारा स्थापित किये गये है।[१६१]

---

१५६ राज०—पूर्वो० I १७८-१८५
१५७ वही VI ३६८
१५८ लक्ष्मीधर—तीर्थविवेचनकाण्ड प्रस्तावना पृ० XXII
१५९ सचाऊ—पूर्वो० खण्ड II पृ० १४२
१६० काणे—पूर्वो० पृ० ५६७
१६१ लक्ष्मीधर—पूर्वो० प्रस्तावना पृ० LIX

हिन्दुओ के बहुत से देवता है जिनसे सम्बन्धित असख्य तीर्थस्थल है। पद्मनाभ के काण्हदाटे प्रबन्ध मे तैतीस करोड देवताओ का उल्लेख हुआ है।[१६२] अग्निपुराण मे हिमालय से कन्या कुमारी और द्वारका से कामरूप तक असख्य तीर्थो की सूची प्रस्तुत की गई है।[१६३] लक्ष्मीधर ने वाराणसी, प्रयाग, गया, कुरुक्षेत्र, मथुरा, उज्जयिनी, नर्मदा, कुवयायुक, शुक्र, कोकमुख, बद्रिका, मन्दार, शालग्राम द्वारका, लोहारगल, केदार, नैमिष, नवतीर्थ, और महातीर्थ बताये है।[१६४] अलबेरुनी ने मुलतान, थानेश्वर, बनारस, पुष्कर, मथुरा तथा कश्मीर को प्रमुख तीर्थ माना है।[१६५] सस्कृत व शिक्षा का केन्द्र होने के कारण बहुत से लोग विभिन्न स्थानो से यहॉ की यात्रा करते थे। अलबेरुनी[१६६] लिखते हैं कि कश्मीर के भीतर राजधानी से करीब दो या तीन दिनो की यात्रा के बाद बोलोर[१६७] पर्वतो की दिशा मे शारद कहलाने वाली लकड़ी की मूर्ति है, जो यात्रियो द्वारा अत्यधिक आदृत और सम्मानित है। कल्हण[१६८] ने शारदा देवी के दर्शनार्थ बगाल (गौड) नरेश के निश्चित अनुयायियो के आने का उल्लेख किया है। कश्मीरी कवि बिल्हण (११वी शती) ने लिखा है—

सहोदराः कुंङ्कुमकेसराणां भवन्ति नून कविता विलासाः।

न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्रमयाप्ररोहः ॥[१६९]

मखक ने भी लिखा है कि 'सरस्वरी-शारदा' के कारण कश्मीर तीर्थस्थल था।[१७०] द्वितीय राजतरङ्गिणी के रचयिता जोनराज ने शारदा देवी के मदिर की स्थिति और ख्याति पर विस्तार से लिखा है।[१७१] अबुलफजल ने भी लिखा है कि पद्मती नामक नदी जिसमे सोना पाया जाता है के किनारे दुर्गा को समर्पित 'शारदा' का पत्थर का मन्दिर है जो अत्यधिक पूजित है।[१७२] आजकल कश्मीर मे

---

१६२ पद्मनाभ—अनु० के० वी० व्यास, जयपुर १९५३ IV २४५-२५०
१६३ अग्निपुराण—अनु० एम० एन० दत्त, कलकत्ता, १९०१, I अ० IX पृ० ४३८-४३९
१६४ लक्ष्मीधर—कृत्यकल्पतरु - तीर्थकाण्ड
१६५ सचाऊ—पूर्वो० खण्ड I पृ० ११६, ११७ खण्ड II १४६-१४८
१६६ वही खण्ड I पृ० ११७
१६७ स्टेइन महोदय ने इसे सिन्धु नदी के ऊपर गिलगिट और लद्दाख के बीच माना है—खण्ड II पृ० २५८
१६८ राज०—पूर्वो० IV ३२५
१६९ विक्रमाङ्कदेवचरित ब्यूहलर-बम्बई सस्कृत सिरीज, पूना—XIV, १८७५, I २१, स्टेइन, खण्ड II पृ० २८५
१७० श्रीकण्ठचरित—पूर्वो० III १०
१७१ राजतरङ्गिणी—सपा० डॉ० पीटर्सन-बम्बई १८९६, १०५६, १०६१
१७२ 'आइन-ए-अकबरी' II ३६५

असख्य लोग 'वैष्णो देवी' के दर्शनार्थ जाते है सभवत यही शारदा का मदिर रहा होगा। जयशकर मिश्र ने भी आजकल हिन्दुओ द्वारा कश्मीर की यात्रा करने का उल्लेख किया है।[१७३] स्टेइन महोदय ने कश्मीर के प्रमुख तीर्थो की पहचान निम्न रूपो मे की है।

अनन्तनाग— मार्तण्ड पहाडी मैदान की पश्चिमी तलहटी पर स्थित अनन्तनाग आधुनिक इस्लामाबाद है।[१७४]

ऐलापत्रनाग— सिन्ध घाटी से श्रीनगर को आने वाली सडक पर स्थित विकारनाग नामक गॉव।[१७५]

अक्षिपालनाग— कुथहार पहाडी श्रृखला पर स्थित अचबल नामक वर्तमान गॉव[१७६]

कपटेश्वर— कुथहार परगना मे स्थित कोठर नामक गॉव[१७७]

कपिलातीर्थ— कपटेश्वर के समीप रहा होगा।[१७८]

कालोदक— हरमुकुता पहाड के पूर्वीभाग मे स्थित नन्दकोल झील है।[१७९]

कोटितीर्थ— बारामूला के समीप आधुनिक कोतिसर है।[१८०]

खण्डपुच्छनाग— अनन्तनाग के समीप स्थित खनबल है।[१८१]

गौतमनाग— अनन्तनाग कस्बे के उत्तर मे स्थित स्थान[१८२]

चक्रधरतीर्थ— शकदर उदर के नाम से जाना जाने वाला पहाड़ी मैदान।[१८३]

---

१७३ जयशकर मिश्र—**ग्यारहवी शती का भारत'** पृ० १९३-१९४
१७४ स्टेइन—राज० अनु० खण्ड II पृ० ४६६
१७५ वही पृ० ४५७
१७६ वही पृ० ४६८
१७७ वही पृ० ४६७
१७८ वही पृ० ४०६
१७९ वही पृ० ४०७
१८० वही पृ० ४८३
१८१ वही पृ० ४१४
१८२ वही पृ० ४६७
१८३ वही पृ० I ३८ (पाद-टि०)

चन्द्रसर— सिन्धु नदी और कश्मीर घाटी के बीच स्थित ऊँचे पहाडो के मध्य स्थित चन्दर मर झील चन्द्रसर है।[१८४]

चीरमोचन— प्राग गॉव के समीप ककनई की सहायक तथा सिन्ध के सगम पर स्थित है।[१८५]

ज्येष्ठेश— हरमुकुता पहाड की तलहटी पर स्थित नन्दिक्षेत्र का भू-भाग जहॉ वशिष्ठ ज्येष्ठेश्वर की पूजा के लिए आये थे।[१८६]

तक्षकनाग— आधुनिक जेवन तक्षकनाग है जो पवित्र जयवन झरने के समीप है।[१८७]

तारासर— सिन्धु घाटी के ऊँचे पर्वतो के बीच स्थित तर सर तारासर हो सकता है।[१८८]

देवसर— उत्तर परगना की दक्षिण-पूर्वी पहाडियो की तलहटी पर स्थित एक छोटी सी झील है।[१८९]

नन्दननाग— दरहल दर्रे के समीप नन्दनसर की पहचान नन्दननाग से की जाती है।[१९०]

नन्दिकुण्ड— हरमुकुता पहाड की तलहटी के नन्दिक्षेत्र मे नन्दिकुण्ड, नन्दिपर्वत तथा नन्दीश्वर स्थित है।[१९१]

नारायणस्थान— त्राल घाटी मे स्थित नारस्थान से नारायणस्थान का तादात्म्य स्थापित किया जाता है।[१९२]

पञ्चहस्त— दिवसर परगना मे स्थित पञ्जथ गॉव है।[१९३]

---

१८४ बेट्स-गज़ेटियर ऑव कश्मीर_पृ० १६१
१८५ स्टेइन I ४९ (टि०)
१८६ वही I ११३ (पा० टि०)
१८७ वही I २२० (पा० टि०)
१८८ वेट्स-पूर्वो० पृ० ३८३
१८९ वही पृ० १७७
१९० वही पृ० २८७, स्टेइन खण्ड II पृ० ३९३
१९१ स्टेइन०—पृ० ४०७
१९२ वही पृ० ४६१, बेट्स पृ० २९०
१९३ वही पृ० ४१२

पाण्डवतीर्थ— श्रीनगर से लगभग पॉच मील दक्षिण पूर्व मे स्थित आधुनिक पाण्डचक मे पाण्डव तीर्थ की पहचान की जाती है।[१९४]

पुष्कर— फिरोजपुर व काग के बीच कश्मीर घाटी के पश्चिमी किनारे पर स्थित पृथक तिकोना गॉव पोष्कर ही पुष्कर है।[१९५]

बहुरूप— बीरू परगना मे पीर पाञ्चाल पहाडो की तरफ स्थित बीरू गॉव से इसकी पहचान की जाती है।[१९६]

बदरकल— कश्मीर से चार मील दक्षिण पूर्व मे स्थित बदरकल गॉव भद्रकाली को समर्पित है।[१९७]

भेदादेवी— श्रीनगर के पश्चिम मे स्थित बुदबरार से इसकी पहचान की जाती है। बुदबरार झरने मे भरे जाने वाले प्राचीन तालाब को गगोद्भेद तीर्थ की पवित्र घाटी मे माना गया है।[१९८]

भीमादेवी— डल झील की पूर्वी तलहटी पर फाक परगना मे स्थित आधुनिक ब्रान गॉव को भीमादेवी कहा जाता है।[१९९]

भूतेश्वर— हरमुकुता से दक्षिण-पूर्वी पहाडियो पर स्थित स्थान जिसे आज भी भूतसेर कहा जाता है।[२००]

महापद्म— कश्मीर घाटी के पश्चिमी भाग मे स्थित वूलर झील ही महापद्मसर है।[२०१]

मानस— अहतयग पहाडी के नीचे आधुनिक मानसबल ही मानस है।[२०२]

---

१९४ वेट्स पृ० ३०२
१९५ वही पृ० ३११ स्टेइन खण्ड II पृ० ४६७
१९६ स्टेइन खण्ड II पृ० ४७६
१९७ वही पृ० ४८५
१९८ वही पृ० २७३
१९९ वही पृ० ४५४
२०० वही I १०७ (पा० टि०)
२०१ वही खण्ड II पृ० ४२३ (पा० टि०)
२०२ वही पृ० ४२२

रामतीर्थ— सुपियॉ से श्रीनगर की सडक पर स्थित आधुनिक रामुह ही रामतीर्थ है।[२०३]

लोकपुण्य— ब्रिग परगना मे लरिकपुर गॉव के समीप स्थित झरना है।[२०४]

लोवार— विजयक्षेत्र से उत्तरपूर्व दस मील पर स्थित लिवर ही सभवत लोवार है।[२०५]

वराहमूला— आधुनिक बारामूला कस्बा है।[२०६]

वशिष्ठाश्रम— वनगथ का एक छोटा सा गॉव है।[२०७]

वासुकिनाग— पञ्चहस्त घाटी मे एक झरना है।[२०८]

विजयेश्वर— वूलर परगना मे स्थित आधुनिक विजबरार विजयेश्वर है।[२०९]

स्वयंभू— मछीपुर परगना मे आधुनिक सुथम है।[२१०]

सोदरतीर्थ— डल झील की गहरी पतली जलधारा मे स्थित सुदरबल नामक गॉव से इसकी पहचान की जाती है।[२११]

हस्तिकर्णनाग— मरहोम से दो मील दक्षिण-पश्चिम मे वगहोम गॉव मे स्थित पवित्र झरना है।[२१२]

त्रिपुरेश— डल से तीन मील दूर स्थित वर्तमान त्रिफर गॉव है।[२१३]

हिन्दू धर्म की तरह जैन धर्म के भी सम्पूर्ण देश मे अनेक तीर्थ प्राप्त होते है। दिगम्बर सम्प्रदाय ने जैन तीर्थ स्थलो को दो भागो मे बॉटा है—[२१४]

---

२०३ स्टेइन खण्ड II पृ० २७४-२७५
२०४ वही IV १९३ (पा० टि०)
२०५ वही I ८७ (पा० टि०)
२०६ वही खण्ड II पृ० ४८२-४८३
२०७ वही I १०७ (पा० टि०)
२०८ वही खण्ड II पृ० ४७०
२०९ वही खण्ड II पृ० ४६३-४६४
२१० वही I ३४ (पा० टि०)
२११ वही II पृ० ४५७
२१२ वही II पृ० ४६१
२१३ वही II पृ० ४५५
२१४ एन० आर० प्रेमी—'जैन साहित्य और इतिहास' बम्बई—१९५६ पृ० ४२२

प्रथम—सिद्धक्षेत्र अर्थात् वह क्षेत्र जहॉ जैन तीर्थाकरो अथवा जैन मुनियो ने निर्वाण प्राप्त किया था।

द्वितीय—अतिशय क्षेत्र अर्थात् जो स्थान किसी देवता की विशिष्ट प्रतिमा के कारण प्रसिद्ध हो। अष्टपद, उजयन्त, गजाग्रपाद, धर्मचक्र, अहिछत्र, पार्श्वनाथ, रथावर्त, प्रमुख तीर्थ बताये गये है। सिद्धसेन सूरी ने जैन तीर्थो की एक वृहद सूची प्रस्तुत की है।[२१५]

बौद्ध मतावलम्बी गौतम बुद्ध से सम्बन्धित आठ स्थलो (अष्टमहास्थान) को तीर्थ के रूप मे मानते है।[२१६] इनमे बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित चार स्थान—लुम्बिनी (जन्मस्थान), बोधगया (ज्ञान स्थान), सारनाथ (प्रथम उपदेश स्थान) तथा कुशीनगर अथवा कसिया (महापरिनिर्वाण स्थान) सर्वाधिक प्रसिद्ध तीर्थ माने जाते है। इसके अतिरिक्त श्रावस्ती (सहेत-महेत), साकष्य, राजगृह, नीलगिरि, वैशाली भी पवित्र तीर्थ है। कुछ अन्य स्थल बुद्ध से सम्बन्धित होने के कारण देशी तथा विदेशी बौद्धो द्वारा तीर्थो के रूप मे आदृत है, इनमे नालन्दा, रत्नगिरि, सॉची, देविनिमोरी (गुजरात) प्रमुख है।[२१६]

तीर्थस्थलो की यात्रा लोग श्रद्धावश, पापो को नष्ट करने, नैतिक शुद्धीकरण, मानसिक शान्ति, आनन्दप्राप्ति, तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए किया करते थे।[२१७] देवल ने तीर्थो की पवित्रता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि तीर्थ-चर्चा या तीर्थ-यात्रा से सम्पूर्ण पाप समाप्त हो जाते है।[२१८] तीर्थ केवल द्विजो के लिए ही नही अपितु शूद्रो और चाण्डालो के लिए भी खुले होते थे। लक्ष्मीधर ने मत्स्य पुराण को उद्धृत करते हुए लिखा है कि चार वर्णो के लोगो के अतिरिक्त चाण्डाल जैसे वर्णबाह्य जातियो के लिए काशी तीर्थ खुला रहता था—जहॉ सभी पाप नगर मे प्रवेश करते ही समाप्त हो जाते है—ऐसी मान्यता थी।[२१९]

तीर्थयात्रा के समय अछूत सम्बन्धी सभी नियम समाप्त माने जाते थे।[२२०]

---

२१५ सिद्धसेन सूरी **"सकलतीर्थस्त्रोत"** कटलॉग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन पाटन खण्ड।
२१६ बी० एन० शर्मा **'सोशल एण्ड कलचरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया'** दिल्ली १९६६ पृ० १२३ (पा० टि०)
२१७ बी० एन० एस० यादव—पूर्वो० पृ० ३७२
२१८ देवल—**तीर्थ प्रकाश**। पृ० १५
२१९ लक्ष्मीधर-तीर्थ विवेचन काण्ड—पृ० २६
२२० कृत्यकल्पतरु—शुद्धि काण्ड पृ० १६९

अलबेरूनी ने लिखा है कि हिन्दुओ के लिए तीर्थ यात्राए वाञ्छनीय ही नही बल्कि अनुमत तथा श्लाघ्य है। कुछ मनुष्य पवित्र स्थान के लिए, किसी महत्त्वपूर्ण पूजनीय मूर्ति के लिए अथवा कुछ पवित्र नदियो के लिए जाता था जहाँ वह मूर्ति की पूजा करता था, भेंट चढाता था, स्तवन और प्रणयन करता था, व्रत रहकर ब्राह्मणो तथा अन्य लोगो को दान देता था तथा सिर और दाढी मुडाकर घर लौटता था।[२२१] पुष्यभूतिवश के राजा हर्ष द्वारा प्रत्येक पॉच वर्ष पर प्रयाग तीर्थ मे अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणो को दान देने का उल्लेख प्राप्त होता है। गया तीर्थ मे लोगो द्वारा श्राद्ध किये जाने का उल्लेख हुआ है। कल्हण ने लिखा है कि गयातीर्थ मे श्राद्ध के निमित्त जाने वाले कश्मीरियो पर लगने वाले कर से हर्ष के सेनापति कन्दर्प—ने मुक्त करा दिया था।[२२२]

पवित्र नदियो मे आत्मोत्सर्ग करना काफी प्राचीनकाल से प्रचलित था[२२३] ह्वेनत्साग के अनुसार ऐसी मान्यता है कि जो व्यक्ति गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती के सगम प्रयाग मे स्थित वटवृक्ष से नदी मे कूदकर जीवन समाप्त कर लेता है उसे सीधे स्वर्ग प्राप्त होता है।[२२४] चन्देलनरेश धग ने सौ वर्ष से अधिक की आयु भोग चुकने के बाद १००२ ई० के कुछ दिन बाद प्रयाग मे मृत्यु का वरण किया।[२२५] १०३४ और १०४८ ई० के बीच कलचुरि राजा गाङ्गेयदेव ने अपनी सौ रानियो के साथ प्रयाग मे प्राण त्याग किया था।[२२६]

व्रत एवं उत्सव

स्वभाव, प्रशिक्षण एव परम्परा से हिन्दू लोग अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे। उनकी संस्कृति, दर्शन, साहित्य और कला, धर्म से प्रभावित थे। उनकी मान्यता थी कि धार्मिक व श्रेष्ठ कार्य इस जीवन तथा दूसरे जीवन मे सुख के स्रोत होते है, ऐसे वातावरण मे रहते हुए लोग ऐसे कार्यो को प्राकृतिक रूप से करना आवश्यक मानते थे, जो उन्हे आवागमन के बन्धन से मुक्त करा सके इसीलिए वे व्रत रखते थे।[२२७]उपवास हिन्दू जीवन का महत्त्वपूर्ण स्वरूप निर्मित करता है। कुछ हिन्दू लेखक व अल-

२२१ सचाऊ खण्ड II पृ० १४२

२२२ राज०—पूर्वो० VI २५४-२५५, VII १००८

२२३ काणे—पूर्वो० पृ० ६०३, कार्पस० स० इन्सि० इण्डि० III न० ४२ पृ० २०३

२२४ सचाऊ II पृ० १७०, ह्वेनत्साग—खण्ड I पृ० २३२, मत्स्युराण अध्याय १०५, ११

२२५ इपि० इण्डि० I १४

२२६ वही II ४ XII २११, XXI ९४

२२७ बी० एन० शर्मा "सोशल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया" पृ० १०५

बेरूनी ने विभिन्न प्रकार के उपवासो का उल्लेख किया है।[२२८] भट्ट लक्ष्मीधर ने छह प्रकार के उपवासो का उल्लेख किया है।[२२९]

वार-व्रत— साप्ताहिक दिनो का त्योहार

तिथि-व्रत— चन्द्र महीने के किसी निश्चित दिन का उपवास

नक्षत्र-व्रत— चन्द्र स्थानो के दिनो के उपवास

मास-व्रत— निश्चित महीनो के व्रत

सम्वत्सर व्रत— पूरे महीने के उपवास तथा **विविध व्रत**

धार्मिक, सामाजिक या मौसमी उत्सव लोगो के जीवन के महत्त्वूपर्ण हिस्से थे जो लोगो को उनके दैनिक जीवन से हटाकर पर्याप्त मात्रा मे मनोरञ्जन के अवसर प्रदान कराते थे। इन उत्सवो मे देवताओ की पूजा, नदियो व तालाबो के पवित्र जल मे स्नान तथा अन्य बहुत प्रकार के सामाजिक कार्यो मे सलग्न होने के अवसर स्त्री-पुरुषो को स्वतत्र रूप से प्राप्त होते थे। लोगो के आवाभगत के लिए नाटको का मचन तथा मेलो का आयोजन किया जाता था।[२३०]

निश्चित तिथियाॅ, महीने व नक्षत्र विशिष्ट देवी, देवताओ से सम्बन्धित होते थे, जब उनकी पूजा की जाती थी—नारायण की पूजा प्रतिदिन पवित्र मानी जाती थी। कृष्ण पक्ष मे पितरो (प्रेतात्माओ) की पूजा की जाती थी। शेष निम्न तिथियो के अनुसार देवताओ की पूजा होती थी—[२३१]

प्रथम चन्द्रदिवस— ब्रह्मा, **द्वितीय** चन्द्रदिवस—सरस्वती, **तृतीय** चन्द्रदिवस—गङ्गा, **चतुर्थी** चन्द्रदिवस—विनायक, **पंचमी** चन्द्रदिवस—नाग (सर्प), **षष्ठी** चन्द्रदिवस—स्कन्द, **सप्तमी** चन्द्रदिवस —सूर्य, **अष्टमी** चन्द्रदिवस—रुद्र या इन्द्र, **नवमी** चन्द्रदिवस—दुर्गा, **दशमी** चन्द्रदिवस—पृथ्वी, **एका-दशी** चन्द्रदिवस—विश्वकर्मा, **द्वादशी** चन्द्रदिवस—विष्णु, **त्रयोदशी** चन्द्रदिवस—कामदेव, **चतुर्दशी** चन्द्रदिवस— विश्वदेव , **पूर्णिमा** चन्द्रदिवस—व चन्द्रमा।

---

२२८ सचाऊ पूर्वो० खण्ड II पृ० १७२-१७३
२२९ कृत्यकल्पतरु—व्रतकाण्ड पृ० १-२
२३० बी० एन० शर्मा पूर्वो० पृ० १०९
२३१ लक्ष्मीधर-राजधर्मकाण्ड—प्रस्तावना पृ० ७७

डॉ० बी० एन० शर्मा जी ने[२३२] प्रमुख उत्सवो के रूप मे देवयात्रा, कौमुदी-महोत्सव, इन्द्र-ध्वजोच्छ्राय, नवरात्रि मे देवीपूजा, चिन्ह-पूजा, गवोत्सर्ग, वसोर्धारा, शिवरात्रि, महानवमी, दीपोत्सव, वसन्तोत्सव, वटसावित्री महोत्सव, हिन्डोलकोत्सव, दोहद पुराण सूर्योत्सव का विवेचन किया है। अलबेरूनी पहला विदेशी लेखक है जिसने हिन्दू त्योहारो पर सविस्तार लिखा है।[२३३]

कश्मीर मे देश, काल, मौसम के अनुसार अनेक उत्सव मनाये जाते थे—जिनका निदर्शन तत्कालीन साहित्य मे किया गया है।

चैत्रोत्सव—अलबेरूनी लिखता है कि चैत्र मास का दूसरा दिन अगदूस कहा जाता है। कश्मीरियो के लिए यह त्योहार का दिन है और राजा मुत्ते[२३४] की तुर्को पर विजय के उपलक्ष मे सम्पन्न किया जाता है।[२३५] कल्हण ने राजा हरिराज को चैत्रोत्सव की भॉति विद्वानो, याचको तथा प्रजा के लिए आनन्ददायक बताया है।[२३६] इससे सकेतित होता है कि कश्मीर मे चैत्रोत्सव मनाया जाता था किन्तु जयशंकर मिश्र लिखते है कि उन्होने अपने श्रीनगर (कश्मीर) आवासकाल मे वहॉ के निवासियो से इस त्योहार के बारे मे जिज्ञासा प्रकट की किन्तु उन लोगो ने इसकी अवर्तमानता व्यक्त की।[२३७] इस सन्दर्भ मे यही कहा जा सकता है कि लगभग नौ सौ वर्षो के अन्तराल मे किसी उत्सव की वर्तमानता मिलना सहज कार्य नही है, फिर समय की पर्त मे किसी सस्कृति के कुछ अवयवो का विलीन हो जाना कोई अतिशयोक्ति नही है।

नागोत्सव—कल्हण ने लिखा है कि गोनन्द तृतीय ने पूर्व की भॉति नागपूजन, नागयज्ञ तथा नागयात्रा प्रारम्भ करवाया।[२३८] कश्मीर राज्य मे ज्येष्ठ कृष्णपक्ष द्वादशी को नागयात्रा निकाली जाती थी, जिसमे नट-चारण पुरुषो से व्याप्त दर्शको की भारी भीड रहती थी।[२३९]

---

२३२ बी० एन० शर्मा—पूर्वो० पृ० १०६
२३३ सचाऊ खण्ड II पृ० १७६
२३४ सचाऊ खण्ड II पृ० ३९७
२३५ वही पृ० १७८
२३६ राज० पूर्वो० VII १२८
२३७ जयशकर मिश्र—पूर्वो० पृ० १९७ (पाद० टि०)
२३८ राज० पूर्वो० I १७८-१८५
२३९ वही I २२०-२२२

सहस्त्रभक्त उत्सव—राजा ललितादित्य द्वारा दान का माहात्म्य जानने पर परिहासपुर मे पर्व-सम्बन्धी बहुत बडा उत्सव शुरू किया गया जिसमे ब्राह्मणो को प्रतिदिन चावल भरे तथा दक्षिणायुक्त एक लाख एक पात्र दान मे दिये जाते थे।[२४०]

तिलद्वादशी—माघ मास की कृष्ण पक्ष की द्वादशी को मनाये जाने वाले इस उत्सव मे तिल के साथ छ. प्रकार के कर्मकाण्ड किये जाते थे। इसीलिए कश्मीर मे इस उत्सव को षष्ठिल कहा जाता था।[२४१] इनमे पॉच कर्मकाण्ड—तिल से स्नान, तिल से होम, तिल से नैवेद्य, तिल के साथ जल का उपहार तथा ब्राह्मणो को तिल का दान—नीलमतपुराण मे वर्णित है।[२४२]

शिवरात्रि—अलबेरूनी ने लिखा है कि फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष प्रथमा को शिवरात्रि पर्व मनाया जाता है, इस दिन लोग शिवलिङ्ग की इत्र, कपडे, चन्दन, नैवेद्य से पूजा करते हुए रात्रि भर जागरण करते है तथा शिव सम्बन्धी कथाओ को सुनते है।[२४३] लक्ष्मीधर [२४४] तथा चण्डेश्वर ने [२४५] फाल्गुन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को शिवरात्रि पर्व मनाये जाने का उल्लेख किया है। जबकि कश्मीर मे राजा व प्रजा द्वारा समान रूप से इस पर्व के मनाये जाने का उल्लेख मिलता है। कल्हण ने इस अवसर पर राजा उच्चल द्वारा जनता के लिए असख्य धन की वर्षा करने का उल्लेख किया है।[२४६] राजपूताना व मध्यप्रदेश के कुछ अभिलेखो मे इसे माघ मास मे मनाये जाने का उल्लेख किया गया है।[२४७] जयशकर मिश्र ने लिखा है कि आज के पत्राओ के अनुसार यह पर्व माघ कृष्ण त्रयोदशी को मनाया जाता है जो फाल्गुन कृष्ण महाशिवरात्रि (त्रयोदशी) से ठीक एक महीने पहले किया जाता है।[२४८]

इन्द्रद्वादशी—भाद्रपद के शुक्लपक्ष की द्वादशी को आज भी कश्मीर मे इन्द्रद्वादशी कहा जाता हे।[२४९] नीलमत पुराण के अनुसार भाद्रपद की शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को महेन्द्र, शची, गण, अस्त्र-शस्त्रो

२४० राज० पूर्वो० IV २४२-२४३
२४१ स्टेइन-पूर्वो V ३९५ (पा० टि०)
२४२ नीलमत पुराण ४८२-४८३
२४३ सचाऊ-खण्ड I, पृ० १८४
२४४ कृत्यकल्पतरु—पृ० ४४०
२४५ कृत्यरत्नाकर—चण्डेश्वर पृ० ५२०-५२१
२४६ राज० पूर्वो० VIII ७०,१११
२४७ इपि० इण्डि० XI ३१-३२, ४५, XXI पृ० १५०
२४८ जयशंकर मिश्र पूर्वो० पृ० २१७
२४९ राज० पूर्वो० VIII १७०, १८२, ४९५, स्टेइन—VIII १८२ (पा० टि०)

की पूजा की जाती थी।[२५०] कल्हण ने लिखा है कि राजा उच्चल के राज्य मे विपुल मात्रा मे कीमती वस्त्र बॉटने के कारण इन्द्रद्वादशी जैसा पर्व इतना सुहावना लगता था कि इससे पूर्व किसी राजा के समय ऐसा पर्व नही मनाया गया था।[२५१]

महिमान उत्सव—नीलमत पुराण के अनुसार महिमान उतसव-फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी, नवमी एव दसमी को मनाया जाता था। प्रथम दिन सीता की पूजा की जाती थी। दूसरे दिन देवी करिष्णी की पूजा एव ब्राह्मणो को भोज कराया जाता था तथा तीसरे दिन ब्राह्मणो, मित्रो तथा सहायको के साथ भोजन किया जाता था और सङ्गीत कार्यक्रम होता था।[२५२] यद्यपि कल्हण महोदय ने भी इस उत्सव का उल्लेख किया है किन्तु यह किस प्रकार मनाया जाता था, यह स्पष्ट नही लिखा।[२५३] लक्ष्मीधर[२५४] तथा चण्डेश्वर[२५५] ने फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को सीता का जन्मदिन मनाये जाने का उल्लेख किया है।

महेन्द्र पर्व—कल्हण महोदय ने लिखा है कि महीने-आधे महीने मे राजा उच्चल महेन्द्र आदि उत्सवो पर योद्धाओ को एकत्र करके दगल कराता तथा उसकी सारी आमदनी स्वयं ले लिया करता था।[२५६]

इसके अतिरिक्त कल्हण महोदय ने विवाहोत्सव[२५७] विजयोत्सव[२५८] तीर्थयात्रा उत्सव[२५९] तथा राज्याभिषेकोत्सव मनाये जाने के उल्लेख किये है।[२६०] राजा जयसिह के राज्यकाल का उल्लेख करते हुए कल्हण लिखते है कि जिस कश्मीर मे विप्लव शान्त हो चुका था, वहॉ नित्य उत्सव के बाजे बजते रहते थे और झुण्ड के झुण्ड लवण्यो की तुडही रात-दिन सुनाई देती थी।[२६१]

इससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि कश्मीरी जनता कितनी उत्सव प्रेमी रही होगी।

---

२५० नीलमत ७२६-७२९
२५१ राज० VIII ४९५
२५२ नीलमत ५००-५०५
२५३ राज० VIII २०७२
२५४ कृत्यकल्पतरु—पृ० ४३९
२५५ कृत्यरत्नाकर—पृ० ५१८
२५६ राज० पूर्वो० VIII १७०
२५७ राज० पूर्वो० VII ५१५, VIII २९१, २३८७
२५८ वही VI ५४४, ५८१, VII ९०१ VIII १५३६
२५९ वही VII ५१५, VIII २३८७
२६० वही VII ७३६
२६१ व्रही VIII १५३८

पञ्चम अध्याय

सामाजिक स्थिति

- वर्ण-व्यवस्था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मिश्रित जातियॉ ,अन्त्यज, व्यावसायिक वर्ग,
- जंगली जातियॉ एवं विदेशी
- आश्रम-व्यवस्था
- संस्कार
- पारिवारिक जीवन—स्त्री स्वतंत्रता, विधवा स्थिति, सतीप्रथा, वेश्यावृत्ति, देवदासी प्रथा
- भोजन, पहनावा, आभूषण, उपानह, श्रृंगार
- खेल एवं मनोरञ्जन के साधन
- सामाजिक रीति-रिवाज एवं मान्यताए
- रोग एवं परिचर्या
- नैतिक स्तर

पञ्चम अध्याय

सामाजिक जीवन

वर्ण-व्यवस्था, उद्‌भव एवं विकास

प्राचीनकाल मे भारतीय समाज को चार वर्णो मे विभाजित किया गया था। 'वर्ण' शव्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद मे प्राप्त होता है।[१] यहाँ वर्ण का अभिप्राय 'रग' लगाया गया है। अलबेरूनी ने लिखा है, "हिन्दू अपनी जातियो को' वर्ण' या रग कहते है और वशवृक्ष की दृष्टि से उनका नाम 'जातक' या 'जन्म' रखते है, ये वर्ण पहले से केवल चार है।[२] ह्वेनसाग ने भी भारत के चार वर्णो का ही उल्लेख किया है।[३] प्राचीनकालीन धर्म ग्रन्थो मे भी ऐसा ही उल्लेख प्राप्त होता है।[४] डॉ० रामशरण शर्मा ने लिखा है—पूर्व वैदिककाल मे भारतीय समाज तीन वर्णो—ब्राह्मण (पुरोहित), क्षत्रिय (शासक या योद्धा वर्ग) तथा विश् मे विभाजित था। चौथा वर्ण—शूद्र वस्तुत. उत्तर वैदिक काल मे उद्‌भूत हुआ, जिन्हे दस्यु या दास कहा जाता था। जिसमे आर्यो से पराजित अनार्य लोग तथा अन्य अनार्य जातियाँ एव आर्य समाज के निम्न स्तर के लोग सम्मिलित थे।"[५] कश्मीरी समाज मे भी वर्ण के दोनो अर्थो का प्रयोग हुआ है। यहाँ राजा को विभिन्न वर्णो का गुरू (श्रेष्ठ) माना गया है।[६] इस प्रकार उपलब्ध स्रोतो से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीरी समाज हिन्दू शास्त्रो की चतुर्वर्ण व्यवस्था के अनुसार विभाजित था भले ही इस व्यवस्था को व्यावहारिक रूप मे उतनी कड़ाई से लागू न किया गया हो।[७] राजा जालौक ने कान्यकुब्ज को जीतकर चारो वर्णो के लोगो को वहाँ बसाया तथा चतुर्वर्णाश्रम धर्म

---

१ **'ऋग्वेद'** २, १२, ४, १, १७०, ६, १, १०४२, ३, ३४, ९

२ **'अलबेरूनीज इण्डिया'** अनु० ई० सी० सचाऊ, भाग I लदन १९१०, पृष्ठ १००

३ **'युवान च्वांगस ट्रेवेल्स इन इण्डिया'** अनु० टी० वाटर्स लदन १९०४, भाग I पृष्ठ १६८

४ शतपथ ब्राह्मण ५, ५, ४९, पाणिनि

५ **'शूद्राज इन ऐन्शिएन्ट इण्डिया'**—आर० एस० शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास—कलकत्ता १९६८, पृष्ठ ४०

६ 'राजतरङ्गिणी'—कल्हण—अनु० रामतेज शास्त्री पाण्डेय इलाहाबाद, १९३५, II-१३, III ८५, IV-१११

७ **'अर्ली मेडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर'**—कृष्णा मोहन, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, नई दिल्ली, १९८१, पृ०-२११

की व्यवस्था की।[८] ऋग्वेद मे चारो वर्णो की उत्पत्ति ब्रह्मा के शरीर से मानी गयी है, यही विचार महाभारत मे भी उपलब्ध होता है। अर्थात् ब्राह्मण वर्ण विराट् पुरुष (ब्रह्मा) के मुख से, क्षत्रिय वर्ण उसकी भुजा से, वैश्य उसके उदर (जघा) से तथा शूद्र वर्ण उसके पैरो से उद्भूत हुये है।[९] भगवद्गीता मे चारो वर्णो का विभाजन गुण व कर्म के आधार पर किया गया है।[१०] वर्ण-व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप निश्चित रूप से कर्मगत था—यद्यपि जन्मगत आधार का बीज भी उपलब्ध होता है किन्तु व्यवसाय व कर्म का महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक था। अलबेरुनी के कथन से स्पष्ट है कि किसी वर्ण को दूसरे वर्ण का व्यवसाय और कार्य अपनाने की अनुमति नही थी, यदि कोई इसका उलघन करता था तो उसे दण्डित किया जाता था।[११] राजा यशस्कर अपनी प्रजा से वर्णाश्रम धर्म का पालन कराने के लिये सदैव तत्पर रहता था—इसी तरह राजा जयसिह की राज्य की सीमा के अन्दर चौसठ वर्णो के लोगो द्वारा भव्य भोगो का उपभोग करने का उल्लेख है।[१२] क्षेमेन्द्र ने भी चौसठ जातियो के लिये वर्ण शब्द का प्रयोग करते हुये उनके कर्म पर जोर दिया है।[१३]

परिवर्ती काल मे समाज का जो विभाजन कर्मगत आधार पर था—उसका स्थान जन्मगत हो गया तथा वर्ण के स्थान पर अनेक जातियो का उद्भव हुआ। इसके उद्भव के पीछे हट्टन, घुर्ये, नेसफील्ड, केतकर आदि विद्वानो ने अनेको कारण माने है जिनमे नैतिक, आर्थिक तथा वैवाहिक सम्बन्धो के साथ विशेषाधिकार तथा शक्ति के साधनो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।[१४] जाति व्यवस्था के प्रारम्भिक चरण मे सभवत प्रजाति (Race) ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, किन्तु जाति के उद्भव के अग्रलिखित प्रमुख कारण भी है—[१५]

---

८ राज०—पूर्वो० I ११७

९ ऋक्०—१०,१०,१२, महाभारत-शान्तिपर्व—७२, १७-१८, विष्णु पु०—१६६

१० **'चतुर्वर्ण मया सृष्टं गुणकर्म विभागष '**—गीता IV-१३

११ सचाऊ—पूर्वो०—पृष्ठ ९९-१००

१२ राज०—पूर्वो०—VI १०८, VIII २४०७

१३ **'लोकप्रकाश**—क्षेमेन्द्र अनु०—प जगदधर जादू शास्त्री—क० स० टे० सि० ७५, श्रीनगर, १९४७, पृष्ठ-१
राज०—पूर्वो०—VIII २४०७

१४ **'सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया**—बी० एन० एस० यादव इला०—१९७३, पृष्ठ १

१५ **'सोशल लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया'** (६००-१००० ई०)—बी० एन० शर्मा—दिल्ली १९६६, पृ० ८, ३६

१. आर्य व अनार्य तत्त्वो के निरन्तर मिलते रहने से रक्त की शुद्धता पर अत्यधिक बल दिया गया।

२. विभिन्न वर्णो के मध्य अन्तर्विवाहो तथा उनकी सतति-जो समाज मे बढ रही थी—के निर्धारण हेतु

३. विदेशी जनजातियो के आगमन व उनके हिन्दू समाज मे सम्मिश्रित होने से

४. व्यावसायिक जातियो मे वृद्धि

जाति का उदय-श्रम के विभाजन, कार्य के विशिष्टीकरण तथा श्रेणियो के उदय के परिणामस्वरूप हुआ। धर्मसूत्रो मे 'जाति' शब्द का प्रयोग मिश्रित जाति के रूप मे हुआ है, जिनका स्तर शूद्रो के समान था।[१६] पूर्व मध्यकाल मे आर्थिक घटनाओ के कारण व्यापक सामाजिक परिवर्तन हुआ, जिसमे अनेक नई जातियो का जन्म हुआ।[१७] क्षेमेन्द्र[१८] ने जाति व वश की व्यर्थता को प्रकट करते हुये इसे एक सामाजिक बीमारी बताया है। उन्होने आगे लिखा है कि विवेच्य काल मे जिस प्रकार वैश्य व शूद्र उच्च वर्णो के व्यवसाय अपना रहे थे तथा ब्राह्मण लोग निम्न वर्णो के व्यवसाय अपना रहे थे उससे समाज कलियुग मे प्रवेश कर गया। शुक्र[१९] के अनुसार कर्म के आधार पर प्राचीनकाल मे जाति चार भागों मे विभाजित थी किन्तु प्रतिलोम विवाह की वर्णसङ्करता (मिश्रण) के कारण बहुत सी जातियॉ हो गई जिन का वर्णन करना शक्य नही।

ब्राह्मण

सामाजिक स्थिति

चातुर्वर्ण व्यवस्था मे ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च माना गया है। समाज की धार्मिक, सामाजिक एव राजनीतिक व्यवस्था मे वह सर्वोपरि था।[२०] उसकी यह स्थिति प्रारम्भिक काल से ही चली आ

---

१६ **'हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्राज'**—पी० बी० काणे, भण्डा०, ओरि०, रि०, इन्स्टी०,पूना १९३० भाग दो, प्लेट I, पृष्ठ ५५

१७ **'इण्डियन फ्यूडलिज्म'**—आर० एस० शर्मा—कलकत्ता, १९६५, अध्याय ५

१८ **'दर्पदलन'**—क्षेमेन्द्र काव्यमाला सिरीज IV पृष्ठ ७३
'दशावतारचरित'—क्षेमेन्द्र—काव्यमाला-२६ निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८९१, पृष्ठ १६०

१९ **'शुक्रनीतिसार'** अनु० बी० के० सरकार, इलाहाबाद १९१४, IV ५२१

२० **'कलाविलास'** क्षेमेन्द्र—काव्यमाला I पृष्ठ ७९

रही थी। शुक्रनीतिसार के अनुसार जो ज्ञान, कर्म, देवता आदि की उपासना, देवता के आराधन मे तत्पर शात, व दयालु था वही ब्राह्मण था।[२१] कल्हण ने ब्राह्मणो को भू-देव कहा है तथा उन्हे धरती मे सबसे पुण्यात्मा माना है। उसमे इतनी शक्ति है कि वह महान राजाओ के भाग्य को भी बदल सकते है। राजतरङ्गिणी मे उद्धृत है कि जब राजा दामोदर गुप्त ने भूखे ब्राह्मणो को बिना स्नान किये भोजन देने से मना कर दिया, तब उन्होने शाप देकर उसे सर्प बना दिया।[२२] ब्राह्मण लोग मत्र के प्रभाव से देवताओ को अपने वशीभूत कर लेते है, क्रुद्ध होने पर क्षणभर मे—इन्द्रसहित स्वर्ग को, पर्वतो समेत पृथ्वी को तथा शेषनाग सहित पाताल को—भस्म कर सकते है।[२३] प्रसन्न होकर राजा ललितादित्य को रेगिस्तान मे इच्छा मात्र से नदी प्रकट करने का वरदान ब्राह्मणो ने दिया था।[२४] अलबेरूनी का कथन है कि ब्राह्मण सबसे ऊँचे वर्ण के है तथा वे ब्रह्मा के 'सिर' से उत्पन्न हुये है, चूँकि शरीर मे सिर सबसे ऊँचा अग है इसलिये ब्राह्मण सभी जातियो मे श्रेष्ठ है।[२५] डॉ जयशङ्कर मिश्र ने लिखा है कि अलबरुनी ने 'सिर' लिखा है किन्तु उसे 'मुख' होना चाहिये।[२६] ह्वेनसाग ने भी भारत के लिये ब्राह्मण देश का प्रयोग किया है।[२७] इस प्रकार यद्यपि बौद्धकाल मे ब्राह्मणो की सर्वोच्चता को चुनौती मिली किन्तु धीर-धीरे पूर्वमध्यकाल मे उनकी स्थिति पूर्ववत् हो गयी। राजतरङ्गिणी मे यत्र-तत्र ऐसे उल्लेख मिलते है जब प्रतिस्पर्धावश राजाओ ने ब्राह्मणो का दमन प्रारम्भ कर दिया था।[२८]

सामान्य कर्म—विभिन्न हिन्दू ग्रथो[२९] मे ब्राह्मणो मे छः प्रधान कर्म बताये गये है—वेद पढना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना। इस समय के अन्य साक्ष्यो से सकेतित होता है कि ब्राह्मण सादा जीवन उच्च विचार को अपनाते थे तथा धर्मशास्त्रो द्वारा निर्धारित व्यवहार

---

२१ शुक्र० पूर्वो० I ४०

२२ राज० पूर्वो० I १६०,१६२-१६५, V ११४,११५, VIII २२३८-३९

२३ वही IV १२२, ६४२

२४ वही IV २२८-२३३

२५ सचाऊ—पूर्वो० भाग एक पृष्ठ १००

२६ **'ग्यारहवी शती का भारत'**—जयशङ्कर मिश्र अध्याय ६ पृष्ठ १०२

२७ वाटर्स—पूर्वो० भाग I पृष्ठ १४०

२८ राज०—पूर्वो०—IV १२२, ६३१, ६३३, ६३८-६५६, VI_ ३-४

२९ मनु०—I ८८, याज्ञ० V-१८८, बोध० धर्म० ११० १८ २ भवि० पु०-२, १२१

के अनुसार रहते थे। यद्यपि धार्मिक कृत्यो को कई ब्राह्मण मिलकर करते थे किन्तु उनका स्तर एक समान नही होता था वे कर्म के अनुसार इस प्रकार विभाजित होते थे—[३०]

राजपुरोहित एवं सामत पुरोहित—जिन्हे पर्याप्त सम्मान व धन प्राप्त होता था तथा राजा व सामतो से क्रमशः जो भेट व भूमिदान प्राप्त करते थे।

मंदिर पुजारी—इन्हे ब्राह्मणो मे उच्च स्थान नही प्राप्त था किन्तु ये मदिर के चढावे, राजा व सामतो द्वारा मदिर को दिये गये दान व अग्रहार से अधिक धनी हो गये थे—कश्मीर मे ये लोग सगठन बनाकर भूखहडताल द्वारा अपनी मागो को मनवाते थे।[३१]

उच्च वर्ग के पुरोहित, निम्न वर्ग के पुरोहित, जनसामान्य के पुरोहित, ग्राम-पुरोहित[३२]

पठन-पाठन व धार्मिक कृत्यो के अतिरिक्त ब्राह्मण अन्य व्यवसायो द्वारा अपनी आय मे वृद्धि करते थे—ज्योतिष, मत्री, सेनापति न्यायाधीश इत्यादि।[३३] क्षेमेन्द्र[३४] के अनुसार कुछ ब्राह्मण कारीगर, नर्तक जैसे निम्न व्यवसाय करते थे तथा कुछ शराब, मक्खन, दूध, नमक तक बेचते थे। इस प्रकार कुछ अपने धार्मिक कर्तव्यो का परित्याग कर देते थे। परन्तु ऐसी स्थिति सम्भवत आपातकाल मे रही होगी।

आपत्तिकालिक कर्म—आपत्तिकाल मे जब ब्राह्मण अपने निश्चित कर्मो को करने मे किसी कारणवश असमर्थ होता था तब वह अन्य वर्ण के व्यवसायो को करता था परन्तु इसमे कुछ ऐसे कार्य थे जिनको अपनाना ब्राह्मण के लिये पूर्णत निषिद्ध था। बोधायन धर्मसूत्र[३५] मे कहा गया है कि जब ऐसी स्थिति आ जाय कि ब्राह्मण अपने लिये निर्धारित कर्मो को करने मे असमर्थ हो तो वह क्षत्रियो का व्यवसाय कर सकता है। मनुस्मृति[३६] मे ब्राह्मणो को आपत्तिकाल मे स्वयं की, गाय की, ब्राह्मण वर्ण की रक्षा तथा जातियो के सम्मिश्रण को रोकने के लिये हथियार उठाने की छूट दी गयी है।

---

३० सोसाइटी—पूर्वो० पृष्ठ १९

३१ राज०—पूर्वो० VIII ८९८-९०३, ९०८, ९३९-९४०, अनु० आर० एस० पण्डित—पूर्वो०—परि० 'ब'

३२ **'त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित**—हेमचन्द्र—VII (१९३६), VIII (१९५०)—भाग दो पृष्ठ० १३५

३३ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली—१९४०, पृष्ठ ५६९-५७२

३४ दशा०—पूर्वो० पृष्ठ १६०

३५ बोधा०—II २, ६९-७०

३६ मनु०—VIII ३४८-३४९, गौतम० ७, ६, २५

कौटिल्य[३७] ने भी ब्राह्मण सेना के गुणावगुणो की चर्चा की है। कल्हण[३८] के अनुसार युद्ध भूमि मे ब्राह्मण सैनिक भी भाग लेते थे। अलबेरूनी[३९] ब्राह्मणो को राज्य की सेवा करना वाक्षनीय नही मानता किन्तु सामान्य रूप मे ब्राह्मणो के मत्री होने का उल्लेख मिलता है। कल्हण के पिता मत्री थे जबकि मखक[४०] के भाई अलकार, वृहदगज, राजस्थानीय तथा सान्धिविग्रहिक सदृश पदो पर थे। वे स्वय राज्य के विदेश मत्री थे, जबकि उसके एक अन्य भाई श्रृगार वृहद्गजाधिप (न्यायाधीश) थे। ब्राह्मण मंत्रियो, सामतो का उल्लेख तत्कालीन अन्य स्रोतो से भी प्राप्त होता है। राजा कलश ने प्रमदकण्ठ नामक ब्राह्मण को अपना गुरु बनाया तथा एक अन्य ब्राह्मण लोष्ठक को दैवज्ञ (ज्योतिषी) नियुक्त किया।[४१] इसी प्रकार ब्राह्मणो के नगराधिकृत,[४२] दण्डनायक[४३] तथा लेखक (कायस्थ)[४४] पद पर अवस्थित होने के साक्ष्य मिलते है। इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण राजसेवा मे सलग्न होते थे।

प्राचीन धर्मशास्त्रकारो[४५] ने ब्राह्मण के लिये व्यापार निषिद्ध बताया है किन्तु कुछ की मान्यतानुसार आपत्तिकाल मे ब्राह्मण अपने ऊपर लगाये गये प्रतिबन्धो को मानते हुये-नमक, लाख, मास, दूध, शहद, उत्तेजनात्मक पेय, पका भोजन, विष, शस्त्र, रेशम, लकडी, गाय, मधु, मोम, नील, खाल (चर्म) तथा विद्या के अतिरिक्त व्यापार कर सकता था।[४६] ब्राह्मण अपनी पूँजी-दाना (अन्न), घास, लकडी, कपड़ो व सुपाडी के व्यवसाय मे लगा सकते थे। वे ब्याज पर द्रव्य का लेन-देन नही कर सकते थे।[४७] किन्तु लक्ष्मीधर[४८] ने आपत्तिकाल मे ब्राह्मणो को ऐसा करने की छूट दी है। लक्ष्मीधर ने देवल को

---

३७ कौटिल्य अर्थशास्त्र ९ २

३८ राजतरङ्गिणी—VI-९, VII-२१, ११७, १४८ VIII-४७२, १०१३, १०७१, १३४५

३९ **अलबेरूनीज इण्डिया**—सचाऊ—भाग दो पृष्ठ १३२

४० श्रीकण्ठचरित—अध्याय ३/५० ६२, २५/६१ समयमातृका-VI २६, नर्म २/१३३-१३७
राजतरङ्गिणी—V-४२४-२५, VII-८५, ८६, २०४, VIII-१६२०, २४२३, २५५७, २६१६, २६७१

४१ राजतरङ्गिणी-VII/२७७-२७८, २९५-२९७, २९९

४२ वही VII/१०४, १०८-१०९

४३ इपीग्राफिया इण्डिका—II-३०१

४४ वही VIII/२३८

४५ मनु०—१० ८६-११६, गौतम—७ ८-१४ नारद—६१-६३, याज्ञ० ३ ४०-४२

४६ अत्रि०—२१ पृ० १०, वशिष्ठस्मृति II – ३१ पृ० १९० पाराशर – II ७

४७ **अलबेरूनीज इण्डिया**-सचाऊ-भाग दो पृष्ठ १३२

४८ कृत्यकल्पतरु-गृहस्थ० २१४-२२१

उद्धृत करते हुये कठिन परिस्थितियो मे ब्राह्मणो को कृषि कार्य करने की आज्ञा दी है, उन्होने लिखा है कि यदि वह कृषि उपज का १/६ राज्यकर, १/१२ भगवान के नाम पर तथा १/३० ब्राह्मण को देता है तो वह कोई पाप नही करता।[४९] अत्रि ने भी ब्राह्मण को दान मे प्राप्त भूमि पर खेती करने का अधिकार दिया है।[५०] ब्राह्मणो द्वारा शूद्रो का व्यवसाय अपनाये जाने को उचित नही माना गया। जब ब्राह्मणो का जीवन खतरे मे हो तब शूद्र का व्यवसाय अपनाने की छूट दी गई है किन्तु उसके साथ बैठने या खाने के समय निकट सम्पर्क मे आने का निषेध किया गया है। उसे दासोचित कर्म करने की भी मनाही थी।[५१]

ब्राह्मणो के आय के अन्य स्रोत-मदिरो के अधीनस्थ गॉवो का राजस्व, मदिरो के समीप फूलो, सुगधित पदार्थो के विक्रय से लाभ[५२] तथा जनता द्वारा मदिरो मे चढावे के रूप मे प्राप्त धन—थे।[५३] कथासरित्सागर[५४] मे ब्राह्मणो को मानव चर्बी से निर्मित मोमबत्तियो का प्रयोग करने वाला, डकैत तथा बिना हिचकिचाहट के गायो को मारने वाला कहा गया है।

ब्राह्मणों का स्थानान्तरण—कल्हण ने एक स्थान के ब्राह्मणो का दूसरे स्थान पर जाकर बसने का उल्लेख किया है। उनके अनुसार राजा गोपादित्य ने लशुनभक्षक ब्राह्मणो को भूक्षीर वाटिका मे तथा अभक्ष्यभक्षी एवं दुराचारी ब्राह्मणो को खासटा नामक ग्राम भेजकर आर्यावर्त से सदाचारी, धार्मिक एव विद्वान ब्राह्मणो को बुलाकर वाश्चिका अग्रहार रहने के लिये दिया। इसी प्रकार रानी दिद्दा ने मध्य देश (लाट देश) से आने वाले ब्राह्मणो के रहने के लिये मठ बनवाया था।[५५] अलबेरुनी लिखता है कि सिन्धु या चम्बल को पार करना पापपूर्ण समझा जाता था और ऐसा करने से वे जाति से बहिष्कृत हो जाते थे तथा एक पृथक जाति समझे जाते थे।[५६]

---

४९ कृत्यकल्पतरु १०, १९४, १९५, शुक्र० ४ ३ १९
५० अत्रि० २१ पृष्ठ १०
५१ **सेक्रेड बुक्स ऑव ईस्ट** II, पृष्ठ २१३
५२ राजतरङ्गिणी-कल्हण-I १३२, V ४८-५२, १६८, १७०
५३ समयमातृका-क्षेमेन्द्र II ७७
५४ अनु० टावनी भाग I ३०६, पृष्ठ २४१ भाग II २०२
५५ राजतरङ्गिणी—I ११७, ३४२-३४३, VIII-२४४४, VI ३०४
५६ **अलबेरूनीज इडिया**-सचाऊ-भाग II पृष्ठ १३४-१३५

ब्राह्मणों के उपवर्ग—ब्राह्मण लोग कई उपवर्गो मे बॅटे थे। यद्यपि इन्हे गोत्र, प्रवर, शाखा के आधार पर बॉटा गया था किन्तु इन्हे व्यवसाय, योग्यता, नैतिक शुद्धता, धर्म, क्षेत्र व परिवार के आधार पर भी विभाजित किया गया था। साहित्य मे पञ्चगौड का उल्लेख है।[५७]

सारस्वत ब्राह्मण—पुष्कर झील तथा अजमेर जहॉ प्राचीनकाल मे सरयू नदी बहती थी के समीपवर्ती भाग मे रहते थे।[५८]

कान्यकुब्ज ब्राह्मण—उ० प्र० मे वर्तमान कन्नौज के निवासी थे।

मैथिली ब्राह्मण—उत्तरी बिहार के मिथिला से सबधित थे।

उत्कल ब्राह्मण—वर्तमान उडीसा से सबधित थे।

गौड़ ब्राह्मण—प्रारम्भ मे बगाल मे रहते थे।

बंगाली ब्राह्मण—मुखोपाध्याय, बदोपाध्याय व चट्टोपाध्याय कहलाते थे।

इसी तरह गुजरात व राजस्थान के ब्राह्मणो के कई वर्ग थे—किन्तु कश्मीरी समाज मे ब्राह्मणो के तीन वर्ग वर्णित है। ज्योतिषी, पुराहित (गुरु) तथा कर्मचारी वर्ग (कारकून)। ये पडित कहलाते थे। ज्योतिषी शास्त्रो के ज्ञाता होते थे तथा पञ्चाङ्ग बनाते थे।

पुरोहित वर्ग धार्मिक कृत्य व उत्सव करवाते थे तथा **कारकून** लेखन कार्य मे सलग्न रहते थे।[५९] कश्मीरी पडित स्वय को सारस्वत शाखा से सम्बद्ध मानते है। बिल्हण ने स्वय को धर्मनिष्ठ एवं शिक्षित मध्यदेशीय ब्राह्मण परिवार का बताया है।[६०] कल्हण ने अग्रहार प्राप्त करने वाले सामान्य ब्राह्मणों को पुरोहित सगठनो (परिषदो) से सम्बद्ध उच्च शिक्षित ब्राह्मण से जिससे वह स्वय सम्बन्धित था—पृथक् माना है।[६१]

---

५७ राज०—IV-४६८, सोशल पूर्वो० पृ० १४

५८ **'दि ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑव ऐन्शिएण्ट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया'**—एन० एल० डे० पृ० १८०-१८१

५९ **'अर्ली मेडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर'**—कृष्णा मोहन-नई दिल्ली-१९८१, पृष्ठ २१८ पाद टि० ३

६० 'विक्रमाङ्कदेवचरित'—VIII-६, ७३

६१ 'राजतरङ्गिणी'—VII-१२, १३, १७७, VIII ८९८-९००

विशेषाधिकार—ब्राह्मणो को प्राचीनकाल से ही अनेक सुविधाये प्राप्त थी, जो अन्य वर्णो के लिये सुलभ नही थी। राजनीतिक, धार्मिक ,आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक आदि सभी क्षेत्रो मे कुछ ऐसे विशेष अधिकार प्राप्त थे जो उन्हे अन्य वर्णो से उच्च बनाते थे।

अलबेरूनी ब्राह्मणो की आदिकालीन राजनीतिक स्थिति के बारे मे कहता है कि शासन व युद्ध के कार्य ब्राह्मणो के हाथ मे थे जो धर्मशास्त्रानुसार शासन करते थे किन्तु समाज के उच्छृखल तत्त्वो के सम्मुख असफल हो गये अत उनके द्वारा प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने शासन व युद्ध का कार्य क्षत्रियो को दे दिया।[६२] ब्राह्मणो के आपत्तिकालिक कर्म के अन्तर्गत हमने उनके द्वारा मत्री, सामत, सलाहकार, गुरू, सैनिक, नगराधिप, सदृश अनेक महत्त्वपूर्ण पदो पर कार्य करने की चर्चा की है।

कल्हण[६३] से ज्ञात होता है कि राजा के अभिषेकोत्सव मे ब्राह्मण लोग प्रमुख रूप से सम्मिलित होते थे। पुरोहितो द्वारा व्यक्तिगत मदिरो एव पवित्र तीर्थ-स्थलो मे निर्मित परिषदे राजाओ की नियुक्ति एवं राजाओ के आपसी विवादों को समाप्त करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी, यह हमे राजतरङ्गिणी से स्पष्ट पता चलता है। १०वी शती के मध्य मे उत्पल कुल की समाप्ति पर सिहासन सबंधी विवाद ब्राह्मणो की धर्म-परिषद ने ही किया था—इसी प्रकार राजा अनन्त और उनके पुत्र कलश के मध्य की शत्रुता भी उन्होने समाप्त करवायी थी।[६४]

प्राचीन धर्मशास्त्रकारो ने ब्राह्मणो को भीषण अपराध करने पर भी प्राणदण्ड न देने की व्यवस्था की है जबकि उसी अपराध के लिये अन्य जातियो के लिये प्राणदण्ड की व्यवस्था थी।[६५] कात्यायन ने सन्दर्भित किया है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी निम्न वर्ण की स्त्री के भ्रूण नष्ट करने या हत्या करने का दोषी पाया जाता है तो उसे मृत्युदण्ड प्राप्त होगा[६६] इसी प्रकार राजद्रोह करने वाले ब्राह्मणो को जलसमाधि द्वारा दण्ड दिये जाने का उल्लेख कौटिल्य ने किया है।[६७] कल्हण ने अनेक ऐसे उदाहरण

---

६२ **'अलबेरूनीज इण्डिया'**—भाग II पृष्ठ १६१-१६२

६३ राजतरङ्गिणी— V-४६१-४७७

६४ राजतरङ्गिणी II १३२, V-१७१, ४६५-४६६, VI-३३४-३४०, ३४३-३४४, VII-१३, २०, १७७, ४००-४०१, ९००, ९९३-९९५, VIII-७०९, ७६८-७७६, ९००, ९०८,९३९, २२२४, २२३४, २७३३-३७

६५ मनु० ८ ३७६ नारद० ९११, कौ० अर्थ ४८ ३२-३७

६६ याज्ञवल्क्य स्मृति पर विश्वरूप की टिप्पणी—II-२८१

६७ कौ० अर्थ०—भाग IV अध्याय II

उद्धृत किये है जब ब्राह्मणो को प्राणदण्ड से मुक्त कर दिया गया। राजा चन्द्रापीड के समय एक ब्राह्मणी द्वारा अपने पति की हत्या का दोष एक ब्राह्मण पर लगाये जाने पर राजा कहता है, "जिसका अपराध सिद्ध न हुआ हो उसे दण्ड नही दिया जाता—साधारण पुरुष को भी अपराध सिद्ध होने से पूर्व मृत्युदण्ड नही दिया जाता फिर यह तो ब्राह्मण है—अपराध सिद्ध हो जाने पर भी इसे मै मृत्युदण्ड नही दे सकता।[६८] किन्तु राजतरङ्गिणी मे ही ऐसे प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं जब ब्राह्मणो को अत्याचारी शासको ने अनेक प्रकार की यातनाये दी, उनके अग्रहार छीन लिये तथा उन्हे मौत की सजा दी।"[६९]

चोरी के अपराध मे ब्राह्मणो को अन्य वर्णो की अपेक्षा कम दण्ड मिलता था।[७०] आपस्तम्ब धर्मसूत्र[७१] के अनुसार चोरी के अपराध में ब्राह्मण की ऑखें जीवन पर्यन्त के लिए बाध देनी चाहिए जबकि अन्य वर्णो को प्राणदण्ड की व्यवस्था थी। किन्तु पी०वी० काणे को उद्धृत करते हुये डॉ बी० एन० एस० यादव ने लिखा है कि कुछ अपराधो के लिये ब्राह्मण को कम सजा दी जाती थी किन्तु चोरी के लिये उसे कठिन सजा की व्यवस्था थी।[७२]

धार्मिक क्षेत्र मे ब्राह्मणो को विशेष सुविधाये प्राप्त थीं। राजदरबार मे उन्हे विशेष सम्मान व आदर प्राप्त था तथा दान एव भूमिदान राजाओ द्वारा उन्हे विशेष रूप से दिये जाते थे। कल्हण सूचित करता है कि कश्मीरनरेश यशस्कर यह सोचकर कि मेरे जैसे सामान्य मनुष्य को पूर्व जन्म के किसी पुण्य प्रताप के कारण साम्राज्य प्राप्त हुआ है अगले जन्म मे भी राज्य प्राप्ति की लालसावश उसने अपनी सम्पूर्ण राजलक्ष्मी ब्राह्मणो को दान में दे दी। (टंक) सिक्के ढालने के अधिकार के अतिरिक्त उसने मठाधीश को छत्र, चमर आदि सारे राजचिन्ह दे दिये।[७३] कथासरित्सागर[७४] मे भी एक ब्राह्मण की कहानी है जिसमे राजा ने उसे अपना पुरोहित नियुक्त करके एक हजार गॉव, छत्र तथा एक हाथी राजसी प्रतीक स्वरुप दिया था। कश्मीर मे उपाधि-राजानक अर्थात् राजा के समीप ब्राह्मणो से इतनी

६८ राजतरङ्गिणी—IV-९६-१०६, ११२, VI-१०८-११२

६९ राज०—VII-१२२९, VIII-१०१३, २०६०

७० ग्यारहवीं शती का भारत—डा० जयशङ्कर मिश्र—पृष्ठ १०९

७१ २१० २७, १६-१७

७२ सोसाइटी—पृष्ठ २६

७३ राज०—VI-११७ पाद टिप्पणी

७४ अनु टावनी भाग दो पृष्ठ ५९

घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो गयी थी कि बाद मे उनमे 'राजदान' एक पारिवारिक नाम हो गया।[७५] क्षेमेन्द्र[७६] ने लिखा है कि ११वी-१२वी शताब्दी मे कायस्थो ने ब्राह्मणो के आर्थिक विशेषाधिकारो के विनाश का मार्ग प्रशस्त किया क्योकि भूमिदानयज्ञ के लेखन का कार्य कायस्थ ही करते थे।

दान लेने का अधिकार केवल ब्राह्मणो को था इसके अतिरिक्त उन्हे राजकर से भी छूट मिलती थी। अलबेरूनी के अनुसार केवल ब्राह्मण ही सभी प्रकार के करो से मुक्त थे।[७७] अल्टेकर महोदय[७८] का कथन है कि एक वर्ग जिसने धर्म के संरक्षण एवं सांस्कृतिक विकास मे अत्यन्त योगदान दिया— उसके द्वारा शासित समाज मे कुछ विशेषाधिकार प्राप्त करना स्वाभाविक था। स्मृति एवं पुराण ब्राह्मणो को राजस्व व प्राणदण्ड से सर्वथा मुक्त बताते है किन्तु यह छूट केवल 'श्रोत्रिय' या विद्वान ब्राह्मणो के लिये थी, क्योकि शातिपर्व से यह स्पष्ट है कि जो ब्राह्मण व्यापार व उद्योग मे सलग्न थे उन्हे पूरा राजस्व देना पड़ता था। डॉ जयशङ्कर मिश्र ने लिखा है कि केवल ब्रह्मदेय ग्रामो—जो वैदिक शिक्षा के वितरण के लिये ब्राह्मणो को दी जाती थी —को ही कर नही देना पड़ता था, अन्य ग्रामो को इस प्रकार की छूट नही प्राप्त थी। कश्मीर के सदर्भ में यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट नही है किन्तु यह तथ्य सत्य प्रतीत होता है कि ब्राह्मणो को कर से छूट अवश्य प्राप्त रही होगी।[८०]

सामाजिक दृष्टि से ब्राह्मणो की स्थिति समाज मे सर्वोच्च थी। प्राचीनकाल मे उन्हे चारो वर्णो से एक-एक पत्नी रखने का अधिकार था, जिसका समर्थन अनेक विद्वानो ने किया है।[८१] विद्वत्शिरोमणि कश्मीरनरेश राजा हर्षदेव ने विद्वानों को विविध रत्नजटित अलकारो से अलकृत कर उन्हे पालकी, रथ, छत्र आदि सम्मानसूचक वस्तुये दी थी।[८२] इसी प्रकार बिल्हण कवि को उनके आश्रयदाता राजा परमर्दि देव ने 'विद्यापति' उपाधि तथा हाथी की सवारी व छत्र धारण करने का सम्मान दिया था।

७५ राज० VII-१३११ पाद टिप्पणी
७६ कलाविलास—V-३९ नर्ममाला—पृष्ठ-१२-१४ प्रस्तावना पृष्ठ-१४
७७ 'अलबेरूनीज इण्डिया'—सचाऊ—भाग दो पृष्ठ १४९
७८ 'राष्ट्रकूटाज ऐण्ड देयर टाइम्स'—पृष्ठ ३२७
७९ 'ग्यारहवी शती का भारत'—पृष्ठ १११
८० अर्ली मेडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर—कृष्णा मोहन
८१ अथर्ववेद—५ १७.८९
८२ राज० VII-९३४-९३७

क्षत्रिय

सामाजिक स्थिति

वर्ण-व्यवस्था की परम्परागत मान्यतानुसार क्षत्रिय का समाज मे ब्राह्मणो के बाद स्थान आता है किन्तु बौद्धकाल मे क्षत्रियो ने स्वयं को सर्वश्रेष्ठ वर्ण के रूप मे प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया।

पूर्वमध्यकाल तक क्षत्रिय द्वितीय वर्ण की अपेक्षा शासक वर्ग या योद्धा प्रमुख के रूप मे—राजपूत माने जाने लगे।[८३] मध्ययुगीन विद्वान लक्ष्मीधर[८४] ने क्षत्रिय शब्द को 'क्षतात्त्राराणम्' से निःसृत माना अर्थात् जो वीर उत्साही, शरण देने वाला और रक्षा करने मे समर्थ, दृढ व लम्बे शरीर वाले थे वे इस ससार मे क्षत्रिय हुये। इस प्रकार क्षत्रिय वर्ण चूँकि शासक वर्ग से सम्बन्धित था—इसलिये समाज मे उसका स्थान महत्त्वपूर्ण होना स्वाभाविक था।

टॉड महोदय[८५] ने राजपूतो को मध्य एशिया के सीथियन लोगो का उत्तराधिकारी माना जो बडी संख्या मे प्रारम्भिक काल मे भारत आये थे। कल्हण[८६] ने भी लिखा है कि जब पजाब व अफगानिस्थान को तुर्क-अफगान लोगो ने अधिगृहीत कर लिया उस समय शाह्यावशीय राजकुमारो तथा अन्य क्षत्रियो ने कश्मीर मे शरण ली थी—इसी के आधार पर सी०वी० वैद्य[८७] व जी० एच० ओझा[८८] ने टॉड महोदय के मत का विरोध करते हुये राजपूतो के पूर्णत भारतीय उत्पत्ति को स्वीकारा किया है। डॉ० बी० एन० शर्मा[८९] के अनुसार वंशानुगत का सिद्धान्त १००० ई० तक उत्कर्ष मे पहुँच गया, अधिकांश राजपूत जातियॉ अपनी उत्पत्ति (वशावली) चॉद व सूरज से जोडने लगे—यद्यपि उनमे से बहुत से क्षत्रिय से बाहर उत्पन्न हुए थे।

प्रतिलोम विवाह उच्च जातियों द्वारा हतोत्साहित किया गया जबकि अनुलोम विवाह के प्रति

---

८३ **जर्नल ऑव इकनॉमिक ऐण्ड सोशल हिस्ट्री ऑव ओरिएन्ट**—भाग-VII-१९६४ पृष्ठ ७४
८४ कृत्यकल्पतरु—गृहस्थ० पृष्ठ २५२
८५ **एनल्स ऐण्ड एन्टीक्विटीज ऑव राजस्थान** स० क्रुक भाग एक प्रस्तावना अध्याय २, ३, ६
८६ राजतरङ्गिणी—रामतेज शास्त्री—VIII ३२३०, ३३४६-३३४७
८७ **हिस्ट्री ऑव मेडिवल हिन्दू इण्डिया**—III, पृष्ठ ३७०
८८ **राजपूताने का इतिहास**—भाग एक पृष्ठ ४९
८९ **सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया**—पृष्ठ २०

अप्रसन्नता प्रकट की गई—इस प्रकार चारो वर्णो मे अत्यधिक जातियाँ उत्पन्न हुई। राजतरङ्गिणी[९०] मे राजपूतो के छत्तीस कुलो का उल्लेख हुआ है, जिसकी पुष्टि अन्य साक्ष्य करते है। सी० वी० वैद्य[९१] महोदय ने क्षत्रियो को दो वर्गो मे बाँटा है।

प्रथम—शासक वर्ग जो राज्य, जिला या गाँव के मुखिया थे तथा अपेक्षाकृत उच्च समझे जाते थे।

द्वितीय—सामान्य सैनिक वर्ग जो अपने मालिक के अधीन कार्य करते थे।

अल्टेकर[९२] ने इन्हे क्रमश सत्क्षत्रिय तथा क्षत्रिय माना है जबकि इब्नखुदार्दबा[९३] ने इन्हे साबकुफ्रिया तथा कटारिया कहा है। जो उच्चवर्ग के रूप मे सम्मानित होते थे तथा जिनको ब्राह्मण भी प्रणाम करते थे।

क्षत्रियो का विभाजन हमे गोत्र या प्रवर के आधार पर नही दिखाई पडता क्योकि मिताक्षरा[९४] मे कहा गया है कि क्षत्रियो व वैश्यो ने अपने गुरुओ का गोत्र व प्रवर ज्यो का त्यो अपना लिया था क्योंकि उनका अपना कोई गोत्र नही था।

क्षेमेन्द्र[९५] न इनके लिये 'सुक्षत्रिय' शब्द का प्रयोग किया है। कल्हण[९६] ने प्राचीन राजवशो मे रघुवश व गोनद को श्रेष्ठ माना है।

सामान्य कर्म—कर्म की दृष्टि से क्षत्रियो का कर्म महत्त्वूर्ण था। प्रजा की रक्षा करना, वेद पढना, दान देना, यज्ञ करना और सासारिक विषयो मे चित्त न लगाना इनके पॉच कर्तव्य नियत किये गये हैं।[९७] अलबेरूनी[९८] ने भी वेद पढ़ना, यज्ञ करना, प्रजा पर शासन करना उसकी रक्षा करना तथा पुराणो के अनुसार आचरण करना क्षत्रिय के कर्तव्य बताये है। कश्मीरी स्रोतो मे यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप

---

९० अनु० रामतेज शास्त्री—VII-१६१७-१६१८, पृथ्वीराजरासो (I २७७-२७८) वीसलदेवरासो I ७१ II ६८
९१ **हिस्ट्री ऑव मेडिवल हिन्दू इण्डिया**—III पृष्ठ ३७०
९२ **राष्ट्रकूटाज ऐण्ड देयर टाइम्स**—पृष्ठ ३१८-३१९
९३ इलियट ऐण्ड डाउसन—भाग I १६-१७, ७६
९४ याज्ञवल्क्यस्मृति पर टीका—I ५३
९५ **बोधिसत्त्वावदानकल्पलता**—भाग दो पृष्ठ २२३ V-११९
९६ राज०—III ४७२
९७ मनु० १८९ याज्ञ० ५ ११८-११९ पाणिनि ४१ १६८ कौ० अर्थ १,३, ६
९८ 'सचाऊ' **अलबेरूनीज इण्डिया**—भाग दो पृष्ठ १३६

से क्षत्रियो का कर्तव्य शासन करना, प्रजा की सेवा व रक्षा करना, धर्म, कर्म व दान देना प्राप्त होता है किन्तु क्षेमेन्द्र[९९] ने बहुत से ऐसे राजपूतो का उल्लेख किया है जो अच्छे वस्त्रो मे इधर-उधर घूमा करते थे तथा लोगो को ठगना ही जिनका मुख्य व्यवसाय था। कथासरित्सागर[१००] मे भी ऐसे ही ठग राजपूतो का उल्लेख किया गया है। यही राजपूत सुरक्षाकर्मियो का भी उल्लेख हुआ है।

आपत्तिकालिक कर्म

ब्राह्मणो के समान क्षत्रियो के लिये भी आपत्तिकाल मे कुछ कर्म विहित किये गये थे। मनु के अनुसार, "क्षत्रियो को आपत्तिकाल मे वैश्यो का व्यवसाय स्वीकार करना चाहिए न कि ब्राह्मणो के कर्म-दान लेना, वेद पढाना, यज्ञ कराना। चारो वर्णो के लोग आपत्तिकाल मे अपने से निम्न वर्ण के व्यवसाय अपना सकते थे, जो इस नियम को नही मानता था उसे उसकी सम्पत्ति से वचित करके देश निकाला दे दिया जाता था।[१०१] बी० एन० शर्मा[१०२] ने भी लिखा है कि जो क्षत्रिय अपना मूल व्यवसाय (सैनिक) का परित्याग करके नया व्यवसाय आरम्भ कर देते थे वे एक नयी उपजाति बना लेते थे। पाराशरस्मृति[१०३] मे भी क्षत्रियो द्वारा खेती करने का उल्लेख हुआ है।

विशेष सुविधायें

क्षत्रियो को यद्यपि ब्राह्मणो की तरह विशेषाधिकार नही प्राप्त थे किन्तु अलबेरूनी[१०४] ने उन्हे भी ब्राह्मणो की तरह प्राणदण्ड से छूट दी है तथा चोरी के अपराध मे उसका बाया पैर दाया हाथ या दाया पैर और बांया हाथ काटने को कहा है किन्तु आपस्तम्बसूत्र[१०५] ब्राह्मणो के अतिरिक्त सभी वर्णो को प्राणदण्ड देने की व्यवस्था देता है। लक्ष्मीधर ने देवल को उद्धृत करते हुये क्षत्रियो को उपहार लेने की छूट दी है।[१०६] कश्मीर मे राजा से अपनी सेवाओ के बदले या राजा की प्रसन्नता पर भूमिदान प्राप्ति का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है।

---

९९ **दर्पदलन**—पृष्ठ ६६
१०० अनु०—टावनी—भाग दो पृष्ठ १७५-१८३
१०१ X ९५-९६ मनु० पर मेधातिथि की टीका X ९६
१०२ **सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया**—पृष्ठ २४
१०३ II १३
१०४ सचाऊ **अलबेरूनीज इण्डिया**—भाग दो पृष्ठ १६४
१०५ २ १० २७, १६-१७
१०६ कृत्यकल्पतरु दानकाण्ड पृष्ठ ३७

वैश्य

सामाजिक स्थिति

प्राचीन भारतीय समाज मे वैश्यो की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। कर्म के अनुसार वह कृषि, व्यापार एव वाणिज्य करता था एव इसके बदले मे राज्य को कर देता था—इस तरह समाज के आर्थिक आधार का सचालन करने के कारण वे महत्त्वपूर्ण थे। ब्राह्मण व क्षत्रिय के साथ वह भी 'द्विज' कहा जाता था, किन्तु जैसा कि अलबेरूनी ने लिखा है कि ११वी शताब्दी तक धर्म व विधि दोनो रूपो से वैश्य शूद्र माने जाने लगे। यदि राजा के सामने वैश्य द्वारा वेद उच्चरित करने का दोष सिद्ध हो जाता था तो उसकी जीभ काट ली जाती थी।[१०७] डॉ० बी० एन० एस० यादव[१०८] ने लिखा है कि १२ वी शती तक समाज मे जाति प्रथा के विरोध की जो भावना प्रबल हुई थी—उसके लिये निम्न वर्णो की आर्थिक स्थिति मे सुधार होना एक प्रमुख कारण था। पूर्वमध्यकाल मे कृषि, उद्योग-धन्धो, व्यापार तथा वाणिज्य आदि की उन्नति हुई जिसके फलस्वरूप निम्नवर्ण के लोग सामाजिक दृष्टि से हीन होने के बावजूद आर्थिक दृष्टि से समृद्ध हो गये फलस्वरूप उन्होने जाति-प्रथा के कड़े नियमो को मानने से इकार कर दिया जिसके फलस्वरूप परम्परागत वर्णो के कर्तव्यो को नये सिरे से पुन परिभाषित किया गया। इसी समय शूद्र-जो दास थे तथा जिनसे बेगार लिया जाता था—द्वारा वैश्यो के समान स्थिति प्राप्त कर लेना-भारत मे सामतवाद का विशिष्ट अवयव था।[१०९] परन्तु डॉ० जयशङ्कर मिश्र[११०] कहते है कि आज के वर्तमान रहन-सहन को देखते हुए यह विश्वास नही किया जा सकता कि वैश्यो का स्तर शूद्रो जैसा हो गया होगा, रही बात वैश्य व शूद्र को एक ही दण्ड देने की व्यवस्था सो भी पूर्णरूपेण विश्वसनीय नही, हॉ यह संभव है कि जो अतर ब्राह्मण और क्षत्रिय मे था वह वैश्य और शूद्र मे न रहा हो। कल्हण ने रोहितदेशवासी नोण नामक वैश्य द्वारा ब्राह्मणो के निवास हेतु उत्तम कोटि का मठ बनवाने तथा राजा प्रतापादित्य द्वारा उसे अपने राजमहल मे राजोचित आतिथ्य दिये जाने

---

१०७ अलबेरूनीज इण्डिया—भाग दो पृष्ठ १३६

१०८ सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेचुरी—पृष्ठ ८-९

१०९ इण्डियन फ्यूडलिज्म—आर० एस० शर्मा पृष्ठ ६३

११० ग्यारहवीं शती का भारत—पृष्ठ ११७

का उल्लेख किया है, इसी प्रकार उस सेठ ने राजा को अपने घर मे रखा-जिसके विलासितापूर्ण वैभव को देखकर राजा आश्चर्यचकित रह गया।[१११]

वैश्यो का विभाजन उनके व्यापार अथवा क्षेत्र के आधार पर किया गया था यथा सोने का व्यापार करने वाले को स्वर्ण वणिक तथा दवाओ का व्यापार करने वाले को औषधिक कहा गया।[११२]

सामान्य कर्म

गीता[११३] मे खेती, गौ की रक्षा तथा वाणिज्य वैश्य के स्वाभाविक कर्म बताये गये है। प्राचीन धर्मग्रन्थो[११४] मे वैश्य के कर्म-दान देना, यज्ञ करना, वेद पढना, ब्याज लेना, खेती करना तथा पशुओं की रक्षा करना बताये गये है। क्षेमेन्द्र[११५] ने व्यापार को वैश्यो का मुख्य व्यवसाय माना है। कल्हण के अनुसार[११६] वैश्य लोग धरोहर रखने का भी कार्य करते थे सभवत. उनका मुख्य व्यवसाय व्यापार था, जिसका वे बहीखाता रखते थे तथा ये गणना मे भी प्रवीण थे। साहूकार लोग मकान इत्यादि क्रय करने का भी कार्य करते थे। राजा अनन्त के समय (१०२८-१०६३ ई०) भूति नामक वैश्य द्वारपाल का पुत्र हलधर—जो रानी सूर्यमती की सेवा मे रहता था—ने अपनी योग्यता के बल पर प्रधानमत्री (सर्वाधिकारी) का पद प्राप्त कर लिया था। उसका भतीजा बिम्ब राज्य का द्वारपति था।[११७]

वी० एस० वर्मा के अनुसार, "बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण वैश्यो ने खेती करना छोड दिया था। सी० वी० वैद्य[११८] कहते है कि खेती पाप कर्म है क्योकि खेती करते समय बहुत से जीव जन्तु मर जाते है इसलिए बौद्ध व जैन धर्म के प्रभाव के कारण वैश्यो ने कृषि कर्म का परित्याग कर दिया। राजतरङ्गिणी मे उल्लिखित है कि विडालवणिक नामक तात्रिक जो पहले साधारण वैश्य था—कुछ समय बाद अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने लगा, तदनन्तर वैद्य बना और बाद मे धीरे-धीरे चमारो,

---

१११ राज० IV-११-१६
११२ **कुमारपालचरित**—निर्णयसागर प्रेस—बम्बई—II-५०
११३ **'कृषि गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्'**—१८ ४३
११४ मनु० १ ९०, याज्ञ० १ ११८, बौ० ध० सूत्र० १ १० १८ ४ कौ० अर्थ० १ ३७ शुक्र १ ४२
११५ बृहत्कथामञ्जरी
११६ राज० VIII-१२४, १२५, १३५, VII-५०७, VI-३६-३९
११७ वही VII-२०७-२१०, २१४, २१६
११८ सी०वी० वैद्य **हिस्ट्री ऑव मेडिवल हिन्दू इण्डिया**—II पृष्ठ १८२ **सोशियो रिलीजियस इकोनोमिक एण्ड लिटरेरी कंडीशन ऑव बिहार**—पृ० १९५

धोबियो जैसे निम्न वर्ग के लोगो का गुरू बन बैठा।[११९] इससे प्रकट होता है कि वैश्य अन्य वर्णो के व्यवसाय को अपना लेते थे। कल्हण ने इन्हे बेईमान बताते हुये लिखा है कि नदियो का पानी जब समुद्र मे मिलता है तो वह नदियो को यथावत् रूप मे न मिलकर बादलो से वर्षा के रूप मे मिल भी जाता है किन्तु बनियो को दिया हुआ धन ज्यो का त्यो कदापि नही मिल पाता क्योकि वेश्या, कायस्थ, धूर्त तथा वैश्य से स्वभाव से ही वचक होते है।[१२०]

शूद्र

भारतीय समाज मे वर्ण-व्यवस्था की निम्नतम सोपान शूद्र थे। डॉ० बी० एन० एस० यादव[१२१] के अनुसार चौथे वर्ण शूद्र मे सजातीय लोग ही नही बल्कि विजातीय लोग जिसमे—कृषि-श्रमिक, छोटे किसान, कलाकार, शिल्पकार, विक्रेता, श्रमिक वर्ग, नौकर, सहायक तथा निम्न श्रेणी के काम करने वाले सम्मिलित थे। वे कई जातीय समूहो मे विभाजित थे। डॉ० आर० जी० भण्डारकर का भी मत है कि जब आर्य पजाब से उत्तरी भारत की ओर फैले तो यहॉ के मूल निवासियो को अपने समाज मे मिलाकर उन्हे 'शूद्र' वर्ण से अभिहित किया। प्राचीन धर्मशास्त्रो के अनुसार शूद्रो का प्रधान कर्तव्य 'द्विज' वर्ग की सेवा करना था।[१२२] ७वी शती के यात्री ह्वेनसाग[१२३] तथा १०वी शती के अरब यात्री इब्न खुर्दाद्बा[१२४] ने शूद्रो को कृषि कर्म से सम्बद्ध माना है। वैश्य भी इस समय कारीगर उल्लिखित किये गये है।

परम्परागत विचारधारानुसार शूद्र को वेद, स्मृति तथा पुराण के पढने की अनुमति नही थी लेकिन मेधातिथि ने लिखा है कि शूद्र केवल पढ ही नही सकते बल्कि वे व्याकरण, विज्ञान व अन्य शास्त्रो के शिक्षक भी हो सकते है।[१२५] इसके अतिरिक्त नारद ने उन्हे क्षत्रिय व वैश्य की वृत्तियो को अपनाने की छूट दी है।[१२६] कुछ विद्वानो ने शूद्रो को बिना मत्र के पाक-यज्ञ, पञ्च महायज्ञ तथा संस्कार

---

११९ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री—VII-२८२
१२० वही VI-३९, ४१, VIII-१२७-१३४
१२१ सोसाइटी —पृष्ठ ३८
१२२ शुक्र १ ४३, पराशर १ १ ६४ गौतम स्मृति २२ ६१
१२३ वाटर्स—भाग I पृष्ठ १६८
१२४ इलियट ऐण्ड डाउसन भाग I पृष्ठ १६
१२५ मनु० ३ ६७, १२१, १५६, १०, १२७, राज०—V-७८
१२६ नारद—५८, इपीग्राफिया इण्डिका VI पृष्ठ २६९, XI ३१९, III १६

करने की छूट दी है।[१२७] शूद्रो द्वारा मदिर की व्यवस्था एव प्रबन्धन मे तथा रख रखाव सम्बन्धी समितियो मे सम्मिलित होने के भी प्रमाण हैं।[१२८]

शूद्रो को उनके कार्यो एव व्यवसायो के आधार पर विभाजित किया गया था। यद्यपि सामन्तवादी व्यवस्था के कारण शूद्र वैश्यो की स्थिति मे पहुँच गये थे किन्तु कारीगरो व शिल्पकारो की स्थिति मे कोई सुधार नही हुआ था। शुद्धता पर आधारित व्यवसाय करने वाले सत् शूद्र तथा अशुद्धता पर आधारित व्यवसाय करने वाले असत् शूद्र कहे गये। इसी प्रकार शूद्रो को भोजयान्न तथा अभोजयान्न एवं आश्रित तथा अनाश्रित वर्गो मे बॉटा गया था।[१२९] जिन्हे श्राद्ध करने का अधिकार प्राप्त होता था, वे श्राद्धी तथा जिन्हे ऐसा अधिकार नही मिला था वे अश्राद्धी कहलाते थे।[१३०]

शूद्रो को कश्मीरी राजदरबार मे जाने की अनुमति नही थी किन्तु वे अस्पृश्य नही माने जाते थे। इसके पक्ष मे कल्हण द्वारा प्रस्तुत दो घटनाये महत्त्वपूर्ण है—**प्रथम** सुय्य नामक एक अयोनिज बालक जिसे सुय्या नामक चाण्डाली ने सडक की सफाई करते समय पाया था—बालक उसके स्पर्श से दूषित हो जायेगा ऐसा सोचकर उसने बालक को एक शूद्र जाति की स्त्री को दे दिया।[१३१] यही बालक आगे चलकर शिक्षक बना। **द्वितीय**—त्रिभुवनस्वामी के मदिर निर्माण के समय उसकी सीमा मे एक चमार की झोपड़ी पडती थी, जिसे वह छोडना नही चाहता था तथा राजा चन्द्रापीड से मिलना चाहता था—इसके लिये राजा ने उससे दरबार के बाहर भेट करने की व्यवस्था की।[१३२]

मिश्रित जातियाँ

परम्परागत चारो वर्णो का आपस मे स्वच्छद सम्बन्ध होने से जिन लोगो का जन्म हुआ—उन्हे विशुद्ध रूप मे किसी वर्ण मे स्थान देना सम्भव न होने पर उन्हें मिश्रित जाति के रूप मे संज्ञापित किया जाने लगा। इनका उल्लेख ह्वेनसांग[१३३] शुक्रनीतिसार[१३४] तथा अलबेरूनी[१३५] के विवरण मे हुआ है।

---

१२७ मनु० III १५६, VIII ४१५
१२८ **अर्ली चौहान डाइनेस्टीज**—दशरथ शर्मा—पृष्ठ—२४७
१२९ **हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र**—पी० वी० काणे-भाग दो पृष्ठ १२२
१३० लघुस्मृति ५१०
१३१ राजतरङ्गिणी—रामतेज शास्त्री—V-७३-७८
१३२ राजतरङ्गिणी—रामतेज शास्त्री—IV ५५-७६ **चर्मकृत्क, चर्मकार**
१३३ वाटर्स—पृष्ठ १६८
१३४ अनु० बी० के० सरकार पृष्ठ १५०
१३५ **अलबेरूनीज इण्डिया**—सचाऊ—भाग I पृष्ठ १०१

अम्बष्ठ (वैद्य) तथा मागध को सामान्यतया मिश्रित जाति माना गया है। डॉ बी० एन० शर्मा[१३६] ने नापित, कैवर्त, महिष्य, कुम्भकार तथा खत्री को मिश्रित जातियो के अन्तर्गत रखा है।

नापित—ब्राह्मण पिता व शूद्र माता की सतान थी।[१३७]

कैवर्त्त—जो नाव खेकर अपना भरण-पोषण करता था को मनु ने मिश्रित जाति माना है।[१३८]

महिष्य—क्षत्रिय व वैश्य की अवैध सतान थी।[१३९]

कुम्भकार—ब्राह्मण व वैश्य की अवैध सतान थी।[१४०]

खत्री—क्षत्रिय व ब्राह्मण की अवैध सतान थी[१४१] जिन्होने पहले क्षत्रिय का स्तर प्राप्त किया था बाद मे व्यापार एवं वाणिज्य करने लगे।

१३वी शताब्दी के बृहद्धर्मपुराण मे व्यापारी, कलाकार, शिल्पकार तथा विभिन्न जातियो मे निम्न काम करने वाले वर्णेतर लोगो को मिश्रित जाति मानते हुए समाज मे उन्हे शूद्र का दर्जा दिया गया[१४२] तथा इन्हे उत्तम, मध्यम एव अधम सकर के रूप मे सूचीबद्ध किया गया है।

उत्तम संकर

(१) करण (लिपिक) (२) अम्बष्ठ (वैद्य) (३) उग्र (सैन्य सेवक)

(४) मागध (संदेशवाहक) (५) ततुवाय (जुलाहा) (६) गाधिक-वणिक (मसाले, इत्र के व्यापारी)

(७) नापित (नाई) (८) गोप (लेखक) (९) कर्मकार (लोहार)

(१०) तौलिक (११) कुम्भकार (१२) कासकार (कसेरा)

(१३) शाखिक (१४) दास (**खेतिहर मजदूर**) (१५) वारजीवी

---

१३६ **सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया** (१०२०-१२०० ई०)—पृष्ठ २८
१३७ इपीग्राफिया इण्डिका—XX पृष्ठ १३६, ११०
१३८ वही X ३४, **हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र**—काणे—II, I, पृष्ठ ७९
१३९ गौतम—IV-२०, याज्ञवल्क्य—I-९२
१४० उषानस—३२-३३
१४१ **अर्ली चौहान डाइनेस्टी**—डा० दशरथ शर्मा—पृष्ठ २४९
१४२ वृहद् धर्म पुराण III १३

(१६) मोदक (हलवाई) (१७) मालाकार (माली) (१८) सूत (रथकार)

(१९) राजपुत्र (राजपूत) (२०) ताम्बूली (तमोली)

मध्यम संकर

(१) तक्षण (बढ़ई)	(२) रजक (धोबी)	(३) स्वर्णकार (सोनार)
(४) आभीर (ग्वाला)	(५) तेलकारक (तेली)	(६) धीवर (मछुवारा)
(७) शौण्डिक	(८) नट (बाजीगर)	(९) शावक
(१०) शेखर	(११) जालिक (मछुआरा)	(१२) स्वर्ण वणिक

अधम संकर या अन्त्यज —ये जाति से बाहर माने गये है—

(१) मलग्राही (भगी)	(२) कुण्डव (नाविक)	(३) चाण्डाल
(४) वरुदा (बोरी)	(५) तक्ष (लकडहारा)	(६) चर्मकार (चमार)
(७) गंधजीवी	(८) डोलावाही (कहार)	(९) मल्ल (मालो)

इनमे उत्तम संकर से सम्बन्धित लोगो के यहाँ श्रोत्रिय ब्राह्मणो को धार्मिक कार्य कराने की अनुमति थी, परन्तु यदि वे मध्यम या निम्न सकर के लोगो के यहाँ धार्मिक कृत्य करवाते थे तो उन्हे जाति से निकाल दिया जाता था।[१४३]

अन्त्यज

भारतीय समाज मे प्राचीनकाल से ही चार वर्णो के अतिरिक्त 'अन्त्यज' या 'अस्पृश्य' ऐसी जातियॉ थी जो गॉव या शहर के बाहर रहती थी तथा जिन्हे स्पर्श करना अशुद्ध होना माना जाता था—इनके काम अपवित्र एव निम्न कोटि के होते थे इसीलिये इन्हे 'अस्पृश्य' कहा जाता था। ये किसी भी जाति मे नही आते थे बल्कि अपने निश्चित शिल्प या व्यवसाय के सदस्य के रूप मे जाने जाते थे। ऋग्वेद से उद्धृत करते हुए डॉ जयशङ्कर मिश्र[१४४] ने लिखा है कि वैदिक युग मे चर्मकार, चाण्डाल,

---

१४३ यादव बी०एन०एस० पूर्वो० पृ० ४७

१४४ **ग्यारहवीं शती का भारत**—पृष्ठ १२१, ऋग्वेद ८, ५ ३८

पौल्कस, वप्ता विदलकार, वास:पल्पुलि आदि जातियॉ अस्पृश्य नही मानी जाती थी किन्तु बाद के धर्मशास्त्रकारो[१४५] ने इनसे छू जाने पर शुद्ध होने का निर्देश दिया है। अलबेरूनी ने तदयुगीन भारतीय निम्न जातियो का बडे विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है, अत उसके तथ्य ऐतिहासिक है। वह लिखता है कि शूद्रो के पश्चात् अन्त्यज है, जो अनेक प्रकार की सेवाए करते है, ये किसी जाति के अन्तर्गत नही आते बल्कि किसी विशेष दस्तकारी या व्यवसाय के सदस्य के रूप मे जाने जाते है। जहॉ चारो वर्ण के लोग रहते है वहॉ ये नही रहते बल्कि उनके नजदीक ही गॉव या नगर के बाहर रहते है, इनके आठ वर्ग है, जिनमे धोबी, मोची, बुनकर को छोडकर शेष आपस मे खुल्लम-खुल्ला विवाह करते हैं क्योकि अन्य वर्ग के लोग उनसे व्यवहार करने को उद्यत नही रहते—ये आठ वर्ग है—**धोबी, मोची** (चमार), **मदारी, टोकरी** व **ढाल** बनाने वाले, **माझी** (नाविक), **मछुआरे, बहेलिया** या **शिकारी** तथा **बुनकर**।[१४६]चीनी यात्री ह्वेनसाग[१४७] ने भी अपने विवरण मे कसाई, मछुए, मेहतर, जल्लाद, नट, चाण्डाल, मृतक, श्ववाक को अछूत कहा है जो नगर या गॉव के बाहर रहते थे तथा नगर या गॉव मे आते समय बांई और दबकर चलते थे।

कल्हण ने भी ऐसी अनेक अस्पृश्य जातियो का उल्लेख किया है। जिनमे धोबी[१४८], नाई[१४९], कहार[१५०], भाट[१५१], निषाद[१५२], शिकारी-मछुवारे[१५३], डोम[१५४], चाण्डाल[१५५], डामर[१५६] प्रमुख है।

अलबेरूनी ने अन्त्यजो मे निम्न वर्ग के अन्तर्गत—हाडी, डोम, चाण्डाल और बधतौ को माना है जो लोकमान्यतानुसार शूद्र पिता व ब्राह्मण माता के अनुचित सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तान थे अत. वे जाति से बाहर माने गये तथा उनका मुख्य कार्य गॉव या नगर की साफ-सफाई करना तथा निम्न प्रकार के अपवित्र कर्म करना था।[१५७]

---

१४५ अपरार्क, पृष्ठ २९३, ११९६ अत्रि—२६०-६९
१४६ **अलबेरूनीज इण्डिया**—सचाऊ—भाग I पृष्ठ १०१
१४७ वाटर्स भाग I पृष्ठ १४७
१४८ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री अनु० स्टेइन—VII २८२
१४९ वही VII २०३
१५० वही VI २६४-२६७
१५१ वही VII २८८-२९०, VIII ९४, १९७७
१५२ वही V-१०१
१५३ वही भाग दो पृष्ठ ४३०
१५४ वही VI-१८२, १९२, V-३५४ VII-९६४, VIII-९४
१५५ वही V-७४-७८, VII-९६४
१५६ वही VII-१२२७, १२२९, १२३१
१५७ **अलबेरूनीज इण्डिया**—सचाऊ—भाग I पृष्ठ 1०२

हाड़ी—अलबेरूनी[१५८] निम्न वर्ग के अन्त्यजो मे इन्हे सबसे साफ सुथरा एव उच्च मानते है। परन्तु पूर्णमध्यकाल मे इनका कोई सन्दर्भ नही प्राप्त होता। डॉ० दशरथ शर्मा[१५९] ने इनका तादात्म्य डोम्ब से किया है।

डोम या डोम्ब

कल्हण[१६०] ने डोम्ब का तादात्म्य श्वपाक या श्वपाच से किया है जिसका अभिप्राय 'कुत्ते का मांस खाने वाले से है। कल्हण ने डोम्ब लोगो को अच्छा शिकारी बताया है जो कुत्तो के झुण्ड के साथ शिकार के लिये वनो मे भटकते रहते थे।[१६१] ये व्यावसायिक गायक व नर्तक होते थे। इसी जाति के 'रग' नामक विदेशी गायक के कार्यक्रम को दरबार से बाहर मैदान मे राजा चक्रवर्मा ने आयोजित करवाया था।[१६२] उसके साथ आयी हंसी व नागलता नामक कन्याओ के हाव-भाव से राजा इतना प्रभावित हुआ कि उनसे न केवल विवाह किया अपितु उन्हे राजमहिषी पद पर प्रतिष्ठित किया।[१६३] इसी समय कई डोम्ब जाति के मत्रियो द्वारा राजकार्य करने का उल्लेख मिलता है।[१६४] राजा चक्रवर्मा ने उसी गायक 'रग' डोम्ब को हेलूग्राम अग्रहार रूप मे प्रदान किया था।[१६५] इसीलिये कल्हण महोदय राजा अभिमन्यु के राज्यकाल (९५८-९७२ ई०) मे लगी आग से राजाओ के बडे-बडे राजमहलो के भस्म हो जाने पर प्रसन्नतापूर्वक कहते है कि डोम्बो व चाण्डालो के सम्पर्क से दूषित उस नगर व नगर मण्डल को आग ने पवित्र कर दिया।[१६६] स्टेइन महोदय[१६७] ने शिकारी मछुवारे, भॉड तथा नीम-हकीम के रूप मे इनके व्यवसाय को उद्धृत करते हुए इनकी लडकियो का काम नाचना व

---

१५८ अलबेरुनीज इण्डिया पृष्ठ १२५

१५९ अर्ली चौहान डाइनेस्टीज—पृष्ठ २५१

१६० राज०—V-३९०-३९४, ४०५, ४०७, ४१३, ४१५, VI-६९, १८२, १९२ सचाऊ—भाग I पृष्ठ १०२

१६१ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री—VI-१८२

१६२ वही V ३५४, VII-९६४, VIII-९४

१६३ वही V-३८७

१६४ वही V-३९०

१६५ वही V-३९७

१६६ वही VI-१९०-१९२

१६७ राजतरङ्गिणी अनु० एम० ए० स्टेइन—भाग दो पृष्ठ ४३०

गाना बताया है। उन्होने लिखा है कि जिप्सी नाम— रोम, निसन्देह रूप से सस्कृत के डोम से निकला है। डोम्ब के सदेशवाहक, पहरेदार के रूप मे कार्य करने के भी उल्लेख प्राप्त होते है। यद्यपि वर्तमान समय मे डोम्ब का प्रधान व्यवसाय बॉस की टोकरी बनाना हो गया है।

चाण्डाल— मनु०[१६८] के अनुसार चाण्डाल की उत्पत्ति शूद्र पिता तथा ब्राह्मणी माता से हुई थी। समाज मे इन्हे सबसे गर्हित माना जाता था तथा गॉव की सफाई व अन्य प्रकार की गन्दगियो को साफ करना इनका मुख्य काम था। राजा अवन्तिवर्मन के समय (८५५-८८३ ई०) प्रधानमत्री पद प्राप्त करने वाले सुय्य का लालन-पालन सड़क साफ करने वाली सुय्या नामक चाण्डाली ने इस भय से नही किया था कि उसके स्पर्श से वह अपवित्र हो जायेगा।[१६९] बाण ने अपनी कृति मे चाण्डाल को स्पर्शवर्जित के साथ-साथ बास की छडी बजाकर अपने आने की सूचना से दूसरो को आगाह करने का निर्देश किया है।[१७०] कल्हण ने चाण्डालो को राजसी सेवक[१७१] राजसी अंगरक्षक एव पहरेदार तथा क्रूर एव निर्भीक होने के कारण राजसी सेना मे रखे जाने का उल्लेख किया है।[१७२] राजा लोग इनको अपने राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियो को मारने के लिये षडयंत्रकारी के रूप मे नियुक्त करते थे।[१७३]

बधतौ—पूर्वमध्ययुग मे कुत्तो का मांस खानेवाले 'श्वपाक' नाम के अन्त्यज थे।[१७४] कल्हण ने इनकी तुलना डोम्ब नामक अस्पृश्यो से की है।[१७५]

व्यावसायिक वर्ग—विवेच्यकाल मे कुछ ऐसे व्यावसायिक वर्गो का उल्लेख प्राप्त होता है जो किसी भी वर्ण मे नही रखे गये। कालान्तर मे यद्यपि उन्होने अपने व्यवसाय के आधार पर अपनी जाति निर्मित कर ली। इनमे से 'कायस्थ' प्रमुख है—

---

१६८ मनुस्मृति १० १२
१६९ राजतरङ्गिणी अनु० रामतेज शास्त्री V-७४-७८, VII ९६४
१७० कादम्बरी—पृष्ठ २१, २५
१७१ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री— IV ५१६, VI-७७-७९ VII ३१०
१७२ वही IV-४७५-४७९, ५१६, V-२१७-२१९, २२२, VII-३०९
१७३ वही V-३४९, VIII-३०४, ३२५
१७४ अत्रि० २८८-२८९
१७५ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री V-३९०-३९५

कायस्थ

कायस्थ का प्राचीनतम उद्धरण विष्णुधर्मसूत्र[१७६] (३०० ई०) मे प्राप्त होता है। जिसमे शासक नागरिक दस्तावेजो को लिखने के लिये दरबार या कार्यालय मे कायस्थो की नियुक्ति करता था। पी० वी० काणे[१७७] ने इसका प्रथम उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति मे माना है। राजतरङ्गिणी से पता चलता है कि विवेच्यकाल तक कायस्थ—वर्तमानकाल की तरह एक जाति के रूप मे नही विकसित हुए थे बल्कि शुरू मे विभिन्न वर्णो के सुयोग्य लोगो को इस पद पर नियुक्त कर दिया जाता था—जो अपने मूल वर्ण से निकाले जाने के पश्चात् अपने व्यवसाय के आधार पर एक जाति बना लिये। कल्हण ने शिवरथ नामक ब्राह्मण को कायस्थ कहा है।[१७८] इसी प्रकार भद्रेश्वर जिसकी वश परम्परा मे माली का कार्य होता था कायस्थ पद प्राप्त किया था।[१७९] बुन्देलखण्ड से आने वाले लोग वास्तव्य या श्रीवास्तव्य कायस्थ कहलाये, बगाल से आने वाले गौड, बलभी से आने वाले बल्लभ, मथुरा से आने वाले माथुर कहलाये। कायस्थो का संगठन बनाने वाले निगम कहलाये।[१८०] क्षेमेन्द्र के लोकप्रकाश[१८१] मे कायस्थो का उल्लेख हुआ है। कल्हण[१८२] द्वारा प्रयुक्त शब्दावली से स्पष्ट होता है कि राज्य के जिस विभाग मे ये कार्य करते थे उसके लिपिको, कर्मचारियो तथा दिविरो को मिलाकर कायस्थ कहा जाता था। क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि कायस्थ कश्मीर मे दरबारी लिपिक (आस्थान दिविर), पटवारी (ग्राम दिविर), सड़को के निरीक्षक, दीवानी, व फौजदारी के मामलो के निर्णय करने वाले (नियोगी-वर्तमान तहसीलदार की तरह), वित्त अधिकारी, कोषाध्यक्ष (गजदिविर) प्रातीय गवर्नर (परिपालक), लेखकोपाध्याय, नागरिक व सैनिक कार्यालयो के नियत्रक, धर्मप्रमुख (गृहकृत्याधिपति) तथा सान्धिविग्रहिक मत्री होते थे।[१८३] कलाविलास[१८४] मे इन्हे मुख्य न्यायाधीश बताया गया है। कल्हण

१७६ VII-३
१७८ **हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र**—II I पृष्ठ ७५-७६
१७८ राजतरङ्गिणी—अनु० स्टेइन भाग दो पृष्ठ १३४, अनु० रामतेज शास्त्री—VIII २३८३
१७९ वही अनु० रामतेज शास्त्री VII-३९-४१
१८० **सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया** (१०००-१२०० ई०) डॉ०बी० एन० शर्मा पृष्ठ ३२
१८१ पृष्ठ ११, प्राच्य प्रतिभा—डॉ० माता प्रसाद त्रिपाठी, भोपाल
१८२ राज० ११-९०, ६२१-२३, ६२९, V-४३९ VII-३८, १२२६ VIII ८५, ११४ १३१, ६६४, २३८३
१८३ नर्ममाला—I ६-८ II १४३, लोकप्रकाश—अध्याय III पृष्ठ ११
१८४ कलाविलास V-५

ने इन्हे नागरिक अधिकारी, प्रधानमत्री तथा सेनापति पदो पर आरुढ उद्धृत किया है।[१८५] कायस्थ नये-नये कर लगाने मे प्रवीण थे, इसलिए कश्मीर नरेश सदैव इनकी मदद के मुखापेखी रहते थे।[१८६] ये प्रजा से अधिक मात्रा मे राजस्व वसूल करते थे किन्तु उसका बहुत थोड़ा भाग राजकोष मे जमा कराते थे—इससे प्रजा मे राजा बदनाम हो जाते थे। कायस्थो की इस प्रवृत्ति को समाप्त करने तथा प्रजा का पक्ष प्राप्त करने की इच्छावश राजा उच्चल ने केवल इन्हे नौकरी से ही नही निकाला बल्कि इन्हे अनेक प्रकार से दण्डित व अपमानित किया।[१८७] कल्हण ने [१८८] कायस्थो, दिविरो तथा वेश्याओ को विषैले बाण से भी अधिक खराब माना है। अन्यत्र उन्होने पुन लिखा है कि ये लोगो के बीच मे प्लेग की भॉति हैजा, शूल व सन्यास से भी भयकर होते है—क्योकि ये राजा की तरफ से उनकी रक्षा के लिये नियुक्त किये जाते है किन्तु वे रोग की भॉति प्रजा को शीघ्र ही नष्ट कर डालते है।[१८९] केकडा अपने पिता को मार डालता है। सफेद चीटी अपनी मॉ को समाप्त कर देती है किन्तु कृतघ्न कायस्थ जब शक्तिशाली हो जाते है तो वह सब कुछ नष्ट कर देते है।[१९०] पुन कल्हण ने इसकी तुलना बेताल तथा विष-वृक्ष से किया है।[१९१] ब्यूहलर[१९२] ने दिविर शब्द की **उत्पत्ति परसियन** शब्द **दिपि** से मानी है जिसका अर्थ है—लिखना, किन्तु क्षेमेन्द्र[१९३] ने लिखा है—दिविर—दो शब्दो—दिवि (आकाश मे) +र (रोना) से बना है अर्थात् जो आकाश मे रोता है। उन्होने आगे लिखा है कि दिविर—दैत्यो के घरेलू लेखपाल थे—जब दैत्य विष्णु के हाथो नष्ट हो गए तो दिविर आकाश मे इतना फूट-फूट कर रोने लगे कि कलियुग को उस पर दया आ गयी और उसने उनके हाथो मे देवो को आतंकित करने के लिये कलम पकड़ा दी। यह बात कायस्थो पर इतनी बारीकी से कही गयी है कि क्षेमेन्द्र की ज्ञानचक्षु की तारीफ करनी पडती है क्योकि कायस्थो ने मदिरो तथा धार्मिक दानो का अपहरण कर लिया था।[१९४]

---

१८५ राजतरङ्गिणी—श्री रामतेज शास्त्री—VIII-५६०, VII-1३१९

१८६ वही IV-६२३

१८७ वही IV-६२९, VIII-८५-११४

१८८ वही VIII-१३१, ८८

१८९ वही IV-३५२

१९० राजतरङ्गिणी—रामतेज शास्त्री—VIII-८९, ९२-१०६

१९१ वही VIII-८५-९१

१९२ इण्डियन एन्टीक्वायरी—भाग VI पृष्ठ-1०

१९३ नर्ममाला अध्याय—I श्लोक ९-१५

१९४ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री V-१७६-१७७, VII-३९-४३, ११९

पूर्वमध्यकाल मे राजाओ, पुरोहितो, मदिरो, अधिकारियो के नाम भूमि या भू—राजस्व का निरन्तर हस्तातरण होते रहने के चलते सरकार ने लिपिबन्धन करवाना आवश्यक कर दिया। इन आभि-लेखिक कार्यालयो (अक्षपटल) मे कार्य करने के लिये कायस्थ समुदाय का उदय हुआ। सामतोपसा-मतीकरण के कारण कभी-कभी एक ही भूमि के कई दावेदार हो जाते थे ऐसी स्थिति मे लिखित दस्तावेज महत्त्वपूर्ण माने जाने लगे। इन दस्तावेजो का लेखन-कार्य कायस्थ करते थे—जिन्होने ब्राह्मणो के आर्थिक विशेषाधिकार के विनाश का मार्ग प्रशस्त किया। अत ब्राह्मणो ने कायस्थो को शूद्र घोषित किया। हाल ही मे कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी इसकी पुष्टि की किन्तु इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इन्हे 'ब्राह्मण' माना है।[१९५]

जंगली जनजातियाँ एवं विदेशी

पूर्वमध्यकाल मे कुछ ऐसी जनजातियॉ जो जगलो मे रहती थी तथा कुछ विदेशी लोग हिन्दू समाज का अग बन गये थे, किन्तु अपने कायो से ये वर्ण-व्यवस्था मे स्थान नही पा सके थे। हेमचन्द्र[१९६] ने इनकी सूची प्रस्तुत की है—स्वदेशी जगली जन जातियो मे—सबर, भील, पुलिन्द, किरात, काय, खस, उद्र, गोद्र तथा द्रविड है। जबकि विदेशी जिन्हे सामान्य रूप से म्लेच्छ कहा जाता था—मे शक, यवन, रोमक, पारस, मुरुण्ड, बारबर, चिन, हूण सम्मिलित थे। कश्मीरी समाज मे चूँकि इन सबका अस्तित्व नही प्राप्त होता अस्तु शोध कार्य की परिसीमा के कारण केवल कश्मीर मे उपलब्ध लोगो की ही विवेचना की जायेगी।

गुह्यक—पुराणो मे गुह्यक को यक्ष की एक उपजाति माना गया है कल्हण इसका उल्लेख पुल निर्माण कराने के सन्दर्भ मे किया है। यह पुल निर्माण मे दक्ष एव परिश्रमी लोग थे।[१९७]

यक्ष—कश्मीर नरेश दामोदरगुप्त के काल मे कश्मीर मे यक्ष व गुह्यक दोनो जातियॉ परिश्रमी एव शिल्पकार्य मे दक्ष थी—जिस रूप मे इनका उल्लेख हुआ है उससे लगता है कि इनका उपयोग

---

१९५ राजतरङ्गिणी— IV-६२०, VIII-५६०, पूर्वमध्यकाल मे सामा० परिवर्तन डॉ राम शरण शर्मा पृ० १४

१९६ त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित भाग I पृ० ३९३, **राजस्थान थ्रू एजेज**-खण्ड I पृ० ४२७

१९७ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेजशास्त्री—I १५६

विशेष रूप से सेतु या बॉध बनाने मे किया जाता था।[१९८] नीलमतपुराण[१९९] मे भी इनका इसी रूप मे उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद व अथर्ववेद[२००] मे भी कई स्थलो पर इनकी चर्चा हुई है।

किन्नर—हिमाचल प्रदेश मे किन्नर क्षेत्र है जहॉ किन्नौरी, गलचा व लाहौरी भाषा बोली जाती है। इन्हे देव व मनुष्यो के मध्यवर्ती का एक प्राणी मानकर प्रागैतिहासिक व पौराणिक जाति का रूप दे दिया गया है। महाभारत मे यह गन्धर्व, विद्याधर, सिद्धार्थ वर्ग की मानी गयी है। अमरकोषकार ने इन्हे उत्तरी भारत की पर्वतीय जातियो के साथ रखते हुए हिमालय व हेमकूट का निवासी बताया है। कल्हण[२०१] ने कश्मीरनरेश विभीषण द्वितीय के पुत्र किन्नर को उसके बाद कश्मीर का राजा माना है। जिसके अद्भुत पराक्रम का गुणगान किन्नर किया करते थे। उसके द्वारा वितस्ता नदी के किनारे सडक और उद्यानो से मुक्त सुन्दर नगर बनवाने का भी उल्लेख हुआ है।

नाग—नीलमत पुराण मे इस जाति का उल्लेख हुआ है। डॉ ए० बी० बनर्जी[२०२] ने इसे असुरो की एक शाखा माना है जबकि गियर्सन[२०३] ने इसको अनार्य मानते हुये इसका मूलस्थान हुॅजा माना है। डॉ रघुनाथ सिह[२०४] ने नाग जाति जो उन्हे नेपाल मे मिले थे—को एक पर्वतीय जाति माना है जिनका प्रतीक चिन्ह नाग था। श्री आर० एन० मेहता[२०५] ने तिब्बती वर्णन के आधार पर नाग जाति को पर्वतीय स्थानो मे निवास करने वाली नागा जाति माना है। महाभारत के आदि पर्व तथा रामायण के किरात सर्ग मे इनका उल्लेख है। महावंश[२०६] मे नाग जाति के कश्मीर मे रहने का प्रसङ्ग मिलता है। वर्तमान समय मे असम मे नागा जाति रहती है। कोणार्क मदिर (भुवनेश्वर) से नाग की विविध

---

१९८ राज० I १५६

१९९ अनु० वेदकुमारी-जे०ऐण्ड के० ऐकडमी ऑव आर्ट, कल्चर ऐण्ड लैन्वेजेज, श्रीनगर, १९८८

२०० ऋग्वेद—१ ९० ४,४ ३ १३,५ १० ४,७ ५६ १६,१६ ८८ १३
अथर्ववेद—८ ९ २५,१० २ ३२,१० ७ ३८,१० ८ ४३,११ २ ४

२०१ राजतरङ्गिणी अनु० रामतेज शास्त्री—I-१९७-२०२

२०२ **असुर इण्डिया**—पृष्ठ ९६

२०३ **पैशाची, पिशाच ऐण्ड मार्डन पिशाच इन** Zeitschrift der Deutschen Morgentan dischen Gesellschaft भाग-६६ पृष्ठ-७२

२०४ राजतरङ्गिणी—परिशिष्ट घ

२०५ **प्रि बुद्धिस्ट इण्डिया**

२०६ १२ ९ २८

प्रकार की मूर्तियॉ प्राप्त हुई है—जिनके कटि से नीचे का भाग नाग की पूँछ तथा ऊर्ध्वभाग मनुष्य का है। कनिघम[२०७] महोदय को भी पश्चिमी पजाब से तीन अत्यन्त प्राचीन मुद्राये जिन पर सर्प टकित हैं मिली थी जिन पर पुरानी ब्राह्मी लिपि मे 'काट्स' अकित है।

कल्हण[२०८] ने किन्नरपुर के समीप के सरोवर मे रहने वाले सुश्रवा नाग का उल्लेख किया है। विशाख नामक ब्राह्मण सुश्रवा नाग की कन्या इरावती च चन्द्रलेखा को तृणधान्य (तिन्नी) खाते देखकर मुग्ध हो गया तथा तक्षक नागोत्सव—जो ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष द्वाद्वशी को होता था मे उनके पिता से मिलकर उनकी समस्या निवारण करके चन्द्रलेखा से विवाह कर लिया। उस ब्राह्मणी पर कश्मीर नरेश नर मुग्ध हो गया तथा उसका अपहरण करना चाहा, इस पर ब्राह्मण ने अपने श्वसुर की मदद से नरपुर नगर पर पत्थर बरसाकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उस सुश्रवा नाग की बहन द्वारा एकत्र किये गये पत्थरो से निर्मित प्रदेश आज भी 'रमण्याटवी' कहलाता है। कहा जाता है कि आज भी अमरनाथ की यात्रा के समय सुश्रवा नाग का नया आवास सरोवर तथा उसके दामाद का जामातृ सरोवर दिखाई पडता है। इस प्रकार वह ब्राह्मण भी नागत्व को प्राप्त हुआ। "इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नाग अनार्य जाति के थे जो पत्थर का काम करने मे दक्ष थे तथा प्राय ऐसे स्थलो पर आवास बनाते थे जहॉ जल सुलभ होता था। कश्मीर[२०९] मे नागपूजन, नागयज्ञ, नागयात्रा उत्सव होने के साक्ष्य प्राप्त होते है। डॉ० रघुनाथसिह[२१०] के अनुसार मथुरा के यमुना तट पर रहने वाले शक्तिशाली नागवशीय कालिय नाग को मारकर श्रीकृष्ण ने यमुना उपत्यका को मुक्त कराया था।"

दरद

कृष्ण गंगा के ऊर्ध्वभागीय उपत्यका के उत्तरी कश्मीर मे दरदो का स्थान था। ये पर्वतीय जाति थी जिनका निवास उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त पर था यदि इसमे अन्तर होता है तो वह ग्रथो के रचनाकाल व तत्कालीन परिस्थितियो के कारण है।[२११] महाभारत मे इन्हे क्षत्रिय जाति का माना गया है।[२१२]

२०७ आर्क्यालॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया-भाग II पृष्ठ १०
२०८ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री I-२०३-२६८
२०९ वही I १८५
२१० वही अनु० डॉ रघुनाथ सिह—परिशिष्ट घ
२११ वही —परि० ध, अनु० रामतेज शास्त्री—I ३१२
२१२ अनुशासनपर्व ३५ १७ १८

कल्हण ने एक अन्य स्थल पर इनका उल्लेख भौद्द तथा म्लेच्छ के साथ किया है जो अपवित्र कार्य करते थे।[२१३] कृष्णा (कृष्णगगा) के ऊपरी क्षेत्र मे दरद लोग रहते थे जो दरददेश के नाम से जाना जाता था।[२१४] इनका मुख्य नगर दरदपुरी महापद्म (वूलर झील) के उत्तर से प्रारम्भ होकर सिन्धु क्षेत्र के अस्तूर और बाल्टी तक जाने वाले मार्ग मे पडता है।[२१५] राजा अनन्तदेव ने ब्रह्मराज को गजाधिपति बनाया था किन्तु रुद्रपाल से उसका झगडा हो गया अत वह म्लेच्छनरेशो, डामरसमुदाय तथा दरदो के राजा अचलमंगल के साथ कश्मीर पर आक्रमण किया, जिसमे दरदनरेश की मृत्यु हो गई।[२१६] राजा अनन्तदेव के द्वारपति जनक ने दुर्गघात नामक दुर्ग के दुर्गरक्षक की हत्या कर दी थी। उसकी विधवा पत्नी ने राजा कलश को दुर्ग दे दिया था, किन्तु राजा द्वारा उधर कोई ध्यान न दिये जाने पर दरदराज ने आस-पास के गांवो सहित दुर्ग पर कब्जा कर लिया—इसे पुन. हस्तगत करने के लिए हर्ष ने सेनापति सहेल की मदद से अभियान चलाया किन्तु असफल रहा।[२१७] दरदनरेश यशोधर की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर उसके दो मंत्रियो—विड्डसीह तथा पर्युक ने राजा के दो पुत्रो को अलग-अलग राजा बनाकर कश्मीर की अवहेलना करके दरददेश मे द्वैराज्य शासन स्थापित करा दिया।[२१८] दरद प्रमुख विड्डसीह तथा कश्मीर नरेश की ओर से भोज के मध्य लडाई हुई, किन्तु भोज को सफलता नही मिली और वह विभिन्न प्रकार के उपाय करने लगा जबकि दरदप्रमुख ने कश्मीरनरेश जयसिह से सन्धि की इच्छा व्यक्त की।[२१९]

पिशाच

नीलमत पुराण मे पिशाचो का स्थान कश्मीर बताया गया है।[२२०] जिनका राजा निकुम्भ था। वर्तमान समय मे पिशाच का अर्थ-भूत, प्रेत, राक्षस से लगाया जाता है। कल्हण ने आश्वयु का उल्लेख

---

२१३ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री—I ३१२
२१४ वही अनु० एम० ए० स्टेइन भाग एक I-९३-९४, ३१२, V-१५२, VII-११९, VIII-२०९ भाग दो पृष्ठ-४३५
२१५ वही भाग दो पृष्ठ-४०६, अनु० रामतेजशास्त्री—VII-११७१
२१६ वही अनु० रामतेज शास्त्री—VII-१६६-१७६
२१७ वही VII-११७०-११८०
२१८ वही VIII-२४५४-२४६७
२१९ वही VIII-२७०४, २७६१, २८४४-२८९६
२२० राजतरङ्गिणी—अनु० डॉ रघुनाथ सिह—परिशिष्ट ड

करते हुए लिखा है कि पूर्णमासी के दिन लोग एक दूसरे पर कीचड फेककर परिहासोत्सव मनाते थे जिससे पिशाच भय से भाग जाय। एक अन्य जगह कल्हण ने अश्वज गाली प्रथा का उल्लेख किया है।[२२१] अलबेरूनी ने 'पुहपी' नामक प्रथा का जिक्र किया है जिसे स्टेइन महोदय ने 'पिशाच' का अपभ्रंश माना है—इसमे लोग परस्पर परिहास करते व आपस मे तथा पशुओ से खेलते थे। डा० रघुनाथसिह के अनुसार[२२२] ओल्डेनवर्ग, मेकडोनेल, कीथ, स्टेनकोनो ने पिशाच शब्द का अर्थ असुर, दैत्य, राक्षस लगाया है जबकि गियर्सन के अनुसार कालान्तर मे ये एक जाति थी जो उत्तर पश्चिम भारत मे निवास करते थे। अमरकोशकार[२२३] ने पिशाच को 'देवयोनय.' कहा है। प्राचीन धर्मग्रथो[२२४] मे वर्णित आठ प्रकार के विवाहो मे पिशाच विवाह को सबसे निम्न माना गया है, जिसमे कन्या को चुराकर विवाह किया जाता था। कल्हण[२२५] ने पिशाचपुर नामक स्थल का उल्लेख किया है जहॉ सभवत. पिशाचो की प्रचुर आबादी रही होगी। महाकवि गुणाढ्य ने पैशाची भाषा मे 'वृहत्कथा' की रचना की थी जिसे बाद मे सस्कृत भाषा मे सोमदेव ने लिखा।

खश

सस्कृत साहित्य मे एक ऐसी जनजाति के सन्दर्भ मिलते है जिसे खश, खस या खष अथवा खशीरा कहा जाता था। गियर्सन[२२६] ने हिमालय क्षेत्र मे जहॉ अधिकाश लोग आर्य भाषी थे के पूर्व मे खश जातीय लोगो का आवास माना है। डॉ० रघुनाथ सिह के अनुसार[२२७] यह जाति पीर पाचाल पर्वतमाला के दक्षिण व पश्चिम मे रहती थी। हिन्दू खश जाति हिमालय के अन्य क्षेत्रो मे रहती है, कुमायूॅ की पहाड़ियो मे कुछ लोग स्वय को 'खश' कहते है। महाभारत मे [२२८] युधिष्ठिर को जिन राजाओ ने भेंट दिया था उनमे खश, पारद, कुलिन्द वे तण्गण सम्मिलित थे। एक अन्य उद्धरण से पता

२२१ राज०—अनु० रामतेज शास्त्री—IV-७१०
२२२ वही—अनु० डॉ० रघुनाथ सिह—परि० ड
२२३ १ १ ११
२२४ महाभारत आदि पर्व ७३ ९ १२
२२५ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री V-४६९
२२६ **लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया**—भाग IX, IV, पृष्ठ २
२२७ राजतरङ्गिणी—परिशिष्ट न अनु० रामतेज शास्त्री I ३१७
२२८ गियर्सन—पूर्वो०—पृष्ठ ३

चलता है कि कृष्ण ने शक, दरद, कम्बोज, पिशाच तथा उरसा निवासी कश्मीरियो के साथ खशो को भी विजित किया था।[२२९] भागवद् पुराण[२३०] खश के साथ-साथ किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, अभीर, कक, और यवन को जाति के बाहर की जनजाति माना है। जिन्होने स्वय को विष्णु को समर्पित करके शुद्धता प्राप्त की थी। राजतरङ्गिणी के विभिन्न उद्धरणो से यह बात सकेतित होती है कि पीर पांचाल पर्वतमाला के दक्षिण और पश्चिम मे पडने वाले घाटी क्षेत्र तथा वितस्ता के लगभग आधे प्रवाह के पश्चिम व किश्तवाड के पूर्व का क्षेत्र खश या खशक था।[२३१] ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि बिशलाटा जो चन्द्रभागा नदी के तथा बनिहाल के मध्य पड़ता है खशो से आबाद था।[२३२] श्रीवर[२३३] के मतानुसार खैशल उपत्यका जिसे केशर भी कहते है—खशालय है, जिसका पुराना नाम खशाली है।

मनुस्मृति[२३४] मे खश को क्षत्रिय जाति का माना गया है। कल्हण ने[२३५] लिखा है कि लोहर के खश सरदार सिहराज ने काबुल के शाही राजाओ से विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था। इसी सिहराज की कन्या दिद्दा ने कश्मीर पर शासन किया था—जिसके शासनकाल मे पर्णोत्स प्रात के निवासी तुंग नामक चरवाहा मत्री बन गया था। भिक्षाचर ने खशराजा भागिक के दुर्ग मे शरण लिया था।[२३६] इसी प्रकार राजा जयसिह के मत्री भोज ने दिन्नग्राम मे खशो के घर ठहरकर दरद प्रमुख विड्डुसीह से युद्ध की योजना बनायी थी।[२३७]

---

२२९ आर्क्यालॉजिकल सर्वे—कनिघम-भाग XIV पृष्ठ १३१

२३० सभाग २ अध्याय IV, १८

२३१ राज० रामतेज शास्त्री VII-२१७, २५१, ९७९, १२७१, १२७६, VIII-१७७, ३९३, ४०९-१०, ८८७, १०७४ १४६६, १७२२, १७२६-२८, १७३९, १७५४, १७६२, १७७३, १८६८, १८९५, २२८३, ३००६, ३०३१, ३०८८ अनु० स्टेइन—भाग I I ३१७

२३२ राज०—रामतेज शास्त्री—VIII-१७७, १०७४

२३३ राज०—IV-४५६

२३४ मनु० १० ४३

२३५ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री—VI-१७५, १७७, VII-९७९, १२७१, १२७६, VIII-८८७, १४६६, १८६८, १८९५

२३६ वही VIII-१६६५

२३७ वही VIII-२९१७

लाट

महाभारत[२३८] मे लाट क्षत्रिय जाति मानी गयी है। लाट देश अवन्ति देश के पश्चिम तथा विदर्भ के उत्तर-पश्चिम पडता है—जिसका उल्लेख पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल-अभिलेख मे हुआ है। डॉ० रघुनाथसिह[२३९] ने कश्मीर नरेश मिहिरकुल द्वारा चोल, कर्णाट, लाट देशो को विजित करने का उल्लेख किया है—यह यहाँ पर देश के रूप मे प्रयुक्त हुआ है न कि लोगो के लिए, पुनश्च कश्मीर मे ऐसी कोई जाति थी ऐसा सन्दर्भ नही प्राप्त होता।

डामर

राजतरङ्गिणी मे 'डामर' शब्दावली एक सामान्य घटना है जिनसे सबधित लोगो ने कश्मीर के इतिहास-विशेष रूप से प्रथम एव द्वितीय लोहर राजवश मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्टेइन कहते है कि 'डामर' शब्द राजतरङ्गिणी व परिवर्ती ऐतिहासिक इतिवृत्तो मे जिस रूप मे प्रयुक्त हुआ है वह कश्मीर से बाहर अब तक नही खोजा जा सका है।[२४०] सामान्य रूप मे इसका अर्थ 'विद्रोही', 'आतकवादी' या भ्रष्टाचार तथा समस्याओ के निरन्तर स्रोत वाले लोगो से है।[२४१] इसका अर्थ बोजार या सामतवादी भू स्वामी या वैरून से लगाया जाता है। सेटपीटर्सवर्ग शब्दकोष मे इन लोगो को मूलत स्थानीय जनजाति कहा गया है क्योकि ये पहाडी लोग बुद्धू व उपद्रवी प्रकृति के थे। अभिनवगुप्त ने[२४२] चौसठ तत्रो मे डामरो की भी गणना की है। शिव के एक सहायक का भी नाम डामर था। स्टेइन[२४३] ने अभिसार, दरद, दर्व, खश, किरात, कुलूट तथा कौण्डिन्य जैसी जनजातियो का उल्लेख किया है जो निसन्देह कश्मीर की पड़ोसी थी। इनमे से एक डामर भी थी—जो कश्मीर की आदिम जाति थी।[२४४] कल्हण ने ललितादित्य की राज्यनीति का उल्लेख करते हुए सर्वप्रथम पहाडी लोगो

---

२३८ अनुशासनपर्व—३५ १७१२
२३९ राजतरङ्गिणी—परिशिष्ट 'थ' अनु० रामतेजशास्त्री I ३००
२४० राजतरङ्गिणी—भाग दो पृ० ३०४
२४१ वही पीटर्सवर्ग वार्टरवुच भाग III पृष्ठ ३०४
२४१ वही कृष्णा मोहन पूर्वो० पृ० ३३०-३३७ (परिशिष्ट)
२४२ तत्रलोक—I ४२-४३ (के० सी० पाण्डे द्वारा उद्धृत पृ०-८०)
२४३ राजतरङ्गिणी—भाग दो पृष्ठ ३६५
२४४ **कश्मीर थ्रू द एजेज**, जी० एल० कौल—पृष्ठ ३८

की चर्चा की है, उसके बाद ग्रामीण को एक वर्ष की आवश्यकता से अधिक अन्न न देने की बात कही है अन्यथा वे डामरो की तरह भयकर हो जायेगे।[२४५] राजतरङ्गिणी मे डामर व लवण्य अलग लोगो के समूह या एक ही व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।[२४६] कल्हण ने यद्यपि लवण्य का मूल अर्थ नही बताया किन्तु स्टेइन महोदय ने इसे कश्मीर की कृषक जनसख्या के एक निश्चित भाग से उत्पन्न जनजाति माना है जो इस समय अपने अस्तिस्त के लिए क्रम मे लूनी नाम से सघर्ष कर रही है।[२४७] बी० पी० मजूमदार[२४८] ने डामरो को कोई विशिष्ट जनजाति नही माना है। ललितादित्य ने डामरो का उल्लेख सर्वप्रथम किया है जबकि लवण्यो का सर्वप्रथम उल्लेख हर्ष ने किया है जो ललितादित्य से काफी बाद पड़ता है।[२४९] मजूमदार ने ही लवण्यो का मूलस्थान लवण्य पर्वत माना है—जिसकी वास्तविक पहचान नही हो सकी है, परन्तु जिस प्रकार कश्मीर मे ब्रह्मणो के गोत्र होते है, उसी प्रकार लवण्य जाति का उपविभाजन क्रम मे हुआ होगा जो जमीदार या जनजाति प्रमुख रहे होगे।[२५०] वोगल ने स्टेइन की बात का समर्थन करते हुये लवण्य को खेतिहर माना तथा अन्य पहाड़ी भागो के रण व ठक्कुर की तरह इनकी उपाधि डामर मानी जबकि वे समान सामाजिक स्तर के होते थे। परन्तु डामर लोग भूमि उपहार या दान मे नही प्राप्त करते थे बल्कि इसे ये अपनी शक्ति या वश-परम्परा के रूप में पाते थे तथा इसी से धन एकत्र करके धनवान बन जाते थे।[२५१] कृष्णा मोहन[२५२] के अनुसार इस प्रकार डामर शुरू मे जनजाति रही होगी किन्तु बाद मे यह एक सामाजिक स्तर माना जाने लगा। वर्तमान समय मे कश्मीर मे लोन (लवण्य) तथा डार (डामर) दो पृथक जातियॉ प्राप्त होती है।

म्लेच्छ

कल्हण को सन्दर्भित करते हुये एच० सी० रे ने म्लेच्छ का अर्थ सिन्धु नदी की उपत्यका (ऊपरी

---

२४५ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री-IV-३४७-४८
२४६ राजतरङ्गिणी— VIII-४८, ७४७, ७८०, १०३२, १०३३, ११२४, ११२७, ११९२, ११९३, २००९, २०१२, १३, २२२०-२१, २३३७, २३३८, ३२८४
२४७ राजतरङ्गिणी—अनु० एम० ए० स्टेइन भाग दो पृष्ठ ३०६
२४८ इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस—१९४६, पृष्ठ १९४
२४९ राजतरङ्गिणी—अनु० स्टेइन—भाग एक IV-३४८
२५० वही VII ११७१
२५१ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री VII-४९४
२५२ अर्ली मिडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर—पृष्ठ ३३७, परिशिष्ट V

भाग) मे रहने वाले मुस्लिम समुदाय से की है।[२५३] डॉ० बी० एन० एस० यादव ने म्लेच्छ शब्द का अभिप्राय ऐसे लोगो या जनजातियो से लगाया है जो परम्परागत सस्कृति से बाहर थे।[२५४] मनु-स्मृति[२५५] मे शक, खश, यवन सदृश विदेशी जातियो की क्षत्रिय वर्ण से उत्पत्ति के बावजूद शूद्र माना गया है क्योकि इनमे परम्परागत आचार-व्यवहार का पूर्णत अभाव था। अलबेरूनी[२५६] लिखते है कि हिन्दू लोग विदेशियो को म्लेच्छ मानते थे तथा उनके साथ उठना, बैठना, खाना, पीना विवाह करना सब कुछ निषिद्ध था क्योकि वे दूषित माने जाते थे। वैजयन्ती[२५७] मे एक स्थल पर म्लेच्छ का अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से लगाया है जो कृषि द्वारा अथवा अस्त्र-शस्त्र बनाकर अपनी आजीविका चलाता था। कल्हण ने[२५८] अस्तूर, सकार्डो तथा गिलगिट के म्लेच्छ प्रमुखो का उल्लेख किया है जो कश्मीरी सस्कृति से बहिष्कृत तथा पिछडे लोग थे। ये लोग अपनी शूरवीरता के कारण रास्ते मे दरददेश की सेना मे सम्मिलित कर लिये गये थे। बिल्हण[२५९] ने अनन्त के शत्रुओ—जिसमे दरद शासक सम्मिलित थे—को शक कहा है—ऐसा सभवत म्लेच्छ राजकुमारो के तुर्की उत्पत्ति के कारण किया हो। स्टेइन[२६०] ने इन म्लेच्छ राजकुमारो को सिन्धु घाटी के किलास व अस्तूर क्षेत्र के मुसलिम प्रमुखो के रूप मे सन्दर्भित किया है। जबकि सी० वी० वैद्य[२६१] ने इन्हे मुसलिम तुर्क माना है।

म्लेच्छो मे शक, यूनानी, हूण आदि विदेशी जातियो के साथ-साथ शबर, किरात, खश, ओड़ गोड, पुलिद, तथा भील आदि भारत की आदिम जातियाँ भी मानी जाती थी क्योकि उन्होने आर्य सस्कृति को नही अपनाया था,[२६२] मध्यकालीन साहित्य मे इनके आदिम जीवनयापन करने, भोजन व पहनावे की आदते, धार्मिक क्रिया कलाप, तथा समाजविरोधी गतिविधियो के साक्ष्य प्राप्त होते है।[२६३]

---

२५३ **डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया**—भाग एक पृष्ठ १३९
२५४ **सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया**—पृष्ठ ५६
२५५ X-४३
२५६ अलबेरूनीज इण्डिया—सचाऊ—भाग एक पृष्ठ १७-२०
२५७ पृष्ठ ८१ श्लोक—२३०
२५८ राजतरङ्गिणी अनु० रामतेज शास्त्री—VIII-२७६२-२७६४, I-११५-११६, ३१२ III-१२८
२५९ विक्रमाङ्कदेवचरित—XVIII ३३-३४, राज०—I-१७०, IV-१७९, VII-५६
२६० राजतरङ्गिणी—अनु० एम० ए० स्टेइन—भाग एक VII-१६८ टिप्पणी VII-२७६२-२७६४ टिप्पणी
२६१ **हिस्ट्री ऑव मेडिवल हिन्दू इण्डिया**- भाग दो पृष्ठ २२८, भाग तीन- पृष्ठ, ३१
२६२ अलबेरूनीज इण्डिया—सचाऊ-भाग १ पृष्ठ १०१
२६३ **कथासरित्सागर**—XIII-३९, XX-६२, XXXII-५७—

उद्योतन सूरी[२६४] के अनुसार ये अत्यन्त पापी, भयावह, कठोर और निर्दयी थे, वे स्वप्न मे भी धर्मपालन नही करते थे। वे शराब पीने, गाली देने, गो-हत्या करने, स्त्रियो का अपहरण करने और ब्राह्मणो की हत्या मे कोई पाप नही समझते थे। डॉ० ओमप्रकाश[२६५] इन्हे चाण्डालो की तरह अस्पृश्य मानते है जिनका शिकार करना मुख्य व्यवसाय था तथा जो अपनी देवी दुर्गा को प्रसन्न करने के लिये नर बलि देते थे।

आश्रम व्यवस्था

आश्रम शब्द श्रम से बना है जिसका अर्थ है **श्रम करते-करते ठहरने का स्थान**। प्रत्येक भारतीय की ऐहिक व पारलौकिक उन्नति तथा उसे समाज के लिये उपयोगी बनाने हेतु प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन मे वर्ण-व्यवस्था की स्थापना की गई थी किन्तु यह व्यवस्था व्यक्ति की उन्नति के बिना सभव न थी, अत: व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवनकाल को चार आश्रमो मे विभाजित किया गया था—ये मनुष्य के उन कर्तव्यो पर आधारित है जो उसे अपने जीवन के लक्ष्य की ओर ले जाने मे सहायक हो सकते है। मनुष्य के कर्तव्यो का निर्धारण-पुरुषार्थो द्वारा होता है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष चार पुरुषार्थ माने गये है जो चारो आश्रमो—ब्रह्मचर्य्र, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास के लिये मनोवैज्ञानिक एव नैतिक आधार प्रदान करते है। ब्रह्मचारी[२६६], गृहस्थ[२६७] और मुनि या यति[२६८] के उदाहरण वैदिक ग्रथो मे प्राप्त होते है छान्दोग्योपनिषद[२६९] मे भी तीन आश्रमो—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ का उल्लेख है, किन्तु डॉ० पी० वी० काणे[२७०] के मतानुसार व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को चार भागो (आश्रमो) मे बाटने का सबसे प्राचीनतम सन्दर्भ 'जावालोपनिषद्' मे प्राप्त होता है। राजतरङ्गिणी मे कश्मीरी समाज मे इन आश्रमो का उल्लेख प्राप्त होता है। शुक्रनीतिसार मे ब्राह्मणो के अतिरिक्त शेष तीन वर्णो के लिये केवल प्रथम तीन आश्रमो का विधान है।[२७१] अलबेरूनी ने पुराण व स्मृतियो के

२६४ कुवलयमाला—पृष्ठ ४०, ११२
२६५ **प्राचीन भारत का सामा० एव सास्कृतिक इतिहास**—दिल्ली, १९७५, पृष्ठ ६४
२६६ ऋग्वेद १० १०९५
२६७ वही २ १ २, १० ८५ ३६
२६८ वही ८ ३ ९
२६९ २ १ ३ १
२७० **हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र**—भाग दो पृष्ठ ४२२
२७१ ४ ३९-४०

आधार पर लिखा है कि ब्राह्मण का जीवन सात वर्ष की अवस्था के बाद चार आश्रमो मे विभाजित है।[२७२]

ब्रह्मचर्याश्रम का प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद मे प्राप्त होता है जिसमे सूर्य अपने आचार्य के पास समिधा व भिक्षा हाथ मे लिये हुए उपस्थित हुआ।[२७३] ऋग्वेद[२७४] मे ब्रह्मचारी के दो उद्देश्य बताये गये है—बुद्धि का विकास एव चरित्र निर्माण। मनुष्य शूद्र के रूप मे जन्म लेता है तथा जन्म के समय से ही वह—ऋषि, परमात्मा व पूर्वजो का ऋणी होता है—इनसे मुक्ति पाने के लिये वह उपनयन सस्कार के द्वारा शुद्ध होता है। इसके बाद ही उसे 'द्विज' कहा जाता है तदुपरात वह वेदाध्ययन, दान एव यज्ञ तथा सन्तति उत्पन्न करके तीनो प्रकार के ऋणो से मुक्त होता है। इन विभिन्न प्रकार के कार्यो के सम्पादन की शिक्षा उसे ब्रह्मचर्याश्रम मे प्राप्त होती है। ऐतरेय[२७५] व शतपथ[२७६] ब्राह्मण से विदित होता है कि ब्रह्मचारी पिता से दूर गुरु के पास रहकर विद्याध्ययन करता था। राजतरङ्गिणी[२७७] मे भी अनेक ऐसे प्रसङ्ग प्राप्त होते है जिनसे पता चलता है कि विभिन्न स्थानो से छात्र विद्याध्ययन के लिये कश्मीर आते थे। लक्ष्मीधर[२७८] ने छात्र के लिये नित्य भिक्षा मागने, स्वच्छता के नियम, सध्यापूजन के अनुसरण, उपासना-पूजन, यज्ञ होम आदि नियमो का पालन करना बताया है। विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य को उद्धृत कर यह समीक्षा दी है कि शिक्षा-प्राप्ति काल मे छात्र को भोजन व आवास गुरु की ओर से प्रदत्त था, जिसकी व्यवस्था गुरु शासको द्वारा प्रदत्त दान से करता था।[२७९]

विद्याध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) समावर्तन सस्कार मे गुरु को यथायोग्य दक्षिणा देकर ब्रह्मचर्याश्रम के सभी ब्रतो से मुक्त होकर गृहस्थाश्रम मे प्रवेश का अधिकारी बन जाता था। **गृहस्थाश्रम** मे वह पचमहायज्ञो—देवयज्ञ (होम से), ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय से), पितृयज्ञ (तर्पण से), अति-

---

२७२ अलवेरूनीज इण्डिया—भाग दो पृष्ठ १३०-१३१

२७३ अथर्ववेद—११५

२७४ ऋग्वेद—१०, १०९४

२७५ २२९ तैत्तरीय सहिता ३१९५

२७६ शतपथ ब्राह्मण ५४१-१७

२७७ अनु० रामतेज शास्त्री—III-९, VI-८७, देशोपदेश-क्षेमेन्द्र-अध्याय VI

२७८ कृत्य कल्पतरु—ब्रह्मचारीकाण्ड पृ० ११५-१२४, १६४-१८४, २२९-२३९

२७९ २ १८४, राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेजशास्त्री—VII-९३४, VIII-२३९५-९७, VI-८९

थियज्ञ (अन्न से) तथा भूतयज्ञ (बलि से) सम्पादित करते हुये परिवार तथा समाज के प्रति अपने सभी कर्तव्यों को पूरा करता था।[२८०] मनु ने इसे सभी आश्रमो मे सबसे महत्त्वपूर्ण माना है क्योंकि इसी आश्रम पर अन्य आश्रम निर्भर थे।[२८१]

मनुस्मृति मे कहा गया है कि जब व्यक्ति देख ले कि उसके बाल सफेद होने लगे है, शरीर मे झुर्रियॉ पडने लगी है तब उसे सब कुछ त्यागकर जगल की ओर चले जाना चाहिए।[२८२] वास्तव मे व्यक्ति इस अवस्था तक यह समझ जाता है कि इन्द्रियो के सुख स्थायी नही है अत इन्द्रियो को वश मे करने तथा मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से वह **वानप्रस्थाश्रम** मे प्रवेश करता है। बौधायन धर्मसूत्र[२८३] मे वानप्रस्थ के दो प्रकार बताये गये है। पचमानक (जो स्वय भोजन पकाकर खाते थे), अपचमानक (जो शाक व फल खाकर उदरपूर्ति करते थे) इसी प्रकार वैखानस धर्मसूत्र मे[२८४] सपत्नीक तथा अपत्नीक वानप्रस्थ के दो रूप माने गये है। वानप्रस्थाश्रम मे रहते हुए व्यक्ति भीख मागकर गृहस्थाश्रम मे किये जाने वाले सभी यज्ञो को सम्पादित करता था एव अपने अनुभवो, अध्ययन एव मनन के आधार पर जनता को उपदेश देकर सन्मार्ग बतलाता था। इस समय अर्थ व काम की अपेक्षा व्यक्ति का ध्यान धर्म व मोक्ष पर केन्द्रित होता था। कल्हण[२८५] ने लिखा है कि राजा आर्यराज सन्धिमतिक ने मोक्षप्राप्ति की लालशावश राज्य का परित्याग कर दिया तथा प्रजाजनो को लौटा दिया। उसे यद्यपि भिक्षा मागने की बहुत कम आवश्यकता पडती थी किन्तु वैराग्यावस्था मे उसको किसी से कोई प्रार्थना करने की लघुता का अनुभव नही हो पाया। इसी प्रकार अनन्तदेव की मृत्यु के बाद बप्पट तथा उद्भट के वशज सेन तथा क्षेमत ने वैराग्य धारण कर विजयेश्वर मे रहना प्रारम्भ किया।[२८६] राजा हर्ष की मृत्यु के बाद किसी को भी दुखी न देखकर कल्हण ने कहा है कि अपने-अपने सुख मे तन्मय रहने वालो की स्नेह शून्यता देखकर भी जो विरक्त होकर वनवास मे रूचि नही लेता उसे धिक्कार है।[२८७]

---

२८० **प्राचीन** भारत का सामा० एव आर्थिक इतिहास—डॉ० ओमप्रकाश—अध्याय ११
२८१ ३.७७
२८२ ६.१-२
२८३ ३.३८
२८४ **प्राचीन** भारत का सामा० एव आर्थिक इति०—डॉ० ओमप्रकाश—पृष्ट २७
२८५ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेजशास्त्री—II-५९-६३
२८६ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री—VII-४८२
२८७ वही VII-१७३०

वानप्रस्थ के बाद व्यक्ति सीधे **सन्यासाश्रम** मे प्रवेश करता था।[२८८] किन्तु मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकारो के अनुसार व्यक्ति बिना वानप्रस्थाश्रम मे गये गृहस्थाश्रम से सीधे सन्यासी हो सकता था।[२८९] अलबेरूनी ने लिखा है सन्यासाश्रम व्यक्ति के चौथे काल से जीवन के अत तक चलता है। वह लाल वस्त्र तथा हाथ मे दण्ड धारण कर सर्वथा ध्यानवस्थ रहता है। वह मित्रता-शत्रुता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद से सर्वथा मुक्त होता है। वह किसी गॉव मे एक दिन तथा किसी नगर मे पॉच दिन से अधिक नही रुकता। उसे दिन मे एक बार भिक्षा प्राप्ति का अधिकार है किन्तु उसमे से दूसरे दिन के लिये कुछ नही बचाता। मुक्ति मार्ग की चिन्ता करने और जहॉ से वह इस ससार मे नही लौटता उस मोक्ष तक पहुँचने के अतिरिक्त उसके पास कोई अन्य कार्य नही रहता।[२९०] उपरोक्त विवेचन की पुष्टि मनुस्मृति तथा महाभारत से भी हो जाती है।[२९१]

पी० वी० काणे[२९२] ने वानप्रस्थ व सन्यास मे तीन भेद बतलाये है—

१. वानप्रस्थी सपत्नीक हो सकता है पर सन्यासी सपत्नीक नही हो सकता।

२. वानप्रस्थी यज्ञ की अग्नि रखते व यज्ञ करते है जबकि सन्यासी अग्नि का त्याग कर देते है।

३. वानप्रस्थी तपस्या का जीवन व्यतीत करते है जबकि सन्यासी भूख प्यास की परवाह न करके केवल परमतत्त्व के चितन करने मे समय व्यतीत करते है।

शुद्धता, सतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर का ध्यान (मोक्ष प्राप्ति हेतु) सयासी के नियम है।[२९३] कल्हण ने लिखा है कि मातृगुप्त ने कहा कि मेरा मन करता है कि पुनीत काशीधाम मे जाकर ब्राह्मणो के अनुसार सन्यास ले लूॅ और शेष जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत करुॅ—उसने ऐसा ही किया भी।[२९४] इसी प्रकार मदनादित्य नामक एकाग से प्रमादवश नगाडा फूट गया, इससे क्रुद्ध होकर राजा पर्वगुप्त ने उसे असभ्य ढग से अपमानिक किया इससे दु.खित होकर मदनादित्य ने केश व दाढी-मूॅछ मुडवाकर

२८८ मनुस्मृति—६ ३३

२८९ कुल्लूक भट्ट—टीका मनु० ६ ३८ विज्ञानेश्वर टीका याज्ञ० ३ ५६

२९० अलबेरूनीज इण्डिया—भाग दो, पृष्ठ १३३

२९१ मनु० ६ ५७, ६९ ८५ महाभारत शाति अध्याय ६१ श्लोक ११, १७

२९२ **धर्मशास्त्र का इतिहास** भाग एक पृष्ठ ४३९

२९३ योगदर्शन—३ ३२

२९४ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेज शास्त्री III-२९७-३२०

सन्यास ले लिया।[२९५] राजा उच्चल द्वारा लौटाये जाने पर सेनापति माणिक्य ने भी सन्यास ले लिया था।[२९६] इसी प्रकार के अन्य दृष्टात कश्मीरी साहित्यिक स्रोतो मे उपलब्ध होते है।

संस्कार

'सस्कार' शब्द का अर्थ है 'शुद्धीकरण' अर्थात् पूर्व जन्म के बुरे प्रभावो का अन्त हो जाये तथा अच्छे प्रभावो की उन्नति हो यही सस्कारो का उद्देश्य है। सस्कार का अभिप्राय उन धार्मिक कृत्यो से है जो व्यक्ति को अपने समुदाय का पूर्णरूप से योग्य व्यक्ति बनाने तथा उसके शरीर मन और मस्तिष्क को पवित्र करने के उद्देश्य से किये जाते थे। वैदिक साहित्य मे सस्कारो का उल्लेख नही मिलता जबकि गृह्यसूत्रो मे इसका प्रयोग यज्ञ सामग्री के पवित्रीकरण के अर्थ मे किया गया है। गृह्यसूत्रो मे ही सस्कारो की पूर्ण पद्धति का वर्णन मिलता है जबकि इससे पूर्व पारम्परिक प्रथाओ के आधार पर सस्कार सम्पादित किये जाते थे।[२९७] सस्कारो द्वारा मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियो का पूर्ण विकास करके अपना और समाज दोनो का कल्याण करता था।[२९८] सस्कार इस जीवन मे ही नही अपितु पारलौकिक जीवन को भी पवित्र बनाते है।[२९९] गौतम धर्मसूत्र[३००] मे सस्कारो की सख्या ४० बतायी गई है। मनु ने १३ सस्कार बताये है। बाद मे रची गई पद्धतियो मे सस्कारो की सख्या १६ बतायी गई है, वैसे गौतम धर्मसूत्र तथा गृह्यसूत्रो में अन्तेष्टि सस्कार का उल्लेख नही किया गया। स्मृतियो मे उपनयन तथा विवाह सस्कार को बडे ही विस्तार से वर्णित किया गया है क्योकि ये दोनो ब्रह्मचर्याश्रम तथा गृहस्थाश्रम मे प्रवेश के लिये आवश्यक माने गये है। कल्हण ने लिखा है कि दशम मास मे यशोमती के गर्भ से एक पुत्र ने जन्म लिया, जिसके राज्याभिषेक के साथ ही प्रचुर सामग्रियों को एकत्र करके श्रेष्ठ ब्राह्मणो द्वारा उस बालक का जातकर्म सस्कार कराया गया।[३०१] सर्वमान्य सोलह सस्कारो

२९५ राज० VI १३३, १३४
२९६ वही VIII-१७९
२९७ **प्राचीनभारत का सामा० एव आर्थिक इतिहास**—डॉ० ओमप्रकाश पृ० १३८-१३९
२९८ धर्मशास्त्र का इतिहास—पी० वी० काणे २ भाग १ पृष्ठ १९२
२९९ मनु० २, २८
३०० गौतम धर्मसूत्र ८, १४, २४
३०१ राजतरङ्गिणी—अनु० रामतेजशास्त्री—I-७४-७५

गर्भाधान, पुसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूडाकर्म, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास, अन्तेष्टि— मे विवाह सस्कार उसी प्रकार सबसे महत्त्वपूर्ण है जिस प्रकार सभी आश्रमो मे गृहस्थाश्रम। विवाह सस्कार एक शाश्वत बन्धन समझा जाता था, जिसमे पति-पत्नी दोनो आध्यात्मिक अनुशासन मे रहकर एक इकाई बन जाते थे। मनु[३०२] के शब्दो मे 'पति-पत्नी और सन्तान तीनो मिलकर एक पुरुष कहलाता है—इसलिए जो पति है वही पत्नी है। उन्होने **विवाह के तीन उद्देश्य बताये है—धार्मिक कृत्य, सन्तानोत्पत्ति** और **कामेच्छा की पूर्ति**। प्रत्येक व्यक्ति जो ससार मे जन्म लेता है उसे तीन ऋण चुकाने होते है—वैदिक ग्रथो का अध्ययन करके **ऋषि ऋण,** यज्ञ करके **देव ऋण** तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा **पूर्वजों का ऋण** चुकाता है। विवाह के द्वारा व्यक्ति उस सस्कृति को आगे बढाता है जो उसे विरासत मे मिलती है। इस प्रकार समाज की निरन्तरता के लिये विवाह सस्कार अति आवश्यक माना गया है। प्राचीन हिन्दू शास्त्रकारो ने विवाह के आठ परम्परागत प्रकार माने है जो भारतीय समाज मे दृष्टिगोचर होते है—ब्राह्म, आर्ष, दैव, प्रजापत्य गन्धर्व, असुर, राक्षस और पैशाच।

१. ब्राह्म—सच्चरित्र, वेदज्ञ तथा विद्वान पुरुष को कन्या का पिता अपने घर आमन्त्रित करके अपनी पुत्री को आभूषण आदि से सुसज्जित करके सम्मानपूर्वक विदा करता है—ऐसा विवाह ब्राह्म विवाह कहा गया है।

२. दैव—इस प्रकार के विवाह मे पिता अपनी पुत्री को आभूषणो से सुसज्जित करके ऐसे व्यक्ति को देता है जो स्वय विवाह सस्कार मे पुरोहित के रूप मे कार्य करता है।

३. आर्ष—इस विवाह मे पिता वर से एक गाय या एक बैल या दोनो की दो जोडी लेकर उसे अपनी पुत्री देता है। ओमप्रकाश[३०३] जी ने इसे श्रेष्ठ मानते हुये बैलो की जोडी के द्वारा कृषि कार्य करके नवदम्पत्ति के सफल पारिवारिक जीवन की बात कही है किन्तु वास्तव मे बैलो की जोडी कन्या का पिता प्राप्त करता था न कि नवदम्पत्ति।

---

३०२ यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव ।तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा ।। मनु० ३ ७७

३०३ गृहस्थ, लक्ष्मी पृ० ७६, प्राचीनभारत का सामा० एव आर्थिक इतिहास—पृ०१४७

४. प्रजापत्य—पिता अपनी पुत्री को वर को इसलिये देता था कि वे दोनो अपना धर्म पूरा कर सके—विवाह से पूर्व कन्या का पिता वर का आदर-सत्कार करता था।

५. आसुर—इस प्रकार के विवाह मे वर, कन्या तथा उसके सम्बन्धियो को अत्यधिक धन देता था।

६. गन्धर्व—वर व वधू स्वय पारस्परिक प्रेम के कारण आकर्षित होकर विवाह करते थे—इसमे कन्या के पिता अथवा अन्य सम्बन्धियो का कोई प्रमुख भाग नही लेता था।

७ राक्षस—जिसमे वर पक्ष के व्यक्ति कन्या के सम्बन्धियो को मार-पीटकर तथा उनके घरो को नष्ट-भ्रष्ट करके रोती तथा चीखती हुई कन्या को बलपूर्वक अपहरण करके ले जाते थे। कृष्ण व सुभद्रा का विवाह ऐसा ही माना गया है।

८. पैशाच—इस प्रकार के विवाह मे सोती हुई, नशे मे पडी हुई अथवा पागल लडकी का चोरी से शीलभग करके वर उसे पत्नीरूप मे स्वीकारता था।

उपरोक्त विवाह प्रकारो मे ब्राह्मणो के लिये ब्राह्म तथा दैव प्रकार सबसे अच्छे माने गये है। जबकि राक्षस व पैशाच निषिद्ध बताये गये है। असुर व पैशाच को सभी जातियो के लिये निषिद्ध बताया गया है। जबकि कुछ विद्वानो[३०४] ने इन्हे क्षत्रियो के लिये उपयुक्त बताया है। ग्रथो मे इसके अतिरिक्त अनुलोम, प्रतिलोम, अन्तर्जातीय विवाह तथा स्वयवर, विवाह-वय, बहुपत्नित्व व अन्य पक्षो की जानकारी उपलब्ध होती है जिनका विवेचन आगामी पृष्ठो मे किया गया है।

पारिवारिक जीवन

सभी सभ्य समाजो मे परिवार एक आधारभूत तथा सुदृढ सामाजिक सरचना रहा है जो व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है एव उसे प्रारम्भिक व्यवहार शैली तथा व्यवहार के मानदण्ड की शिक्षा प्रदान करता है। बर्गसा एव लाक को उद्धृत करते हुए **ओमप्रकाश**[३०५] ने अपने ग्रथ मे लिखा है कि परिवार ऐसे व्यक्तियो का समूह है जो एक दूसरे मे वैवाहिक या रक्त सम्बन्धो या गोद लेने की प्रथा द्वारा जुडे हो। परिवार के सभी सदस्य पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री या भाई बहन के रूप मे एक दूसरे से बातचीत और व्यवहार करते है। वे सब

३०४ मनु०—पृ० ७५

३०५ **'प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास'**—वाइली ईस्टर्न लिमि० नई दिल्ली, १९७८, पृष्ठ १७८

मिलकर एक सस्कृति का निर्माण करते है और उसे सम्पोषित करते हे। मार्क्स तथा एजेल्स को उद्धृत करते हुये **बी० एन० एस० यादव** ने लिखा है [३०६] परिवार समय की परम्पराओ, भावनाओ तथा सामाजिक व्यवहार की अवस्थाओ को आत्मसात् करने वाली ऐसी सामाजिक इकाई है जो इन्हे अपने सदस्यो मे सरलतापूर्वक प्रत्यारोपित करती है। **मैक-आइवर और पेज**[३०७] के अनुसार परिवार सामाजिक सस्था के रूप मे मनुष्य की कुछ आधारभूत जीव-विज्ञान सम्बन्धी, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है—यह मुख्य रूप से निम्न तीन कार्य करता है—

१ पुरुष और स्त्री की काम सहजवृत्ति की स्थायी सतुष्टि करता है।

२ बालको को जन्म देता व इनका पालन-पोषण करता है।

३ परिवार के सदस्यो को मिलने वाली सभी सुविधाओ से लाभ उठाने का अवसर प्रदान करता है।

हिन्दू समाज मे तो सन्तानोत्पत्ति और काम सहजवृत्ति की सन्तुष्टि को सदा ही जीवन के उच्च मूल्यो, नैतिक व आध्यात्मिक जीवन तथा पारलौकिक जीवन के लक्ष्यो के अधीन रखा गया जिसमे मनुष्य सहज-पाशविक-वृत्तियो से ऊपर उठकर समाज और आगे आने वाली पीढियो के लिये आदर्श बन सके। इसीलिये प्राचीन हिन्दू समाज मे सयुक्त परिवार की पद्धति दृष्टिगोचर होती है जहॉ बालक अपनी सभी प्रकार की इच्छाओ—नए अनुभव की इच्छा, सुरक्षा की इच्छा, सम्मान की इच्छा, प्रत्युत्तर पाने की इच्छा—की सन्तुष्टि का अवसर प्राप्त करता है।

ऋग्वेदकाल मे परिवार का प्रमुख पिता होता था जिसे कुलपा[३०८] अर्थात् कुल का रक्षक कहा जाता था—उसकी आज्ञा का पालन सभी पारिवारिक सदस्य करते थे। पत्नी का अपने देवर और सास-ससुर पर पूर्ण नियत्रण होता था यद्यपि वह उनका आदर करती थी।[३०९] मनु[३१०] के अनुसार

---

३०६ **'सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन दि ट्वेल्थ सेन्चुरी'**—इलाहाबाद—१९७३, पृष्ठ ६२

३०७ 'सोसाइटी'—लन्दन—१९६२, पृष्ठ २४०

३०८ ऋग्वेद १०, १७९, २-३, प्राचीन भारत-पूर्वोद्धृत पृ० १७५

३०९ वही १० ३५

३१० मनु० ९, १०७

'बड़े पुत्र की स्थिति अन्य पुत्रो की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है क्योकि वही धर्मपुत्र है अन्य पुत्र तो कामेच्छा की सन्तान हैं। इसीलिए पिता के पश्चात् सम्पूर्ण परिवार का उत्तरदायित्व बड़े पुत्र का माना गया है।' प्राचीन हिन्दू कानूनो के अनुसार पुत्र को पिता से सम्पत्ति विभाजन कराने का कोई अधिकार नही था किन्तु बारहवी शती मे विज्ञानेश्वर ने पैतृक सम्पत्ति पर न केवल पुत्रो का अधिकार माना अपितु पत्नी के भी जिन्दा न होने पर पुत्रियो का भी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार माना है।[३११] बी० एन० एस० यादव जी ने[३१२] लिखा है कि विवाहित पुत्र अपने पिता के घर में परतंत्र होता था, वह तभी स्वतंत्र माना जाता था जब घर तथा अनाज में हिस्सा प्राप्त करके अपना पृथक् विस्तार करता था—यद्यपि यह संयुक्त परिवार के विखण्डन का प्रमाण है किन्तु विवेच्यकाल में संयुक्त परिवार का अपना पृथक् महत्त्व था। कल्हण[३१३] ने लिखा है राजा अनन्तदेव ने पुत्र कलश को सत्ता सौंप दी थी किन्तु मंत्री हलधर की बुद्धिमत्ता के कारण कलश केवल नाममात्र का राजा रह गया था तथा भोजनादि सम्पूर्ण कार्य माता-पिता के ही साथ करता था—उसकी माँ सूर्यमती पतोहुओ को रानियो जैसे वस्त्र और अलंकार आदि धारण करके अपना उत्कर्ष प्रकट करते देखकर जलने लगती थी तथा उनसे दासियो के योग्य काम-झाड़ू लगाना, घर लीपना आदि कार्य कराने लगती थी। तथापि उन पुत्रवधुओ ने इसका तनिक भी विरोध नही किया। इसी प्रकार राजा कलश चौरसुरत की इच्छा से जिन्दुराज की दुराचारिणी पुत्रबधू जिससे उसका अनैतिक सम्बन्ध था—के घर की ओर जाते समय चाण्डाल चौकीदारों द्वारा चोर समझकर पीट दिया गया। यह बात जब अनन्तदेव को मालूम हुई तो उसने राजा कलश को थप्पड़ मारा। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि संयुक्त परिवार कश्मीरी समाज में प्राचीन काल से प्रचलित था।[३१४] इसमें पुत्र, पुत्रियॉं, पुत्रबधुएं होती थी जो बड़ों के निर्णय को मानते थे।[३१५] उपरोक्त अनन्तदेव तथा कलश के उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट होती है कि संयुक्त परिवार में पुत्रियो तथा पुत्रबधुओ पर पत्नी का आदेश चलता था जबकि पुत्रों तथा पूरे परिवार पर पिता का। कल्हण ने लिखा है कि

३११ विज्ञानेश्वर और अपरार्क टीका याज्ञ० २, १३५, १३६ व्यवहारकाण्ड—७४८-७४९

३१२ सोसाइटी (यादव) पूर्वो० पृ० ६३

३१३ 'राजतरङ्गिणी'—स० रामतेज शास्त्री पाण्डेय, १९८५, VII-२४३-५०, २६२, VII-३०७-३२२

३१४ राज०—पूर्वो० – VIII-१०२, ४५९-६०, VII-१५७९

३१५ **'अर्ली मेडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर'**—कृष्णा मोहन—मेहरचंद पब्लि० नई दिल्ली—१९८१, पृ० २२७

रात्रि के समय की गुरु अर्थात पत्नी एकान्त मे जो उपदेश देती है उससे सर्वज्ञ पुरुष के अतिरिक्त कोई भी पुरुष सावधान नही रह सकता।[३१६] वर्तमान समय मे सयुक्त परिवार प्रणाली विखण्डित हो रही है क्योकि **प्रथम**—वर्तमान अर्थव्यवस्था मे परिवार के प्रत्येक सदस्य द्वारा अपनी शक्ति का पूर्ण उपयोग न करने के कारण जीवन निर्वाह कठिन हो गया है। **द्वितीय**—सयुक्त परिवार मे प्रत्येक व्यक्ति अपना पूर्ण उत्तरदायित्त्व नही समझता **तृतीय**—इस समय प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने हितो के लिये चिन्तित है, दूसरो के लिये अपने सुखो का लेशमात्र भी त्याग करने के लिये तैयार नही है।[३१७]

स्त्री-स्थिति

किसी समाज की स्थिति उसकी स्त्रियो की समाज मे स्थिति द्वारा निर्धारित होती है। सभी आश्रमों मे गृहस्थाश्रम, सभी संस्कारो मे विवाह सस्कार तथा सभी सम्बन्धो मे पत्नी सम्बन्ध सबसे महत्त्वपूर्ण होता है—ठीक ही कहा गया है—**'गृहिणी गृहमुच्यते'** वैदिक वाड्मय[३१८] मे ऐसे धार्मिक कृत्यो का उल्लेख है जिनका उद्देश्य विदुषी पुत्री प्राप्त करना था। कन्याये साधारणतया १६ वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहती थी और उनका उपनयन सस्कार किया जाता था।[३१९] कन्याओ के ब्रह्मचर्याश्रम मे रहने के भी स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते है।[३२०] कुछ कन्याये जो आजीवन ब्रह्मचर्य रहती थी उन्हे 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था एव जो अध्ययन के पश्चात् गृहस्थाश्रम मे चली जाती थी उन्हे 'सद्योद्वाहा' कहा जाता था।[३२१] परन्तु परिवर्तीकाल मे स्त्रियो की सभी स्वतत्रताए बाधित हो गई और उनके जन्म को दु खदायी समझा जाने लगा।[३२२] योद्धा के रूप मे पुत्र-पुत्री की अपेक्षा अधिक उपयोगी था और आर्थिक दृष्टि से भी परिवार को पुत्र के द्वारा अधिक लाभ मिल सकता था। वश-परम्परा को सचालित रखने तथा अंतिम संस्कार व श्राद्ध पुत्र ही करता था—इसलिये भी पुत्र की इच्छा पुत्री की

---

३१६ राज० उपरोक्त—V-३१८
३१७ प्राचीन भारत—पूर्वो० पृष्ठ—१९२
३१८ वृहदा० ४४१८
३१९ अथर्ववेद ११५१८—**'ब्रह्मचर्येण कन्यान युवा विन्दते पतिम्'**
३२० गोभिल गृ० सू० ३७१३, २,७
३२१ आप० गृ० सू०१५,१२-१३
३२२ अथर्व० ६ ११ ३, ऐत० ७१४, कथा०—सोमदेव-अनु० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, बम्बई १९१५

अपेक्षा अधिक बलवती हुई तथा उसके जन्म पर परिवार मे विशेष आनन्द का वातावरण होता था।[३२३] गरीब परिवारो मे कन्या दुख का कारण मानी जाती थी तथा उसके उचित विवाह के बाद ही माता-पिता प्रसन्नता का अनुभव करते थे। कल्हण ने लिखा है कि पुत्र ही पिता को इहलोक तथा परलोक मे तारता है।[३२४]

स्त्री स्वतंत्रता

(अ) स्त्री शिक्षा—प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक साक्ष्यो से पता चलता है कि प्रारम्भ मे स्त्रियो को उपनयन तथा अन्य सस्कार करने का अधिकार प्राप्त था, किन्तु कालान्तर मे कन्याओ का विवाह आठ से दस वर्ष की अवस्था मे होने लगा, फलस्वरूप उनकी शिक्षा मे शिथिलता आ गई।[३२५] अल्टेकर[३२६] महोदय के अनुसार स्त्रियो को उपनयन से वचित करके शूद्र की कोटि मे रखना वास्तव मे उनके अधिकारो को कम करने का ही परिचायक है। यादव[३२७] ग्रामीण व शहरी स्त्रियो के मध्य स्पष्ट अन्तर की बात लिखते है। बिल्हण[३२८] लिखते है कि शहरी क्षेत्रो मे सस्कृति के उच्च स्तर तथा स्वतन्त्र वातावरण के कारण स्त्रियो को शिक्षा व सम्मान प्राप्त होता था। राजतरङ्गिणी मे उच्च वर्ण की स्त्रियो द्वारा धार्मिक ग्रथो व साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, सङ्गीत तथा चित्रकला की शिक्षा प्राप्ति का उल्लेख है।[३२९] यद्यपि निम्न वर्ग की स्त्रियाँ अध्ययन न कर पाने के कारण अपनी मातृभाषा ही बोल पाती थी। जल्हण ने अपने ग्रथ 'सूक्ति मुक्तावली' मे राजशेखर के कुछ श्लोक उद्धृत किये है जिनमे उसने शील-भट्टारिका, विकट-नितबा, विजयाका, प्रभुदेवी तथा समुद्रा नामक पाँच कवियित्रियो की प्रशसा की है। राजशेखर के नाटको से ज्ञात होता है कि राजसभा की स्त्रियाँ व रानियो की सेविकाए

---

३२३ प्राचीन भारत—पूर्वो० पृ० १०९, महा०—आदि० ७४, ३८, ९६, ९७, मनु०—९, १०७, राज०—I ७४-७५ पूर्वो० २८६

३२४ उप०—सिद्धर्षि सूरी—स० देवचन्द्र लालभाई, बम्बई १९१८-२०, पृष्ठ ६९८, राज०—पूर्वो०—'पुत्रो लोकद्वयात्रा कस्यान्यस्येदृशोभवेत्' VII-४३३

३२५ प्राचीन भारत—पूर्वो० पृष्ठ २१३

३२६ ए० एस० अल्टेकर 'पोजीशन ऑव वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन', तृतीय सस्करण, बनारस, १९६२, पृ०-४२०

३२७ सोसाइटी—पूर्वो० पृष्ठ ७१

३२८ विक्रमाङ्कदेवचरित—स० ब्यूहलर, बाम्बे सस्कृत सिरीज, बाम्बे (पूना) XIV १८७५, XVIII सर्ग

३२९ राज०—पूर्वो० V-२०६, उप०—पूर्वो० पृ० ३४५, ४५३-५९, ८७५-९२

सस्कृत व प्राकृत मे श्लोको की रचना करती थी।[३३०] १२ वी शती के अन्त मे भास्कराचार्य ने अपनी पुत्री लीलावती को गणित पढाने के लिए 'लीलावती' नामक ग्रथ की रचना की थी—इससे सिद्ध होता है कि स्त्रियॉ इस समय गणित का भी अध्ययन करती थी। रूसा नामक स्त्री के चिकित्सक के रूप मे प्रसिद्ध होने का उल्लेख है।[३३१] इस प्रकार कश्मीरी समाज मे उच्च वर्ण के स्त्रियो की शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था की जाती थी।

(ब) धार्मिक स्वतत्रता—प्रारम्भिक काल मे स्त्रियो द्वारा धार्मिक-कृत्यो मे भाग लेने के साक्ष्य हमे कई साहित्यिक स्रोतो से प्राप्त होते है, जो बाद मे अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियो के कारण प्रतिबधित हो गये, किन्तु विवेच्यकाल मे हमे कुछ ऐसे साक्ष्य प्राप्त होते है जिनसे पता चलता है कि योग्य स्त्रियॉ धार्मिक सस्थानो की प्रमुख बनती थी। विक्रमादित्य षष्ठ (१०७५-११२५ ई०) की प्रधानमहिषी लक्ष्मीदेवी के अधिकार मे १८ धार्मिक प्रत्याभूतियो का प्रशासनिक कार्यक्षेत्र था।[३३२] कश्मीर मे विभिन्न रानियो द्वारा अपने धन से मदिर, मठ, विहार व अन्य सार्वजनिक भवनो का निर्मान कराने का उल्लेख प्राप्त होता है।[३३३]

(स) सम्पत्ति सबंधी स्वतत्रता—स्त्रियो को सम्पत्ति सबन्धी अधिकार प्रारम्भिककाल मे ही प्राप्त था। वह अलग धन रखने की अधिकारिणी थी। जिसे 'स्त्री-धन' कहा जाता था—जिसके अन्तर्गत बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, जवाहरात आते थे, जिस पर सामान्य परिस्थिति मे स्त्री का पूर्ण स्वामित्व होता था। अल्टेकर[३३४] महोदय के अनुसार 'स्त्री धन का विकास वर द्वारा असुर विवाह के अन्तर्गत कन्या के पिता को दिये जाने वाले कन्या शुल्क (मूल्य) के रूप मे हुआ, जिसे पूर्ण या आशिक रूप से कन्या का पिता स्नेहवश कन्या को दे देता था—इसके उपयोग के लिये वह पूर्ण स्वतत्र होती थी। यदि कन्या की नि:सन्तान मृत्यु हो जाती थी तो यह धन उसके माता-पिता को वापस कर दिया जाता था परन्तु सन्तानो मे यह धन सर्वप्रथम अविवाहित पुत्रियो को उसके बाद विवाहित पुत्रियो व पुत्रो मे समान

---

३३० विक्रम० पूर्वो०—XVIII-६, राजशेखर-काव्यमीमासा, बडोदा, १९३४, १०, पृ० ५३
३३१ एस० नदवी—'अरब और भारत के सम्बन्ध', पृष्ठ १२२
३३२ विक्रम०—पूर्वो० XVIII
३३३ राज०—पूर्वो० VIII १०६८-७० ११३६-३७
३३४ अल्टेकर-पूर्वो० पृ० ४३८

रूप से बॉट दिया जाता था। जहॉ 'कन्या मूल्य' नही दिया जाता था वहॉ कन्या को प्राप्त होने वाले उपहारो को ही स्त्री-धन कहा जाता था। मनु ने इन उपहारो को माता, पिता, भाई, विवाह के समय किसी व्यक्ति द्वारा, विवाह के बाद किसी व्यक्ति द्वारा तथा प्रेमपूर्वक पति द्वारा दिये गये उपहारो को माना है।[३३५] वैदिक साहित्य मे स्त्री धन के लिये 'परिणाह्य' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[३३६] कालान्तर मे स्त्री धन दो प्रकार के माने जाने लगे—

(१) **सौदायिक**—पिता, माता व पति द्वारा स्त्री को दिये गये उपहार जिसपर उसका पूर्ण अधिकार होता था तथा वह उसे बेच सकती थी।

(२) **असौदायिक**—अचल सम्पत्ति जिसका स्त्री केवल उपभोग कर सकती थी उसे बेच नही सकती थी। विज्ञानेश्वर[३३७] ने कहा है कि यदि साध्वी पत्नी का पति त्याग करे या उसकी सम्पत्ति का अपहरण करे तो पत्नी न्यायालय की शरण ले सकती है। समयमातृका[३३८] मे उल्लेख है कि एक विधवा अपने मृतक पति की सम्पत्ति पर राजा की कृपा से अधिकार पा गयी तथा अपने पति के स्टेट (Estate) पर राजसी छूट प्राप्त करना चाहती थी। राज परिवार की स्त्रियो के पास पर्याप्त मात्रा मे धन रहता था, यह इस तथ्य से पुष्टित होता है कि कश्मीर की लगभग सभी रानियो ने अपने नाम से मठ, मदिर, विहार, अग्रहार स्थापित कराये। सम्पूर्ण राजतरङ्गिणी ऐसे उल्लेखो की प्रमाण है।[३३९] नागराज सुश्रवा ने विवाह के समय अपनी कन्या को बहुत सा धन उपहार मे दिया था।[३४०]

शुक्र का मत था कि यदि पिता अपने जीवनकाल मे अपनी सम्पत्ति का बॅटवारा करे तो उसे इस अनुपात मे बॉटे— पत्नी १ भाग, प्रत्येक पुत्र १ भाग व प्रत्येक पुत्री आधा भाग।[३४१] कल्हण ने ऐसी डामर स्त्री का उल्लेख किया है जिसने अपने अधिकार से जागीर बनायी थी।[३४२]

---

३३५ मनुस्मृति ९, १९४
३३६ कात्यायनस्मृति—दायभाग
३३७ विज्ञानेश्वरटीका—याज्ञवल्क्य २३२
३३८ क्षेमेन्द्र—बम्बई, १९२५
३३९ राज०—पूर्वो० III – ४६४, ४८२, IV – ३, ३८, ७९, २०८,२१२, २१३, ४८३, ४८४, ५१७, V-४१, २४४, २४५, VI-२९९-३०६, VII-१४९, १५१, १८०, ९५६, VIII-३३९१
३४० वही I २४३
३४१ प्राचीन भारत-पूर्वो० पृ० १२७
३४२ राज०-पूर्वो० VIII-३११५

(द) **व्यावसायिक स्वतंत्रता**—भारतीय समाज मे प्राचीनकाल से ही स्त्रियो को आदर व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। स्त्रियो को शतपथ ब्राह्मण[३४३] मे पुरुष की 'अर्द्धागिनी' बताया गया है। मनुस्मृति मे तो लिखा है कि जहॉ स्त्रियो का सम्मान नही होता वहॉ सम्पूर्ण क्रियाए निष्फल हो जाती है।[३४४] माता के रूप मे स्त्री को भूमि से भी गुरुतर माना गया है। वशिष्ठ के अनुसार[३४५] आचार्य का गौरव १० उपाध्यायो से बढकर है, पिता का गौरव १०० आचार्यो से बढकर होता है किन्तु माता का गौरव १००० पिताओ से भी बढकर है।"

सूत्रकाल मे स्त्रियो की स्वतत्रता पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये तथा उन्हे बचपन मे पिता, युवास्था मे पति तथा वृद्धावस्था मे पुत्र के अधीन रहने की बात कही गई।[३४६] स्त्री को पति अचल सम्पत्ति मानता था। महाभारत[३४७] मे युधिष्ठिर ने द्रोपदी को द्यूतक्रीडा के दॉव मे सभासदो के प्रतिवाद के बावजूद लगा दिया था। कश्मीरी समाज मे भी हमे ऐसे दृष्टान्त मिलते है जहॉ पति अपनी इच्छानुसार पत्नी को किसी अन्य व्यक्ति को दे देता था। कल्हण ने लिखा है कि नोण सेठ की सुन्दर पत्नी नरेन्द्रप्रभा पर राजा प्रतापादित्य आसक्त हो गया था और उसे अपनी रानी बनाना चाहता था किन्तु इसे मर्यादाविरुद्ध कार्य मानकर वह हिचकिचा रहा था अस्तु नोण सेठ ने अपनी पत्नी को मदिर को समर्पित कर दिया जहा से राजा ने उसे प्राप्त किया।[३४८]

कश्मीरनरेश दामोदर की मृत्यु के बाद यादवश्रेष्ठ कृष्ण ने ब्राह्मणो से उसकी गर्भवती विधवा यशोमती का राज्याभिषेक करा दिया। इससे मत्रिमण्डल के कुछ लोग क्रुद्ध हुए किन्तु कृष्ण ने कश्मीर को पार्वती का स्वरूप तथा इसके राजा को साक्षात् शिव का रूप बताया फलस्वरूप जो लोग पहले स्त्रियो को भोग्यपदार्थ के समान गौरवविहीन दृष्टि से देखते थे, वे अब यशोमती को प्रजा की मॉ तथा देवी के रूप मे देखने लगे।[३४९] एक अन्य स्थल पर कल्हण ने लिखा है कि जो लोग स्त्री जाति को

३४३ शत० ब्रा०- **अर्धो हवा एष आत्मनो** ५,१,६,१०

३४४ मनु० - बम्बई, १९२३, ३/५६
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फला क्रिया ॥

३४५ बोधि०-क्षेमेन्द्र, कलकत्ता १८८८ भाग प्रथम पृ० ७१ **'माता गुरुतरो भूमे ।'**

३४६ वशि०ध०सू०- १,२

३४७ ११८६४०

३४८ राज० पूर्वो०- I-१७,३१

३४९ वही I ७०-७३

उपभोग्य वस्तु समझते है वे भूल करते है क्योकि अन्त मे पुरुष को स्त्री के खेल का उपकरण बनना पडता है।[३५०] सल्हण के राज्यकाल मे स्त्रियॉ स्वच्छन्द विचरती थी और जहॉ चाहती वहॉ रहती थी, उनमे पुरुषो का भय भाग गया था।[३५१]

उपरोक्त उद्धरणो से स्पष्ट होता है कि कश्मीरी समाज मे स्त्रियो को पहले की अपेक्षा अधिक स्वतत्रता प्राप्त हो गयी थी किन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि वे पूर्णतः स्वच्छन्द हो गयी थी। राजतरङ्गिणी मे कहा गया है कि स्त्री की उपयोगिता इसी मे है कि वह पति का अनुगमन करती हुई अपनी रक्षा के अन्यान्य साधनो को एकदम भूल जाय।[३५२] अपने पतियो के प्रति पूर्ण समर्पण एव आज्ञाकारिता को कल्हण ने पत्नियो का कर्तव्य माना है। एक स्त्री को अपने पति के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का प्रयास करना चाहिए तथा उसे प्रसन्न रखने का प्रयास करना चाहिए।[३५३] कथासरित्सा-गर[३५४] मे भी एक व्यक्ति के प्रति विश्वासपात्र होने को स्त्री का सबसे बडा गुण माना गया है। सम्भ्रान्त परिवार की महिलाओ को अपने आडम्बरविहीन एवं दृढ व्यवहार से पति का सम्मान करते हुए उसे सर्वोच्च देवता मानना चाहिए। जब उसका पति दूर हो तो उसके लिए अपनी सुन्दरता पर कामातुर लोगो की दृष्टि पड़ने की अपेक्षा मर जाना हितकर है।

इससे सकेतित होता है कि स्त्रियॉ पूर्णत अधीन नही थी किन्तु प्राचीन नियोग प्रथा की समाप्ति, सती प्रथा व पर्दा प्रथा के प्रचलन, विधवाओ के पुनर्विवाह के स्थान पर सन्यास द्वारा मोक्ष प्राप्ति के सिद्धान्त ने उनके पोषण एवम् अन्य कार्यो के निमित्त व्यवस्थाकारो ने उनके धन सम्बन्धी अधिकारो को मान्यता देना प्रारम्भ कर दिया। विदेश गमन के समय पति अपनी पत्नी के भरण-पोषण की पूर्ण व्यवस्था करता था।[३५५]

वैदिक युग मे स्त्रियॉ कृषि, पशुपालन तथा परिवार के व्यवसाय मे सक्रिय रूप से हाथ बटाती थी। वैदिक सहिताओ मे रगने का कार्य, कसीदे का कार्य, तथा टोकरी बुनने वाली स्त्रियो के उद्धरण

३५० राज० पूर्वो० VII ४२४
३५१ वही VIII ४१९
३५२ वही VIII ३२५१
३५३ वही I २४५, २७२, II ४८, III ४९६, VIII३१०१
३५४ कथा - सोमदेव अनु० दुर्गा प्रसाद एव के०पी० परब, बम्बई १९१५ भाग I, पृ० ३३-३६,१६४
३५५ राज०—पूर्वो० VI-१८-२३

मिलते है। विदुषी स्त्रियॉ अध्यापन का कार्य करती थी जिन्हे 'आचार्या' कहा जाता था। वे धर्मशास्त्रो के लेखन का कार्य भी करती थी तथा बौद्ध व जैन धर्मो मे दीक्षित महिलाए इन धर्मो का प्रचार कार्य करती थी। स्त्रियॉ गायन, वादन, नृत्य, साजसज्जा मे प्रवीण होती थी। राजमहलो मे नियुक्त महिलाए चवर झलने, पान लेने-देने, पहरेदारी, नाचने-गाने, राजरानियो की दूती तथा श्रृगार का कार्य करने मे प्रवीण होती थी।[३५६] कल्हण के अनुसार स्त्रियॉ घर की सीमा के अन्दर रहकर विविध घरेलू कार्यो को सम्पादित करती थी प्राय वे अपने पारिवारिक कार्यो को ही करती थी।[३५७] एपीग्राफिया इडिका[३५८] मे उल्लेख है कि स्त्रियॉ सूत कातकर, कपडे बुनकर या अन्य व्यावसायिक कलाओ द्वारा धन कमाकर अपने पतियो की मदद करती थी।

राजघराने की स्त्रियॉ शासन कार्य मे भी सहयोग देती थी। कभी-कभी ये पूर्ण शासक के रूप मे भी कार्य करती थी। राजा दामोदर गुप्त की गर्भवती विधवा रानी यशोमती का राज्याभिषेक याद-वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने विधिवत् किया था। इसी प्रकार राजा शकर वर्मन की मृत्यु के बाद प्रजा के प्रार्थना करने पर उसकी पत्नी सुगन्धादेवी ने सत्ता ग्रहण की तथा तत्रियो व पदातियो मे मैत्री करके दो वर्ष तक शासन किया था।[३५९] राजा क्षेमगुप्त (९५०-९५८ ई०) के साथ रानी दिद्दा शासन पर अधिकार रखती थी, बाद मे पुत्र अभिमन्यु की सरक्षिका बनी और अन्त मे स्वतत्र शासक के रूप मे शासन-सचालित किया—अपने उत्तराधिकारी के रूप मे उसने अपने भतीजे सग्रामराज का चयन किया था। राजा अनन्तदेव के शासनकाल मे उसकी रानी सूर्यमती सारा राज्यकार्य देखने लगी तथा युद्ध व शिकार के सिवाय अन्य सभी कार्य राजा, रानी के निर्देशानुसार करने लगा—यहॉ तक कि रानी की सलाह पर राजा अनन्तदेव ने अपने मत्रियो के विरोध के बावजूद सत्ता अपने पुत्र कलश को सौप दी।[३६०] राजा उच्चल ने अपनी प्रिय रानी जयमती—जो सामान्य कुल की थी—को आधे सिहासन पर बैठने का विशेषाधिकार दे रखा था।[३६१] राजा तुजीन व रानी वाक्पुष्टा के साथ-साथ शासन करने का उल्लेख

---

३५६ बी० एन०लूणिया—**'प्राचीन भारतीय सस्कृति'**—लक्ष्मीनारायण अग्रवाल—आगरा ३, १९७०, पृ० ७६०

३५७ राज०—पूर्वो०—VIII, २००१, IV-२७०-२७१, ३८१

३५८ XVIII-पृ० १०९, V-२२

३५९ राज०—पूर्वो० I-७०-७३, V-२४३, २४९

३६० वही VI-१८८, २२९, ३३२, ३१५, ३६२, ३६६, VII ११९, २२९-२३१

३६१ वही VIII-८२

भी प्राप्त होता है।[३६२] राजा जयसिह की रानी कल्हणिका उसके व भोज के मध्य सन्धि करवाने के लिये तारमूलक गयी थी। दूसरी रानी रड्डा इतनी प्रभावशाली थी कि राजा उसकी इच्छा के विरुद्ध राजकुमारो को उपहार या दण्ड नही दे पाता था।[३६३] जयसिह के समय नीलाश्व पर एक डामरी के शासन करने का उल्लेख है।[३६४]

इससे यह स्पष्ट होता है कि राजसी महिलाये राजाओ को राजकाज मे पूर्ण सहयोग देती थी। कल्हण[३६५] ने लिखा है कि राजसी महिलाये ही नही अपितु सामत-पत्नियॉ तथा साधारण औरते भी राजनीति मे हिस्सा लेती थी। मल्लार्जुन की मॉ ने उसका जयसिह से मतभेद दूर कराने के लिये उसकी द्वाराधीश चित्ररथ से सन्धि करवायी। इसी तरह राजा कलश व राजपुत्र हर्ष के बीच रानी भुवनमती की मध्यस्थता से सन्धि हो गयी थी किन्तु इसकी शर्ते राजा द्वारा न माने जाने पर रानी ने आत्महत्या कर लिया था।[३६६] हर्ष के सेनापति मदन ने रानी की आज्ञा का उल्लघन किया था—इसके लिए उसे मृत्युदण्ड देने का निश्चय राजा ने किया था।[३६७] इनसे यह स्पष्ट होता है कि रानियो के लिखित आज्ञापत्र को मानना मत्रियो के लिए अति आवश्यक था।

राजा जयापीड ने कल्याणदेवी से प्रसन्न होकर उसे महाप्रतिहारपीडा का अधिकार दिया[३६८] आर० सी० मजूमदार ने छुड्डा एव सिल्ला नामक कश्मीरी स्त्रियो का सेनाप्रमुख के रूप मे उल्लेख किया है[३६९] "राजतरङ्गिणी मे कथानक है कि विजय की माता सिल्ला ने अपने स्वामी राजा सुस्सल की बाकी सेना लेकर, विजयक्षेत्र से देवसरस पहुॅची थी जिसे रास्ते मे ही पृथ्वीहर मे मार डाला था।[३७०]" राजा ललितादित्य के दक्षिणी भारत के अभियान के समय कर्नाटक देश पर महातेजस्विनी रट्टा देवी के शासन करने का उल्लेख प्राप्त होता है—इसी प्रकार प्राग्ज्योतिषपुर मे भी स्त्री शासन था।[३७१]

---

३६२ राज० पूर्वो० II-११
३६३ वही VIII-१७-१९, ३०९७, ३१०९, ३३९२-९९, ३४०१
३६४ वही VIII-३११५
३६५ राज०—पूर्वो VIII-१९६८-७०, १८२०-२३
३६६ वही VII-६८०
३६७ वही VII-१२०६
३६८ वही IV-४८५
३६९ 'ग्रेट वूमेन ऑव इण्डिया'—अल्मोडा, १९५३, पृष्ठ २९०
३७० राज०—पूर्वो०-VIII १०६९-७०, ११३६-३७
३७१ वही—IV – १५२-१५३, १७३

(य) वैवाहिक स्वतंत्रता— भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही विवाह एक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक संस्कार माना जाता था—संस्कार नामक शीर्षक में इनके प्रकारों की चर्चा की जा चुकी है। जहाँ तक कन्याओं को वैवाहिक स्वतंत्रता दिये जाने का प्रश्न है, उससे पूर्व समाज में पर्दा-प्रथा के सम्बन्ध में विश्लेषण करना आवश्यक है—

पर्दा प्रथा—अल्टेकर के अनुसार ३०० ई० के बाद यह प्रथा प्रचलित हो गई थी कि राजवंश की स्त्रियाँ जनसाधारण के बीच में जाते समय अपने मुखमण्डल को ढक लेती थीं। उत्तरी भारत में जहाँ मुस्लिम शक्तिशाली थे वहाँ यह प्रथा अधिक प्रचलित थी। जबकि दक्षिण भारत में यह प्रथा आज भी बहुत कम पायी जाती है।[३७२] १०वीं शती के अरब यात्री अबूजैद के विवरण से पता चलता है कि भारतीय राजाओं की राज सभाओं में स्त्रियाँ विदेशी मनुष्यों की उपस्थिति में बिना पर्दे के उपस्थित होती थीं—इससे स्पष्ट होता है कि पर्दे की प्रथा देश के सभी भागों में एक सी न थी। इसका प्रचलन भारतीय समाज में बाह्याक्रान्ताओं के प्रभाव से हुआ—इसके दो कारण हैं—**प्रथम**—हिन्दू स्त्रियाँ अपने सतीत्त्व की रक्षा के लिए पर्दा करती थीं क्योंकि बाह्याक्रान्ता जो अपने साथ अपनी स्त्रियाँ नहीं लाये थे—कामवासना की तृप्ति के लिये यहीं की सुन्दर स्त्रियों का बलपूर्वक अपहरण कर लेते थे। **द्वितीय**—हिन्दू जनता शाही राजघरानों की देखा देखी अपनी पत्नियों से पर्दा करवाने लगी। विडूडभ के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू राजे पराजित होने के बाद अपनी ही जनता की सुन्दर कन्याओं को विजेता के पास भेज देते थे। इस कारण से भी जनसामान्य में पर्दा प्रथा प्रचलित हुई।[३७३] बिल्हण[३७४] ने हिन्दू समाज में पर्दा प्रथा को सामान्य माना है जबकि कल्हण[३७५] ने ऐसे अनेकशः घटनाएं उल्लिखित की हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि कश्मीर में पर्दा प्रथा का पूर्णतः अभाव था। लोहरा में अपने पुत्र को गद्दी में बैठाने के लिए जाते समय रड्डा देवी ने खुले रूप में सामंतों से सम्मान प्राप्त किया था। इसी प्रकार राजा चक्रवर्मा के राज्यकाल में रंग नामक डोम के गायन कार्यक्रम में बाहरी

---

३७२ पोजीशन—अल्टेकर—पूर्वो० पृष्ठ १७३

३७३ प्राचीन भारत—पूर्वो० पृष्ठ १२५

३७४ विक्रम०—पूर्वो० पृष्ठ १४९

३७५ राज०—पूर्वो० V-३५७-३५८, VIII-३३०३

मैदान मे अन्त पुर की ललनाये तथा राजरानियॉ उपस्थित थी। नीलमतपुराण मे[३७६] लिखा है कि कश्मीर मे स्त्रियॉ स्वतत्र रूप से अपने पति के साथ उसके मित्रो, नौकरो तथा सम्बन्धियो के साथ बाग-बगीचो मे जाती थी। इस प्रकार कश्मीरी समाज मे पर्दे की प्रथा का पूर्णत अभाव था।

वैदिककाल मे कन्याओ का विवाह प्रौढावस्था मे होता था। ऋग्वेद एव अथर्ववेद मे उल्लेख है कि कन्याये, पत्नी की इच्छा रखने वाले युवक के पास पति वरण की इच्छा से स्वय जाती थी।[३७७] गृह्यसूत्रो मे विवाह के चौथे दिन पति-पत्नी के सहवास का विधान है इससे सिद्ध होता है कि कन्या की विवाह के समय आयु १६ वर्ष या उससे अधिक होती थी। किन्तु मनुस्मृति (२०० ई० पू० से २०० ई०) मे कन्याओ के विवाह की आयु १२-१३ वर्ष बतायी गयी है—इससे अधिक आयु तक कन्याओ का अविवाहित रहना पाप समझा जाता था। ओमप्रकाश[३७८] विवाह की आयु मे हुई इस कमी के दो कारण मानते है।

प्रथम—अनेक कन्याये जो बौद्ध या जैन धर्म मे दीक्षित हो जाती थी। किन्तु ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करने मे असमर्थ रहती थी जिससे समाज मे उनकी बहुत निन्दा होती थी अत. पुत्रो के उपनयन सस्कार की तरह कन्याओ का १३ या १४ वर्ष मे विवाह होना आवश्यक माना जाने लगा।

दूसरा—जनता के मन मे यह भावना घर कर गयी थी कि अविवाहित स्त्री को विवाहित स्त्री की अपेक्षा समाज मे अधिक जोखिम उठानी पडती है। क्षेमेन्द्र[३७९] ने बाल विधवाओ का उल्लेख किया है। कल्हण, सोमदेव, बिल्हण ने अपने ग्रंथो मे कई स्थलों पर स्वयवर या गन्धर्व विवाह का उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट होता है कि कन्यायें विवाह के समय इस आयु की हो जाती थी कि वे अपने भावी जीवन के बारे मे स्वतत्र निर्णय ले सकती थी या अपने पिता को इस सन्दर्भ मे सलाह दे सकती थी। कथासरित्सागर[३८०] मे एक नायिका को अपने भावी पति से अपने पिता के समक्ष वैवाहिक

३७६ नीलमत—डॉ० वेद कुमारी, भाग I **'ए कल्चरल ऐण्ड लिटरेरी स्टडी'** श्रीनगर-जम्मू १९६८, ३८५-८६, ५४७, ६७६, ९९८

३७७ ऋग्वेद—९, ५६, ३, १, २७, १२, १०, ८५, अथर्व०—२, ३० ५

३७८ प्राचीन भारत—पूर्वो० पृष्ठ ११५ महा०—१ ११४, ३६

३७९ कलाविलास—काव्यमाला सिरीज अनु० प० दुर्गा प्रसाद एव के० पी० परब, बम्बई १८८६, पृ०-४४, -१८ **'बालविधवानाम्'**

३८० कथा०—पूर्वो०—२७८१-८२

प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिये प्रार्थना करते हुये प्रदर्शित किया गया है। एक अन्य स्थल पर माता-पिता द्वारा पुत्री को अपनी पसद का पति ढूँढने का उल्लेख मिलता है।

कल्हण[३८१] ने विवाह करने का दायित्त्व माता-पिता का माना है—यथा राजा जयन्त ने अपनी पुत्री कल्याण देवी को जयापीड के हाथो सौप दिया, जिसने उसका पाणिग्रहण कर लिया। इसी प्रकार सुश्रवा नाग ने अपनी पुत्री इरावती को विद्याधर को देने का सकल्प कर लिया था। परन्तु इसके विपरीत ऐसे प्रसङ्ग भी प्राप्त होते है जब कन्या अपने वर-चयन का मत व्यक्त करती थी। रणारम्भा ने रणादित्य से विवाह करने का मन्तव्य अपने पिता को बता दिया था।[३८२] कल्हण ने कश्मीर के मेघवाहन का अमृतप्रभा द्वारा स्वयंवर मे पति रूप मे वरण किये जाने का उल्लेख किया है।[३८३] कश्मीरी कवि बिल्हण ने पश्चिमी चालुक्यनरेश विक्रमादित्य षष्ठ द्वारा राजकुमारी चण्डलादेवी से इसी प्रकार (स्वयवर मे) विवाह करने का उल्लेख किया है।[३८४] राजतरङ्गिणी के प्रथम तरग मे गान्धारनरेश द्वारा स्वयवर कराये जाने का वर्णन है जिसमे यादवो को आमत्रित किये जाने के प्रतिरोध के फलस्वरूप कश्मीरनरेश दामोदरगुप्त ने उस पर आक्रमण कर दिया था किन्तु वह मार डाला गया।[३८५] अल्टेकर महोदय के अनुसार बारहवी शती तक स्वयवर प्रथा क्षत्रियो मे दृष्टिगोचर होती है—जिसमे कन्या अपनी इच्छा से पति का वरण करती थी।[३८६]

कश्मीरी समाज मे प्रेम विवाह के प्रसङ्ग भी प्राप्त होते है जिसमे स्त्री-पुरुष पारस्परिक प्रेम के कारण विवाह कर लेते थे—मान्य विवाह के प्रकारो मे इसे गन्धर्व-विवाह की श्रेणी मे रखा जा सकता है। कल्हण[३८७] ने लिखा है कि राजा उत्कर्ष ने देवमदिर मे नृत्य करने वाली सहजा नामक देवदासी से प्रेम हो जाने के कारण केवल उससे विवाह ही नही किया था अपितु उसे राजरानी का पद दिया था। इसी तरह नोण नामक सेठ की पत्नी—नरेन्द्रप्रभा पर आसक्त राजा प्रतापादित्य ने उसे विवाह-

---

३८१ राज०—पूर्वो०—I-२१८
३८२ वही—III-४३४-४३५
३८३ वही—II-१४७-१४८
३८४ विक्रम०—IX सर्ग
३८५ राज०—I-२४३
३८६ पोजीशन—पूर्वो० पृष्ठ ६६
३८७ राज०—पूर्वो०—IV-१७-२५, ३७, VI-७४, VII-८५८, ७२५, ७२६, कथा०-पूर्वो०—२७, ८१८

विच्छेद के बाद भी अपनी रानी बनाया। रागान्ध राजा चक्रवर्मा ने हसी नामक डोमकन्या को महारानी बनाया जिससे अन्य राजरानियो के बीच उसके ऊपर चमर डुलने लगा।[३८८]

इस समय राजनीतिक लाभ के लिये भी विवाह किये जाते थे। मेरूवर्धन के पुत्रो ने राजनीतिक लाभ की कामना से अपनी बहन मृगावती का विवाह राजा पगु से कर दिया।[३८९] सुस्सल जो लोहरप्रांत का अधिपति था कश्मीर का राजा बनना चाहता था—ने अपनी स्थिति सुदृढ करने के लिये महाराज विजयपाल की पुनीत पुत्री मेघमञ्जरी से विवाह किया। कश्मीर मे इस प्रकार अनेक दृष्टान्त प्राप्त होते है।[३९०] इस प्रकार के राजनीतिक लाभ के लिये किये जाने वाले विवाहो से यह ध्वनित होता है कि कन्याये इस प्रकार के विवाहो को स्वीकार करने के लिये बाध्य होती थी। जबकि उच्च वर्ग की कन्याये स्वयंवर, प्रेम विवाह, गन्धर्व विवाह के माध्यम से अपनी पसद के पति का वरण करने के लिये स्वतत्र होती थी।

सवर्ण-या सजातीय विवाह

हिन्दू समाज मे प्राचीनकाल से सवर्ण[३९१] और सजातीय[३९२] विवाह को महत्त्व दिया जाता रहा है। प्रत्येक हिन्दू को अपने वर्ण के भीतर ही विवाह करने का विधान था। हिन्दू धर्मशास्त्रो मे सवर्णा नारी को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।[३९३] मध्यकालीन भारतीय समाज मे भी प्राचीनकाल की ही तरह सवर्ण विवाह का प्रचलन था—कल्हण ने एक स्थल पर अप्रत्यक्ष रूप से इसका उल्लेख किया है।[३९४]

सवर्ण या सजातीय विवाह के अन्तर्गत सगोत्र, सपिण्ड तथा सप्रवर विवाह पूर्णत निषिद्ध माने जाते थे।[३९५] अलबेरूनी को उद्धृत करते हुए जयशङ्कर मिश्र ने लिखा है कि हिन्दू परिवार मे अपने

३८८ राज० पूर्वो० V-३८७, VII-१०४-१०५
३८९ वही V-२८३
३९० वही VI-२११, VIII-२०५, १६४४, १६४९, १९७५, VII-५८२
३९१ मनु०—पूर्वो०—१०५
३९२ नारद०—पूर्वो०—४
३९३ मनु०—पूर्वो० ३१२, याज्ञ०—पूर्वो०—३६२
३९४ राज०—I-२४३
३९५ सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया (१०००-१२०० ई०) —बी० एन० शर्मा दिल्ली-१९६६,

विवाह नियम के अनुसार किसी सम्बन्धी की अपेक्षा किसी अपरिचित से विवाह करना उचित समझा जाता था, पति और पत्नी का सम्बन्ध जितना दूर का होता है उत्तम ही अच्छा रहता है। अपनी वशजा अर्थात पोती या परपोती तथा अपनी पूर्वजा माता, दादी या परदादी दोनो प्रकार की सगोत्र स्त्रियो से विवाह करना वर्जित है।[३९६] सपिण्डा वह है जिसमे समान पिण्ड (एक ही शरीराश) हो पुत्र का माता से सपिण्ड सम्बन्ध इसलिए है क्योकि उसमे माता के शरीर का अश विद्यमान है, इसीलिए मातामह, मातुल व मातृश्वसा से उसका सपिण्ड सम्बन्ध है। इसी प्रकार पिता, पितामह, प्रपितामह से भी उसका सपिण्ड सम्बन्ध है। गौतम के अनुसार सात व पॉच पीढी के बाद सपिण्डता से निवृत्ति मिलती है।[३९७] बी० एन० शर्मा[३९८] के अनुसार शूद्रो मे चूँकि गोत्र या प्रवर का अभाव होता है इसलिये उनमे केवल सपिण्ड विवाह निबिद्ध माना जाता है।

भागवतपुराण[३९९] मे सपिण्ड विवाह का उल्लेख हुआ है जिसमे रुक्मि ने अपनी पुत्री का विवाह अपने भाजे से किया तथा अपनी पौत्री का विवाह अपने भाजे अनिरुद्ध से किया था। कथा-सरित्सागर[४००] मे गोल्ल सदृश देशो मे ब्राह्मणो (विप्प) को अपनी सौतेली मा से शादी करने की छूट का उल्लेख है। सिद्धश्री सूरी ने पश्चिमी भारत मे ऐसी परम्परा का उल्लेख किया है। इस प्रकार कश्मीरी समाज मे इस तरह के प्रतिबन्ध थे अथवा नही यह साक्ष्यो से स्पष्ट नही हो पाता है।

अन्तर्जातीय विवाह—भारतीय समाज मे ऐसे विवाह जो अपने वर्ण या जाति मे नही होते थे। उनके लिये 'विजातीय या अन्तर्जातीय शब्द प्रयुक्त हुआ है। जिन्हे दो वर्गो मे विभाजित किया गया है—

(१) अनुलोम विवाह

(२) प्रतिलोम विवाह।

---

३९६ **ग्यारहवी शती का भारत जयशङ्कर** मिश्र, पृ० १४१
३९७ वही, पृ० १४५, गौतम० १४, १३
३९८ सोशल—पूर्वो० पृ० ६१
३९९ भागवतपुराण (X, LXI, २३), २५
४०० कथा०—पूर्वो० VII पृ० ११६

अनुलोम विवाह—ऐसा विवाह जिसमें पुरुष उच्च जाति से सम्बन्धित तथा स्त्री निम्न जाति से सम्बन्धित होती थी, यद्यपि प्राचीनकाल में इस प्रकार के विवाह भी उचित नही माने जाते थे। अथर्ववेद[४०१] में कहा गया है कि ब्राह्मणों को सभी वर्णो की कन्याओं से विवाह करने का अधिकार है। अलबेरूनी को उद्धृत करते हुए जयशङ्कर मिश्र[४०२] ने लिखा है कि पुरुष अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है। ऐसा ही उद्धरण बी० एन० शर्मा[४०३] ने प्रस्तुत किया है कि ब्राह्मण अन्य जाति की स्त्रियों से विवाह करने के लिये स्वतंत्र नही थे वे सदैव अपनी ही जाति में विवाह करते थे। ब्राह्मण कवि राजशेखर ने चाहमान कन्या अवन्तिसुन्दरी से विवाह किया था[४०४] किन्तु इस प्रकार के विवाह निन्दनीय माने जाते थे। कल्हण ने लिखा है—कि राजा संग्रामराज (११वी शती) ने अपनी बहन का विवाह एक ब्राह्मण से किया था। इस अनुपयुक्त विवाह से, कल्हण इतना प्रभावित हुआ कि उसने लिखा कि "चाहिए तो यह था कि उस कन्या का विवाह किसी प्रजापालन मे समर्थ एवं विजयी राजा के साथ किया जाता किन्तु उसका विवाह किया गया ऐसे संकुचित चित्त ब्राह्मण के साथ जिसका हाथ संकल्प का जल लेने के कारण सदा गीला रहता था।"[४०५] नागराज सुश्रवा ने अपनी कन्या चित्रलेखा का विवाह ब्राह्मण विशाख से करना स्वीकार कर लिया, यद्यपि वह अनुचित था, फिर भी उसने कन्या को धन प्रदान कर विवाह किया। राजा दुर्लभक प्रतापादित्य ने नोण सेठ की पत्नी नरेन्द्रप्रभा से तथा रागान्ध चक्रवर्मा ने हंसी नामक डोमकन्या को महारानी बनाया।[४०६]

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अनुलोम विवाह निन्दनीय होते हुये भी समाज के उच्च वर्ग मे प्रचलित था। कथासरित्सागर[४०७] से विदित होता है कि क्षत्रिय राजकुमारी का ब्राह्मण कुमार से विवाह हुआ था। अलबेरूनी के पूर्ववर्ती अरबी लेखक इब्नखुर्दाज्बा ने लिखा है कि 'क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों की कन्याओं को पत्नी नही बना सकते बल्कि उनकी कन्याओं को ब्राह्मण पत्नी बना

---

४०१ अथर्ववेद ४, १७८९
४०२ प्राचीन भारत०—पूर्वो० पृ०-१४१ अलबेरूनी०—पूर्वो० भाग दो पृ० १५६
४०३ सोसाइटी—पूर्वो०—पृ० ६२ सचाऊ—पूर्वो० भाग दो पृ० १५५-१५६
४०४ **कर्पूरमंजरी**-राजशेखर I-११
४०५ राज०-पूर्वो०—VII-१०-१२
४०६ वही—I-२४३, IV-२५, ३७, VII-१०४-१०५
४०७ कथा०-पूर्वो०—२५, १७१

सकते है। अलबेरूनी ने भी लिखा है कि हिन्दुओ को पहले अपने से निम्न वर्णो की स्त्रियो से विवाह करने का अधिकार था।[४०८]

प्रतिलोम विवाह—ऐसे विवाह जिसमे वर, कन्या की अपेक्षा निम्न वर्ण का होता था—प्रतिलोम विवाह कहलाता था—ऐसे विवाह समाज मे वर्ज्य माने जाते थे तथा इनसे उत्पन्न सन्तान को वर्णसकर कहा जाता था।[४०९] याज्ञवल्क्य[४१०] ने इस प्रकार के विवाह के लिये सर्वधर्मबहिष्कृत शब्द का प्रयोग किया है। ऋग्वेद[४११] मे उदाहरण मिलता है कि ब्राह्मण कन्या अङ्गिरसी क्षत्रिय भावयव्य की पत्नी थी। बृहद्धर्मपुराण (III-१३) मे ब्राह्मण पिता व क्षत्रिय माता की सन्तान को कुम्हार या तन्तुवाय कहा गया है। जो प्रतिलोम विवाह की भॉति था तथा इन्हे शूद्र के समान माना गया है क्योकि इन्हे—द्विज माता-पिता की सन्तान होने के बावजूद-द्विजो के सस्कार तथा उपनयन आदि कराने का अधिकार नही था।[४१२] बी० एन० एस० यादव[४१३] प्रतिलोम विवाह के पीछे आर्थिक कारणो को उत्तरदायी मानते हुए लिखते है कि परिवेदन (सवर्ण कन्या से विवाह) से सबधित नियमो के अनुसार जब गरीब ब्राह्मण बहुत दिनो तक कर्षक की तरह रहते थे तथा रूढिवादियो द्वारा बहिष्कृत होने पर सवर्ण पत्नी न पा सकने पर वे अन्य वर्ण की कन्या से शादी करने के लिये बाध्य होते थे। यह सवर्ण पत्नी की अनुपलब्धता का एक प्रमुख कारण था। कल्हण[४१४] ने लिखा है कि राजा बालादित्य ने अपनी सुन्दर पुत्री अनगलेखा का विवाह साधारण कुल मे उत्पन्न दुर्लभवर्धन नामक अश्वघास कायस्थ के साथ किया था। कुछ विद्वानो ने पाल शासको—जो निम्न जाति के माने गये है—का वैवाहिक सम्बन्ध राष्ट्रकूट व हैहय सदृश क्षत्रियो से माना है।[४१५] किन्तु बी० एन० शर्मा के अनुसार इस समय तक पाल व चन्देल क्षत्रिय माने जाने लगे थे।[४१६] १२वी शती मे राजा सुस्सल ने अपनी साली को अपनी पुत्र बधू बनाया था

४०८ सचाऊ-पूर्वो०—भाग-२ पृष्ठ १५६
४०९ मनु०—पूर्वो०—X-१२
४१० याज्ञ०—IV-९६
४११ ऋग्वेद—I-२६
४१२ **'हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र लिटरेचर'**—पी० वी० काणे, भाग दो, पूना १९३०-५३, प्लेट I, पृ० ५३
४१३ सोसाइटी—पूर्वो० पृ० ६९-७०
४१४ राज०-पूर्वो०—III-४८९
४१५ **"राष्ट्रकूटाज ऐण्ड देयर टाइम्स"**—ए० एस० अल्टेकर, पूना १९६२, पृ० १७। **"दि डिक्लाइन ऑव दि किंगडम ऑव मगध"**—बी० पी० सिन्हा, पटना, १९५४, पृष्ठ ३२८
४१६ सोशल०-पूर्वो० पृ० ६४

जयसिह ने अपनी एक पुत्री का विवाह राजपुरी के खश प्रमुख से तथा दूसरी का अन्य प्रमुख के पुत्र से किया था।[४१७]

बहुपत्नित्व

विवेच्यकाल मे उत्तर भारत मे एक पत्नित्व प्रथा प्रचलन मे थी[४१८] कथा सरित्सागर[४१९] मे कहा गया है कि राजा, श्रेष्ठ जन तथा धनवान लोग एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे किन्तु गरीब व्यक्ति एक पत्नी ही बडी मुश्किल से रख पाता था। वैदिक समाज मे ब्राह्मण को प्रत्येक वर्ण से पत्नी पाने का अधिकार दिया गया है।[४२०] देवल के अनुसार ब्राह्मण की चार, क्षत्रिय की तीन, वैश्य की दो तथा शूद्र की एक पत्नी हो सकती है—अलबेरूनी ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है।[४२१] विक्रमाङ्कदेवचरित, वृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर मे भी बहुत्पत्नित्त्व के उल्लेख है किन्तु मार्कण्डेयपुराण मे यह कहा गया है कि सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने वर्ण की कन्या को 'सहधर्मिणी बनाना चाहिए तदुपरात यदि आवश्यक हो, तो अन्य वर्ण की कन्याओ से अनुलोम विवाह करना चाहिए।[४२२] कल्हण[४२३] ने भी राजा हर्ष के हरम मे डोम व चाण्डाल जाति की कन्याओ को छोडकर शुद्धशीलवाली तीन सौ साठ स्त्रियो के होने की चर्चा की है। राजा कलश के रनिवास मे ७२ स्त्रियाँ थी, इसी प्रकार जयसिह ने कल्हणिका, रड्डा देवी तथा नागलेखा से शादी की थी जबकि सुस्सल की चार रानियाँ—महालेखा, तरललेखा, उज्जला एव राजलक्ष्मी थी—इस प्रकार के दृष्टान्तो से राजतरङ्गिणी भरी पडी है। जयशङ्कर मिश्र[४२४] ने बहुपत्नित्त्व के निम्न तीन कारण बताये है—

---

४१७ राज०—अनु० आर० एस० पण्डित, इडियन प्रेस, इला० १९३५, VIII ८२, ४५९, १६४८, ३३९४

४१८ **'नैषधीयचरितम्'**—श्री हर्ष-शिवदत्त बम्बई १९१९, VIII-६० उपभीति०-पूर्वो० पृ० ५४०

४१९ कथा०-पूर्वो० ४९, २०८

४२० अथर्व०-V-१७, VIII-९, तै० स०—६ ६ ४ ३, ६ ५ १ ४ ऐ० ब्रा०—१ २ १ १

४२१ सचाऊ—भाग दो पृष्ठ १५५

४२२ अध्याय CXIII-V ३३

४२३ राज०-पूर्वो० V-४४४, VI-१७६, १७९, VII-५२१, ७२४, ९६३, VIII-२८७, १६४०, १४४२-४४, ३०९७, ३१०७, ३३९२

४२४ भारत-पूर्वो० पृ० १४७

(१) कामलिप्सा से ग्रसित होकर अनेक स्त्रियो को पत्नी बनाना।

(२) सन्ततिलिप्सा से—उसके अभाव मे अनेक विवाह किये जाते थे।

(३) शौर्य लिप्सा से—कन्या का अपहरण करके कई विवाह किये जाते थे।

परन्तु बहुविवाह का एक सबसे बडा प्रबल कारण राजनीतिक सम्बन्ध था जो हमे राजाओ के अन्त पुर के रूप मे दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार राजघरानो मे यह प्रथा अधिक प्रचलित थी जबकि जनसामान्य मे इसका प्रचलन नही के बराबर था, क्योकि एक पत्नित्त्व को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। विवेच्यकालीन कश्मीरी समाज मे भी ऐसा ही था।

बहुपतित्व—महाभारत को उद्धृत करते हुये अलबेरूनी[४२५] ने लिखा है कि पाण्डु के पॉच पुत्रो के बीच अकेली द्रोपदी एक पत्नी थी जो प्रत्येक के पास क्रमश एक-एक महीने रहती थी। द्रोपदी के अतिरिक्त हमे ऐसा कोई प्रसङ्ग नही मिलता जिससे बहुपतित्व का पता चलता हो। यद्यपि मध्ययुगीन अरब वासियो मे ऐसी प्रथा प्रचलित होने के सकेत मिलते है। इसी लेखक ने बहुपतित्व प्रथा के पचीर क्षेत्र से कश्मीर के पडोसी राज्यो के भारतीय पहाडी लोगो मे प्रचलित होने का भी उल्लेख किया है।[४२६] जयशङ्कर मिश्र [४२७] की यह बात बिल्कुल सत्य प्रतीत होती है कि भारतीय समाज मे धर्म व नैतिकता का इतना बडा अकुश था कि भारतीय विवाहित स्त्रियो के लिये एक से अधिक पति की बात सोचना मात्र घोर पाप-तुल्य था। कुमारिल भट्ट[४२८] के अनुसार महाभारत मे द्रोपदी सदृश्यरूपा कई द्रोपदियॉ थी जो परस्पर बहुत अधिक साम्य रखती थी इसीलिए महाकाव्य मे केवल एक द्रोपदी का उल्लेख हुआ है। कश्मीरी समाज मे हमे विधवा पुनर्विवाह के प्रसङ्ग तो उपलब्ध होते है, किन्तु बहुपतित्व के साक्ष्य नही उपलब्ध होते।

विवाह सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक) —भारतीय समाज मे प्रारम्भ मे हमे सम्बन्ध-विच्छेद के उल्लेख प्राप्त होते है। कृत्यकल्पतरु[४२९] मे उल्लिखित है कि नष्ट, प्रव्रजित, क्लीव (नपुसक), पतित,

---

४२५ सचाऊ-पूर्वो०—भाग I पृष्ठ १०८, आदिपर्व-१९५, २७-२९

४२६ वही भाग I पृष्ठ १०७

४२७ प्राचीन भारत-पूर्वो० पृष्ठ १५१

४२८ **तन्त्रवार्तिक**—कुमारिल भट्ट— बनारस सस्कृत सिरीज १८९०, पृष्ठ-२०९

४२९ **कृत्यकल्पतरु**—लक्ष्मीधर—अनु० के० वी० आर० आयगर, जी० ओ० एस० बडौदा, पृष्ठ ६४१

राजविलयिषी (राजयोग से पीड़ित), लोकान्तर्गत (दूरदेशवासी) पति, स्त्रियो के लिये त्याग योग्य है : पति के जीवित या मृत रहने पर स्त्री दूसरा पति बना सकती है किन्तु सन्तान की रक्षा के लिये न कि स्त्री स्वतत्रता हेतु। इसी प्रकार विज्ञानेश्वर[४३०] ने स्त्री के शराबी, कुल्टा, रोगिणी, हिस्र या अपव्ययी होने पर पति को दूसरा विवाह करने का विधान बताया है। लेखपद्धति मे सम्बन्ध-विच्छेद के आज्ञा पत्र को 'धौकन पत्र' कहा गया है।[४३१] इसका प्रबल प्रमाण गुजरात की निम्न जातियो मे प्राप्त होता है जो आज भी उत्तर भारत की निम्न जातियो मे है किन्तु सामान्यतया इसका प्रचलन आज भी नही के बराबर है।[४३२] कल्हण[४३३] ने लिखा है कि नोण सेठ की पत्नी नरेन्द्रप्रभा पर राजा प्रतापदितय आसक्त था किन्तु इसे सदाचार के विरुद्ध मानकर, उसने उस स्त्री का अपहरण अनुचित माना तदुपरात नोण सेठ ने अपनी पत्नी को त्याग कर देवदासी रूप मे मदिर को समर्पित कर दिया जहा से राजा ने उसे स्वीकार किया। उनसे चन्द्रापीड नामक पुत्र जन्मा जो आगे चलकर कश्मीर का राजा बना। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैश्यो मे यद्यपि यह प्रथा प्रचलित नही थी बल्कि यह एक अपवादस्वरूप घटना थी क्योकि नोण सेठ ने नरेन्द्रप्रभा से सम्बन्ध-विच्छेद करने की अपेक्षा उसे मन्दिर मे समर्पित कर दि । था अत. यह प्रथा समाज के सामान्य वर्ग मे प्रचलित थी—ऐसा नही स्वीकार किया जा सकता।

विधवा-स्थिति—ऐसी स्त्री जिसका पति मर जाए उसे विधवा कहा जाता है प्राचीनकाल मे विधवाओ के सम्मुख तीन विकल्प होते थे—

(१) वह जीवन भर वैधव्य की विडम्बना सहकर कष्टमय व अभावमय जीवन व्यतीत करे।

(२) पति की स्मृति व पुण्य धार्मिक कार्यो के लिये देवर के ससर्ग (या अन्य सगोत्री) से पुत्र प्राप्त करे—यह नियोग प्रथा थी।

(३) विधिवत् किसी अन्य व्यक्ति से विवाह कर ले। अथर्ववेद[४३४] मे विधवा विवाह का उल्लेख प्राप्त होता है।

---

४३० विज्ञानेश्वर—१-७३
४३१ 'लेखपद्धति' —अन० सी०डी० दयाल एव जी०के० श्रीगोण्डेकर, बडौदा, १९२५, पृ०-५२
४३२ **'दि चालुक्याज ऑव गुजरात'**—ए० के० मजूमदार—बम्बई, १९५६, पृष्ठ ३३८
४३३ राज०-पूर्वो०– IV-४०
४३४ अथर्ववेद—IX-२७-२८

कालान्तर मे नियोग प्रथा के प्रतिबधित होने तथा सती प्रथा के प्रचलित होने के बाद विधवाओ के सम्मुख-मृत पति के शव के साथ सती होने, आजीवन विधवा रहने या दूसरा विवाह करने के विकल्प बचे। विधवाओ का उत्सवो, समारोहो तथा शुभमगल कार्यो मे सम्मिलित होना अशुभकारी माना जाता था।[४३५] पति की मृत्यु के बाद जो स्त्रियॉ सती नही होती थी वे अपनी चूडियॉ नष्ट कर देती थी। माथे पर सिन्दूर लगाना, चमक-दमक वाले कपडे पहनना तथा अन्य आभूषणो का प्रयोग करना बन्द कर देती थी। मल्लार्जुन की मॉ के पास वैधव्य के कारण कोई गहना नही था।[४३६] विधवाओ से सम्बन्धित उपरोक्त तीनो विकल्प कश्मीरी समाज मे हमे स्पष्ट रूप से प्राप्त होते है। विधवाओ द्वारा सती होने का विवेचन सती से सम्बन्धित प्रसङ्ग मे किया जायेगा। **द्वितीय—** स्त्रियॉ आजीवन विधवा रहती थी—क्षेमगुप्त की मृत्यु के बाद रानी दिद्दा अपने पुत्र अभिमन्यु की सरक्षिका बनी, जो बाद मे स्वय शासिका बन बैठी। राजा यशस्कर के शव के साथ केवल रानी त्रैलोक्यदेवी ही सती हुई थी, शेष अन्तपुर की रानियॉ वैधव्य रूप मे जीवन व्यतीत कर रही थी। **तृतीय—**राजा शकरवर्मा की मृत्यु के बाद रानी सुगन्धा देवी पुत्र गोपाल वर्मा की सरक्षिका बनी किन्तु वैधव्य की स्थिति मे भी उन्मत्त होकर उसने मत्री प्रभाकर देव से अनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया और अन्त मे स्वय राजकार्य करने लगी। इसी प्रकार के अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते है।[४३७] कल्हण ने सादा एव आडम्बरहीन जीवन न व्यतीत करने वाली विधवाओ के लिए **'रण्डा'** शब्द का प्रयोग किया है।[४३८]

विधवाओ द्वारा सिर मुडवाने की प्रथा काफी पहले से प्रचलित थी—बी० एन० शर्मा[४३९] इसके पीछे कारण मानते है कि विधवा सन्यासिनी की तरह लगे तथा लोग उसकी तरफ आकर्षित न हो। अलबेरूनी[४४०] के अनुसार यदि कोई व्यक्ति नि सन्तान मर जाता था, तो उसकी सम्पत्ति राज्य द्वारा अधिग्रहीत कर ली जाती थी तथा उसकी पत्नी का केवल अपने गहने या अन्य धन-जिसे स्त्रीधन

४३५ **अमगलेभ्य सर्वेभ्यो विधवा स्याद्मगला,**
विधवा दर्शनात्सिद्धि क्वापि जातु न विद्यते। स्कन्दपुराण ३, ७, ५१, सोशल—पूर्वो० पृष्ठ-६९

४३६ **'नैषधीयचरितम्'**—श्रीहर्ष-शिवदत्त, बम्बई १९१९ XII-३५, राज०-पूर्वो०—VII-१०४-५, VIII-१९६९

४३७ वही—VI ४-१०७, १९५, V-२२१, २२९-३०, २४३, ४७२, VIII-१९५३, १९६८-६९ VII-७२५-७२७

४३८ वही—**'इत्थ मन्त्रिप्रकाण्ड स रण्डामाखण्ड लोपवाम्'** VI-२६०

४३९ सोशल-पूर्वो०—पृष्ठ ६९

४४० सचाऊ-पूर्वो०—भाग II पृष्ठ १६४

कहा जाता था—पर अधिकार होता था तथा उसके पति के उत्तराधिकारी उसके जीवित रहने तक भोजन तथा वस्त्र की व्यवस्था करते थे। कल्हण[४४१] के अनुसार एक डामर स्त्री के पास अपनी जागीर थी-- इससे पता चलता है कि कश्मीर मे स्त्रियो के पास स्वय की सम्पत्ति होती थी। एक ब्राह्मणी विधवा का पति सोते समय मार डाला गया था—इसके पीछे उसे एक-दूसरे ब्राह्मण पर शका थी—इसकी शिकायत उसने राजा से की। अपराध सिद्ध होने पर राजा ने अपराधी को यशोचित दण्ड दिया[४४२] इससे सिद्ध होता है कि कश्मीरी समाज मे विधवाओ की स्थिति ठीक थी तथा राज्य की तरफ से उनके साथ कोई भेदभाव नही किया जाता था।

सती-प्रथा—पति की मृत्यु के बाद स्वय को अग्नि मे समर्पित कर देने वाली स्त्री 'सती' कहलाती थी, ५१० ई० के एरण अभिलेख—जिसमे गुप्त नरेश भानुगुप्त के मित्र गोपराज की हूणो के विरुद्ध मारे जाने पर उसकी पत्नी के अग्नि मे जलने का उल्लेख है—को सती प्रथा का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य माना जाता है।[४४३] महाभारत मे माद्री अपने पति के साथ सती हुई थी तथा वासुदेव के साथ उसकी चार रानियॉ—देवकी, भद्रा, रोहिणी, माद्री सती हुई थी परन्तु अभिमन्यु द्रोण, घटोत्कच क। पत्नियॉ सती नही हुई थी—इससे स्पष्ट होता है कि इस समय तक सती होना स्त्रियो की अपनी इच्छा पर निर्भर करती थी। अलबेरूनी[४४४] ने लिखा है कि पति की मृत्यु के बाद स्त्री को दो मे से कोई एक विकल्प चुनना पड़ता था—जीवन पर्यन्त विधवा रहना या अपने को जला देना। चूँकि विधवाओ को उपेक्षित जीवन व्यतीत करना पड़ता था तथा उनके साथ अच्छा व्यवहार नही किया जाता था अत: स्त्रियॉ जीवित रहने की अपेक्षा जलना ज्यादा अच्छा समझती थी। अबुलफजल[४४५] ने सती को कई श्रेणियो मे विभाजित किया है—

१. जो स्वयं को जलाने के लिये सम्बन्धियो द्वारा बाध्य की जाती थी।

२ जो स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक पति के शव के साथ सती होती थी।

---

४४१ राज०-पूर्वो०—VIII-३११५

४४२ वही—IV-८३-१०७

४४३ **भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता, भार्यावलग्नानुगताग्निराशिम्** ॥ ऐरण अभिलेख

४४४ सचाऊ-पूर्वो०—भाग दो पृष्ठ १५५

४४५ **'आइने-अकबरी'**—अबुलफजल—अनु० एच० एस० गैरेट, कलकत्ता १८९१, भाग दो पृष्ठ १९१-१९२ II-५६

३ जो जनमानस की माग पर स्वय को अग्नि को समर्पित कर देती थी।

४ जो पारिवारिक परम्पराओ व रीति-रिवाजो के कारण सती होती थी।

५ जो बलपूर्वक अपनी इच्छा के विरुद्ध आग मे डाल दी जाती थी।

रघुनाथसिह[४४६] ने सती प्रथा प्रारम्भ होने के पीछे निम्न कारणो को महत्त्वपूर्ण माना है।

प्रथम देवी पार्वती ने सती रूप मे दक्ष के यज्ञ मे कूदकर प्राण दे दिया था—सती होने के बाद वह उमा नाम से प्रसिद्ध हुई थी—इसलिये सती होने की महत्ता बढ गयी। **द्वितीय** सती होना पति भक्ति की चरमसीमा मानी गयी। **तृतीय** सती होना पुण्य कार्य माना जाने लगा। **चतुर्थ** सती होने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है—मान्यता प्रचलित हुई। **पञ्चम** कालान्तर मे सती स्थलो की पूजा होने लगी—अत. मानवीय गर्वमिश्रित दुर्बलता के कारण स्त्रियॉ स्वत. सती होने लगी।

पद्मपुराण[४४७] मे कहा गया है कि ब्राह्मण विधवा को सती नही होना चाहिए तथा यदि कोई इसके लिये उसे बाध्य करता है तो उसे ब्रह्म हत्या लगेगी, किन्तु कल्हण के एक उद्धरण से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणो मे यह प्रथा प्रचलित थी उसने लिखा है कि एक ब्राह्मणी इसलिए सती नही हुई थी क्योकि उसे अपने पति के हत्यारे से बदला लेना था।[४४८] अल्टेकर महोदय[४४९] के मतानुसार ब्राह्मणो मे सभवत १००० ई० के बाद यह प्रथा शुरू हुई। उससे पूर्व यह प्रथा योद्धा जाति (क्षत्रियो) मे मान्य थी जो पति की मृत्यु के बाद स्त्रियो द्वारा पथभ्रष्ट होने के खतरे की अपेक्षा उन्हे मार डालना उचित मानते थे, उनकी यह भी मान्यता थी कि योद्धाओ को इस संसार मे जो चीजे प्रिय होती है उनकी आवश्यकताए वे अगले जीवन मे भी महसूस करते है। राजतरङ्गिणी[४५०] मे हमे अनेक ऐसे दृष्टान्त उपलब्ध होते है जिनमे शव के साथ पत्नियो के अतिरिक्त सम्बन्धी, मत्रीगण, नौकर तथा सेविकाये भी जल जाती थी। कथासरित्सागर[४५१] मे भी स्त्रियो के सती होने के उल्लेख प्राप्त होते है। मेधा-

४४६ 'राजतरङ्गिणी' अनु० रघुनाथसिह—

४४७ पद्मपुराण—सृष्टिखण्ड—कलकत्ता १९५७, ४९, ७३-७४

४४८ राज०-पूर्वो०—IV-८३-१०७

४४९ पोजीशन-पूर्वो० पृष्ठ १२९

४५० राज०-पूर्वो०—V-२२५-२७, VII-१०३, ४७८, ७२४, १४८६, VIII-३६८

४५१ कथा०—X-५८

तिथि[४५२] ने न केवल सतीप्रथा का विरोध किया बल्कि इसे आत्महत्या बताया है जबकि कई विद्वानो[४५३] ने इसे स्वेच्छा पर निर्भर मानते हुये सम्माननीय बताया है। अल्टेकर महोदय[४५४] ने सती प्रथा को विदेशी माना है तथा सीथियनो द्वारा इस प्रथा को यहॉ लाने का श्रेय दिया है। रघुनाथ सिह के अनुसार[४५५] कश्मीर मे सती प्रथा का प्रारम्भ राजा तुजीन की मृत्यु पर उसकी रानी वाक्पुष्टा के सती होने से हुआ—क्योकि राजा जलौक ने सपत्नीक स्वर्गारोहण किया था। इसलिए यह सती का उदाहरण नही माना जा सकता। कश्मीर मे यद्यपि लोहर वश के प्रारम्भ से ही सती प्रथा के साक्ष्य प्राप्त होते है किन्तु इसका कठोरता से पालन नही किया जाता था। कल्हण ने अनेकश ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये है जिनसे पता चलता है कि विधवाये वैधव्य मे भी अच्छी प्रकार से जीवन यापन करती थी।[४५६]

रानी दिद्दा क्षेमगुप्त के मरने के बाद सती होना चाहती थी किन्तु मत्री नरवाहन द्वारा रोक लिये जाने पर सती नही हुई, इसी प्रकार राजा यशस्कर के अन्तपुर की रानियो मे से केवल त्रैलोक्यदेवी सती हुई थी। राजा गोपालवर्मा (९०२-९०४ ई०) की रानी नन्दा सती नही हुई थी तथा राजा शकर वर्मा (८८३-९०२ ई०) की रानी सुगन्धा भी सती नही हुई थी।[४५७] समयमातृका[४५८] की नायिका ककाली का विवाह डामर समरसिह से हुआ था—उसकी हत्या होने पर कंकाली सती होने की जगह अपने सौतेले पुत्र की पत्नी बनकर रहने लगी।

स्वय को चरित्रवान सिद्ध करने के लिये भी स्त्रियॉ सती होती थी—पुत्र कलश के कारण पति की भला बुरा कहने वाली, पति की हत्या के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानने वाली तथा हलधर से दुराचार सम्बन्धी अपवाद को दूर करने वाली रानी सूर्यमती ने सती होने का निश्चय किया।[४५९]

---

४५२ मेधातिथि-मनु०—५-१५६

४५३ 'हिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐज टोल्ड वाइ इट्स ओन हिस्टॉरियन'—इलियट एव डाउसन—लदन १८६६, भाग एक पृष्ठ ६

४५४ पोजीशन-पूर्वो०— राज०-पूर्वो०—VII-८५५-८६२ पृष्ठ १५२-१५३

४५५ राज०-पूर्वो०—II-५६ पाद टिप्पणी पृष्ठ ४०२

४५६ राज०-पूर्वो०-V-२२६, VI-१०७

४५७ राज०-पूर्वो०—III-१२३, V-२२०-२२६, २४५-२४६, VI-१०७, १३८, १९५

४५८ 'समयमातृका'—क्षेमेन्द्र—अनु० दुर्गा प्रसाद एव के० पी० परब, बम्बई १९२५, II-२१

४५९ राज०—VII-४६१, ४७७-४७८, ४८१

तुगपुत्र कन्दर्पसिह की .त्नी क्षेमा—जो बड़ी व्यभिचारिणी थी—के कारण अपनी चरित्र रक्षा के निमित्त तुग की पुत्रवधू शाही ो कन्या बिम्बा चार दिन बाद अग्नि मे कूदक्र सती हो गयी।[४६०] इसी तरह डामरो के विरुद्ध अभि ग्रान मे हर्ष व उसके पुत्र भोज के रणक्षेत्र मे रहते हुये ही पटरानी वसन्तलेखा अपनी पतोहुओ व राजकन्याओ सहित बचने का कोई मार्ग न देखकर आग मे जल मरी। शेष सबको डामर उठा ले गये।[४६१] लवन्यो की ललनाये विधवा होने के बाद भी धन की इच्छा से ग्राम्यकार्य करती हुई कुटुम्बियो के साथ भोग कराती है किन्तु राजपूत परिवार से सम्बन्धित डामर स्त्री-कोष्ठक की पत्नी ने डामरो के उपरोक्त व्रत को न मानते हुये अपने पति के कैद होते ही स्वय अग्नि मे जल मरी। इससे पता चलता है कि डामरो मे सती होने की परम्परा नही थी किन्तु स्वेच्छा से स्त्रियॉ ऐसा कर सकती थी।[४६२] कश्मीरी समाज मे ऐसे प्रसङ्ग भी प्राप्त होते है जिनसे पता चलता है कि माताये भी सती हो जाया क ती थी। हर्ष के सेवक चन्द्रराज की मॉ गज्जा अपने एकमात्र पुत्र के मरने पर स्वय को अग्नि मे स. र्पित कर दिया। कृष्णा मोहन की मान्यता है कि पुत्र के अल्पवयस्क होने के कारण सभवत. गज्जा पति के साथ सती नही हुई थी।[४६३] राजा सल्हण ने दिल्ह भट्टार—जो न तो राजवशज था न ही विशेष बलवान—को विष देकर मरवा डाला, इससे क्रुद्ध होकर उसकी बहन ने उसे खूब फटकारा और बाद मे अग्नि मे प्रविष्ट होकर मानवती स्त्रियो का ब्रत सिद्ध कर दिया।[४६४]

उपरोक्त प्रसङ्गो से कल्हण की बात पुष्टित होती है कि सती होना पूर्णत भावनात्मक एव हृदय का मामला था, जिसमे मृतक को सर्वाधिक मानने वाला उसके वियोग मे स्वय को समाप्त कर लेता था। जहॉ पति-पत्नी अपने जीवन मे पूर्ण वैवाहिक सामञ्जस्य के साथ रहते है तथा पति के अलग होने के वियोग की दशा उसे सती होने के लिये प्रेरित करती है।[४६५] राज्य के उच्चाधिकारियों की पत्नियॉ भी पतियो के मरने पर उनके साथ सती हो जाया करती थी।[४६६] इससे यह निष्कर्ष निकालना

---

४६० राज०—VII-१०२-१०५

४६१ वही—VII-१५७९, VI-५४३

४६२ वही VIII-२३३८-२३३९, राज०-पूर्वो०—VII-१३८०

४६३ **अर्ली मेडिवल हिस्ट्री ऑव कश्मीर**-कृष्णा मोहन, नई दिल्ली-१९८१ पृष्ठ २३३

४६४ राज०-पूर्वो०—VIII-४४६-४४८

४६५ वही—II-५६-५७, VII-१४१२-१४१३

४६६ वही—VII-४५८, २३३४

सरल है कि सती की प्रथा केवल राजघरानो तक ही सीमित न होकर जनसामान्य मे भी प्रचलित थी। यद्यपि कल्हण ने सती होने वाली स्त्रियो की प्रशसा की है किन्तु साथ ही उसने लिखा है कि स्त्रियो के केशो मे जो कुटिलता होती है, नेत्रो मे जो चचलता रहती है और कुचो मे जो कठोरता रहती है वे तीनो अवगुण हृदय मे जाकर पिण्डाकार बन जाते है—इसी कारण उनका हृदय बडा गहन होता है और इन्हे कोई भली-भॉति नही जान सकता वे दुराचार तथा पतियो की हत्या करती हुई भी खेल-खेल मे चिता मे कूद सकती है इसलिये इन पर कदापि विश्वास नही किया जा सकता।[४६७]

वेश्यावृत्ति—भारतवर्ष मे प्राचीनकाल से ही वेश्यावृत्ति के साक्ष्य प्राप्त होते है[४६८] वात्स्यायन ने इसे उतनी प्राचीन माना है जितनी कि मानव सभ्यता। जयशङ्कर मिश्र ने लिखा है कि विश्व की प्रत्येक जाति मे वेश्याओ का अस्तित्व आदि काल से रहा है। भारत मे भी इनका अलग से एक वर्ग था, जो इस प्रथा को अपनाकर अपना जीवनयापन करता था। वेश्याप्रथा का कारण व्यक्तियो का काम और सौन्दर्ययुक्त भावना की प्रधानता थी जो समाज की प्राचीन धारा मे ही नही मध्ययुगीन धारा मे भी हिलोरे ले रही थी। राजकुलो के सम्बन्धियो, नगर-श्रेष्ठियो, सामन्तो, आदि का उत्प्रेरक उत्साह ही वेश्यावृत्ति की चरम परिणति थी। नर्तकी, गणिका, सामान्या, रूपजीवा, वेश्या, देवदासी आदि विभिन्न प्रकार की भिन्नवृत्ति अपनाने वाली वेश्याओ की प्रधानता पूर्वमध्ययुगीन समाज मे उत्कर्ष पर थी।[४६९] पुराण के आधार पर विज्ञानेश्वर ने इन्हे पककूडा नामक आकाशीय परियो से उत्पन्न माना है।[४७०] बी० एन० शर्मा[४७१] ने वेश्याओ को एक व्यावसायिक वर्ग मानते हुये इसे 'पॉचवी जाति' कहा है।

दामोदर गुप्त के कुट्टनीमतम्, भोज के श्रृगारमञ्जरीकथा, क्षेमेन्द्र के नर्ममाला, देशोपदेश, सम-यमातृका, कल्हण की राजतरङ्गिणी तथा सोमदेव के कथासरित्सागर से पता चलता है कि कश्मीर मे वेश्याओ ने एक पृथक् सामाजिक इकाई बना ली थी। उनका सुन्दर मुखडा, मोहक व्यवहार, धन, सुख,

४६७ राज०— VIII-३६५-३६६
४६८ काणे-पूर्वो०—I, पृष्ठ ६३७, **प्रोस्टीट्यूशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया** वी० सी० लॉ०, कलकत्ता पुलिस जर्नल जन० १९४०, भाग I, अक २
४६९ **ग्यारहवी शती का भारत**-पूर्वो०—पृष्ठ १५९
४७० विज्ञानेश्वर—II-२९०
४७१ सोशल—पूर्वो०-७३

बुद्धि तथा अन्य कौशल उन्हे उच्च सामाजिक स्तर प्रदान कराते थे।[४७२] उच्च सुसभ्य वेश्याए गणिका कहलाती थी जिन्हे प्राचीनकाल से सम्माननीय स्थान प्राप्त था। ११वी शती मे क्षेमेन्द्र ने इन्हे कला एव सस्कृति का सग्रह बताते हुए अपने ग्रथ मे लिखा है कि इनका घर राजदरबार की तरह होता था जहॉ कुछ लोग आते, कुछ जाते तथा कुछ बाहर प्रतीक्षारत रहते थे।[४७३]

दामोदरगुप्त[४७४] ने भी लिखा है कि वेश्याये भरत के नाट्यशास्त्र, विशाखिल के कलाशास्त्र सङ्गीत, वाद्यशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, सिलाई-कढाई, जादूगरी, पाकशास्त्र मे कुशल होती थी। इनकी शारीरिक सुन्दरता, आभूषण, नृत्य, सङ्गीत तथा बुद्धिमत्ता से आकर्षित होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जाति के लोग इनके दरवाजो पर उपहारो के साथ प्रतीक्षा करते थे। क्षेमेन्द्र[४७५] ने समयमातृका की नायिका ककाली द्वारा वणिकपुत्रो, पुजारी (प्रसादपाल), डामर, अश्वारोही, लेखक (दिविर) तथा राज्य कारागाररक्षक को पथभ्रष्ट करने के लिये पहले बौद्ध भिक्षुणी बनी, एक मत्री के घर मे सेविका, एक गडेरिये की पत्नी, ईश्वर मे चढाने के लिये फूल-मालाओ की विक्रेता, तक्षक उत्सव के समय मदिरा विक्रेता और इसके बाद एक भारवाहक की पत्नी और अत मे द्वार रक्षको (द्रग रक्षक) पर जगली नशीले पुष्पो का प्रयोग करके वह कश्मीर की सीमा पार कर गई। इस उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि अपने व्यापार के लिये आवश्यक गुणो को वेश्याये किस प्रकार अर्जित करती थी—इसी लेखक ने कामशास्त्र के लिये निर्धारित चौसठ कलाओ का उल्लेख किया है। कल्हण[४७६] ने ऐसी वेश्याओ का उल्लेख किया है जो अपने प्रेमियो के गुणो की अपेक्षा उनसे धन प्राप्ति के लिये उनकी तरफ आकर्षित होती थी। उसने ऐसे कमजोर तथा मूर्ख राजा की निन्दा की है—जिसके राज्य मे वेश्यावृत्ति तथा अनैतिकता को बढावा मिलता है। क्षेमेन्द्र[४७७] ने भी वेश्याओ के प्रेम को झूठा मानते हुए कहा है कि ये स्त्रियॉ अपने प्रेमियो के शव पर मरने का नाटक करती है जबकि वास्तव मे इनमे लगाव की ऐसी कोई भावना नही होती।

कश्मीर के राजे न केवल वेश्याओ को अपने अन्तपुर मे रखते थे अपितु ये उन्हे महारानी तक

---

४७२ **दि क्लासिकल ऐज**—आर० सी० मजूमदार—बम्बई १९६२ पृष्ठ ५६८
४७३ **बोधिसत्त्वावदानकल्पलता**—क्षेमेन्द्र—कलकत्ता १८८८, पृष्ठ २७, कलाविलास—क्षेमन्द्र-वम्वई १८८६
४७४ **कुट्टनीमतम्**—दामोदरगुप्त अनु० तनसुखराम, मनसुखराम त्रिपाठी-बनारस १९२४
४७५ समय-पूर्वो०—II, IV-३-११, V
४७६ राज०-पूर्वो० IV-४८१, ६६१-६२, V-२९४, VII-११०९
४७७ कला०—IV-१९, X-२३, देशोपदेश—पूना-१९२३ III, समय०—पूर्वो० –II-३२

बना देते थे। कल्हण ने लिखा है कि अज्ञातकुल मे उत्पन्न जयमती का लालन-पालन काणवती नामक नर्तकी ने किया—जो तरुणी होने पर राजा उच्चल से प्रेम करने लगी किन्तु धन के लालच मे मण्डलेश्वर आनन्द की रखैल बन गयी। आनन्द की मृत्यु के बाद वह पुन राजा उच्चल से प्रेम करने लगी तथा धीरे-धीरे पटरानी बन गयी। इसी प्रकार लल्ला नामक वेश्या—जो एक पहरा देने वाले पर आसक्त थी को राजा यशस्कर ने अन्त पुर की रानियो मे प्रधान स्थान दिया था।[४७८] एक अन्य स्थल पर कल्हण ने लिखा है कि वेश्याए छल से गृहस्थो को फसाकर उनके घरो की ब्याहता बन जाती थी।[४७९] पी० वी० काणे ने वेश्याओ को दो वर्गो मे विभाजित किया है—अनिरुद्धा (रखैल) तथा अन्य अवरुद्धा को पारिवारिक सम्पत्ति मे कुछ अधिकार प्राप्त थे तथा उससे सभोग करने वाले को जुर्माना (अर्थ-दण्ड) देना पड़ता था।[४८०] ऐसे भी साक्ष्य प्राप्त होते है जिनसे पता चलता है कि वेश्याऐ **गुप्तचरी** का कार्य करती थी—कल्हण ने लिखा है कि वेश्या थक्कना ने राजा हर्ष द्वारा उच्चल व सुस्सल की हत्या किये जाने की बात से उन्हे अवगत करा दिया था।[४८१] वेश्यालय शरण स्थली के रूप मे भी प्रयोग किये जाते थे, चित्ररथ का भाई लोष्ठक डर के मारे भागकर एक नर्तकी के घर मे शरण लेकर उससे रक्षा की भीख मागी।[४८२] कुछ वेश्याये **धार्मिक कार्य** मे भी सलग्न रहती थी। वेश्या साम्बवती ने साम्बेश्वर शिव की स्थापना की थी।[४८३]

क्षेमेन्द्र[४८४] ने ऐसे व्यक्तियो की एक लम्बी सूची दी है जो कल्पवृक्ष की भॉति पूर्ण हृदय से गणिकाओ द्वारा सम्मानित किये जाते थे—इन व्यक्तियो मे केसर-व्यापारी, धनवान का इकलौता पुत्र, मृतक का युवा पुत्र, अमात्य, चिकित्सक, माली, पुजारी, (प्रसादपाल), डामर, गुरु का पुत्र, कामुक तपस्वी, अनुत्तरदायी राजकुमार, ग्राम्याधिकारी, धनवान, सगीतज्ञ, विख्यात विद्वान, नगर मे प्रथम बार आया वणिक और एक होशियार शराबी—इससे यह बात स्पष्ट होती है कि वेश्याओ का समाज के लगभग सभी लोगो से सम्बन्ध होता था। अल्बेरूनी[४८५] ने वेश्याओ के बारे मे लिखा है कि राजा उन्हे (वेश्या

४७८ राज०-पूर्वो०—VII-१४६०-६२, VI-७४, ७७
४७९ वही—VIII-३३३८
४८० काणे—भाग III पृष्ठ ६३७
४८१ राज०-पूर्वो०—VII-१२५१-१२५२
४८२ वही—VIII-२२५२
४८३ वही—V-२९६
४८४ समय०-पूर्वो०—V-६३-६७
४८५ सचाऊ-पर्वो०—भाग दो पष्ठ १५७

व देवदासी) अपने नगरो के आकर्षण, विषय सुख के लोभ तथा आर्थिक कारणो से प्रोत्साहन देते है। उन्होने आगे लिखा है कि बुइया सुल्तान अदुद अल दवल[४८६] आर्थिक कारणो के अतिरिक्त अपने सैनिको की कामुकता से रक्षा के लिये वेश्यावृत्ति का समर्थन किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि वेश्यावृत्ति भारतवर्ष मे ही नही अपितु फारस आदि अन्य देशो मे भी प्रचलित थी। अलबेरूनी की बात का समर्थन करते हुये कौटिल्य[४८७] ने भी लिखा है कि वेश्याओ को अपनी मासिक आमदनी मे से १/१५ राज-कर देना आवश्यक था। यदि कोई गणिका किसी व्यक्ति से शुल्क लेकर सेवा करने से इकार कर देती थी तो उसे उस व्यक्ति को तथा राजा को दूना धन देना पडता था—बशर्ते वह रोग, भय या थकान की वजह से ऐसा न करे। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति गणिका की सेवा लेने के बाद निर्धारित शुल्क देने से मना करता था तो उसे गणिका को शुल्क का दूना धन तथा राजा को शुल्क के बराबर अर्थ-दण्ड देना पडता था।[४८८]

कुटनी को वेश्याओ का महत्त्वपूर्ण सहयोगी माना गया है—ये अधिक आयु की वेश्याये ही होती थी जो वेश्याओ को अपने व्यापार के दॉव पेच बताती थी तथा युवको को फॅसाने मे उनकी मदद करती थी। अपनी सेवा के बदले ये पैसा प्राप्त करती थी।[४८९] कश्मीरी समाज मे इस वर्ग का एक स्थायी सदस्य '**बिट**' था जिसको सभी लेखको ने घृणा की दृष्टि से देखा है।[४९०]

देवदासी-प्रथा—स्त्रियो का ऐसा वर्ग जो मन्दिरो के देवताओ की सेवा मे नियुक्त थी तथा मन्दिरो मे नाचना व गाना जिनका मुख्य कार्य था—देवदासी कहलाती थी। इनका उल्लेख कालिदास[४९१] ने किया है। ह्वेनसाग ने सर्वप्रथम मुल्तान के मन्दिर मे नृत्य करने वाली इन देवदासियो का

---

४८६ अदुद-अल-दवल (९३६-९८३ ई०) फारस का पहला महान विजेता शासक था जिसने बादशाह की खिदावन पाई थी और शाहशाह मलिक अल मुलूक नाम से विख्यात था।
'इनसाइक्लोपीडिया ऑव इस्लाम' खण्ड I पृष्ठ१४३

४८७ 'अर्थशास्त्र'—कौटिल्य मैसूर १९२४ (अध्यक्ष प्रचार अ० २७)
आर्क्या० सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट १९०८-०९, पृ० ११९
डी० आर० भण्डारकर—लिस्ट ऑव इन्शिक्रिप्शन्स ऑव नार्दर्न इण्डिया न० २५९, २६०

४८८ कृत्य०-पूर्वो० पृ० ४०८, ४१०,

४८९ समय०-पूर्वो० IV-१-८, ४०-४५ देशो०-IV यत्र तत्र

४९० वही I-१०, VI-३२४, VIII-१३, १७, ८७०, वही—V

४९१ 'मेघदूत'—श्लोक ३५-३६

उल्लेख किया है।[४९२] कौटिल्य ने भी देवदासी प्रथा का उल्लेख किया है।[४९३] अल्टेकर महोदय दक्षिण भारत मे इसके प्रचलित होने का उल्लेख किये है। अबू-जैद अल हसन (९वी शती) ने इस प्रथा के प्रारम्भ होने के विषय मे लिखा है कि, "जब किसी स्त्री के सन्तान नही होती थी तो वह प्रतिज्ञा करती थी और यदि उसके सुन्दर कन्या पैदा होती थी तो वह उस कन्या को मूर्ति के पास लाती थी, इसका आह्वान, पूजा करती थी और उसे वही छोड जाती थी जब वह लडकी यथोचित अवस्था को प्राप्त कर लेती थी तो वह इस सार्वजनिक स्थान मे एक आवास ले लेती थी। अपने दरवाजे पर एक पर्दा फैला देती थी—वह भारतीयो के अतिरिक्त अन्य जाति के नवागन्तुको के आने की प्रतीक्षा करती थी—उसके लिये यह आचरण निषिद्ध नही था वह स्वय को निश्चित दर पर वेश्यित करती थी और मन्दिर के लिए तथा मन्दिर मे खर्च के लिए मन्दिर के पुजारी के हाथो मे लाभ दे देती थी।"[४९४] चाऊ-जु-कुआ के आधार पर यू० एन० घोषाल ने लिखा है कि गुजरात के ४,००० मन्दिरो मे लगभग २०,००० देवदासियॉ थी[४९५] अलबेरूनी ने भी लिखा है कि सोमनाथ के मन्दिर मे देवप्रतिमा के सम्मुख चौबीसो घण्टे नाचने व गाने के लिए लगभग ५०० देवदासियॉ नियुक्त की गई थी।[४९६] इन उल्लेखो से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ मे देवदासियॉ देवप्रतिमाओ के सम्मुख नाचने व गाने के लिये नियुक्त की जाती थी जो मन्दिरो की मुख्य आकर्षण होती थी किन्तु बाद मे इन्होने नैतिक एव आध्यात्मिक वातावरण को निम्न बना दिया—कुछ लोग यहॉ पर देवताओ के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के बजाय देवदासियो से प्रेम करने के लिये आते थे।[४९७] हिन्दू समाज मे प्रचलित देवदासी प्रथा का ब्राह्मणो, जैनियो तथा अन्य सम्प्रदाय के लोगो ने विरोध किया था किन्तु उन्हे आशिक सफलता ही मिली क्योकि वे केवल लोगो का मनोरञ्जन ही नही करती थी अपितु राज्य के राजस्व का स्रोत भी थी।[४९८]

कश्मीर मे प्रारम्भिक काल से ही नर्तकियों के मन्दिरो से सम्बद्ध होने के प्रसङ्ग प्राप्त होते है।[४९९] राजा जलौक ने अपने अन्त.पुर की नृत्य, गीत में कुशल सौ स्त्रियो को भगवान जयेष्ठेश की

---

४९२ वाटर्स-पूर्वो०—II पृष्ठ २५४
४९३ अर्थशास्त्र—कौटिल्य-अनु० शामशास्त्री, मैसूर १९२९, II-२३
४९४ 'एकाउन्ट्स ऑव इण्डिया ऐण्ड चाइना'
४९५ ' स्ट्रगल फॉर एम्पायर'—पूर्वो० पृ० ४९५-४९६
४९६ सचाऊ-पूर्वो० भाग I, पृष्ठ ११६
४९७ पोजीशन-पूर्वो० पृष्ठ १८३
४९८ सचाऊ-पूर्वो०—भाग II पृष्ठ १५७, 'अर्ली चौहान डाइनेस्टी' दशरथ शर्मा—दिल्ली १९५९, पृ० २६०-६१
४९९ राज०-पूर्वो० I-१४९-१५२, IV-४२१-२२, कुट्टनी-पूर्व० श्लोक ७४३-४५ समय० पूर्वो०—II-८९

पूजा के समय नृत्य करने के लिये नियुक्त किया था।[५००] ये दुर्लभक प्रतापादित्य II के राज्यकाल मे भी थी[५०१] राजा ललितादित्य को निर्जन वन मे मिली दो नृत्यरत बालिकाओ ने बताया कि 'यहॉ की ही जीविका पर जीवन निर्वाह करने वाली अपनी माताओ के आदेशानुसार हमारे कुल की नर्तकियॉ यहॉ नित्य-प्रति नाचती है'—हम देवदासियॉ है तथा हमारे कुल मे यह प्रथा परम्परा से चली आ रही है—ऐसा क्यो है किसी को नही मालूम।[५०२] इस प्रसङ्ग से कश्मीर मे इस प्रथा की प्राचीनता सिद्ध होती है।

कल्हण ने लिखा है कि राजा कलश ने कय्या नामक नर्तकी से तथा उसके पुत्र उत्कर्ष से सहजा नामक दासी से विवाह किया था—जो देवदासियॉ थी। राजा दुर्लभक प्रतापादित्य II नोण सेठ की पत्नी नरेन्द्रप्रभा पर आसक्त था किन्तु उसे स्वीकारने को अनैतिक मानते हुये राजा ने उसे तभी स्वीकार किया जब सेठ ने उसे मन्दिर मे समर्पित कर दिया।[५०३] इससे सिद्ध होता है कि राजा लोग देवदासियो से विवाह कर सकते थे अथवा उन्हे अपने अन्तपुर मे रख सकते थे तथा यह कार्य अनैतिक नही माना जाता था। ऐसी प्रथा कश्मीर मे ही नही अपितु बनारस के विश्वनाथ जैसे पवित्र मन्दिर मे भी पायी जाती थी। जयशङ्कर मिश्र जी[५०४] ने लिखा है कि मध्ययुगीन राजाओ द्वारा थोडे से आर्थिक लाभ के लिये देवदासियो को प्रोत्साहन एव प्रश्रय देना, नैतिक व व्यावहारिक दृष्टि से अत्यन्त निन्द्य तथा गर्हित था। इससे समाज का इतना बडा नुकसान हुआ, जिसकी पूर्ति असम्भव रही। जहॉ मनुष्य क्षणभर के लिये जाकर सासारिक मोह-माया और काम-लिप्सा को भुलाकर जगत नियन्ता की आराधना करता था वहॉ देवपूजन के स्थान पर कामपूजन को महत्त्व दिया जाने लगा। प्रत्येक प्राणी देवदासियो का दास बनकर पश्चिम से आने वाले तूफान से ही अनभिज्ञ नही हो गया अपितु जनता व समाज की राष्ट्रीय चेतना तथा उसकी शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि विदेशी आक्रान्ताओ ने भारत को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

---

५०० राज० I-१४९-१५२
५०१ वही IV-३६
५०२ वही IV-२६७-२७१
५०३ वही IV-३६
५०४ कुट्टनी०-पूर्वो० श्लोक—७४३-७५५, भारत-पूर्वो०—पृष्ठ १६२-१६३

भोजन एवं पेय

प्राचीन काल से भारतीय समाज मे दो प्रकार के लोग थे—एक शाकाहारी और दूसरे मासाहारी। शाकाहारी वे लोग थे जो वनस्पति खाते थे मास नही जबकि मासाहारी वे लोग थे जो मास के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की वनस्पतियॉ भी खाते थे। कुछ लोग ताम्बूल खाते थे तो कुछ शराब भी पीते थे।

खाद्य-सामग्री

मध्यकालीन कश्मीरी समाज मे **चावल** प्रमुख भोजन था जो विभिन्न नामो-धान्य, शालि, तन्डुल, ब्रीहि, अक्षत, कलम—ये अभिहित होता था।[५०५] उबला हुआ चावल लोगो का मुख्य भोजन था किन्तु राजतरङ्गिणी व नर्ममाला[५०६] मे चावल के आटे का भी उल्लेख है। **यव** एक अन्य प्रकार का भोजन था जिससे अपूपा और पिष्टक (Bread and Cake) बनाया जाता था।[५०७] कल्हण महोदय ने एक स्थल पर 'यवकोद्रवपूपादि' का प्रयोग किया है जिसका उपयोग सकट के समय लोठन व विग्रहराज ने किया था। एक परमार अभिलेख मे भी 'कोद्रव' का उपयोग हुआ है जिसे गरीब लोग खाते थे।[५०८]

धान का लावा (कणिका, पल्लाज)[५०९] विशेषरूप से शुभअवसरो पर ऊपर छिडकने के लिये किया जाता था। दही व घी मे पकाया गया चावल हिन्दू देवताओ को समर्पित किया जाता था।[५१०]

कश्मीर मे दाल तथा फली पैदा किये जाने के साक्ष्य मिलते है। नीलमतपुराण[५११] मे मसूर की दाल का उल्लेख हुआ है, क्षेमेन्द्र[५१२] ने मुद्गा नामक दाल की चर्चा की है जबकि कल्हण[५१३] ने

---

५०५ 'राजतरङ्गिणी'—अनु० एम० ए० स्टेइन दिल्ली १९६० Vol II ४२७ 'दिवैली ऑव कश्मीर'—लारेन्स, बाल्टर, श्रीनगर १९६७, पृष्ठ ३१९, राज०-पूर्वो० I (२४६ धान्य), II १८, III २२ IV २९५, V 71, ११६ १७, VII ४९६ (व्रीहि), समय०-पूर्वो II ७८ (तडुल), नर्म०-पूर्वो० III ५ 'दि नीलमत पुराण'—वेदकुमारी, श्रीनगर-जम्मू १९६८ ७४८-४९, देशो०-पूर्वो०-VIII-३६, लोक-पूर्वो० पृ० ६

५०६ राज०-पूर्वो० VIII १४०, नर्म०-पूर्वो० अध्याय ३ श्लोक ३

५०७ राज०-पूर्वो० (अपूपा) IV २२८, (आपूपिका) VII III नर्म०-पूर्वो० श्लोक ४९९-५०५ यव ६९६-६९७

५०८ वही VII १६२१, VIII २५९६, इपीग्राफिया इडिका-XXXIII पृ० १९६ पक्ति ९-११

५०९ वही I-३६७ II-११९

५१० 'इन्सक्रिप्सन्स ऑव बगाल—एन० जी० मजूमदार, III पृ० ८६, ८९-९०

५११ नील-पूर्वो V-४२२

५१२ नर्म०-पूर्वो० अध्याय-I -१२४

५१३ राज०-पूर्वो० III-१८१, VII-७५८

उडद की दाल के प्रयोग करने का उल्लेख किया है। एक अन्य स्थल पर मूँग की दाल (माशब, मुद्ग) का भी जिक्र किया गया है। कुछ विशिष्ट अवसरो पर ब्राह्मणो को करम्भक चावल तथा दाल मिली हुई (वर्तमान खिचडी) दी जाती थी।[५१४]

कल्हण ने **सत्तू** (सक्तू) का उल्लेख किया है जो कश्मीरियो द्वारा सकट के समय प्रयोग किया जाता था।[५१५] तिलद्वादशी जैसे विशिष्ट अवसरो पर **तिल** खाया जाता था—सभवत अन्न के नाम पर ही इसका नामकरण हुआ है।[५१६] लोहर प्रान्त के राज्यमत्री शूर के पुत्र का सेवक धन्व-डामर ने राज्य की ओर से प्राप्त भूतेश्वर मदिर के नाम लगे हुये सब गॉव बरबस छीन लिये अतएव धनाभाव के कारण भूतेश भगवान को पुजारियो द्वारा एकत्र की गयी जगली और कडवी-**उत्पलक शाक** का भोग लगता था।[५१७] समयमातृका[५१८] मे भी हरी शाक का उल्लेख हुआ है। **कमलनाल** (बिस) कश्मीरियो द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली प्रमुख शाक थी।[५१९] अल्बेरूनी[५२०] के अनुसार ब्राह्मणो को **पॉच शाक** खाना निषिद्ध था—प्याज, लहसुन, कद्दू (लौकी), पौधे की जड यथा—गाजर, तथा नाली के आस-पास पैदा होने वाली शाक। **प्याज (पलाण्डु)** तथा **लहसुन** को कामोत्तेजक भोजन माना गया है। इसीलिये कल्हण ने लहसुन को ब्राह्मणो के लिये निषिद्ध बताया है जबकि ये दोनो चीजे तात्रिक गुरुओ को भेट मे दी जाती थी।[५२१]

मसालो मे **नमक** सबसे महत्वपूर्ण माना जाता था।[५२२] स्टेइन महोदय ने पीर-पजाल मार्ग को नमक मार्ग कहा है।[५२३] कल्हण ने **नमक, मिर्च** व **हीग** को अकाल के समय दुर्लभ चीज बताया

५१४ राज०-पडित पूर्वो० III-२५६
५१५ राज०-पूर्वो० I-२०५ नील०-पूर्वो०- ७५४
५१६ वही III-४२६ V-३९५ नील०-४८२-८३ स्टेइन-पूर्वो०-भाग I V-३९५ टि०
५१७ वही V-४८-५२
५१८ समय०-पूर्वो० VIII-८०
५१९ राज०-पूर्वो० VIII-६७६, नर्म०-अध्याय I-१२४
५२० सचाऊ-पूर्वो० II पृष्ठ १३५
५२१ राज०-पूर्वो० VIII-१४३, समय II २६, देशो०-III ३२
५२२ नर्म०-पूर्वो० अ I १२७, देशो०-पूर्वो-II ८,९,१५
५२३ समय०-पूर्वो० ९०-९१ राज०-स्टेइन भाग II पृष्ठ ३९५

है।[५२४] क्षेमेन्द्र ने **अदरक** को महगी वस्तु बताया है जो **शहद** के साथ मिलाकर औषधि के रूप मे प्रयुक्त होता था।[५२५] कल्हण ने एक ऐसे विदेशी का उल्लेख किया है जो पान के साथ नागरखण्ड तथा अन्य अवयव बेचता था—यहाँ **नागरखण्ड** का अभिप्राय अस्पष्ट है किन्तु स्टेइन महोदय ने इसका तादात्म्य **अदरक** या सूखे अदरक से लगाया है जो कश्मीर मे अन्य मसालो के साथ आज भी आयात किया जाता है।[५२६] **मिर्च** व **हल्दी** मसालो के रूप मे प्रयुक्त होते थे।[५२७]

राजा हर्ष के महल मे भागते हुए कुछ मूर्ख डामरो न नौकर-चाकरो ने कर्पूर को **शर्करा** (मिसरी की डली) समझकर मुँह मे रख लिया, किन्तु जलन होने पर फेक दिया।[५२८] क्षेमेन्द्र ने भी लिखा है कि चीनी मिठास के रूप मे प्रयुक्त होती थी। नीलमतपुराण[५२९] मे गुड तथा शर्करा (सफेद चीनी) का उल्लेख हुआ है। शहद भी प्रिय तत्त्व थी जो भोजन तथा औषधि मे प्रयुक्त होती थी।[५३०]

क्षेमेन्द्र ने भोजन पकाने के लिये **तेल** के प्रयोग की बात को स्वीकार किया है किन्तु यह तेल किस चीज का होता था, यह निश्चित नही है सभवत यह सरसो का तेल रहा होगा क्योकि राजा प्रवरसेन के मुकुट की तारिकाओ की तुलना सरसो के दानो से की गयी है।[५३१] प्राचीन भारत मे तैलीय श्रेणियाँ इतनी धनवान होती थी कि वे मदिरो मे दीपक जलाने हेतु मुफ्त मे तेल दिया करती थी। **तिल के तेल** के भी संकेत मिलते है।[५३२]

कई भारतीय तथा विदेशी यात्रियों ने सतरा, अगूर, सेब, खजूर, केला, नीबू तथा अनार के पेडो का उल्लेख किया है।[५३३] रानी दिद्दा ने अपने उत्तराधिकारी के चयन के लिये अपने भाई के सभी शैशवावस्था वाले पुत्रो को एकत्र करके उनके सामने **पालेवत** का ढेर रख दिया, स्टेइन महोदय ने

---

५२४ राज०-पूर्वो० VII-१२२१
५२५ नर्म०-पूर्वो० अ I १२३ राज० VIII-१४१
५२६ राज०-स्टेइन भाग एक VII-१९४ वही VIII-१९४
५२७ वही VIII २१५० नर्म० अ० I V-१२३
५२८ वही VII-१५७४
५२९ नील०-पूर्वो०-४९४-७०८
५३० वही ५०३, ६९१ नर्म०-अ० I १२३, II ८०, राज०-VI-१४० VIII १४०-१४१
५३१ समय०-पूर्वो० VIII-७९-८० राज०-III ३३८
५३२ राज०—VI २७२
५३३ राज०-पूर्वो० I-४२, IV-१९२, VII ४९८, इलियट-पूर्वो०—I पृष्ठ ३८-३९, ६७

पालेवत का तादात्म्य **सेव** से लगाया है।[५३४] कहानियो के माध्यम से कल्हण महोदय ने कश्मीर मे थोड़े समय के लिये पैदा होने वाले कदित्थ नामक फल का उल्लेख किया है जिसका अभिप्राय रामतेज शास्त्री जी ने कैथा लगाया है जबकि स्टेइन महोदय ने इसे चेरी (शाह दाना) कहा है।[५३५] कश्मीर घाटी का सबसे प्रिय फल—**अंगूर** था एव अब भी है। जिसका उल्लेख विभिन्न लेखको ने किया है यह वृक्ष पर भली भॉति पक जाने पर विशेष मधुर हो जाता था।[५३६] अगूर तथा **ईख** का रस एक पेय पदार्थ के रूप मे प्रयुक्त होता था।[५३७] लोकप्रकाश[५३८] मे **अखरोट** (अक्षोट फलम्) का जिक्र है जबकि यहॉ स्वर्ग मे भी दुर्लभ पदार्थ **द्राक्षासव** साधारण वस्तु माने जाते थे।[५३९]

दूध भोजन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा था जिससे घृत,[५४०] **मक्खन** (सरपिस),[५४१] क्षीर (क्षीरिनी),[५४२] दही (दधि)[५४३] भोज्य पदार्थ बनाये जाते थे। राजा लोग बछ्डो वाली गाये ब्राह्मणो को दान मे देते थे।[५४४]

अलबेरूनी के कथन से स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज मे केवल ब्राह्मणो को छोडकर अन्य वर्णो के लोग मास खाते थे। ब्राह्मणो द्वारा मास न खाने की व्यवस्था भारतीय समाज मे बहुत पहले से है।[५४५] परन्तु कृष्णा मोहन[५४६] के अनुसार प्राचीन काल से ही मास कश्मीर के ब्राह्मणो का सामान्य भोजन था। किन्तु एक अन्य स्थल पर अलबेरूनी ने लिखा है कि ब्राह्मणो को गैंडे का मास खाने का विशेषाधिकार है।[५४७] कुछ मध्यकालीन समाजशास्त्रियो ने देवताओ को चढाये जाने वाले मांस अथवा श्राद्ध के समय ब्राह्मणो द्वारा मास खाने का उल्लेख किया है।

५३४ राज० पूर्वो०—VI ३५६, स्टेइन-भाग I VI-३५६
५३५ वही IV-२१९, २२०, २२२, २३७, स्टेइन-भाग I IV-२१९ लोक०पूर्वो०-पृष्ठ ५३
५३६ वही I-४२, IV-१९२, VII-४९८, VIII-१८६६, २३८६, वही, विक्रम XVIII ७२, नर्म० I-१२४
५३७ वही II ६०, IV-५०१ VII १२२०, VIII-१८६६-६७, लोक०-पृष्ठ १०
५३८ लोक०-पूर्वो० पृष्ठ ५३ नर्म०-I-१२४
५३९ राज०—I ४२
५४० वही V-७८ VI-१४३, VII-३०६, VIII-१३७, १४०, नर्म०-I १२३, १२७, III ५, समय०-II-२६, २९ देशो०-III ३२, VI-३० नील०-४७८, ७८७
५४१ वही VII-१४३, VIII-१४०
५४२ समय०-II २६ देशो०-VI ३०, नीलमत V-४९०
५४३ नर्म० II-८०, III ८, नीलमत ७५४, ७९०
५४४ राज० VII-९५५, १४१४, VIII-७६, २४०५
५४५ मनु०-पूर्वो० ५-२६, सचाऊ-पूर्वो० भाग दो पृष्ठ १५१
५४६ अर्ली मेडिवल-पूर्वो० पृष्ठ २५१
५४७ सचाऊ-पूर्वो० भाग एक पृष्ठ २०४

क्षत्रिय जो योद्धा थे तथा शिकार जिनका शौक था मासाहारी होते थे।[५४८] वैश्य मासाहारी होते थे किन्तु पश्चिमी भारत मे जैन धर्म के प्रभाव के कारण वे शाकाहारी बन गये। चाण्डाल तथा अन्य वर्ण बाह्य जातियॉ जो शहरो के बाहर रहती थी—मास खाने से परहेज नही करती थी।[५४९] कश्मीर मे बकरे (मेष), बकरियॉ (चाग) तथा पक्षियो का माख खाने का उल्लेख है।[५५०] इसके अतिरिक्त मुर्गे, भेड व सुअर के मास खाने का भी जिक्र है।[५५१] राजा हर्ष जीवनपर्यन्त ग्राम्य सूकर (पालतू सुअर) का मास खाता था। समाज के उच्च वर्ग द्वारा भुना हुआ मास खाया जाता था।[५५२] मछली कश्मीरी लोगो के मुख्य भोजन मे थी। भूनी हुई मछली तथा मछली का रस (मत्स्यापूप, मत्स्यायूष, मत्स्यसूप) स्वास्थ्यवर्धक पेय माना जाता था।[५५३] इस्लामाबाद (अनन्तनाग) तथा बारामूला (वराहमूला) के बीच झेलम (वितस्ता) नदी मे विभिन्न प्रकार की मछलियॉ प्राप्त होती थी।[५५४]

कश्मीरियों द्वारा सभी प्रकार की गायो के मास का खाया जाना निषिद्ध था। कल्हण ने गाय के मास को म्लेच्छो के देश मे खाये जाने का उल्लेख किया है।[५५५] अल्बेरूनी[५५६] ने—गाय, घोडा, खच्चर, गधा, ऊँट, हाथी, पालतू कुक्कुट, कौआ, तोता, बुलबुल, अण्डा—का खाना निषिद्ध बताया है किन्तु सोमदेव[५५७] ने आपत्ति के समय निषिद्ध पशुओ के खाने की छूट दी है। कल्हण ने भी लवन्य जाति के डामरो द्वारा गोमास खाने का उल्लेख किया है।[५५८]

कल्हण ने **पान** को विशेष तत्त्व बताया है।[५५९] राजा अनन्त पान का बहुत ही शौकीन था तथा जयापीड को पान खाने की इतनी आदत थी कि कमला नर्तकी का नृत्य देखते समय वह बार-बार

५४८ 'इण्डियन एण्टीक्वायरी' XLV पृष्ठ ७७
५४९ **'मध्यकालीन भारतीय सस्कृति**—जी० पी० ओझा', इलाहाबाद १९२८ पृष्ठ ५८
५५० राज०-पूर्वो०—II-५०-५२, ७४, VIII-१८६६-६७, नर्म०-पूर्वो० अ० I, १२४, III-८
५५१ वही V-११९, VII ११४९ नर्म०-I १२४
५५२ वही VII-१५१०, VIII-१८६६-६७, २२५१
५५३ वही V-११९, VII-५२२, समय०-पूर्वो०-VI २५, ४९, ७१, देशो०-III ३२ स्टेइन-भाग एक VII-५२२
५५४ **'दी वैली ऑव कश्मीर'**—लॉरेन्स-लदन १८९५ (श्रीनगर १९६७) पृष्ठ १५७-१५८
५५५ राज०-पूर्वो० VII-११४९, १२३२
५५६ सचाऊ-पूर्वो०II-१५१
५५७ कथा०-पूर्वो० III-९-१०, **'लाइफ इन एन्शिएण्ट इडिया'**—जे० सी० जैन, बम्बई, १९४७, पृष्ठ १२७, २८१ एव
५५८ राज०-पूर्वो०-VII-१२३२
५५९ वही IV-४२७, VII-५४४, ७८७, १०६७, VIII-१७३६, १९४७, नर्म०-८६४, विक्रमाङ्क-X ३८

अपने हाथ को कन्धे के पास ले जाता था—जिससे नर्तकी ने उसके राजा या राजपुत्र होने का अनुमान लगाया था।[५६०] अलबेरूनी ने लिखा है कि गरम पान शरीर के ताप को भडकाता है, पान के पत्ते के ऊपर का चूना प्रत्येक गीली वस्तु को सुखा देता है और सुपाडी, दॉतो, मसूढो तथा पेट के सङ्कोचशील औषधि के रूप मे क्रिया करती है।[५६१] पान देवताओ की पूजन सामग्री मे सम्मिलित है।[५६२] जिसे कल्हण ने अभिजात्य वर्ग का वैभव माना है।[५६३] बी० एन० शर्मा ने पान के साथ कपूर, कस्तूरी इलायची व अन्य मसाले मिलाने की चर्चा की है।[५६४]

मध्यकालीन कश्मीर मे मदिरापान (मद्यपान) सामान्य बात थी।[५६५] कल्हण तथा क्षेमेन्द्र अत्यधिक मद्यपान की निन्दा की है। राजा ललितादित्य ने एक बार इतनी ज्यादा शराब पी थी कि उसके प्रवरपुर नगर को जला देने की आज्ञा अपने मत्रियो को दे डाली।[५६६] राजा क्षेमगुप्त भी अत्यधिक मद्यपान करता था।[५६७] लक्ष्मीधर[५६८] ने राजा व वैश्य को मदिरापान की अनुमति प्रदान की है जबकि अल्बेरूनी[५६९] ने केवल शूद्रो को शराब पीने की छूद दी है। कथासरित्सागर[५७०] मे व्यापारियो द्वारा मदिरापान का उल्लेख है। कल्हण[५७१] ने लिखा है कि 'ठडी व फूलो से सुगन्धित मदिरा स्वादिष्ट पेय थी। क्षेमेन्द्र[५७२] ने 'तकसकयत्र' नमक त्योहार के दिन मदिरापान तथा विक्रय का निर्देश दिया है। सैनिको, डामरो, वेश्याओ, कुटनी तथा सेवको द्वारा स्वतन्त्र रूप से मदिरापान का उल्लेख हुआ है।[५७३] ह्वेनसाग के अनुसार, "बौद्ध भिक्षु तथा ब्राह्मण केवल अगूर तथा ईख का शर्बत पान करते है।"[५७४]

---

५६० राज० IV-४२५-४२७
५६१ सचाऊ-पूर्वो०—भाग II पृष्ठ १५२
५६२ एपी० इण्डिका-XI पृष्ठ ५७
५६३ राज०-पूर्वो०—IV-४२७, V-३६५, VII-५४४, ७८७, १०६७
५६४ सोशल०-पूर्वो० पृष्ठ १०१
५६५ राज०-पूर्वो० V-३५८, VIII-१८६६
५६६ वही IV-३१०-३११
५६७ वही VI-१५०
५६८ कृत्यकल्पतरु-नियतकालकाण्ड पृष्ठ ३३१
५६९ सचाऊ—II पृष्ठ १५१-१५२
५७० कथा०-५४, १७०
५७१ राज०-पूर्वो० VIII १८६६-६७
५७२ समय-पूर्वा० २-८८
५७३ नर्म०-पूर्वो० I-१३१, १३६, १३९, II-१०७
५७४ वाटर्स-I पृष्ठ १७८

कल्हण ने ग्रीष्म काल मे ठण्डा पेय पीने का उल्लेख किया है।[५७५] बिल्हण ने पुरुष व स्त्री द्वारा साथ-साथ मदिरापान करने का उल्लेख किया है।[५७६] शाक्त धर्म तथा तात्रिक लोग पचमकर मे आने वाली मदिरा का पान करते थे।[५७७]

पहनावा

वस्त्र—कश्मीरी पुरुष अधोवस्त्र (अधराशुक),[५७८] उत्तरीय (अगरक्षक)[५७९] तथा पगडी (शिर शात)[५८०] धारण करते थे। स्त्री व पुरुष दोनो का सामान्य पहनावा लबादा (प्रावार) था।[५८१] पहाडी तथा अधिक ठण्डक वाले क्षेत्रो के लोग ठण्डक से बचने के लिये ऊनी वस्त्र के बने लबादा तथा कम्बल (कुथा)[५८२] का प्रयोग करते थे। परन्तु ये धनी वर्ग के पहनावे माने जाते थे जबकि सामान्य लोक काले हिरन का चमडा (कृष्णजिण)[५८३] तथा घटिया ऊनी लबादा (स्थूल कम्बल)—जो धनी लोगो द्वारा दान मे दिये जाते थे—का प्रयोग करते थे।[५८४] राजा ललितादित्य कुलटाओ के चरण मुद्राओ से चिन्हित दुशाले अपने मत्रियो को दिया करता था। भागड़ा (टाट) एक प्रकार का भाग के सूत से निर्मित वस्त्र था जिसे कायस्थो को पहनने के लिये राजा उच्चल ने बाध्य किया था।[५८५] गॉव व नगरो से होकर गुजरने वाले मार्ग पर लोग पुआल से अपना शरीर ढक्कर चला करते थे। महामत्री चित्ररथ आदि घास को शौकीनी वस्त्रो के समान धारण करने को विवश हुए थे।[५८६] कल्हण ने राजाओ द्वारा

---

५७५ राज०-पूर्वो० III ३६२, VIII-१८६३
५७६ विक्रम०-पूर्वो० XI ४४-६८
५७७ अर्ली मेडिवल-पूर्वो० पृष्ठ २५६ (मास, मदिरा, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन)
५७८ राज०-पूर्वो० IV-४३५, VII-१६६५, नर्म०-पूर्वो० अ० I-७२, देशो०-पूर्वो० II-१४
५७९ वही V-३४३, ८७६, VII-९२३
५८० वही VII-१६४०, VIII-९५, ९५१, ३२११
५८१ वही VIII-१३१०
५८२ वही IV-३४९-५२, VIII-१३१०,
५८३ ह्वेनसाग-अनु० बील-१ पृष्ठ १४८
५८४ '**अर्ली हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव कश्मीर**-एच० सी० रे० कलकत्ता, १९६५ पृष्ठ २०८ राज०-VII-९५५, VIII-२४०५
५८५ राज०-पूर्वो० VIII-९३
५८६ वही VIII-१४३५-३६

ब्राह्मणो को मृगचर्म दिये जाने का उल्लेख किया है।[५८७] भिक्षाचर के अनुयायी चमडे का कोपीन और उसी का पट्टा बाधते थे।[५८८] जबकि सैनिको द्वारा माथे पर वीरपट्ट तथा शरीर मे कवच पहनने का उल्लेख है।[५८९]अभिजात्यवर्ग के लोग स्वय को महगे सिर के पहनावे से सजाते थे।[५९०] सामान्यजन विभिन्न प्रकार के कपडो से बनी हुई पगडी धारण करते थे। उपलब्ध साहित्य से विदित होता है कि टोपी-टिप्पिका या टुप्पिका लोगो के एक निश्चित वर्ग द्वारा सिर-मुकुट के रूप मे प्रयोग की जाती थी।[५९१] राजतरङ्गिणी मे भी पगडी मे जुडे हुए मुकुट पहनने का उल्लेख हुआ है।[५९२] क्षेमेन्द्र ने कश्मीर मे आवास करने वाले बगाली छात्रो का उल्लेख किया है जो छपे हुये (छीट दार) या कढाई किये हुये रेशमी कपडे तथा पगडी पहनते थे।[५९३]

कल्हण[५९४] लिखते है कि कश्मीरी महिलाये आधी आस्तीन का जैकेट या ब्लाउज पहनती थी तथा नीचे लम्बा पहनावा (सभवत साडी) जिसका किनारा जमीन को छूता था—पहनती थी। अलबेरूनी के अनुसार उनके शिदार (ऐसा वस्त्र जिससे सिर, वक्ष और गर्दन का उपरिभाग ढका रहता था) पायजामो की तरह पीछे बटन से बधा रहता था। उन्होने ही स्त्रियो के पहनावे मे कुर्तको— बाहो वाली छोटी कमीज का उल्लेख किया है।[५९५] बी० एन० शर्मा[५९६] ने स्त्रियो के तीन प्रसिद्ध पहनावे बताये है।

१. उत्तरीय[५९७]—शरीर के ऊपरी भाग को ढकने के लिये प्रयुक्त होने वाले दुपत्ते या ओढनी की तरह का वस्त्र।

---

५८७ राज० VII-९५५, VIII-२४०५, VI-८२
५८८ वही VIII-१७३५
५८९ वही V-३३३, VI-३४५, VII-१५५८, VIII-९५१, १७७४
५९० राज०-पूर्वो० V-२९८, ३५६ कला०-पूर्वो० I-६३ नर्म०-पूर्वो० I-३२
५९१ समय-पूर्वो० VIII-५४ नर्म० I-४७, ११०
५९२ राज०-VII-८७६
५९३ नर्म० II-४४, देशो०—VI-९-१०, २०
५९४ राज० VII-९३०
५९५ सचाऊ-I पृष्ठ १८०-१८१
५९६ सोशल-पूर्वो० पृष्ठ ८३
५९७ राज०—I-२४८

२. कञ्चुकी[५९८]—स्तनों को ढकने के लिये प्रयुक्त होने वाली चोली, देशीनाममाला[५९९] में स्तनों को ढकने के लिये दो प्रकार के वस्त्रो—'स्तनयोरूपरि वस्त्रग्रथि: तथा कञ्चुक: का उल्लेख है।

३. चन्दातक—लम्बे कञ्चुक के नीचे लहगा या आन्तरिक वस्त्र के रूप में पहना जाने वाला वस्त्र, यदि कञ्चुक केवल स्तनो को ढकने के लिये होता था तब अधोवस्त्र के रूप में साड़ी का प्रयोग किया जाता था, जो कमर के चारों ओर होकर कन्धे से ऊपर सिर तक ओढनी (उत्तरीय) के रूप मे पहनी जाती थी। कल्हण ने लिखा है कि राजा अन्धयुधिष्ठिर के साथ भागती हुई रानियॉ माथे से सरकी हुई साड़ी की छोर से दोनो स्तन ढककर पीछे मुड़कर अपने देश को निहार रही थी।[६००] राजा हर्ष की रानियों के लंहगें।[६०१] (अधराम्बर) के छोर धरती को स्पर्श करते थे। राज्याभिषेक के समय महारानी के 'पट्टबन्ध'[६०२] बॉधा जाता था—इसीलिये उसे पटरानी कहा जाता था।

राजा हर्ष के राज्यकाल में लुटेरो ने बेलबूटे वाले वस्त्रो को जलाकर उनकी राख स्वर्ण प्राप्ति की इच्छावश एकत्र की थी तथा बिना बिधी मोतियो को मूर्ख स्त्रियो ने चावल समझकर पीस डाला।[६०३] राजा जयसिंह ने चित्ररथ के खजाने से सोने के तार का काम किया हुआ वस्त्र मगवाया था। दामोदर गुप्त ने[६०४] एक अधिकारी के पुत्र को सोने के किनारी वाला केसर से रंगा हुआ वस्त्र पहने उद्धृत किया है। क्षेमेन्द्र ने [६०५] रेशमी वस्त्रों के प्रयोग की बात लिखी है किन्तु ये वस्त्र कश्मीर के अन्दर बनते थे या बाहर से मंगवाये जाते थे, यह ज्ञात नही है। अलबेरूनी के अनुसार 'हिन्दू एक कमरबन्ध बॉधते थे। जिसे यज्ञोपवीत कहा जाता था जो बांये कन्धे से होकर कमर मे दांयी ओर जाता था।[६०६] अल्टेकर[६०७] ने भी लिखा है कि पवित्र धागा या यज्ञोपवीत पुरुषों द्वारा पहना जाता था।

---

५९८ राज० VII-९३०
५९९ **देशीनाममाला**-हेमचन्द्र अनु० एम० बनर्जी० कलकत्ता १९३१ I-९३
६०० राज०-पूर्वो० I-३७२
६०१ वही VII-९३०
६०२. वही VIII-३०६५
६०३ वही VII-१५७५, VIII-२३४६
६०४ कुट्टनीमतम्-पूर्वो० ६१-७०, ३४४ (श्लोक)
६०५ समय-पूर्वो० VI-१६
६०६ सचाऊ-पूर्वो० I पृष्ठ १८१
६०७ 'जर्नल ऑव दि बिहार ऐण्ड उडीसा रिसर्च सोसाइटी'; XX II पृष्ठ १३५ ए० एस० अल्टेकर

आभूषण—कश्मीर के स्त्री व पुरुष दोनो आभूषण धारण करते थे। क्षेमेन्द्र ने एक वणिकपुत्र को कर्णाभूषण (कर्णाभरणकाञ्चनम्) तथा स्वर्ण अगूठी—(हेमवालिकवालिका) पहने हुये उद्धृत किया है।[६०८] कल्हण के मतानुसार बाली (कुण्डल) कानो मे, हार (कण्ठहार) गले मे, बाजूबन्द तथा अगूठियॉ पुरुषो के आभूषण थे।[६०९] राजा चक्रवर्मा के सम्मुख सङ्गीत कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिये रग डोम्ब-हार, कङ्कण, केयूर, कटक (हारकङ्कणकेयूरपरिहार्य) पहनकर आया था। उसके कार्य्रक्रम से प्रसन्न होकर राजा ने उसे हार, केयूर, कुण्डल (हारकेयूरकुण्डलै) उपहार मे दिये। इससे स्पष्ट होता है कि डोम्ब जैसे वर्णबाह्य लोग भी राजा के सामने आभूषण धारण करते थे अर्थात् सामान्य लोगो मे भी आभूषण धारण करने की प्रवृत्ति थी।[६०९अ] राजा जयापीड अगूठियॉ तथा अपने नाम खुदे हुये बाजूबन्द पहने था, जो गौड देश मे शिकार के समय एक सिह के मुॅह मे चला गया था।[६१०] पुरुष वर्ग कङ्कण,[६१०अ] कटककिरीट,[६११] विजायठ (गढहरा),[६१२] कण्ठी (श्रखला),[६१३] कर्णबाली आदि आभूषण धारण करते थे।

स्त्रियॉ मुख्यत—हार (श्रृखला, सूत्रिका, मालिका),[६१४] कङ्कण,[६१५] केयूर,[६१६] परिहार्य,[६१७] बाली (वलयायुगलम्), ताडियुगम, ताडिदल, कर्णिका (कर्णकुण्डल),[६१८] कॉची (मेखला),[६१९] नूपुर[६२०] धारण करती थी। राजा हर्ष की रानियॉ वेणियो मे स्वर्ण केतकी[६२१] के पत्र, माथे पर आभूषण तथा

---

६०८ समय०-पूर्वो० II १०-११, VII-१३
६०९ राज०-पूर्वो०-III २४१, IV-३४९-५२, VII-८७६-७८ नर्म०-पूर्वो-३३४, ७६५, १२०४,
६०९अ राज० V-३५९,३८०
६१० वही IV-४४०, ४५८,
६१०अ वही IV-६९, V-३५९
६११ वही IV-६६४, V-३५९, VII-८८३
६१२ वही IV-६९
६१३ वही VII-८८३
६१४ वही V-२५७, ३५६-६९ नर्म०—I-१४४ समय०-II ५१, ७०, ७३, VIII-३४
६१५ वही V-३५९
६१६ बी०एन०शर्मा० पूर्वो० पृ० ९१-९२, कृष्णा मोहन-पूर्वो०पृ० २५८
६१७ राज० V ३५९
६१८ वही ३२६, IV-७२०, V-३५९, ३७३ समय०-II-७०, III-३७
६१९ समय-I-१४, III-३७, VI-६
६२० राज०-I-२०६-२०९
६२१ मानसोल्लास-पूर्वो०-V-११०४

वेणियो के अग्रभाग मे सुनहली जरी के गुच्छे लगाती थी।[६२२] कल्हण ने स्त्री-पुरुष द्वारा समान रूप से अगूठी पहनने का उल्लेख किया है।[६२३]कल्हण ने स्त्रियो द्वारा बाजूबद (पारिहार्य) पहनने का उल्लेख किया है।[६२४] सामान्यत. स्त्रियॉ चॉदी तथा मूगा के गहने पहनती थी किन्तु गरीब स्त्रियॉ मिट्टी के गहने भी प्रयोग करते हुये उद्धृत की गयी है।[६२५] बिल्हण के ग्रथ[६२६] मे कनकपत्र नामक स्वर्णपत्र को कान मे पहनने का उल्लेख हुआ है। १२वी शती के लेखक श्रीहर्ष ने सात, बारह, बत्तीस तथा सत्तर लडियो वाले हार का उल्लेख किया है।[६२७] जी० एच० ओझा[६२८] लिखते है कि भारतीयो ने नाक का आभूषण पहनना मुसलिम आक्रान्ताओ से सीखा था। असम से मिले दो स्त्री चित्रो मे प्रत्येक को छ से अधिक चूडियॉ पहने हुये प्रदर्शित किया गया है।[६२९]

उपानह

समसामयिक कश्मीरी साहित्य मे चमडे के जूते[६३०] तथा लकडी के खडाऊ[६३१] का उल्लेख हुआ है। क्षेमेन्द्र ने एक विशेष प्रकार के जूते—'मयूरोपानह' को सन्दर्भित किया है जो काफी प्रचलित था।[६३२] प्राचीनकाल मे जूते प्राय एक, दो या तीन तलो के होते थे। चमडा लाल, मजीठी, काला या अन्य विविध रगो से रगा रहता था। भिक्षु प्राय एक ही तल का जूता पहनते थे।[६३३] साची की मूर्तियों मे एक स्थान पर जूते भी देखने को मिलते है।[६३४]

---

६२२ राज०— I-२०८, VII-९२८-९३१
६२३. राज०—III-२४१, IV-३४९-५२, VII-८७६-८७८, ९२२
६२४ राज०-पूर्वो० V-३५९
६२५ समय०-पूर्वो०II-७० नर्म०-पूर्वो० I-७५
६२६ **"चौरपंचाशिका"**—बिल्हण अनु० एस० एन० तदपन्किर, ओरिएन्टल बुक एजेन्सी १९४६, पृष्ठ ७९
६२७ **"नैषधीयचरितम्"**—श्रीहर्ष अनु० शिवदत्त, बम्बई १९१९, VII-६६, ७६, XV-४४
६२८ मध्यकालीन-पूर्वो० पृ० ४०, **'दि यूज ऑव नोज आर्नामेन्ट इन इण्डिया'**—के० एन० चटर्जी—**'जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल'** २३ (१९२७) पृष्ठ २८७
६२९ 'नेशनल म्यूजियम', दिल्ली—५९, १३४
६३० राज०-पूर्वो० VIII-१३७
६३१ नर्म०-पूर्वो० I-११०
६३२ देशो०-पूर्वो०-VI
६३३ **'भारतीय वेशभूषा'**—मोतीचन्द्र ना० प्र० प०, स २००० वर्ष ४८ पृष्ठ ३५५
६३४ **'भारतीय विद्या'**—१ अ० १, १९३९ पृष्ठ २८-५३

श्रृंगार

राजतरङ्गिणी के प्रथम तरङ्ग मे लिखा गया है कि केसर (कुमकुम) और अगूर ऐसी चीजे है जो स्वर्ग मे भी दुर्लभ है किन्तु कश्मीर मे ये सुलभ है।[६३५] बिल्हण[६३६] ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है। कई विद्वानो ने इसके उपज का क्षेत्र पमपुर (प्राचीन पद्मपुर) को माना है।[६३७]

शरीर को सजाने व सुगन्धित बनाने के लिये पुरुष व स्त्री दोनो केसर (कुमकुम), कस्तूरी, चन्दन तथा कपूर से निर्मित विभिन्न प्रकार के उबटन प्रयोग करते थे।[६३८] केसर के उबटन (विलेपन) का उपयोग करना राजसी लोगो का विशेषाधिकार माना जाता था।[६३९] पुरुष लोग मस्तक पर केसर का तिलक लगाते थे।[६४०] जबकि स्त्रियॉ इस प्रकार के उबटन का प्रयोग शरीर मे लगाने के साथ-साथ विशेष रूप से वक्षस्थल मे करती थी।[६४१] महिलाये स्वय अथवा अपनी महिला मित्रो की मदद से अपने वक्षस्थल पर विभिन्न प्रकार की रेखाकन (आकृतियॉ) बनाती थी।[६४२] केसर का उपयोग कपडे को पीला रगने के लिये भी किया जाता था।[६४३]

स्त्रियॉ पैरो मे लाल रग का आलता लगाती थी।[६४४] यह परम्परा उत्तर भारत मे आज भी दिखायी पडती है।

सस्कृत साहित्य मे ऑखो के सुन्दर वर्णन प्राप्त होते है। ऑखो मे लगाने के लिये जडी-बूटियो से निर्मित अजन बनाया जाता था।[६४५] स्त्रियो द्वारा अपने होठो को तरल लाख से लाल किये जाने का उल्लख है।[६४६] पुरुष प्राय ताम्बूल का प्रयोग करके अपने होठो को लाल करते थे।[६४७]

---

६३५ राज०-पूर्वो० I-४२ नर्म०-श्लोक न० ४१७, ४९४, ५५०
६३६ विक्रम०-पूर्वो० XVIII-७२
६३७ वैली-पूर्वो०—पृष्ठ ३४३, विक्रम०-XVIII-७०-७२, राज०-स्टेइन भाग II पृष्ठ ४२८
६३८ राज०-स्टेइन-भाग I VI-१२० (टि०) समय० I-१४, VII-१०, राज०-VI-१२०, VIII-८३४ कुट्टनी०-V-६३
६३९ राज०-पूर्वो० VIII-१११९, १८९७, ३१६६
६४० वही III-३२६ IV-१३०, VII-९२७, VIII-८४५, २१५१, ३२११
६४१ विक्रम०-पूर्वो०—XV-१४, XVIII-१०-३१, नैषध-II-३१
६४२ नैषध-पूर्वो०—VI-२५, ६९
६४३ कुट्टनी०-पूर्वो०-V-६
६४४ राज०-पूर्वो०—III-४१५, नैषध-पूर्वो०—XV-४६
६४५ वही I-२०७, VII-९२९ समय०-पूर्वो० I-६, १३ II-५९
६४६ कुट्टनी०-पूर्वो० श्लोक ७, ११३
६४७ विक्रम०-पूर्वो० XV-६

स्त्रियॉ जो लम्बे बाल रखती थी उन्हे विविध प्रकार से सजाती थी। दामोदरगुप्त ने काले बालो की तुलना मधुमक्खियो के झुण्ड से की है।[६४८] कल्हण[६४९] ने लिखा है कि स्त्रियॉ अपने बालो मे सुगन्धित पुष्प बाधती थी। सिर के पीछे—गोल, कडा, ढीला, लपटा हुआ, लम्बा—जूडा बाधा जाता था।[६५०] माथे पर स्त्रियॉ बालो को इधर-उधर करके सिन्दूर लगाती थी जो उन्हे विधवाओ व कुमारियो से पृथक् करता था।[६५१] युद्धभूमि मे जाने से पूर्व नख, केश, दाढी, मूँछ साफ करवाकर वीरपट्ट बांधा जाता है।[६५२] कुछ लोग केश सवारते तथा उसमे पुष्प भी गूंथते थे।[६५३] भिक्षुक के पीठ पर केश लहरा रहे थे।[६५४] इनसे स्पष्ट होता है कि पुरुष वर्ग भी बाल रखता था तथा उन्हे सवारता था। दाढी रखने के उल्लेख प्राप्त होते है—जिसमे केसर का लेप लगाया जाता था।[६५५] स्त्रियॉ तरह-तरह के श्रृगार करके विविध हाव-भाव प्रदर्शित करती थी।[६५६]

कघा तथा दर्पण के उपयोग के सन्दर्भ मे बी० एन० शर्मा[६५७] ने लिखा है कि बहुत से शौचालय चित्रो मे महिलाओ को हाथ मे दर्पण लिये अपने बालो को श्रृगार करते प्रदर्शित किया गया है। सिन्दूर अथवा अञ्जन (काज़ल) लगाने के दृश्य हमे खुजराहो के कन्दरिया महादेव, वामन, विश्वनाथ, भरत चित्रगुप्त जैसे मदिरो मे दिखाई पड़ते है।

खेल एवं मनोरञ्जन

खेल एव मनोरञ्जन के साधनो के माध्यम से कश्मीर वासियो के स्वतत्र मस्तिष्क का वास्तविक प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। नीलमत पुराण का कथन सत्य प्रतीत होता है कि कश्मीर भूमि सदैव खेलने वाले और प्रसन्नचित लोगो का ऐसा जमघट रहा है जो प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच रहते हुये अपनी

---

६४८ कुट्टनी०-११०
६४९ राज०-पूर्वो०-V-२५७, VII २२९
६५० 'जर्नल ऑव यू० पी० हिस्ट्रोरिकल सोसाइटी-IX, I पृष्ठ २०-२२
६५१ एपीग्राफिया इण्डिका I पृ० १२९
६५२ राज०-पूर्वो० VII-६६५
६५३ वही VII-९२३, VIII-३३०, ८४४
६५४ वही VIII-८४४, ७३५
६५५ वही V-२०७, VI-१२०
६५६ वही II-१२१
६५७ सोशल० पूर्वो० पृष्ठ ८८

खुशी की अभिव्यक्ति, अपने दु खो को कम करने, देवताओ को प्रसन्न करने तथा दानवो को मनाने के लिये खेल, नृत्य व गानो के माध्यम से निरन्तर उत्सव मनाते रहते थे।[६५८]

खेल

शतरज तथा **पासा** भारत के लोकप्रिय खेल थे। अलबेरूनी के अनुसार[६५९] शतरज अरब देशो का लोकप्रिय खेल है किन्तु यह भारत मे बहुत पहले से प्रचलित रहा है। मध्यकालीन साहित्य मे इसका विशद विवेचन किया गया है। कल्हण ने इसके लिये 'चतुरग' शब्द का प्रयोग किया है।[६६०] पासा अथवा 'अक्ष' स्त्री व पुरुषो मे समान रूप से लोकप्रिय था।[६६१]

जुआ (द्यूतक्रीड़ा) प्राचीनकाल से ही मनोरञ्जन का साधन माना जाता था—इसका उल्लेख ऋग्वेद मे भी हुआ है। कथासरित्सागर[६६२] मे द्यूतक्रीडा की कला व अभ्यास का विशिष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। १२वी शती के अर्द्ध ऐतिहासिक ग्रथ मोहराज-पराजय[६६३] मे ५ प्रकार की द्यूतक्रीडाये बतायी गयी है।

१. **अन्धय**—राजाओ द्वारा चौपडो पर खेली जाने वाली प्रतिदिन की द्यूतक्रीडा

२. **नलय**—जो पूँजीपतियो तथा धनी व्यापारियो द्वारा सोने से खेली जाती थी

३. **चतुरंग**—शतरज की तरह खेली जाने वाली द्यूतक्रीडा

४. **अक्ष**—पासा

५. **वरद**—सामान्य जनो द्वारा कौडी से खेली जाने वाली द्यूतक्रीडा

काणे महोदय ने द्यूतक्रीडा गृहो को राज्य के राजस्व का प्रमुख स्रोत माना है।[६६४]

---

६५८ नीलमत-पूर्वो० श्लोक २१, २२

६५९ सचाऊ-पूर्वो०—भाग I पृष्ठ १९५

६६० राज०-पूर्वो० VIII २९६९, कथा० (स० टावनी) भाग II पृष्ठ २७५

६६१ वही VII १००३, VIII-१७४०,

६६२ कथा०-पूर्वो० XCII

६६३ **'मोहराजपराजय'**—यश पाल गा० ओ० सि० अक IX

६६४ धर्मशास्त्र०—भाग III पृष्ठ ५३८

डोला (झूला) सभी लोगो मे लोकप्रिय खेल था। बिल्हण ने नवयौवना विवाहित युवतियो द्वारा झूला झूलने का उल्लेख किया है।[६६५] पुरुष लोग भी इनमे हिस्सा लेते थे।[६६६]

जलक्रीड़ा सम्बन्धी विभिन्न खेलो का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[६६७] कल्हण ने **दौड़-धूप के खेल** (चङ्क्रमणे) का उल्लेख किया है।[६६८] उन्होने एक अन्य स्थल पर लिखा है कि एक समय हर्ष शत्रु सेना पर आक्रमण की तैयारी कर रहा था—उसी समय अचानक कोलाहल सुनकर सेना ऐसी भाग खडी हुई जैसे **तमाशाई** लोग घनघोर वर्षा के कारण तमाशा (रङ्गप्रेक्षिलोक) छोडकर भाग जाते है।[६६९]

द्वन्द्व युद्ध प्राचीनकाल से मनोरञ्जन का साधन माना जाता है।[६७०] मानसोल्लास मे इसके लिये अंकविनोद शब्द प्रयुक्त हुआ है। कल्हण ने द्वन्द्व-युद्ध की एक पाशविक घटना का उल्लेख किया है—१२वी शती के एक कश्मीरी राजा ने द्वन्द्व-युद्ध मे अपनी पसद के अनेक योद्धाओ को मरवा डाला[६७१] एक अन्य स्थल पर लिखा है कि राजा उच्चल विभिन्न अवसरो पर योद्धाओ को एकत्र करके दगल कराता और उसकी सारी आमदनी स्वय ले लिया करता था।[६७२]

विनोद गोष्ठी—शैक्षिक जीवन की ऐसी विशेषता थी जिसमे कवि व कलाकार लोग साहित्यिक प्रतियोगिताओ मे अपनी रचनाओ को प्रस्तुत करने तथा विभिन्न प्रकार की चर्चाये करने के लिये सम्मिलित होते थे।[६७३]

पशु-पक्षियों को पालना भी मनोरञ्जन का एक साधन माना जाता था। नैषधचरितम मे गौरैया तथा अन्य पक्षियो के पालने का उल्लेख है।[६७४] कल्हण ने लिखा है कि धम्मट राजधानी मे अपने दो-तीन सेवको के साथ जिस समय बाज (श्येन) पक्षी को धूप खिला रहा था, उसी समय उसकी

---

६६५ विक्रम०-पूर्वो० VII-१५-१९ श्रीकण्ठ०-पूर्वो० III ५९३सर्ग VII सूक्ति-पूर्वो० पृ० २४१

६६६ 'दशकुमारचरित'—दण्डिन् अनु० एम० आर० काले, बम्बई १९१७ पृष्ठ १०३

६६७ श्रीकण्ठ०-पूर्वो० सर्ग-IX, विक्रम०-पूर्वो० XII-५०-७८

६६८ राज०-पूर्वो० VI-३०८

६६९ वही VII-१६०६

६७० वही VIII १६९-१७९, मानस०-पूर्वो० भाग II गा० ओ० सि० पृष्ठ २२५

६७१ वही VIII १७०-१७१

६७२ वही VIII-१७०

६७३ वही VIII-८३४, विक्रम०-पूर्वो० XVIII-८७, १०३

६७४ नैषध-पूर्वो० XVI-६३

हत्या की गयी थी। इसी प्रकार बाजो को पालने वाले विजयपाल की सेवाओ से प्रसन्न होकर राजा कलश ने उसे नगरपाल (कोतवाल) का पद दे दिया था।[६७५] खजुराहो मदिरो के चित्रो के आधार पर बी० एन० शर्मा[६७६] ने शुक, सारिका तथा बन्दर के पालने का उल्लेख किया है।

घुड़सवारी भी मनोरञ्जन का साधन माना जाता था।[६७७] कल्हण ने एक स्थल पर लिखा है कि राजा उच्चल ने घूसखोर कायस्थो तथा उनकी स्त्रियो को चारणो जैसे कपडे पहनाकर भरी सडक पर डोमो की तरह दौडाया—उनकी दाढी तथा मूछो पर कपडे लपेट दिये गये, बहुत ही ऊँची टोपी पहना दी गयी और हाथ मे बल्लम थमा दिया गया, तब कौन ऐसा व्यक्ति था जो उन्हे देखकर हॅस न पडता।[६७८] इससे ध्वनित होता है कि उस समय कश्मीर मे **जोकरैती** भी मनोरञ्जन का एक साधन था।

'मृगया व्यसन' या शिकार को प्राचीनकाल से भारत मे मनोरञ्जन का साधन माना जाता रहा है। सोमदेव ने लिखा है कि[६७९] जिस राजा को बहुत दिनो तक युद्ध का सामना न करना पडे उसे जगल मे जाकर शिकार करना चाहिए क्योकि इससे विभिन्न प्रकार के शस्त्रो के प्रयोग का अवसर प्राप्त होता है। यद्यपि यह राजकुमारो के लिये उचित व्यायाम माना गया है किन्तु इसकी अधिकता की निन्दा की गई है।[६८०] कल्हण ने राजा क्षेमगुप्त के शिकारियो के साथ जगलो मे घूमने का उल्लेख किया है। जबकि बिल्हण ने अपने ग्रथ मे विभिन्न जीवो सुअर[६८१], हरिण[६८२] मृग एव मोर[६८३] शेर[६८४] के शिकार का उल्लेख किया है। अलबेरूनी ने[६८५] मृग तथा पक्षी के शिकार का विस्तृत

---

६७५ राज०-पूर्वो०-VII-५८०, १०४६
६७६ सोशल०-पूर्वो०-पृष्ठ १६९
६७७ राज०-पूर्वो० VIII-८३४
६७८ वही VIII-९४-९५
६७९ कथा०-पूर्वो० VI, I, पृष्ठ १२१, राज०पूर्वा० V-1८१, VI-१५८
६८० वही I पृष्ठ १२४, विक्रम०-पूर्वो०XVI-१७
६८१ विक्रम०-पूर्वो० XVI-३५
६८२ वही XVI-४०-४१
६८३ वही XVI-४२
६८४ वही XVI-४४
६८५ सचाऊ-भाग I पृष्ठ १९५

वर्णन दिया है। अलबेरूनी ने लिखा हैं कि जानवर जब विश्राम कर रहे होते है तब शिकारी उसके चारो तरफ एक घेरा बनाकर घूमने लगते है तथा साथ ही एक स्वर से तेजी से गाने लगते है जब वे जन्तु उस स्वर के अभ्यासी हो जाते है तब घेरे को अधिक सङ्कीर्ण करके जन्तु के इतने निकट आ जाते है कि उन पर वार किया जा सके। कल्हण[६८५अ] ने भी लिखा है कि राजा चक्रवर्मा गायन को सुनने मे इतना तन्मय हो गया कि उसने पान खाना तक छोड दिया जैसे कोई मृग (रोमन्थ) जुगाली त्यागकर बहेलिये के सङ्गीत को सुनने मे तन्मय हो। इससे विदित होता है कि अलबेरूनी द्वारा शिकार की प्रस्तुत विधि तत्कालीन समाज मे प्रचलित थी। बी० एन० एस० यादव जी ने मानसोल्लास मे उल्लिखित इकतीस-शिकार के प्रकारो मे से इक्कीस का वर्णन किया है।[६८६]

सङ्गीत मनोरञ्जन का एक महत्त्वपूर्ण साधन था जो समाज मे कई रूपो मे प्रचलित था—इनका उल्लेख क्रमश किया गया है—

गायन

गायन धार्मिक महत्त्व के साथ-साथ मनोरञ्जन के साधन के रूप मे प्राचीनकाल से ही प्रचलित रहा है। समराङ्गणसूत्रधार[६८७] मे सङ्गीतशाला नाटकशाला, मल्लयुद्धशाला (अखाड़ा), नृत्यशाला तथा चित्रशाला का उल्लेख हुआ है। कल्हण महोदय ने लिखा है कि राजा कलश ने पहली बार कश्मीर मे उपाग गीत को विकसित किया था।[६८८] हर्ष राजसभा मे गायन द्वारा राजा को प्रसन्न करके जो पारितोषिक प्राप्त करते थे, उससे विद्वानों का भरण-पोषण किया करते थे।[६८९] क्षेमेन्द्र ने भी[६९०] एक गायक द्वारा देवजागरण के समय विदाई गीत गाते उद्धृत किया है। इस प्रकार के गायन-कार्यक्रम राजदरबार, रङ्गशाला के अतिरिक्त खुले मैदान मे आयोजित करने के साक्ष्य प्राप्त होते है। कश्मीरनरेश चक्रवर्मा के राजकाल मे डोमजाति के रंग नामक विदेशी गायक का सङ्गीत कार्यक्रम बाहरी मैदान मे

६८५अ राज० पूर्वो० V ३६५
६८६ सोसाइटी-पूर्वो०-पृष्ठ ३३३
६८७ **समराङ्गणसूत्रधार**—वास्तुशास्त्र-भाग I अनु० डी० एन० शुक्ला, दिल्ली १९६५, १५, १८
६८८ राज०-पूर्वो० VII-६०६, ११४०
६८९ वही VII-६१३-६१६
६९० देशो०-पूर्वो० V-३०

आयोजित किया गया था जिसे सुनने के लिये मत्री, सामत, राजरानियॉ तथा अन्त पुर की ललनाये आयी थी। उस रग डोम के साथ आयी हुई दो बालिकाये राजा चक्रवर्मा के गुणगान से परिपूर्ण रागविशेष का गायन करती हुई पचम स्वर मे अलाप ले रही थी तथा वशी का स्वर उसमे सगत कर रहा था। उनके हाव-भाव प्रदर्शन, शिरश्चालन, भ्रूविलास तथा कटाक्ष विक्षेप आदि के गायन की ध्वनि से राजा इतना तन्मय हो गया कि उसने पान खाना छोड दिया और सभा मे जयजीव आदि आशीर्वा-दात्मक शब्दावलियॉ मुखरित होने लगी।[६९१] राजा जलौक ने ज्येष्ठेश की पूजा के समय नृत्य-गीत कुशल अन्त पुर की सौ स्त्रियो को नियुक्त किया था।[६९२] गौडदेश मे बिल्कुल अपरिचित होते हुए राजा जयापीड को लोगो ने सङ्गीत कार्यक्रम में खिसक कर जगह दे दी थी—इससे सिद्ध होता है कि गायन मनोरञ्जन एव आनन्दप्राप्ति का एक प्रमुख साधन था जिसमे सामान्य जन मुक्तरूप से भाग लेते थे।[६९३] चम्पक का छोटा भाई कनक सङ्गीत विद्या मे राजा हर्षदेव का शिष्य बन गया उसे हर्ष ने एक लाख स्वर्ण दीनार दिये।[६९४]

वादन—गायन के साथ वादन सङ्गीत का एक अभिन्न अग है। गायन यदि शरीर है तो वादन उस शरीर की आत्मा जिसे पृथक् करने पर वह नि.सार हो जाती है। राजा सन्धिमतिक के राज्यारोहण के समय पुरोहितो ने वाद्य ध्वनि के साथ उसका अभिषेक किया। उस राजा को वीणा-मृदग से द्वेष था, किन्तु शिवलिङ्ग पर गिरती जलधारा उसे प्रिय लगती थी।[६९५] इसी तरह राजा जयसिह को सोते समय शिवजी के अभिषेक के समय की जल ध्वनि विशेष प्रिय थी, वह वेणु-वीणा वाद्यो को हटाकर विद्वानो के साथ वाद-विवाद पसन्द करता था।[६९६] इससे स्पष्ट होता है कि शयन के समय सङ्गीत सुना जाता था।

ब्राह्मण लोग देवप्रतिमाओ के सम्मुख नगाडा (काहला), कासे की थाली तथा ताली बजाकर

---

६९१ राज०-पूर्वो० V-३५४-३६३, ४१८
६९२ वही I-१५१
६९३ वही VII-६०६, ११४०, VIII-२३९८-९९
६९४ वही VII-१११७-१११८
६९५ वही II-११७, १२६, भरत-नाट्यशास्त्र—XXIII १२, २१
६९६ वही V-३७४, VIII ८३४, १२९४, VII १३०३

इकट्ठे होते थे।[६९७] हर्ष ने भीमनायक के उत्कृष्ट पटहवाद्य से प्रसन्न होकर उसे पारितोषिक मे एक हाथी व हथिनी दिया।[६९८] युद्ध के समय तुहडी (तूर्यघोष) बजायी जाती थी।[६९९] बौद्ध-बिहारो मे भी वाद्य बजाये जाते थे तथा हुडुक विशेष प्रकार का बाद्य था जो सर्वत्र नही प्राप्त होता था।[७००]

नृत्य—राजा सुस्सल नित्य मनोरञ्जन हेतु नृत्य-गीत का आयोजन करवाया करता था।[७०१] बिल्हण ने कश्मीरी स्त्रियो के उत्तम नृत्य कौशल की प्रशसा की है।[७०२] कल्हण लिखते है कि भरत द्वारा निर्धारित नियमो का पालन पुण्ड्रवर्धन के कार्तिकेय मन्दिर के नृत्य व सङ्गीत आयोजनो मे किया जाता था। राजा जयापीड भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र का अध्ययन करने के कारण नृत्य-गीत आदि कलाओ का मर्मज्ञ था।[७०३] राजा ललितादित्य को जगल मे दो नृत्यरत बालिकाओ ने बताया कि यहॉ की आय पर जीवन निर्वाह करने वाले उनके कुल मे यह प्रथा परम्परा से चली आ रही है—ऐसा क्यो होता है यह किसी को नही मालूम[७०४] इस स्पष्ट होता है कि नृत्य आजीविका का साधन माना जाता था। राजा हर्ष रात्रि के समय नर्तकियो को शिक्षा देते समय स्वय अभिनय करता था।[७०५] नृत्य के प्रमुख अवयव हाव-भाव प्रदर्शन, शिरश्चालन, भ्रू-विलास, तथा कटाक्ष विक्षेप माने गये है।[७०६] मदिरो मे नृत्य कार्य करने के लिए विशेष रूप से देवदासियॉ नियुक्त की जाती थी।[७०७] राजा ललितादित्य को जगल मे एक विशिष्ट स्थान पर नृत्यरत दो नर्तकियो ने बताया था कि नृत्य करना प्राचीनकाल से उनके परिवार की परम्परा रही है।[७०८] बिल्हण ने कश्मीरी स्त्रियो की नृत्य मे उच्च श्रेणी की कुशलता की प्रशसा की है।[७०९]

---

६९७ राज०-पूर्वो० VIII-८९१-९०२, १५३८
६९८ वही VII-१११६, हॉप्किन्स—जन० अये० ओ० सो० XIV पृ० ३१९, रामायण—V-१०-३९
६९९ वही VIII-१५३८
७०० वही I-१५१ —VIII-११७३
७०१ वही VIII-१२९४
७०२ विक्रम-पूर्वो० XVIII-२३, २९
७०३ राज०-पूर्वो० IV-४४२
७०४ वही IV-२७०-२७१, ३८१
७०५ वही VII-११४०
७०६ राज० V-३६०
७०७ वही I-१५१
७०८ वही IV-२७०-२७१
७०९ विक्रम० XVIII २३, २९

सामाजिक रीति-रिवाज एवं मान्यतायें

प्रत्येक देश के लोगो की विभिन्न रीति-रिवाज एव मान्यताये होती है—जिनकी प्रेरणा से उनके जीवन का दैनन्दिन कार्य चलता है। ये रीति-रिवाज एव मान्यताये उनकी सास्कृतिक धरोहर होती है जो उन्हे परम्परा से क्रमश प्राप्त होती है। इन्ही के कारण एक देश की सस्कृति दूसरे देश से पूर्णत भिन्न होती है। प्रत्येक देशवासी अपने देश को दूसरे देश से अनेक स्थितियो मे अच्छा समझता है और अपने रीति-रिवाजो को दूसरे के रीति-रिवाजो से अधिक उपयुक्त। कश्मीरी समाज मे निम्नवत् प्रथाये एव विश्वास उपलब्ध होते है।

अनशन की प्रथा

अपनी मॉगो की पूर्ति के लिये कश्मीरी लोग अनशन किया करते थे। यह समाज के सभी वर्गो द्वारा किया जाता था, इसके पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते है—हर्ष ने स्वय को बन्दीगृह से मुक्त न करने पर अनशन करने की धमकी राजा उत्कर्ष को दी।[७१०] चित्ररथ को पदच्युत कराने के लिये अवन्तिपुर के ब्राह्मणो ने उपवास शुरू किया किन्तु राजा द्वारा उपेक्षित होने पर वे धधकती आग मे जल मरे[७११] इसी चित्ररथ द्वारा गौओ को चारागृह मे चराने से मना करने पर एक ग्वाला विरोधस्वरूप अग्नि मे जलकर मर गया।[७१२] एक विधवा ब्राह्मणी ने अपने पति के हत्यारे को दण्डित कराने के लिये अनशन किया था, अपराधी का अपराध सिद्ध करने मे असफल रहने पर राजा ने स्वय भगवान त्रिभुवनस्वामी के समक्ष अनशन (प्रायोपवेशन) शुरु किया— अन्त मे राजा चन्द्रापीड को भगवान त्रिभुवनस्वामी ने चमत्कारिक विधि से हत्यारे की परीक्षण विधि बतायी।[७१३] इसी प्रकार राजा यशस्कर के राज्यकाल मे एक व्यापारी ने दूसरे व्यापारी को अपना मकान बेचा किन्तु क्रेता ने भ्रष्टाचार करके न बेची गई जमीन भी हथिया ली— इसके विरुद्ध विक्रेता ने अनशन करके न्याय प्राप्त किया।[७१४]

---

७१० राज०—पूर्वो० VII ७४६
७११ वही VIII-२२२४-२५
७१२ वही VIII २२२६
७१३ वही IV-८८-१०५
७१४ राज०—पूर्वो० VI-२५, २७

कभी-कभी ब्राह्मण धन व राजनीतिक लाभ के लालच मे अनशन किया करते थे।[७१५] राज्य की ओर से अनशन सम्बन्धी अधिकारी (प्रायोपवेशन) की नियुक्ति की जाती थी।[७१६]

कश्मीर मे **बेगार** लिये जाने की प्रथा प्रचलित थी—इसे समाप्त कराने के लिये भीमकेशव मन्दिर के न्यासियो (ट्रस्टियो) ने अनशन किया था।[७१७]

देव-प्रतिमाओ के सम्मुख व्यक्ति अपनी इच्छाओ की पूर्ति के लिये मनौतियाॅ मानते थे। कलश ने अपने प्राणो की रक्षा के निमित्त मार्तण्ड भगवान से सुवर्ण की सूर्य प्रतिमा बनवाकर भेट करने की मनौती मानी थी।[७१८]

प्रस्थान की आज्ञा

जब लोग किसी के यहाॅ से चलते थे तब आज्ञा माॅगकर प्रस्थान करते थे। अलबेरुनी ने लिखा है कि वे घर मे जाते समय नही किन्तु वहाॅ से लौटते समय आज्ञा माॅगते है।[७१९] कल्हण जी ने लिखा है कि कश्मीर मे बाहर (दूर देश) जाते समय कुछ दूर तक जाने वाले को छोड़ने की परम्परा थी।[७२०] इतना ही नही यात्रा मे निकलने से पूर्व माङ्गलिक (प्रस्थान) रखा जाता था।[७२१]

मेहमानों के प्रति सम्मान

मेहमानो को साथ मे बैठाकर खाना खिलाने की प्रथा थी किन्तु उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये उन्हे अपने दाहिनी तरफ बिठाया जाता था—कल्हण लिखते है कि जयसिह अपनी ज्ञाति का गौरव रखते हुये भोज को भोजन आदि के समय अपने दाहिने बिठाता था तथा सस्पर्श, आह्लादन आदि के समय उसे कदापि नही छोडता था।[७२२]

---

७१५ राज० पूर्वो०—VI-३३४, I-३४४, VII-१३,२०,१७७,४००,१००८,१६११, VIII- ८९८-९००, २०७६, २२२४, २२३४-३५,२७३३-३९,

७१६ वही— VI-१४

७१७ वही—VII-१०८८

७१८ वही—VII-७१५

७१९ सचाऊ—पूर्वो० भाग I पृष्ठ १८२

७२० राज०—पूर्वो०-VII ५५३

७२१ वही VII-१४५३

७२२ राज० पूर्वो० VIII-३३८, १४७१ ३२६०, VII-९८०,१७२५-२७,

मृतक संस्कार

सामान्यतया कश्मीर मे शव का अग्नि मे दाह-सस्कार किया जाता था[७२३] किन्तु कुछ ऐसे भी प्रसङ्ग प्राप्त होते है जब अन्य प्रकार के साधन अपनाये जाते थे। जयराज की लाश भट्टारनड्वला सरोवर मे मछलियो के भोजनार्थ डाल दी गयी थी[७२४] इसी प्रकार धम्मट के मृत शरीर को राजा की आज्ञा से चाण्डालो ने टुकडे-टुकडे करके कुत्तो को खिला दिया।[७२५] सामूहिक दाह-सस्कार के भी हमे उल्लेख प्राप्त होते है।[७२६] अलबेरुनी ने भी लिखा है कि भारतवर्ष मे प्राचीनकाल से ही शवो को जलाने की परम्परा रही है— यह कार्य मृतक के सम्बन्धी करते थे। जली हुई हड्डियो का अश गङ्गा मे लाकर फेका जाता था।[७२७] कश्मीर मे भाद्रमास से कृष्ण पक्ष मे पितर पक्ष मनाया जाता था जब लोग श्राद्ध करते थे— इस दिन उन मृतको की हड्डियॉ जो वर्ष के अन्दर मरे होते थे— एकत्रित करके पवित्र गङ्गा झील मे विसर्गित की जाती थी। स्टेइन महोदय ने इस झील की पहचान हरमुक्ता पर्वत के ग्लेशियर के नीचे की है।[७२८] सुज्जि ने सुस्सल की अस्थियो— को गङ्गा मे विसर्जित किया था तथा कोष्ठेश्वर राजा जयसिह से पराजित होने के बाद गङ्गा की यात्रा किया था।[७२९] बिल्हण[७३०] ने कई बार प्रयाग मे ब्राह्मणो को धन दान किया था, इतना ही नही उन्होने आगे कहा है कि कुछ पुण्यात्मा मनुष्यो के ही वृद्धावस्था मे आयु के अवशिष्ट दिन गङ्गा के सानिध्य मे बीतते है।

बालको को बुरे लोगो की नजरो से बचाने के लिये उनके मुखमण्डल पर काजल का काला टीका लगाया जाता था तथा गले मे सिहनख बॉधा जाता था।[७३१] ऐसी अवधारणा आज भी लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत मे प्रचलित है।

---

७२३ राज०पूर्वो०—VII ७२९, १७२५, १७२७ VIII ३३८, १४७१, १४७३
७२४ वही—VII १०३८
७२५ वही—VII १०५२
७२६ वही VIII ५१३, ५९४
७२७ सचाऊ—भाग II पृष्ठ १६९
७२८ राज०— स्टेइन VI-२०० VIII-१००७-८ टिप्पणी, विक्रम०-XVIII-३६
७२९ राज०— पूर्वो० VIII- १६००, १६२६, २२१४, VI-२००-२
७३० विक्रम०— पूर्वो० XVIII-९१, १०५
७३१ राज०— पूर्वो०-VIII ८२८, ३३७६

कुछ राजे-महाराजे दूसरे देश की प्रथाओ से आकर्षित होकर उन्हे अपने राज्य मे प्रचलित करते थे। राजा कलश ने उपागगीत का व्यसन तथा उच्चकोटि की नर्तकियो का सग्रह अन्यान्य देशो से अपने राज्य मे शुरू करवाया।[७३२] राजा हर्ष ने भी कर्नाटक की प्रथानुसार अपने राज-दरबार मे ताड के पत्ते से हवा करने, सभा मे पुरुषो के मस्तक पर बडे-बडे चन्दन तिलक लगाने एव कमर मे कटार बॉधने की परम्परा शुरू किया।[७३३] कल्हण ने लिखा है कि 'जिस तरह हर्ष के शासनकाल से ही देवमूर्तियो को तोडने तथा उखाडने की परिपाटी चली उसी तरह राजा के सिर काटने की प्रथा भी उसके शिरश्छेद से ही चालू हुई।'[७३४]

शकुन-अपशकुन विचार

विवेच्यकालीन कश्मीर सम्बन्धी स्रोतो से हमे तत्कालीन समाज मे शकुन-अपशकुन पर प्रतिक्रिया स्पष्ट रूप से समाज मे दृष्टिगोचर होती है। कल्हण ने लिखा है कि मातृगुप्त को कश्मीर जाते समय कई शुभ शकुन दिखाई पडे थे— इसी कारण वह बिना रुके कश्मीर पहुँचा— इन शकुनो मे सर्प के फण पर विराजमान खजरीट पक्षी को देखा तथा स्वप्न मे जहाज पर बैठकर समुद्र पार करते देखा।[७३५] पिता की मृत्यु के उपलक्ष मे स्नान कर रहे हर्ष को जब मगलवाद्य सुनाई पडे तब शकुनशास्त्रज्ञ हर्ष ने इस शुभ शकुन से अर्थ निकाला कि उसे अवश्यमेव राज्यश्री का लाभ प्राप्त होगा।[७३६] खरगोश को हाथ मे लिये मार्ग मे एक शिकारी को देखकर उच्चल ने शत्रु का राज्य वैभव हस्तगत सा मान लिया।[७३७] राजा कलश चमक नामक नकटे को देखकर जिन्दुराज के घर चौर्यसुरत की इच्छा से गया था— इसी कारण उसे चाण्डालो से अपमानित होना पड़ा था।[७३८] उसी राजा कलश के नाक से— शिवमन्दिर मे कुम्भ प्रतिष्ठा के समय कुम्भ पर खून की बूँदे गिरी, इस अपशकुन का उसने प्रतिकार

७३२ वही VII ६०६
७३३ वही VII ९२७
७३४ वही VII १७२४
७३५ राज०— पूर्वो० III २२०-२१, २३०
७३६ वही VII-७४२-४३
७३७ वही VII-१२९१
७३८ वही VII ३०७, ३१२, ३१४

करना चाहा किन्तु रोग ने उग्ररूप धारण कर लिया[७३९] राजा हर्ष ने अपने बामनेत्र तथा बामबाहु फडकने जैसे अपशकुनो के कारण भिक्षुकी द्वारा भोज के मरण के समाचार को सत्य मान लिया था।[७४०]

तंत्र-मंत्र व अभिसारिकी क्रिया

कश्मीर मे तत्र-मत्र पर विश्वास किये जाने तथा अभिसारिकी क्रिया द्वारा विरोधी की हत्या किये जाने के अनेकश साक्ष्य प्राप्त होते है। कल्हण महोदय ने लिखा है कि राजा किन्नर की पत्नी का अपहरण किन्नरपुर के बिहार मे रहने वाले एक बौद्ध भिक्षु ने जादू के बल से कर लिया था— इसलिये उसने सैकड़ो बौद्ध बिहार जला डाले।[७४१] राजा उच्चल द्वारा दण्डित किये जाने पर कितने ही शठ कायस्थ भारतस्तवराज आदि स्तोत्रो को याद करके उनका पाठ करते थे और बहुतेरे नेत्रो मे आसूँ भरकर दुर्गोत्तारिणी विधि के मत्र का जाप करते थे।[७४२] इसी क्रम मे उद्धृत है कि किसी समय सुस्सल के भय से छुटकारा पाने के लिये मत्रियो मे परस्पर मत्रणा चल रही थी तब लोढन के ससुर ओजसूह ने एक लाख मन्त्र जाप करके शत्रु से मुक्ति पाने का उपाय बतलाया था।[७४३] कुछ लोगो द्वारा मत्र सिद्ध कर लिये जाने के उल्लेख प्राप्त होते है— हर्ष ने जयराज को मरवाने के लिये विष दिया किन्तु वह विषघ्न मत्र सिद्ध किये था, इसलिये उस पर विष का कुछ असर नही हुआ।[७४४] कश्मीरी समाज मे अभिसारिकी क्रिया द्वारा विरोधी को समाप्त कराने के व्यापक दृष्टान्त प्राप्त होते है— यहॉ तक कि मॉ द्वारा पुत्र को तथा दादी द्वारा पोते को इस विधि से मरवाने के साक्ष्य मिलते है।[७४५]

शाप एवं वरदान

कश्मीर मे शाप एव वरदान के उल्लेख प्राप्त होते है— कल्हण ने अपनी कृति मे लिखा है कि दामोदरगुप्त को ब्राह्मणो ने सर्प होने का शाप दिया था परन्तु एक दिन मे सम्पूर्ण रामायण सुनने

७३९ राज० VII ७००, १६४३
७४० वही VII-१६७१
७४१ राज०—पूर्वो० I १९९
७४२ राज० पूर्वो० VIII १०६
७४३ वही VII ४२२, ४२३
७४४ वही VII १०३६-३७
७४५ वही, IV-११२, ११४, ६८६, V-२३९, VI-१०९, १२८, २२९, ३१०, ३१२, VII-१३३, १०६८-६९, ११३०

पर शाप से मुक्त होने का मार्ग भी बतलाया[७४६] इसी प्रकार इड्डिल नामक ब्राह्मण के शापवश राजा जयापीड के ऊपर स्वर्णदण्ड गिरा और वह मर गया।[७४७] एक अन्य स्थल पर शकर जी द्वारा प्रवरसेन को समस्त जगतीतल का साम्राज्य प्राप्त करने का वर दिया गया उल्लिखित है तथा राजा ललितादित्य को ब्राह्मणो ने वरदान दिया था।[७४८] तेजस्वी ब्राह्मणो के शाप के भय से रावण कैलास पर्वत उठाये बिना ही भाग गया।[७४८अ]

पुनर्जन्म

कश्मीर मे पुनर्जन्म पर विश्वास किया जाता था। कल्हण ने लिखा है कि एक जुआडी ने भ्रमरवासिनी देवी से वरदान मे उनके साथ सहवास का वर मॉगा। जिसे देवी ने अगले जन्म मे पूर्ण करने को कहा।[७४९] राजा ललितादित्य को पूर्वजन्म के कृत्य के कारण मरुभूमि मे भी सुस्वादु जल से भरी नदियॉ उत्पन्न करने का वर प्राप्त था।[७५०] कल्हण ने एक अन्य स्थल पर लिखा है कि राज्य प्राप्त करने के बाद जो राजे पूर्वसकल्पित वासनाओ को भूल जाते है तो वे मरने के बाद जब पुनर्जन्म प्राप्त करने चलते है तब वे वासनाये गर्भवास के समय ही उन्हे घेर लेती है।[७५१]

ज्योतिष एवं भविष्य विचार

कश्मीर मे ज्योतिषशास्त्र का अत्यन्त महत्त्व था— इसकी चर्चा आगामी अध्याय मे की जायेगी। कश्मीरवासी भविष्यवाणी एव स्वप्न पर भी विश्वास करते थे। मल्लराज के पुत्रो उच्चल व सुस्सल के बारे मे ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की थी कि वे आगे चलकर राजा होगे इसी आशा पर वे वीर अपना प्रभाव तथा प्रतिष्ठा बढा रहे थे।[७५२] ऐसे ही अनेकों दृष्टान्त उपलब्ध होते है।

---

७४६ वही— III १६५-१६६
७४७ वही— IV-६५३-६५६
७४८ वही III २७३,
७४८ अ विक्रम०—पूर्वो० XVIII-३
७४९ राज० पूर्वो०— III ४२२
७५० वही— VI-२३२-३३
७५१ वही— III २६८ VIII-११८
७५२ वही— VII-११८३, VIII-१०३

बलिप्रथा

कल्हण ने एक योगिनी द्वारा राजा बक को उसके सैकडो पुत्रो, पौत्रो सहित— आकाशगमन की सिद्धि के लिये—बलिदान कर दिया।[७५३] कुछ लोग— स्वय आत्महत्या कर लेते थे।[७५४]

रोग एवं परिचर्या

विवेच्यकालीन कश्मीरी समाज मे अनेको प्रकार के रोगो का उल्लेख हुआ है। इनमे से कुछ ऐसे थे जिनका उपचार सभव था तो कुछ ऐसे थे जिनका उपचार नही किया जा सकता था। लूता एक ऐसा सक्रामक रोग था जिसमे रोगी के शरीर मे बडे-बडे फफोले निकल आते थे— इससे वह मर जाता था। यह ससर्गज था अत. रोगी को नगर से बाहर निकाल दिया जाता था। पूर्व देश के राजा ने जयापीड को बदी बनाया था। उसके राज्य मे यही रोग फैला था, इसका बहाना बनाकर जयापीड मुक्त होना चाहा था।[७५५] इसके अतिरिक्त कल्हण महोदय ने साघातिक (भूरिरोग),[७५६] क्षयरोग,[७५७] उदररोग,[७५८] प्राणान्तक रोग,[७५९] दाह रोग,[७६०] कोढ,[७६१] मन्दाग्नि,[७६२] याक्ष्मा,[७६३] नेत्ररोग,[७६४] पैर के रोग तथा गलगण्ड (घेघा)[७६५] बवासीर या दुर्नामक,[७६६] रक्तातिसार[७६७] जैसे रोगो का उल्लेख किया है। मुक्तापीड स्वय को हारा हुआ समझकर शीघ्र परिणामी दण्डकालसक रोग का बहाना करके छटपटाने लगा तथा स्वय को इसमे असमर्थ पाकर अग्नि मे जल भरा[७६८] यद्यपि उसके उपचारार्थ स्वेदन, सवाहन तथा वमन आदि उपचारो का प्रयोग किया गया था।

---

७५३ राज०—पूर्वो०— I ३३३
७५४ वही—III ४३०
७५५ राज० पूर्वो० IV-५२५, ५२७, VI-१८५, १८७, VII-१७८, VIII-१६०४, १६४१
७५६ वही I ३०९
७५७ राज० पूर्वो० IV-३९८, V-४४३, VI-२८९-२९२
७५८ वही V ५३, VI-९०-९१
७५९ वही V १२३
७६० वही V २४०
७६१ वही VI ८४
७६२ वही VII ११४, ६९९, ७०१, ७०२
७६३ वही VIII २४१८
७६४ वही VIII २९५२-५३
७६५ वही VIII-२८१०
७६६ वही VIII-२९५५
७६७ वही VII-४४८
७६८ वही VII १४४५-४६, १४४९

रोगो के उपचारार्थ वैद्य ईशानचन्द्र का उल्लेख हुआ है।[७६९] सिरदर्द को दूर करने के लिये तेल की मालिश की जाती थी[७७०] जबकि गर्मी दूर करने के लिये धनिये के पानी का प्रयोग किया जाता था।[७७१] रानी ईशानदेवी द्वारा निर्मित कुण्ड जल से रोगी निरोग हो जाते थे।[७७२] पैर की बिवाय घी से ठीक हो जाती थी[७७३] जबकि खॉसी शहद व अदरख से दूर हो जाती थी।[७७४]

नैतिक स्तर

अनैतिक सम्बन्ध

विविध प्रकार के प्राणियो से भरे इस संसार मे कोई भी ऐसा प्राणी नही है जिसका शरीर दुश्चरित्रता आदि लांक्षनो से लांक्षित न हो। जिसका जन्म कमल से हुआ, शरीर पर पीलापन छागया, शिवजी के हाथों जिनका सिर कटा और अपनी ही पुत्री के प्रति दुर्भाव प्रदर्शित करने के कारण जिनकी शुचिता-शीलता आदि सद्गुणो की कड़ी आलोचना हुई, उन सर्वव्यापी विश्वरचयिता ब्रह्मा मे जब इतने दुःसह दोष विद्यमान है तब उनकी सृष्टि में भला कोई सर्वथा निर्दोष व्यक्ति कैसे पैदा हो सकता है।[७७५] इस कथन के माध्यम से कल्हण यह स्पष्ट करना चाहते है कि तत्कालीन समाज में अनैतिकता सामान्य रूप से प्रचलित थी। नैषधीयचरितम् मे उल्लिखित है कि व्यभिचारिणी का शरीर राजा की आज्ञा से छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर पक्षियो को खाने के लिये फेक दिया जाता था।[७७६] किन्तु जहॉ पर राजा ही व्यभिचारी हो उस राज्य मे कौन व्यभिचारियो पर बन्धन लगायेगा। जयशङ्कर मिश्र[७७७] ने लिखा है कि व्यभिचार से सन्तान उत्पन्न करने वाली पत्नी का त्याग कर देना चाहिये किन्तु त्याग का अभिप्राय पत्नी को घर से निष्कासित कर देना नही बल्कि धार्मिक व दाम्पत्य कृत्यो से उसे अलग कर देना है। सम्पूर्ण राजतरङ्गिणी राजाओं, मंत्रियों, सामंतो, रानियों, अधिकारियों के व्यभिचार से भरी

७६९ राज० IV-२१६, VIII ३०४२
७७० वही VII-३३२
७७१ वही IV-२१२
७७२ वही IV-२१२
७७३ वही VIII १३७
७७४. वही VIII १४१
७७५. राज०— VIII १६६-१६७
७७६ नैषधीयचरितम्—श्री हर्ष XXI-६६
७७७. प्राचीन भारत—पूर्वो०—पृष्ठ १५७-१५८

पडी है। यहाँ तक कि ससुर-पुत्रवधू, माता-पुत्र, रानी-मत्री के मध्य व्यभिचार के साक्ष्य प्राप्त होते है। कल्हण लिखते है कि महान कुल मे उत्पन्न होने वाली नारियो की भी प्रवृत्ति पर्वत जैसे ऊँचे स्थान से पतित होने वाली नदियो के समान स्वभावत अधोगामिनी हो जाया करती है— जैसे समस्त ससार के जलाशयो के प्रभु समुद्र से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी अल्प जलयुक्त सरोवर मे उत्पन्न होने वाले कमलो पर रीझ जाती है, उसी प्रकार प्रसिद्ध तथा उच्चकुल मे उत्पन्न होने वाली नारियाँ भी नीच पुरुषो से भोग कराने लग जाती है[७७८] हर्ष के पिता कलश ने हर्ष को बन्दी बनाकर उसकी रानियो को— जो उसकी पुत्रबधुएँ थी— शत्रु की स्त्रियाँ मानकर उनके साथ दुराचार किया[७७९] इसी तरह हर्ष को बाल्यावस्था मे जिन माताओ ने अपने गोद मे लेकर खेलाया व पालन-पोषण किया था— उन्ही को राजा हर्ष ने अपनी गोद मे बैठाकर चुम्बन करते हुये उनके साथ भोग किया। अपने पिता की बहन की कन्या नागा अर्थात् अपनी बहन से— जिसने उसे कुछ कटुवचन कह दिये थे— कुपित होकर बलात्कार किया।[७८०] वही हर्ष कर्नाटक नरेश परमार्डि की रानी चन्दला को देखकर इतना कामातुर हो गया था कि धूर्त लोग उससे चन्दला के चित्र के लिये नित्य प्रति वस्त्र, आभूषण तथा उसका कोप शान्त करने के लिये धन लिया करते थे तथा एक बुढिया को चन्दला की माँ बताकर उसे खूब ठगते थे।[७८१] कल्हण ने ऐसे राजाओ का उल्लेख किया है जो लोकलाज का परित्याग कर अपनी कामवासना की तृप्ति के लिये किसी भी सीमा तक जा सकते थे।[७८२]

राजा शकरवर्मा के मरणोपरांत रानी सुगन्धा उस वैधव्य की स्थिति मे भी उन्मत्त होकर प्रभा-करदेव नामक मत्री से फँस गई तथा सभोग से प्रसन्न होकर रानी ने उस मत्री को अपना प्रेम, सौभाग्य और अत्यधिक सम्मानस्वरूप तीन मुकुटचन्द्रको से अलकृत कर दिया। ऐसे व्यभिचार के अनेक उदाहरण कल्हण ने प्रस्तुत किये है।[७८३]

---

७७८ राज० पूर्वो० VI ३१६-३१७
७७९ वही VII ६८४
७८० राज० पूर्वो० ११४७-४८
७८१ वही VII १११९, ११२५-११३२
७८२ वही I २४२, २५०-५१, २५४-२५६ V-३८४, ३८५, ३८७, VI १३८, १४०-१४२, १५१-५२, VII- २९३, ३०९-११, ५२०-२२
७८३ वही—III-४९५-९९, ५०६-८, V-२३०-३१, २८१-८६, VI, ७३-७७, १६७, १९६, २६२-६३, ३१८-२४, VII-१०२, १२३-१२५, १३३-१३८, ६८५, VIII-१०२, ८७५, ८८९-८१०, २०१६-१६

भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार एव घूसखोरी एक खराब सरकार के लक्षण है। मध्यकालीन भारत मे मत्रीगण तथा अन्य अधिकारी वर्ग प्रच्छन्न रूप से भ्रष्टाचार मे लिप्त रहते थे। क्षेमेन्द्र तथा कल्हण ने इसीलिए राजा को ऐसे मत्रियो, प्रशासको तथा पुजारियो को पदच्युत करने की सलाह दी है अन्यथा प्रजा मे यही भ्रष्टाचार असन्तोष का कारण बन जाता है।[७८४] लक्ष्मीधर ने भी मत्रियो पर कडी निगाह रखने पर जोर दिया है अन्यथा वे राजा तथा प्रजा दोनो के लिये खतरा बन जाते है।[७८५] कल्हण ने अनेक ऐसे प्रसङ्ग प्रस्तुत किये है जिनसे पता चलता है कि मत्रियो ने भ्रष्टाचार से प्रभूत धन कमाकर राजाओ तक को चुनौती दिया था। बिज्ज[७८६] तथा आनन्द[७८७] इसी प्रकार के सभासद थे। शुक्रनीतिसार मे मत्रियो की जाति या परिवार की अपेक्षा उनकी योग्यता तथा चरित्र के आधार पर पद प्रदान करने की सलाह दी गई है। तथा भ्रष्टाचार को कम करने के लिये समय-समय पर मत्रियो के विभाग परिवर्तित करते रहने का सुझाव दिया गया है।[७८८]

कुछ भ्रष्ट मत्री तथा निम्न अधिकारी यथा कर सग्रहकर्ता तथा रजिस्ट्रीलेखक जनता को अवैधानिक परितोषिक के लिये बाध्य करते थे।[७८९] कल्हण ने प्रशासनिक वर्ग कायस्थो को जनता के लिये प्लेग से भी भयानक तथा सफेद चीटी (पुत्तिका) जो अपनी माता को खा जाती है एव केकडा जो अपने पिता को नष्ट कर देता है— से भी अधिक खतरनाक माना है क्योकि ये कृतघ्न यदि मौका पाते है तो सबको मार डालते है।[७९०] क्षेमेन्द्र ने कायस्थो की निन्दा की है। नर्ममाला मे उसने कायस्थो

---

७८४ दशा०—पूर्वो० X-१४
७८५ कृत्यकल्प०—पूर्वो— राजधर्मकाण्ड पृ० ८३
७८६ राज०—VII-५४७, ५५५
७८७ वही—VII-९९३-९९५
७८८ शुक्र०— पूर्वो०II ५४-५५, १०७-११५
७८९ राज०—VI-२५-४१
७९० राज०—VIII-८८-९१

की बेईमानी, पाखण्डी स्वभाव तथा घूसखोरी की आलोचना करते हुए उन्हे दैत्यो के लेखाधिकारी का अवतार बताया है।[७९१] कल्हण ने भ्रष्ट अधिकारियो के अनेक सन्दर्भ दिये है। चन्द्रमुख जिसने एक कौडी से जीवन यापन शुरु किया था— राजा का प्रेमपात्र बनकर करोडो मुद्राओ का स्वामी बन गया।[७९२] इसी प्रकार सग्रामराज के शासनकाल मे भद्रेश्वर नामक अधिकारी मदिरो की सम्पत्ति अपहरण करने मे सकोच महसूस नही करता था।[७९३]

इस प्रकार भ्रष्टाचार एव घूसखोरी प्रशासन मे सर्वथा अप्राप्त नही रही है किन्तु सचेष्ट राजाओ के समय जहॉ जनता सुख महसूस करती थी, वही भ्रष्टाचार को बढावा देने वाले राजाओ के राज्यकाल मे जनता का जीवन बडा कठिन एव दुःखी हो जाता था।

---

७९१ कला०—पूर्वो० श्लोक ७
७९२ राज०—पूर्वो० VII ११२
७९३ वही०—VII ४३

षष्ठ अध्याय

सांस्कृतिक जीवन

- शिक्षा एवं साहित्य
- ललित कला एवं शिल्प विज्ञान

षष्ठ अध्याय

सांस्कृतिक-जीवन

शिक्षा एव साहित्य—प्राचीन काल से ही कश्मीर भूमि अपनी विद्वता के लिये प्रसिद्ध रही है। राजतरङ्गिणी के प्रारम्भ मे ही कल्हण ने लिखा है कि ज्ञान, ऊँचे मकान, केसर, बर्फीला पानी और अगूर जो स्वर्ग मे भी दुर्लभ है—कश्मीर मे सर्वसुलभ है। कश्मीर को ज्ञान की देवी—सरस्वती का घर माना गया है। कश्मीरी स्रोतो मे ब्राह्मणो—जो ज्ञान की सभी शाखाओ मे निपुणता प्राप्त किये थे—की शिक्षा की समुचित व्यवस्था का ही नही अपितु अन्य जातियो की शिक्षा प्राप्ति के साक्ष्य मिलते हैं। अलबेरूनी ने लिखा है कि उसके समय मे कश्मीर हिन्दू शिक्षा का केन्द्र था[१] ह्वेनसाग ने भी लिखा है कि कश्मीरी लोग शिक्षित थे तथा ज्ञान से प्रेम करते थे।[२] कवि बिल्हण ने भी अपनी मातृभूमि (कश्मीर) की पवित्रता, शुचिता, यहाँ के ब्राह्मणो के ज्ञान तथा स्त्रियो की विद्वता व सुन्दरता की प्रशसा की है।[३] कल्हण ने मातृगुप्त के माध्यम से यहाँ की आध्यात्मिक सर्वोच्चता को उद्धृत किया है।[४]

प्रारम्भिक शिक्षा—चीनी यात्री ह्वेनसॉग[५] ने बच्चो की आरम्भिक शिक्षा 'सिद्धमचङ्ग' से माना है। सिद्धम् की समाप्ति के बाद पञ्च विद्याओ का अध्ययन किया जाता था—(१) शब्दविद्या (व्याकरण) (२) शिल्पविद्या (शिल्प व कला) (३) चिकित्सा विद्या (४) हेतुविद्या (न्याय व तर्क) (५) आध्यात्म विद्या (दर्शनशास्त्र)। इत्सिङ्ग[६] ने भी बालको की प्रारम्भिक शिक्षा की शुरुआत 'सिद्धिरस्तु' नामक पुस्तक से माना है, जिसमे वर्णमाला, स्वर और व्यञ्जन का विनियोग था। आश्वलायन गृह्यसूत्र[७] में कहा गया है कि व्यक्ति के जीवन मे सबसे महत्त्वपूर्ण उपनयन सस्कार का अभिप्राय है बच्चे को गुरु के समीप

---

१ सचाऊ—भाग I पृष्ठ १२६

२ 'सी० यू० की०'—एस० बील - भाग II, पृष्ठ १८९ (कलकत्ता १९५८)

३ विक्रम० पूर्वो० XVIII १-८

४ राज० पूर्वो० III-१२५ टिप्पणी २२३

५ वाटर्स०—पूर्वो० I पृष्ठ १५५

६ 'रिकार्ड्स ऑव दि बुद्धिस्ट रिलिजन्'—इत्सिग—तकुसुस पृष्ठ १६५

७ ११९ १-६

अध्ययन हेतु ले जाना जो ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य बालको के लिये क्रमश. ८वर्ष, ११ वर्ष व १२ वर्ष होती थी।

लक्ष्मीधर[८] ने लिखा है कि बिना वैदिक शिक्षा प्राप्त किये यदि कोई ब्राह्मण अन्य शिक्षाओ मे सलग्न होता है तो अपने जीवनकाल मे ही वह शूद्र हो जाता है। इसी मे उन्होने १८ परम्परागत विद्याओ की सूची दी है। जिसमे १४ प्रधान विधाये, ४ वेद, ६ वेदाङ्ग, मीमासा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण और आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र। अलबेरूनी[९] ने लिखा है कि व्याकरण, गणितीय ज्ञान एव खगोलशास्त्र के साथ-साथ ज्योतिषशास्त्र हिन्दुओ के बीच प्रसिद्ध थे। क्षेमेन्द्र[१०] के अनुसार एक कश्मीरी मठ मे गौड ब्राह्मण विद्यार्थी-व्याकरण, तर्कशास्त्र तथा प्रभाकर की मीमासा विशेष रूप से पढते थे। कश्मीर के राजा सस्कृत का ज्ञान प्राप्त करते थे। कल्हण ने[११] राजा शकरवर्मन (८८३-९०२ ई०) जो सस्कृत नही जानता था तथा शराबियो के साथ ग्रामीण भाषा (अपभृश) मे बात करता था की हसी उडायी है। यत्र-तत्र के प्रसङ्गो से हमे पढाये जाने वाले कुछ विषयो की जानकारी मिलती है। वीरकन्दर्पसिह ने जिन्दुराज ने राजनीति तथा पराक्रम की शिक्षा पायी थी, हर्ष स्वरोदयशास्त्र का ज्ञाता था एव उच्चल के राज्यकाल मे प्रत्येक मार्ग पर योग विद्या तथा प्राणायाम—शिक्षा के केन्द्र बने हुये थे। सेनापति कुलराज व्यायामविद्या मे पारगत था।

कृष्णा मोहन ने [१२] राजकुमारो के प्रशिक्षण के बारे मे किसी साक्ष्य के न प्राप्त होने का उल्लेख किया है किन्तु राजतरङ्गिणी मे दिद्दा के पुत्र अभिमन्यु (९५८-९७२ ई०) के शस्त्र व शास्त्र मे पारङ्गत होने का उल्लेख मिलता है।[१३] हर्ष की शिक्षा से यह सिद्ध होता है कि राजकुमारो की शिक्षा के लिये अलग से व्यवस्था की जाती थी।[१४] बी० एन० एस० यादव जी ने अलबेरूनी को उद्धृत करते हुये लिखा है कि राजकुमार की शिक्षा मे बहुत से विषय सम्मिलित होते थे— धार्मिक साहित्य— वेद,

---

८ कृत्य०-पूर्वो० ब्रह्मचारी काण्ड—पृष्ठ २२, ४७, ६१

९ सचाऊ—पूर्वो० भाग I पृष्ठ १३५-१५२

१० **देशोपदेश**—पृष्ठ १७ श्लोक ८

११ राज०—पूर्वो० V-२०६, VII ५७७, ७९६, VIII ७४, २११६

१२ अर्ली० मेडिवल—पूर्वो०—२४२

१३ राज०—VI-२९०

१४ वही VII ६१०

पुराण, स्मृति, आगम तथा नाटक, काव्य, इतिहास, आख्यान, व्याकरण, कविता, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान, खगोल विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान के साथ-साथ वास्तुकला, नृत्य, सङ्गीत, सैन्य विज्ञान, तथा जुँआ व जादू (इन्दुजाल) प्रमुख थे। बाण, दण्डिन्, तथा राजशेखर ने पाठ्यक्रम की पूरी तालिका प्रस्तुत की है।[१५] सामान्य लोगो की प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम अपभृश या मातृभाषा होती थी। 'स्त्रियो की बोली मातृभाषा के समान सस्कृत व प्राकृत मे प्रत्येक घर मे सुनाई पड़ती थी'[१६] बिल्हण के इस कथन से स्पष्ट होता है कि स्त्रियो की शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था रहती थी।

व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा

प्राचीन भारत मे वैश्यो के लिये व्यावसायिक शिक्षा मे व्यापार का व्यावहारिक ज्ञान, विभिन्न भाषाये, बही खाता रखने के तरीके तथा गणितीय ज्ञान सन्निहित किया जाता था।[१७] कल्हण ने व्यापारियो के साथ-साथ लिपिको को भी एक शिक्षक के अधीन प्रशिक्षित करने का उल्लेख किया है।[१८] क्षेमेन्द्र[१९] ने लिखा है कि व्यावसायिक शिक्षा व्यापारिक श्रेणियो के लिये कुटीर उद्योगो की भॉति घरेलू नही होती थी बल्कि इसमे व्यावसायिक पूर्वाभ्यास के रूप मे शिक्षा का प्रावधान था। उन्होने व्यावसायिक समझौतो, हुण्डिका (विनिमय का दस्तावेज) तथा बाध्यकारी पत्रो (बाण्ड्स) का भी उल्लेख किया है। राजतरङ्गिणी[२०] मे भी हुण्डिका शब्द प्रयुक्त हुआ है जहॉ श्रेय व अश्रेय शब्द क्रमश. लाभ या हानि अथवा आय व व्यय के लिये प्रयुक्त हुये है। इस प्रकार व्यावसायिक दस्तावेज तथा बहीखाता व्यावसायिक शिक्षा के मुख्य अग प्रतीत होते है। कथासरित्सागर[२१] मे एक वैश्य के लिये 'भाषाज्ञ सज्ज्ञाक' शब्द प्रयुक्त हुआ है, इससे प्रतीत होता है कि घुमन्तू व्यापारी विभिन्न क्षेत्रो के लोगो के पारस्परिक सम्पर्क के कारण विभिन्न प्रकार की भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे, वे इसके लिये कोई सस्थागत पाठ्यक्रम नही करते थे।

---

१५ सोसाइटी—पूर्वो०—पृष्ठ ४००-४०१

१६ सचाऊ—पूर्वो० I १८, विक्रम०—पूर्वो०-XVIII २३

१७ **'दि एजुकेशनल सिस्टम ऑव दि ऐन्शिएण्ट हिन्दूज'**—एस० के० दास—कलकत्ता, १९३० पृष्ठ १९४

१८ राज०— स्टेइन एम० ए०—बम्बई १८९२ भाग II पृष्ठ १२

१९ लोक०—पूर्वो० XVIII पृष्ठ २४२, २६९, ४१२

२० V २६६, ३०२, स्टेइन पृष्ठ १२ पाद टिप्पणी भाग II

२१ कथा०—पूर्वो०IX १०२

शूद्र वर्ण के दस्तकारो व कारीगरो को तकनीकी शिक्षा परिवार के ही बडे लोगो के द्वारा दी जाती थी, जो व्यवसाय पूर्व अभ्यास (अप्रेन्टिस) की तरह सामान्य थी।[२२] कल्हण ने लिखा है कि गुग के पुत्र मल्ल को शासन कार्य सिखाने के लिये कलश ने विजयसिह से कोतवाल का पद छीनकर मल्ल को दे दिया था।[२३] राजा कलश वर्तमान तथा भविष्य मे होने वाले आय-व्यय का बडी सावधानी से देख-रेख करता था तथा एक साधारण कर्मचारी की भॉति सदैव अपने पास भोजपत्र व खडिया रखता था।[२४]

शिक्षा-केन्द्र

प्राचीनकाल मे आश्रम या गुरुकुल शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। यह स्थिति पूर्वमध्यकाल तक प्राप्त होती है किन्तु बौद्धधर्म के प्रचार एव प्रसार से विहार शिक्षा के केन्द्र बन गये जिनमे से कुछ शैक्षिक सस्थान के रूप मे विकसित हो गये।[२५] समय के साथ मध्यकाल मे **विहार, मठ** तथा **मंदिर** यूरोपीय चर्च की भॉति शिक्षा के केन्द्र बन गये।[२६] कश्मीर के सास्कृतिक जीवन मे मन्दिरो से जुडे हुये मठ की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी—वे शैक्षिक केन्द्रो के साथ-साथ तीर्थ यात्रियो के विश्रामस्थल तथा गरीब लोगो के भोजनगृह के रूप मे प्रयुक्त होते थे। क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि गौड देश का एक विद्यार्थी कश्मीर के एक मठ मे अध्ययन के लिये आया था।[२७] स्त्रियॉ भी इन मठो मे अध्ययन के लिये आती थी—ऐसा क्षेमेन्द्र ने समयमातृका मे लिखा है।[२८] सोमदेव ने भी एक विद्यार्थी द्वारा कश्मीर के लिये पाटलिपुत्र छोड़ने का उल्लेख किया है।[२९] कश्मीरनरेश यशस्कर द्वारा आर्यदेश से कश्मीर मे पढने के लिये आने वाले विद्यार्थियो के लिये एक मठ बनवाने का उल्लेख हुआ है।[३०] विदेशी छात्र विशिष्ट

---

२२ अल्टेकर—पृष्ठ १९७-१९८
२३ राज०—पूर्वो० VII ५८३
२४ वही VII ५०८
२५ अल्टेकर पूर्वो—पृष्ठ ७५, २३०
२६ वही पृष्ठ ५३ 'एजुकेशन इन ऐन्शिएण्ट इडिया'—१९४८ पृष्ठ ७५-७६
२७ देशो०—पूर्वो० (अ०) सर्ग VI पृष्ठ १६
२८ समय०—पूर्वो० अध्याय-II श्लोक ६१-६२
२९ कथा०—पूर्वो० V-पृष्ठ १७८-१७९
३० राज०—पूर्वो० VI ८७

रूप से निर्मित छात्रावासो मे रहते थे।[३१] इन शैक्षिक केन्द्रो पर विभिन्न विषयो के विशेषज्ञ सभा करके आपस मे चर्चाये करते थे। जिससे सभी को न केवल बौद्धिक लाभ होता था अपितु प्रान्तीय सीमा विखण्डित होती थी—मखक ने जयसिह के मत्री अलकार के घर मे विद्वानो की एक सभा होने का उल्लेख किया है जिसमे कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द ने सुहल को अपने प्रतिनिधि के रूप मे भेजा था।[३२] एक स्थानीय विद्वान से भाषण प्रतियोगिता मे भाग लेने बिल्हण कन्नौज गया था।[३३]

बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के कारण बौद्ध विहार विश्वविद्यालय के स्तर तक पहुॅच गये थे। ५वी ६वी शती मे गुप्त राजाओ की मदद के कारण नालन्दा विश्वविद्यालय देश-विदेश मे प्रसिद्ध हो गया था—यहॉ छात्रो के रहन-सहन एवं भोजन इत्यादि की व्यवस्था-धनी लोगो के दान तथा राज्य की तरफ से प्राप्त अग्रहारो के राजस्व से की जाती थी।[३४] कन्नौज, विक्रमशिला, पाटलिपुत्र, श्रीमाल, धार, ओदन्तपुरी, जगदल विहार, बलभी, काशी, कश्मीर अन्य प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे। कल्हण ने लिखा है कि राजा यशस्कर ने कश्मीर के एक मठाधीश को अग्रहार मे (५५) पचपन गॉव दिये थे।[३५] रानी सूर्यमती ने विद्वान ब्राह्मणो को एक सौ आठ अग्रहार दान मे दिये थे।[३६] कश्मीर के राजा, रानियॉ, राजकुमार, मत्री, अधिकारियो (कायस्थ) ने न केवल व्यापक रूप से मठो व मदिरो का दान दिया बल्कि इनका निर्माण भी करवाया।[३७]

राजतरङ्गिणी मे ऐसे भी सन्दर्भ प्राप्त होते है जिनसे स्पष्ट होता है कि मदिर, मठ या विहार के अतिरिक्त बहुत से ऐसे शिक्षक थे जो व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देते थे। सुय्य-जिसका पालन-पोषण शूद्रा जाति की एक स्त्री ने किया था—बड़ा होकर विद्वान बना तथा एक धनी व्यक्ति के बालक का शिक्षक (उपाध्याय) बन गया।[३८] पिशाचकपुर ग्राम के एक गृहस्थ वीरदेव का पुत्र कामदेव विद्वान एवं

३१ राज० III-९
३२ श्रीकण्ठ० पूर्वो० अध्याय-XXV-१०२
३३ विक्रम०—पूर्वो० XVIII-९०
३४ अल्टेकर पृष्ठ-२६६
३५ राज०—पूर्वो० VI ८७-८९
३६ वही—VII १८४
३७ वही VII-१२०, १४९, १५१, १८२, २१४, ९५६, १०१० VIII-२४३, २४६, ३७४, १०५२, २३०९, २३३३-३४, २४०८, २४२०-२४ २८ २४२९, २४३१, ३३५०-३३५४-५६, ३३२०-२१
३८ वही—V-७४-७८

स्नान-सन्ध्या आदि सदाचार से सम्पन्न था—इसीलिये मेरुवर्धन नामक मत्री ने उसे अपने बालको का अध्यापक बना दिया—जो बाद मे गजाधिकारी बन गया था।[३९] इन सन्दर्भो से यह स्पष्ट होता है कि छात्रो के घरो मे छोटी-छोटी कक्षाओ की व्यवस्था करके शिक्षको द्वारा व्यक्तिगत शिक्षा देना अध्यापन के क्षेत्र मे बहुत महत्त्वपूर्ण था। यद्यपि इसमे यह स्पष्ट नही होता है कि ये अध्यापक जो व्यावसायिक होते थे उनका शिक्षण शुल्क प्रत्येक छात्र पृथक् रूप से देता था अथवा उनके माता-पिता अथवा अभिभावक किसी निश्चित दर से सयुक्त रूप से भुगतान करते थे अथवा जिस गृहस्थ के यहाँ सभी बच्चो को एकत्र करके शिक्षक शिक्षण कार्य करता था वह सभी बच्चो का अकेले शिक्षण शुल्क वहन करता था। एक अन्य स्थल पर कल्हण ने लिखा है कि जब अभिमन्यु ने अपने प्रधानमन्त्री फाल्गुण को पद से हटा दिया और वह पर्णोत्स चला गया, उस समय अन्य मत्रीगण उसी प्रकार प्रसन्न हुये जैसे अध्यापक के चले जाने पर बालकगण प्रसन्न होते है।[४०]

इसके अतिरिक्त कामदेव तथा सुय्य के उदाहरणो से यह भी स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन कश्मीर मे राजतत्र पर राज्य के कर्मचारियो तथा अधिकारियो की भाँति किसी विशेष जाति का अधिकार नही था बल्कि जो कोई भी योग्य होता था, वह योग्यतानुसार पद प्राप्त कर लेता था। मनुस्मृति मे भी द्विजो को वेदाध्ययन की छूट दी गयी है—यद्यपि वेद पढाने का विशेषाधिकार ब्राह्मणो को ही था।[४१]

पाठ्यक्रम

क्षेमेन्द्र बताते है कि अलकारशास्त्र की शिक्षा उन्होने विद्याविवृत्ति के रचयिता अभिनवगुप्त से प्राप्त किया था। गगक तथा सोमपाद भी उसके शिक्षक थे। सूर्यकान्त[४२] का कथन है कि क्षेमेन्द्र के अन्य भी शिक्षक रहे होगे जिनसे उन्होने साहित्य की विभिन्न शाखाओ की शिक्षा प्राप्त की होगी। ये विद्वान विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित होने के कारण छात्रो को व्यक्तिगत रूप से निर्देशन देते थे, जबकि

---

३९ राज०—V-४६९-४७५

४० वही—VI-२०९

४१ मनु०—पूर्वो० अ० I-८८ अ X श्लोक १ ७५-७६

४२ 'क्षेमेन्द्र स्टडीज'—सूर्यकान्त, पूना १९५४ पृष्ठ ११

घरो मे अध्यापन कार्य करने वाले सामान्यतया पढना व लिखना सिखाते थे। इन विशिष्ट विद्वानो को राजाओ का सरक्षण प्राप्त होता था जिनके द्वारा प्रदत्त अग्रहार तथा उनके राजस्व से ये अपनी आजीविका चलाते थे।[४३] बिल्हण ने भी लिखा है कि राजकलश ने अगूर के बाग, निर्मल जल वाले कूप तथा पौसरे और शास्त्र की व्याख्या करने वाले घर बनवाये थे।[४४] एक अन्य प्रसङ्ग मे विक्रमाङ्कदेवचरित मे उद्धरण है कि मुक्तिकलश वेदो का ज्ञाता था, उसके पुत्र राजकलश का पुत्र ज्येष्ठकलश वेद तथा पाणिनि सूत्र की पतजलि विरचित महाभाष्य की टीका का अध्ययन छात्रो को कराता था। जहॉ छात्र प्राङ्गण मे भी बैठते थे अर्थात् छात्रो की अधिकता के कारण अध्यापन कक्ष भर जाता था और उन्हे बाहर बैठना पडता था।[४५] ज्येष्ठकलश का पुत्र बिल्हण स्वय साङ्गवेद, पतजलि महाभाष्य का ज्ञाता था।[४६]

इससे भी यह बात अभिपुष्टित होती है कि विशेष क्षेत्र के विद्वान पृथक् रूप से अध्यापन कार्य करते थे। बी० एन० शर्मा जी ने[४७] इसकी आलोचना करते हुये लिखा है कि यद्यपि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो मे शिक्षा के लिये सुविधाये उपलब्ध थी फिर भी शिक्षा का स्तर उच्च वर्ग के मध्य ही उच्च था। स्त्री शिक्षा तथा समाज के अन्य वर्गो मे शिक्षा का स्तर निम्न था। शिक्षा भी प्रतिबधित प्रकार की थी। तकनीकी व विज्ञान विषयो की अपेक्षा धर्म, दर्शन व व्याकरण पर जोर दिया जाता था परिणामस्वरूप भारत अपने ही पडोसियो से पिछड गया। विदेशी सम्पर्क के अभाव तथा सकीर्ण व कठोर विचारधारा के कारण धर्म व दर्शन भी विकसित न हो सके। अलबेरूनी ने भी कहा है कि भारतीयो की मान्यता थी कि जितना वे शिक्षित है उतना कोई नही है और जितना वे जानते है उतना कोई नही—ये अच्छी शैक्षिक परम्परा नही मानी जा सकती।

कश्मीरी राजाओ द्वारा विद्वानो को सरक्षण दिया जाना— यहॉ के समाज की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। राजाओ तथा विभिन्न धनी लोगो द्वारा विद्वानो को अग्रहार तथा कर विहीन गॉव दान मे दिये

---

४३ 'क्षेमेन्द्र स्टडीज' पृष्ठ १७८
४४ विक्रम० पूर्वो० XVIII-७८
४५ वही—XVIII ७९
४६ वही—XVIII-८३
४७ सोशल—पूर्वो०—पृष्ठ ५३

जाते थे जिससे जहाँ एक तरफ विद्वानो का सरक्षण होता था वही दूसरी तरफ दान दाताओ की ख्याति तथा धार्मिक गुणो मे वृद्धि होती थी। कल्हण ने लिखा है कि जिस प्रकार पूर्व काल मे लुप्त वितस्ता नदी को महर्षि कश्यप ने कश्मीर मे पुन प्रकट किया था, उसी प्रकार राजा जयापीड ने सभी विद्याओ के उद्गम स्थान कश्मीर मे सब लुप्त प्राय विद्याओ को पुनरुज्जीवित किया। उसने विदेशो से धुरन्धर विद्वानो को बुलाकर लोगो को पठन-पाठन की ओर प्रवृत्त किया। क्षीरस्वामी नामक वैयाकरण से स्वय व्याकरण पढा और विधिवत महाभाष्य का अध्ययन किया। क्षीरस्वामी ने अमरकोष पर टीका तथा व्याकरण पर अनेक पुस्तके लिखी। 'कुट्टनीमतम्' के रचयिता दामोदरगुप्त उसके प्रधानमत्री तथा भट्ट उद्भट्ट, मनोरथ, शखदत्त, चटक, सन्धिमान, शुक्रदन्त, वामन आदि विद्वान उसके दरबार मे थे।[४८] राजा अवन्तिवर्मन ने स्वस्थापित एक वैष्णव मदिर मे एक वैयाकरण की नियुक्ति की थी।[४९] राजा यशस्कर ने आर्यावर्त से अध्ययन के लिये कश्मीर आने वाले विद्यार्थियो के लिये मठ बनवाया तथा इसके मठाधीश को अपने सारे राजचिन्ह तथा छत्र-चमर दे दिये, केवल टक अर्थात् सिक्का ढालने का अधिकार एव अन्तःपुर (रनिवास) उसे नही दिया।[५०] हर्ष सभी देशो की भाषाये जानता तथा उनमे कविता करता था—उसकी ख्याति अन्य देशो मे थी। वह पिता की ओर से मिलने वाले वेतन तथा पारितोषिक से वह विद्वानो का भरण-पोषण करता था।[५१]

उस राजा हर्ष ने विद्वानो को रत्नजटित अलकारो से अलकृत किया तथा उन्हे पालकी, रथ, छत्र आदि सम्मानसूचक वस्तुये भी दी।[५२] कवि बिल्हण राजा कलश के राजकाल मे कश्मीर छोडकर कर्नाटकनरेश परमार्दि का राजकवि बन गया, जिसने उसे विद्यापति का पद, हाथी की सवारी तथा राजा के समक्ष छत्र धारण करने का सम्मान दिया था किन्तु उसने भी राजा हर्ष देव की प्रशसा सुनकर कर्नाटक के समस्त वैभवो को तुच्छ समझ लिया।[५३] कवि मेण्ठ ने अपनी काव्य रचना हयग्रीववध

---

४८ राज०—पूर्वो० IV-४९५-४९७
४९ वही—V-२८-२९
५० वही—VI-८७-८८
५१ वही—VII ६१०
५२ राज०—पूर्वो० VII ६१०, ९३४
५३ वही—VII ९३५-९३७

राजा मातृगुप्त को सुना रहा था—राजा ने पुस्तक के नीचे सुवर्णपात्र इसलिये रखवा दिया था कि जिससे काव्यामृत रस जमीन पर गिरकर बह न जाय—राजा के इस आदर से कवि ने प्राप्त बहुमूल्य पारितोषिक को पिष्टपेषणमात्र एव तुच्छ समझा।[५४] यद्यपि यह रचना अब अनुपलब्ध है। मखक ने इस कवि को दूसरा वाल्मीकि माना है।[५५] राजा जयसिह ने विद्वानो के लिये इतने बडे-बडे भवन बनवाये थे कि उनकी छत पर सप्तर्षि आकर भवनो की ऊँचाई नापते से प्रतीत होते थे। प्रज्ञा (बुद्धि) और उपज्ञा (ईश्वर प्रदत्त स्वाभाविक ज्ञान) के मार्ग पर चलने वाले विद्वान पथिको की पथता राजा जयसिह जैसे सार्थवाह को पाकर निर्दोष बनी रही।[५६] राजा गोपादित्य ने मध्यदेश से वेदाध्ययन मे लीन ब्राह्मणो को लाकर खोनमुष गॉव मे बसाया था।[५७]

प्रमुख लेखन उपकरण

अलबेरूनी के अनुसार बच्चे विद्यालय मे काली तख्ती प्रयोग मे लाते थे तथा लम्बाई की ओर बॉये से दॉये सफेद वस्तु (खड़िया) से लिखा करते थे।[५८] आज भी पाठशालाओ मे यही पद्धति दिखाई पडती है। ब्यूहलर ने[५९] लिखने के लिये लकडी का तख्ता प्रयोग करने की बात उद्धृत की है। कल्हण की राजतरङ्गिणी से पता चलता है कि इस समय लेखन कार्य हेतु भोजपत्र (भूर्ज), खडिया (खटिका),[६०] कागज (भस्त्रा) एव स्याही (मषी)[६१] प्रयुक्त किये जाते थे।

शिक्षण सस्थाओ मे शिक्षको को क्रम, स्तर एव स्थिति के आधार पर विभिन्न वर्गो मे विभाजित किया गया था। नालन्दा विश्वविद्यालय मे सर्वोच्च पद कुलपति का होता था जो १०,००० विद्यार्थियो पर होता था। सम्पूर्ण विहार की देखभाल के लिये पण्डित होता था। किन्तु विक्रमशिला व जगदल्ल विश्वविद्यालयो में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले विद्यार्थियो को पण्डित का प्रमाणपत्र दिया जाता

५४ राज —III २६०-६२
५५ श्रीकण्ठ—पूर्वो० II ५३
५६ राज० पूर्वो० ९३४
५७ वही VIII २३९५-९७
५८ सचाऊ—भाग I पृष्ठ १८२
५९ **'इण्डियन पलियोग्राफी ब्यूहलर, पृष्ठ ८'**
६० राज०—पूर्वो० VII ५०८
६१ वही VII ४०

था, जिससे उच्चतर उपाधियाँ महापण्डित, उपाध्याय और आचार्य थीं।[६२] यद्यपि कल्हण ने पण्डित को राजा से भी श्रेष्ठ माना है।[६३]

साहित्य

अत्यन्त प्राचीनकाल से ही कश्मीर की धरती विद्वानो की भूमि रही है। नीलमतपुराण मे इसके बारे मे लिखा हुआ है— **कश्मीरमण्डलम् चैव प्रधानं जगतिस्थितम्**—नीलमत पुराण ५

कल्हण महोदय ने अपनी कालजयी कृति राजतरङ्गिणी मे लिखा है—कि कश्मीर की विद्वता, केसर, ऊँचे मकान, बर्फीले जल तथा अगूर अन्यत्र दुर्लभ है।

कवि बिल्हण ने तो यहाँ तक कह डाला कि जिस प्रकार केसर कश्मीर के अतिरिक्त कही नही उत्पन्न होती उसी प्रकार काव्य का विलास भी कश्मीर से अन्यत्र नही देखा जाता—

सहोदराः कुंङ्कुम केसराणाँ भवन्ति नून कविता विलासः।

न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्रमया प्ररोहः ।।विक्रम.I/२१

कल्हण पर टीका लिखने वाले स्टेइन महोदय के अनुसार यद्यपि भारत मे प्राचीन काल से लगभग सभी हिन्दू शासको के दरबार मे उनके यशोगान को लिखने वाले विद्वानो का वर्ग रहता रहा है किन्तु लेखन-परम्परा का जो नमूना कश्मीर मे हमे दृष्टिगोचर होता है वह शायद दूसरे स्थानो पर बहुत कम देखने को मिलता है।[६४] कल्हण जी ने अपने ग्रन्थ प्रणयन मे अपने पूर्ववर्ती विद्वानो—हेलराज, पद्ममिहिर, छविल्लाकर, सुवर्त तथा क्षेमेन्द्र की कृतियो का उपयोग किया था।[६५] किन्तु उसके सदृश कृति न तो पूर्ववर्ती न ही परिवर्ती कोई लेखक लिख सका। उन्होने इसीलिये लिखा भी है कि आजकल कवि तथा राजे पराये काव्य और पराये द्रव्य की चोरी करके अपनी कृति (नगर अथवा काव्य) को सजाते है।

---

६२ **'हिस्ट्री ऑव दि मेडिवल स्कूल ऑव इण्डियन लॉजिक'**—एस० सी० विद्याभूषण, कलकत्ता-१९०७, पृष्ठ ७९

६३ राज०—IV-४९१

६४ राज०—स्टेइन—पूर्वो० भाग I प्रस्तावना पृष्ठ ४

६५ राज०—पूर्वो० I ११-१४, १७-२०

परकाव्येन कवयः परद्रव्येण चेश्वराः। निर्लोठितेन स्वकृतिं पुष्णन्त्यद्यतने क्षणे॥[६६]

क्षेमेन्द्र ने भी लिखा है कि विद्वानो को पैसे के आधार पर न तो अपना मत परिवर्तित करना चाहिये और न ही राजदरबार मे जाना चाहिये। वास्तव मे जो शिक्षित है वह अपना जीवन मानवता के उत्थान, सत्य, असत्य के बीच भेद करने मे लगाता है वह अपनी शिक्षा बेचता नही।[६७] कल्हण महोदय ने कवियो के बारे मे लिखा है कि वह गुणवान कवि ही प्रशसा का पात्र होता है जिसकी वाणी राग-द्वेष से रहित एव सच्चे इतिहास को बतलाने मे समर्थ हो।

कवयः स एव गुणवान्रागद्वेषबहिष्कृता। भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती।[६८]

विवेच्यकालीन कश्मीर मे साहित्य के लगभग सभी रूप दृष्टिगोचर होते है। अलबेरूनी के समय के भारत मे भी वेदो के अतिरिक्त धर्मशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, व्याकरण, विज्ञान-भौतिक और रसायन आदि का अध्ययन किया जाता था। उन्होने लिखा है कि वेदो को लिखने की स्वीकृति नही थी। परिणामस्वरूप यह हुआ कि वे अनेक बार वेदो को भूले व गंवाए। वेद के मौखिक पाठ का प्रचलन तो १२वी शती तक था। कश्मीर निवासी प्रसिद्ध **ब्राह्मण वसुक्र** ने अपनी इच्छा से **वेद को लिखने और व्याख्या करने** का कार्य किया— यद्यपि वह भयभीत था कि वेद भूल न जाय और पूर्णत मनुष्य की स्मृति से निकल न जाय क्योकि उसने देखा कि लोगो के चरित्र का पतन हो रहा है और वे न तो सद्धर्म पर ध्यान दे रहे है न कर्म पर।[६९] समाज को सुचारू बनाने के लिये इस समय स्मृति पर टीकाये तथा कानून-सम्बन्धी पुस्तके लिखी गई। पूर्ववर्ती धर्मशास्त्रो व पुराणो पर आधारित लक्ष्मीधर ने कृत्यकल्पतरू लिखी। इसी प्रकार विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा नामक टीका पर दक्षिण भारत मे टीका लिखी गई। इसी प्रकार दायभाग, व्यवहारमातृका और काल विवेक भी लिखी गयी।[७०]

---

६६ राज० V-१६०

६७ वही—'दर्पदलन'—स० प० दुर्गा प्रसाद एव के० पी० परब—काव्यमाला सिरीज III बम्बई-१८९०, श्लोक ७, ४२, २८-५०

६८ राज०—पूर्वो० I-७

६९ सचाऊ—पूर्वो० भाग I पृष्ठ १२५-१२७

७० 'काणे—भाग I' पृष्ठ ३२५-३२७

मनु पर कुल्लूलभट्ट की टीका ११५०-१३०० ई० के मध्य लिखी गयी।[७१] जबकि दक्षिण भारत मे **देवाणभट्ट** ने **स्मृतिचन्द्रिका** लिखी।

शैव दर्शन एव धर्म के विकास के लिये दसवीं तथा ग्यारहवी शती विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है। राजा ललितादित्य ने शैव दर्शन से सम्बन्धित कान्यकुब्ज के दो परिवारो को कश्मीर लाकर (अग्रहार सहित) बसाया[७२] ११वी शती मे कश्मीर मे शैव तंत्र दर्शन पर अभिनव गुप्त के द्वारा पुस्तक लिखी गयी।[७३] १२वी शती के मिथिला के **गंगेश** द्वारा रचित **'तत्त्व चिन्तामणि'** न्याय दर्शन की प्रसिद्ध कृति है।[७४] **नैषधीयचरितम्** के रचयिता **श्रीहर्ष** ने शकर के द्वैतवाद पर आधारित **'खण्डनखण्डखाद्यम'** नामक पुस्तक लिखी—इसके अतिरिक्त उनकी दो पुस्तके **प्रमाण-मीमासा** तथा **योगशास्त्र** भी प्रसिद्ध रही है।[७५] इस काल मे तर्कशास्त्र का भी खूब अध्ययन होता था। चक्र-रक्तसङ्ग्रह, प्रबोधचन्द्रोदय, **वाचस्पतिमिश्र** कृत **'द्वैतसग्रह'**। **'चण्डीदास-कृत'—'काव्यप्रकाश दीपिका', शङ्खधर कृत-लवकमालक**-इस युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं[७६]। न्यायविद्यालय की जयसिह ने स्थापना की थी।[७७]

हेमचन्द्र की **'सिद्ध-हेमचन्द्र** व्याकरण की महत्त्वपूर्ण पुस्तक है जो प्राकृत व अपभृश के लिये भी प्रसिद्ध है। राजा अभिमन्यु की आज्ञा से **चन्द्राचार्य** ने व्याकरण महाभाष्य का प्रचार करते हुये **चान्द्र व्याकरण** की रचना की।[७८] इसी प्रकार महोदयस्वामी के मन्दिर मे महान वैयाकरण रामट उपाध्याय को व्याख्याता पद पर नियुक्त किया गया था।[७९] तुजीन के समय द्वैपायन व्यास का अशा-वतार नाटककार चदक कवि हुआ था।[८०] भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र का अध्ययन करने के कारण

---

७१ काणे—सभाग ८८
७२ अर्ली मेडिवल—पूर्वो०—परिशिष्ट III
७३ **'हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर—ए० बी० कीथ— आक्सफोर्ड'** १९५५, पृष्ठ ४८१
७४ 'विद्याभूषण'—पूर्वो० पृष्ठ ४०५
७५ **'हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर'** एम० विन्टरनित्ज—अनु० सुभद्रा झा—बनारस १९६३ भाग III पृष्ठ ५८९
७६ **'इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली'** XXII पृष्ठ १३१-१३९
७७ 'इण्डियन एन्टीक्वायरी' IV पृष्ठ २६७
७८ राज०—पूर्वो० ११७६
७९ वही—V-२९
८० वही I ३३७

जयापीड नृत्यगीत की कलाओ का मर्मज्ञ था। उसने क्षीरस्वामी नामक महान वैयाकरण को बुलवाकर स्वय व्याकरण पढ़ा तथा विधिवत् महाभाष्य का अध्ययन किया।[८१] महान गणितज्ञ **भास्कराचार्य** ने १२वी शती मे **'सिद्धान्त-शिरोमणि** नामक ग्रथ की रचना की-जिसमे चार खण्ड सम्मिलित है—लीला-वती, बीजगणित, ग्रहगणित तथा गोला। इसमे अतिम का सम्बन्ध ज्योतिषशास्त्र से है।[८२] ललितादित्य ने भु खार देश के महान रसशास्त्री के सहोदर चकुर को अपने यहाँ रखे था, वह रसशास्त्री रासायनिक प्रयोगो से सुवर्ण बनाना जानता था।[८३] अलबेरूनी ने भी नागार्जुन नामक रसायनशास्त्री का उल्लेख किया है।[८४]राजा **वसुनन्द** द्वारा **कामशास्त्र** पर विस्तृत ग्रथ लिखे जाने का उल्लेख कल्हण ने किया है।[८५] उन्होने कामशास्त्र की उत्कृष्ट कृति **कुट्टनीमतम्** की भी बात अपने पुस्तक मे की है जिसके रचनाकार **दामोदरगुप्त** राजा बलि के यहाँ शुक्राचार्य के समान सम्मानित होकर मुख्यमन्त्री का कार्य करता था।[८६]**मम्मट** कवि की कृति **'काव्य-प्रकाश'** काव्यशास्त्र की महत्त्वपूर्ण पुस्तक मानी जाती है[८७]। इसी समय कश्मीर मे **रुय्यक्** कृत **'अलकार सर्वस्व'**, **क्षेमेन्द्र** कृत **औचित्य-विचार चर्चा** तथा **कविकष्ठाभरण, भोज** कृत **'सरस्वती कण्ठाभरण'**, **अभिनवगुप्त** कृत **'वक्रोक्तिजीवित'** काव्य शास्त्र की प्रमुख रचनायें मानी जाती है। इम्र समय के कश्मीरी साहित्य मे निम्न विद्वानो का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है—

(१) **भर्तृमेण्ठ—**'ह्यग्रीववध' नामक महाकाव्य जो इस समय अनुपलब्ध है—के रयचिता भर्तृमेण्ठ तत्कालीन कश्मीरनरेश मातृगुप्त के समकालीन थे, अपनी इस रचना को राजा को सुनाकर उन्होने बहुमूल्य पारितोषिक प्राप्त किया था।

(२) **मातृगुप्त—**विक्रमादित्य के राज्यकवि थे, इन्हे अपने स्वामी की कृपा से कश्मीर का राज्य प्राप्त हुआ था।

---

८१ राज० IV४८९
८२ 'कीथ-पूर्वो०-४२३'
८३ राज०—IV-२४७
८४ सचाऊ—पूर्वो० खण्ड I, पृ० १८९
८५ राज०—पूर्वो० I ३३७१
८६ वही IV४९६
८७ वही

(३) **शिवस्वामी**—कश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा के राज्याश्रित कवि, शैव मतावलम्बी भट्टारक-स्वामी के पुत्र एव **कप्फिणाभ्युदय** के रचयिता शिव स्वामी का समय नवीं शती का आरम्भ माना जाता है। इनकी शैली भारवि तथा माघ की कथा शैली से प्रभावित है जिसका कथानक बौद्धो के अवदानो एव उनके कथा शिल्प पर आधारित है।

(४) **अभिनन्द**—कश्मीर के शतानन्द के पुत्र-अभिनन्द का ३६ सर्गो वाला **रामचरित** नामक महाकाव्य—जिसका उल्लेख भोज (१००० ई०) तथा महिमभट्ट (११०० ई०) ने किया है का समय नवी शती प्रतीत होता है।

(५) **शंकुल**—मम्मट तथा उत्पलक (९वी शती) नामक विद्वान भाइयो के युद्ध के उल्लेख वाला **'भुवनाभ्युदय'** नामक ग्रथ लिखकर नवी शती का कवि शकुल अमर हो गया।

(६) **जल्हण**—(१२वी शती) जल्हण कवि द्वारा राजपुरीनरेश सोमपाल की प्रशसा मे रचित **'सोमपालचरित'** नामक काव्य का विशेष स्थान है।

(७) **आनन्दवर्धन**—कश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा (८५५-८८३ ई०) के आश्रित विद्वान आनन्द-वर्धन जो काव्यशास्त्री के साथ-साथ उच्चकोटि के कवि भी थे। उन्होने **'अर्जुनचरित'**, **'विषमबाण-लीला'**, **'देवीशतक'**, **'ध्वन्यालोक'** लिखी।

(८) **महिमभट्ट**—आनन्दवर्धन के बाद तथा क्षेमेन्द्र से पूर्व के हुये महिमभट्ट ने काव्यशास्त्र पर अप्राप्य ग्रथ **'तत्त्वोक्तिकोष'** एव **व्यक्तिविवेक** लिखा।

(९) **शम्भु कवि**—'शम्भु कवि' की रचना राजेन्द्रकर्णपूर कश्मीरनरेश हर्षदेव की प्रशस्ति है—जिसके दरबार मे कवि ने **'अन्योक्तिमुक्तालनाशतक'** की रचना की थी।

(१०) **जोनराज**—कल्हण के कार्य को आगे बढ़ाने का काम जोनराज ने किया, उन्होने उसे उसी शैली मे सुलतानजैनुलआब्दीन् के राज्य तक आगे बढाया। उनकी मृत्यु १४५९ ई० मे हुई।

(११) **श्रीवर**—जोनराज के शिष्य श्रीवर ने जैनराजतरङ्गिणी मे १४५९-१४८६ ई० तक के काल का इतिहास चार भागो मे लिखा।

(१२) **प्राज्यभट्ट तथा शुक**—ने **राजावलिपाताका** मे अकबर द्वारा कश्मीर का अपने राज्य मे सम्मिलित किये जाने के कुछ वर्ष बाद तक के इतिहास का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त विशिष्ट लेखको मे निम्न है—

हरविजय के लेखक **रत्नाकर** (नवी शती)

काव्यालकार के रचयिता **भामह** (छठी शती)

काव्यालकार सार संग्रह—एव **भामह टीका** के रचयिता **उद्भट भट्ट** (८वी शती)

काव्यालंकार सूत्र के रचयिता **वामन** (८वी शती)

काव्यालंकार के रचयिता **रुद्रट** (९वी शती)

कल्हण के अनुसार सम्राट अवन्तिवर्मा के साम्राज्य मे **मुक्ताकण, शिवस्वामी, ध्वन्यालोक** के रचयिता **आनन्दवर्धन** तथा **हरिविजय** के रचनाकार **राजानक** चार विद्वान बहुत अधिक प्रसिद्ध हुये। क्षेमेन्द्र ऐसे विद्वान थे जिन्होने साहित्य की लगभग सभी विधाओ पर कार्य किया। उनकी कृतियो औचित्य विचार चर्चा, कविकण्ठाभरण तथा सुवर्ततिलक मे उपलब्ध श्लोको के उद्धरण पर विद्वानो की निम्नतालिका प्रस्तुत की गयी है।[८८]

औचित्यविचारचर्चा मे उद्धृत लेखक है—

अमरक, आनन्दवर्धन, कार्पटिका, कालिदास, कुमारदास, गगक, गौड़कुम्भकार चक्र, चन्द्रक, चन्दक, दीपक, धर्मकीर्ति, परिमल, भट्टनारायण, भट्ट प्रभाकर, भट्टेन्दुराज, भवभूति, माघ, मातृगुप्त, मालवकुवलय, मालवरुद्र, मुक्तापीड यशोवर्मदेव, राजशेखर, लट्ट, लट्टन, वराहमिहिर, व्यास, स्यामल, श्रीमातुपालराज, श्रीहर्ष आदि।

कविकाष्ठाभरण मे उद्धृत लेखक—अमरक, आर्यभट्ट, इन्द्रभानु, उत्पलराजदेव चक्रपाल, चन्द्रक, भट्टदामोदर गुप्त, भट्टनारायण, भट्टबाण, भट्ट भल्लट, भट्टमयूर, भट्टमुक्तिकलश, भट्टवाचस्पति, भट्टश्रीशिवस्वामी, भट्टोदयसिह, राजशेखर, लक्ष्मणादित्य, विद्यानन्द, व्यास, श्रीहर्ष आदि।

---

८८ 'क्षेमेन्द्र स्टडीज'—सूर्यकान्त—पूना, १९५४ यत्र-तत्र

सुवर्ततिलक—मे उद्धृत लेखक गण—अभिनन्द, इन्दुराज, उत्पलराज, कलशक, कालिदास, गण्डिनक, चक्र, तुजीन, दीपक, नारायण भट्ट, परिमल, बाण, भर्तृमेण्ठ, भर्तृहरि, भवभूति, भारवि, मुक्तकण, यशोवर्मन, रत्नाकार, राजशेखर, रिसु, लातदिन्दिर, वल्लट, याग्भट्ट, वीरदेव, व्यास, श्यामल, शाहिल, हर्ष आदि।

क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामञ्जरी, सोमदेव का कथासरित्सागर, जयरथ का हरचरितचिन्तामणि, जिनेश्वर सूरी का कथाकोष प्रकरण ग्यारहवी शती के कथासाहित्य की प्रमुख रचनाये है। ये कथा साहित्य पद्य व गद्य तथा मिश्रित रूप मे प्राप्त होती है। हाल की गाथासप्तशती की परम्परा पर **जयदेव** ने **'गीत-गोविन्द'** नामक लघुगीतिकाव्य की रचना की थी जबकि **धोयी** ने **मेघदूत** की तरह **पवनदूत** की रचना किया।

ललित कलायें एवं शिल्प विज्ञान

सङ्गीत कला

यज्ञ के समय सामवेद के श्लोको के साथ सङ्गीत का प्रयोग किया जाता था।[८९] इसका सम्बन्ध गन्धर्वो से होने के सन्दर्भ प्राप्त होते है।[९०] सङ्गीत कार्यक्रमो के आयोजन धार्मिक, सामाजिक उत्सवो या अन्य अवसरो पर किये जाते थे। यह मनोरञ्जन के साधन के रूप मे भी प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। कश्मीर मे गायन, वादन एव नृत्य का उल्लेख मनोरञ्जन के साधन के अन्तर्गत किया जा चुका है।

(१) गायन

गायन के यद्यपि भेद नही प्राप्त होते किन्तु पुराण, स्तोत्र तथा ब्रह्म के सन्दर्भ मे क्रमश. वाचन, प्रकीर्तन तथा घोष शब्दो का प्रयोग किया गया है।[९१] यहाँ— **वाचन** का अभिप्राय **सामान्य गायन** से, **प्रकीर्तन** का अभिप्राय **समूह गान** से तथा **घोष** का अभिप्राय **वैदिक मंत्रो के उच्चारण** या अन्य तेज आवाज करने से लगाया गया है।

---

८९ नीलमत-७१४

९० वही ६३९,

९१ वही ४१२-४१३

नीलमतपुराण मे चार परम्परागत व्यावसायिक गायको का उल्लेख किया गया है यथा— सूत, मागध, वन्दी तथा चारण[९२] ये दूसरो का कार्य करते थे— इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गायको का एक पृथक समूह भी रहा होगा।[९३] समराङ्गणसूत्रधार मे नाटकशाला, मल्लयुद्धशाला, नृत्य-शाला तथा चित्रशाला का उल्लेख हुआ है।[९४] कल्हण महोदय ने लिखा है कि राजा कलश के शासनकाल मे सर्वप्रथम कश्मीर मे उपागगीत को विकसित किया गया था।[९५]

(२) वादन

वादन, गायन का अभिन्न अङ्ग माना गया है। कश्मीर मे वेणु (बसरी), वीणा, मृदग, नगाडा, पटहवाद्य, तुहड़ी, कासे की थाली प्रमुख वाद्य यत्रो का उल्लेख हुआ है।

नृत्यकला

सङ्गीत के साथ-साथ नृत्य के आयोजन भी कला के अवयव माने गये है। नृत्य कार्यक्रमो का आयोजन मदिरो, नाट्यशालाओ तथा बाह्य प्राङ्गणो मे किये जाते थे। इसका उल्लेख-मनोरञ्जन के साधन के अन्तर्गत किया जा चुका है।

चित्रकला

नीलमतपुराण[९६] मे बुद्ध के जन्मदिवस के अवसर पर लोगो द्वारा चैत्यो को सुन्दर चित्रो से अलकृत करने के उल्लेख मिलते है। कपडो,[९७] दीवारो तथा जमीन पर चित्रकारी के साक्ष्य प्राप्त होते है। दामोदरगुप्त ने गणिकाओ द्वारा अपने व्यवसाय के प्रचार हेतु चित्रकला का अभ्यास करने का उल्लेख किया है।[९८] सोमदेव ने ऐसे चित्रकारो का उल्लेख किया है जो अपने स्वामी के गुप्त योजनाओं के लिए कार्य करते थे। राजा नरवाहन द्वारा चित्रकला प्रतियोगिता आयोजित कराने का भी उल्लेख

९२ नीलमत २३, ४२८, ५२८, ८१६
९३ काणे—पूर्वो० खण्ड II प्लेट I पृ० ९० हॉप्किन्स—जन० अमे० ओ० सो० XIII पृ० ३२६
९४ खण्ड I १५ १८
९५ राज०— पूर्वो० VII ६०६, ११४०
९६ नीलमत ६८८
९७ वही ४१४, ६५५, ७२७, ७८८
९८ **दामोदरगुप्त कृत कुट्टनीमतम्**—पृ० ५९, श्लोक ३०६

हुआ है जिसमे बडे-बडे चित्रकार भाग लेते थे।[९९] कल्हण ने लिखा है कि कर्नाटक नरेश परमार्दि की रानी 'चन्दला' का चित्र सेनापति मदन कही से पा गया था— उसे देखकर राजा हर्ष इतना आसक्त हो गया था कि उस चित्र मे निर्मित रानी की माता, सहेलियो तथा स्वय उसे प्रसन्न करने के नाम पर उसके कर्मचारी उससे काफी धन ऐठते थे और वह मूर्ख राजा उन्हे यह सोचकर धन देता था कि ये मेरा मिलन चन्दला से करवा देगे।[१००]

मूर्तिकला

नीलमत पुराण में पत्थर, मिट्टी, सोना, चॉदी, तॉबा-कॉस्य, लकडी, बालू, घी, तिनका की मूर्तियॉ बनाये जाने के उल्लेख हुए है।[१०१] कल्हण ने सोने, चॉदी, तॉबा, कॉसा, प्रस्तर, पीतल की मूर्तियो के बनाये जाने के अनेक प्रसङ्ग प्रस्तुत किये है।[१०२] उन्होने स्त्रीराज्य मे नृसिह भगवान की ऐसी मूर्ति का उल्लेख किया है जो ऊपर नीचे चुम्बक लगे होने के कारण निराधार टिकी हुई थी।[१०३] इससे लौह मूर्तियो के बनाये जाने की सभावना प्रतीत होती है। राजा मेघवाहन यज्ञ मे पशुबलि के स्थान पर पिष्टपशु (आटे से बने पशु) तथा घृतपशु से बलिदान का काम करता था।[१०४] सन्धिमतिक द्वारा हिमनिर्मित शिवलिङ्ग का पूजन करने का उल्लेख हुआ है।[१०५]

विष्णु के चार मुख, चार बाहे, और आयुध पुरुष के रूप मे सन्दर्भ प्राप्त होते है।[१०६] विष्णु धर्मोत्तर पुराण[१०७] मे इस प्रकार की मूर्तियो की विस्तार से चर्चा की गई है। जे० एन० बनर्जी के अनुसार इस प्रकार की मूर्तियॉ पाञ्चरात्र धर्म के कारण प्राय कश्मीर मे प्राप्त होती है।[१०८] राजा ललितादित्य द्वारा परिहासपुर मे परिहास केशव की रजतमय मूर्ति, विष्णु भगवान की स्वर्णमय मूर्ति

---

९९ कथा०—पूर्वो० ८९-९० **'वभूव ग्रामशतमुक्'**, वाचस्पति गैरोला—'भारतीय चित्रकला दिल्ली, १९९० पृ० २०५-२०७'

१०० राज०—पूर्वो० VII ११२५

१०१ नीलमत० ४०९-१०, ४४०, ४७९, ५३१, ६६१, भागवत पुराण-XI २७१२

१०२ राज०— IV-१९२-१९६, VIII-६९६-७१०, १०९१,

१०३ वही—IV-१८५

१०४ वही III-७

१०५ वही II-३८

१०६ नीलमत—१२०५

१०७ वि० ध० पु० III ८५, ४३-४४

१०८ जे० एन० बनर्जी 'डेवलप्मेन्ट ऑव हिन्दू इकॉनाग्राफी, कलकत्ता पृ० ४०८'

वराह भगवान की स्वर्ण कवचधारी प्रतिमा, श्री गोवर्धन की रजतमयी प्रतिमा, चौवन हाथ ऊँचे पाषाणस्तम्भ पर सर्पो के शत्रु गरुड की प्रतिमा, चौरासी हजार तोले सोने की जिन मूर्ति, चौरासी हजार तोले चॉदी की परिहास केशव की मूर्ति तथा चौरासी हजार प्रस्थ (सेर) कॉसे की भगवान बुद्ध की आकाशव्यापी मूर्ति बनवाया।[१०९] इसी राजा ने कर्नाटक देश मे शासन करने वाली रट्टा नाम की रानी को पराजित कर उसके राज्य मे नृसिह (नृहरि) भगवान की ऐसी मूर्ति बनवा दी थी। जिसमे नीचे तथा ऊपर चुम्बक रहने के कारण मूर्ति निराधार रुकी रहती थी।[११०] अपने इष्ट देव के प्रति भक्ति एव समर्पण को प्रदर्शित करने के लिये कश्मीर के राजाओ, रानियो, मंत्रियो ने अनगिनत देव-प्रतिमाये स्थापित-करवायी, ये इस बात के प्रमाण है कि कश्मीर मे मूर्ति निर्माण की समृद्ध परम्परा अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलन मे रही है जो विवेच्यकाल मे अधिक समृद्ध रूप मे उपस्थित रही थी।

भारत मे कला के क्षेत्र मे दो स्वतत्र शैलियो का विकास हुआ है—गान्धार शैली तथा मथुरा शैली। वासुदेव शरण अग्रवाल ने गान्धार कला के सात स्थलो का सकेत किया है— तक्षशिला पुष्कलावती, नगरहार, स्वातघाटी, कापिशी, बामियॉ तथा बाह्लीक (बैक्ट्रिया)[१११] । प्रारम्भ मे मथुरा शैली को गान्धार शैली से ही निःसृत माना जाता था किन्तु अग्रवाल महोदय ने सिद्ध किया कि सर्वप्रथम मथुरा मे ही बौद्ध मूर्तियो का निर्माण किया गया जहॉ इनके लिए पर्याप्त धार्मिक आधार था और इस प्रकार यह पूर्णतया गान्धार शैली से स्वतत्र भारतीय शैली थी।[११२] कश्मीर घाटी से उपलब्ध मूर्तियो का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण करने पर वे गान्धार शैली के अधिक समीप प्रतीत होती है किन्तु कुछ ऐसी कलाकृतियो जो राजाओ द्वारा बाहर से लाये गये कलाकारो द्वारा निर्मित की गई— मे संयुक्त प्रभाव दिखाई पडना स्वाभाविक है।

वास्तु कला

भवन, गृह, निवेशन, आलय, वेश्य, आयतन, अट्टालक भवनो के लिये प्रयुक्त शब्द है। यद्यपि इनमे अन्तर कर पाना सरल कार्य नही है।[११३] धार्मिक कार्यो के निमित्त मन्दिर, विहार, चैत्य, मठ

---

१०९ राज०—पूर्वो० IV-१९०-२०३

११० वही IV १८५

१११ 'भारतीय कला'— पृ० २७४

११२ वही पृ०-२४३-२४४

निर्मित किये जाते थे। चूँकि इस समय धार्मिक सस्थाएँ ही शिक्षा कार्य का सम्पादन करती थी इसलिए इनसे सम्बन्धित पुरोहित, शिक्षक, छात्र, मुनिजन इन्ही भवनो या मन्दिरो मे रहा करते थे। प्राय राजा या अन्य धर्मलाभ की इच्छा रखने वाले लोग इस प्रकार की इमारतो का निर्माण करवाकर सम्बन्धित सस्थाओ को अग्रहार के रूप मे समर्पित कर दिया करते थे।[११४] कल्हण ने राजा हर्ष की राजधानी के गगनचुम्बी तथा पर्वतीय प्रदेश के स्वर्णकलशो से विभूषित राजप्रासादों की न केवल प्रशसा की है अपितु उन्हे विश्व की प्रमुख वस्तु बताया है।[११५] ये इमारते प्राय पत्थरो की बनायी जाती थी— इसका सकेत एक प्रसङ्ग से प्राप्त होता है। कल्हण ने लिखा है कि राजा लव ने लेदरी नदी के तट पर चौरासी लाख पत्थरो से लालोर नगर बनवाकर ब्राह्मणो को दान मे दिया।[११६] इसी प्रकार राजा अशोक ने श्री विजयेश्वर मंदिर को तुड़वाकर पत्थर का मदिर बनवाया।[११७]

चैत्य मे पूजा स्थल के चारो ओर मण्डपयुक्त रास्ता होता था जबकि विहार मे— जहाँ प्राय सन्यासी या भिक्षु रहते थे— गर्भगृह के चतुर्दिक खुला मैदान होता था।[११८] हरवन मदिर के ध्वशा-वशेषो के आधार पर आर० सी० काक[११९] ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्राचीनकाल मे कश्मीर मे मदिरो मे मण्डप तथा उसके पीछे गर्भगृह होता था।

भवन-निर्माण हेतु पत्थरो का प्रयोग किया जाता था जबकि इनमे दरवाजे व खिडकियाँ लकडी की होती थी। मकानो की अट्टालिकाएँ सडको की तरफ होती थी। ऐसी ही अट्टालिकाओ से राजा सन्धिमतिक पर धान के लावो के बरसाये जाने का उल्लेख कल्हण ने किया है।[१२०] भवनो की पुताई चूना से किये जाने के भी प्रसङ्ग प्राप्त होते है।[१२१]

---

११४ राज० पूर्वो० I-८८, ९३-९४, १०२, १०३, १६८-१७५, २८९, ३०६, ३२९, ३३८, ३४७, II-१४, ५५, ६२, १३५, III-८, ९-१३, २६३, ३५३, ३५५-३६१, ४३९, ४६०, ४६२-४६४, ४७६, ४८० IV ३-१०, ७९, १८१-१९४, २०४, २१०, २११-२१३, २१६, ४८३-४८४, ५०७-५०८, ५१७, ६९५, V-३८-४६, ११८-१२०, १५६, २४४-२४५, VI—१४२, १६९, १७८-१८६, २९९-३०६, VII—१४९, १५१, १८०-१८७, ५२४-५३२, ६०६-६०८, ६९६-७१०, ९५६, VIII—७८-८०, ५८०, २३८०, ३३१८, ३३२१, ३३५४, ३३९१

११५ वही VII-९३५-९३९

११६ वही I-८६-८७

११७ वही I-१०५

११८ आर्क्या० सर्वे० १९१५-१६ पृ० ५२

११९ आर० सी० काक० **'ऐन्शिएण्ट मानूमेन्ट्स ऑव कश्मीर'** पृ० ५०-५१

१२० राज० पूर्वो० II १११

१२१ वही VIII-३३७९

आवागमन की सुविधा हेतु नदियो पर पुल बनाये जाते थे।[१२२] लोगो की चिकित्सीय देखभाल के लिए— आरोग्यशाला निर्मित की जाती थी।[१२३] जबकि सिचाई की सुविधा हेतु रहट[१२४], तालाब[१२५], नहर[१२६] तथा बॉध[१२७] निर्मित किये जाते थे, जिनमे विशेष तकनीक का प्रयोग किया जाता था।

काव्य-कला

कश्मीर भूमि अत्यन्त प्राचीनकाल से काव्य कला के क्षेत्र मे समृद्ध रही है तभी तो महाकवि बिल्हण ने कह डाला कि जिस प्रकार केसर कश्मीर के अतिरिक्त कही नही उत्पन्न होती उसी प्रकार काव्य का विलास भी कश्मीर से अन्यत्र नही देखा जाता—

इसी प्रकार कल्हण महोदय ने कश्मीर की विद्वता, केसर, ऊँचे मकान बर्फीले जल तथा अगूर को अन्यत्र दुर्लभ माना है।[१२८] काव्य कला की महत्ता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि कल्हण ने अपनी कालजयी रचना राजतरङ्गिणी का प्रारम्भ भगवान अर्द्धनारीश्वर की वन्दना से करते हुए उसके तुरन्त बाद कवि व उसके काव्य को अमृत से भी श्रेष्ठ माना है।[१२९] कल्हण ने अपने— पूर्ववर्ती काव्यकारो द्वारा रचित ग्यारह ग्रथो का उपयोग अपनी रचना मे किया।[१३०] इनमे हेलाराज, पद्ममिहिर, छविल्लाकर सुवर्त, क्षेमेन्द्र प्रमुख है। भर्तृमेण्ठ, मातृगुप्त, शिवस्वामी, अभिनन्द, शकुल, जल्हण, आनन्दवर्धन, महिमभट्ट, शम्भुकवि, जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट, रत्नाकर, भामह, उद्भट, वामन, मुक्ताकण शिवस्वामी, आनन्दवर्धन, राजानक, सोमदेव, जयरथ, हाल सदृश विद्वानो की एक समृद्ध परम्परा मिलती है। राजा जयापीड ने कश्मीर मे लुप्त सब प्रकार की विद्याओ को ठीक उसी प्रकार पुनरुज्जीवित किया,

---

१२२ राज० पूर्वो० III-३५४, V-१२०, VIII-३३५७-५८
१२३ वही III-४६१
१२४ वही IV-१९१
१२५ वही I-२६७-२६८, VIII-२४३२
१२६ वही VIII-३३५६
१२७ वही I १५६-१५९
१२८ राज० पूर्वो० VII ९३७-९४१
१२९ वही I ३-५
१३० वही I ९

जिस प्रकार पूर्व काल मे महर्षि कश्यप ने वितस्ता नदी को पुन प्रकट किया था।[१३१] राजा अवन्ति वर्मा, राजा यशस्कर, राजा हर्ष तथा राजा जय सिह ऐसे कश्मीर नरेश हुए है, जिन्होने सदैव विद्वानो को सरक्षण दिया।

शिल्प कला

सभी शिल्पो के प्रवर्तक विश्वकर्मा माने जाते है इसीलिए कश्मीर के मूल निवासी उनकी पूजा करते थे— **विश्वकर्मा तथा पूज्य· सर्वशिल्पप्रवर्तकः— नीलमत० ६२३** शिल्प कला के अन्तर्गत पहनावे के लिये प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के वस्त्रो के बुनने, सिलने, धुलाई करने, रगने का उल्लेख किया जा सकता है। इसी प्रकार कश्मीर के धनाढ्य वर्ग द्वारा ही नही अपितु सामान्य जनता द्वारा सोने, चॉदी, हीरे-जवाहरात के आभूषणो तथा विभिन्न प्रकार की सौन्दर्य प्रसाधन सामग्रियो का प्रयोग किया जाता था। विभिन्न रगो तथा बनावटो के चमडे, लकडी के उपानह प्रयुक्त होते थे। सङ्गीत कलाकारो द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के वाद्य-यत्रो तथा सैनिको द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले अस्त्र-शस्त्र, रथ व अन्य आयुध सामग्रियॉ, वर्तन, सिक्के, मूर्ति, नाव तथा अन्य आवश्यक वस्तुओ से सम्बन्धित धातु उद्योग, मृतभाण्ड-शिल्प, प्रस्तर शिल्प, काष्ठ-शिल्प, हाथी-दॉत से निर्मित सामग्री, कॉच शिल्प, छत्र शिल्प कश्मीर मे उपलब्ध समृद्ध शिल्प कला की परिचायक है।

---

१३१ वही IV ४८६-४८८, ४९३

सप्तम अध्याय

उपसंहार

- संदर्भ ग्रन्थ—सूची

सप्तम अध्याय

उपसंहार

पूर्वमध्यकाल भारतीय इतिहास मे ऐसा काल माना जाता है जब ऐसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एव सास्कृतिक परिवर्तन दिखाई पडते है जिनका दीर्घ कालिक प्रभाव पडा। यद्यपि हमारे अध्ययन का समय (१००० ई० से १२०० ई०) इसी कालावधि मे पडता है परन्तु उत्तुग पर्वत-मालाओ से घिरे, शेष भारत से लगभग पृथक कश्मीर को उपरोक्त परिवर्तन उस सीमा तक प्रभावित नही कर सके जितना की भारत के अन्य भागो को। लम्बी एव विस्तृत फैली हुई पर्वत श्रृखलाओ के बीच से बने दर्रो एव मार्गो का व्यापारिक महत्त्व अवश्य था, किन्तु कश्मीरी शासक सदैव इनकी सुरक्षा के प्रति सजग रहते थे—यह उनके द्वारा निर्मित किलो तथा सीमा चौकियो से स्पष्ट होता है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण कश्मीर अन्य पडोसी पहाडी राज्यो—कास्थवाड, चम्पा, वल्लापुर, विषलाटा, राजपुरी, लोहर, पर्णोत्स, द्वारवटी, उरशा, कर्णाह, दरद तथा भौट्ट मे प्रमुख था तथा उन्हे अपनी सस्कृति से प्रभावित किया। इन पडोसी राज्यो से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके भी कश्मीरी शासको ने उनके मध्य अपनी स्थिति सुदृढ बनाये रखी। राजा अनन्त के राज्यकाल (१०८७-८८ ई०) मे कश्मीर मे पहाडी राजाओ का दरबार आयोजित होना इसका प्रमाण है। जयसिह के समय— मखक द्वारा आयोजित सभा मे कन्नौज तथा कोकण सदृश राजाओ के प्रतिनिधियो की उपस्थिति से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर की महत्ता अन्य भारतीय राज्यो के मध्य भी थी।

नीलमतपुराण मे कश्मीरी राजतत्र का दैवीकरण किया गया है किन्तु राजतरङ्गिणी मे कश्मीर भूमि को पार्वती तथा उसके शासक को शिव का अश माना गया है। इस प्रकार राजा के दैवीकरण को कश्मीर मे स्वीकार किया गया है। राजा गौरवमयी उपाधियॉ धारण करते थे। धर्म, अर्थ तथा काम को राजा का प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है। राज्य के उत्तराधिकार का वंशानुगत सिद्धान्त प्रचलित था—फिर भी राजा सलाह के लिए सभासदो की समिति बनाता था। राजा के चयन, नामॉकन के भी

प्रमाण प्राप्त होते है तथा ऐसे दृष्टान्त भी प्राप्त होते है जब राजा के निर्णयो को मत्रिगण अथवा पुरोहितो की परिषद परिवर्तित करवा देते थे। यद्यपि प्राय इनका विरोधी द्वारा दुरुपयोग किया जाता था। राजा लोग अपने राजवैभव को प्रदर्शित करने के लिए बडे-बडे राजमहल व रनिवास बनवाते थे तथा राज-दरबारो पर अत्यधिक व्यय करते थे। जिसका व्यय जनता को कर के रूप मे देना पडता था। राजा की कृपा पर मत्रियो की नियुक्ति होती थी। यद्यपि धन द्वारा भी मत्रीपद प्राप्त किये जाते थे और इस स्पर्धा मे—प्राय. राज्य को तथा जनता को नुकसान उठाना पडता था। प्रशासनिक कर्मचारी जनता का विविध प्रकार से शोषण करते थे। जिनके प्रभाव को कम करने का प्रयास उच्चल जैसे कुछ राजाओ ने किया था। कश्मीर मे द्वैराज्य के भी प्रमाण प्राप्त होते है। भारतीय सेना के चार परम्परागत अङ्ग पैदल, अश्व सेना, गज सेना तथा रथ मे से प्रथम तीन कश्मीरी सेना मे विद्यमान थे जबकि रथ के स्थान पर कर्णिरथ मिलते थे जो मनुष्यो द्वारा कन्धो से ढोये जाते थे। विलियम्स महोदय ने इसका तादात्म्य 'तीरो को ले जाने वाले वाहन' से स्थापित किया है परन्तु कश्मीर की उबड-खाबड भूमि—मे जहॉ अश्वो द्वारा वाहन ले जाना सरल न था—मनुष्यो द्वारा कन्धो पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक सामान ले जाने के लिए प्रयुक्त होने वाले वाहन रहे होगे। पोरस व सिकन्दर के मध्य के झेलम युद्ध तथा गजनी के महमूद के हाथो काबुल के शाही के पराजय के पीछे भारतीय राजाओ की गजसेना को उत्तरदायी मानने के कारण कश्मीर मे हाथियो का प्रयोग लगभग बन्द सा हो गया था।

कश्मीर मे एकाग तथा तत्रिन सैन्य वर्ग थे, जो युद्ध मे राजाओ की मदद करने के साथ-साथ प्रशासनिक कार्यो की भी देख-रेख करते थे। कश्मीरी राजा आक्रमण से पूर्व रणनीति बनाते थे तथा विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्रो के साथ-साथ विपक्षी सेना मे आतक फैलाने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद नीति का प्रयोग करते थे। यद्यपि तीव्र अस्त्रो का उपयोग अवैध माना जाता था किन्तु युद्ध भूमि मे वीरगति प्राप्त करने वालो का सम्मान किया जाता था। पराजित राजे आत्मसमर्पण के अनेक प्रतीको को स्वीकार कर शान्तिपूर्वक शासन करते थे। कश्मीर मे न्याय एव दण्ड व्यवस्था बडी उच्चकोटि की थी। राजा यशस्कर, राजा उच्चल तथा राजा हर्ष ऐसे न्यायप्रिय राजा हुए है जो सदैव न्याय के प्रति कटिबद्ध रहे है। क्षेमेन्द्र ने चार प्रकार के न्यायालय माने हैं—प्रतिष्ठिता, अप्रतिष्ठिता, मुद्रिता तथा

शासिता। न्यायप्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के साक्ष्य प्रयोग किये जाते थे। कल्हण महोदय ने दिव्य परीक्षा के प्रचलित होने का उल्लेख किया है।

कश्मीर मे यद्यपि यूरोप की भॉति सामती व्यवस्था नही प्रचलित थी किन्तु राजा के अधिकारियो तथा समाज के अन्य सम्भ्रान्त लोगो द्वारा कश्मीर मे सामती व्यवस्था प्रचलित थी जिसे 'ऊपर से सामन्तवाद' तथा 'नीचे से सामन्तवाद' की सज्ञा दी गई है।

कश्मीर मे कृषि प्रमुख व्यवसाय था, जहॉ की भूमि पर व्यक्ति विशेष का स्वामित्त्व, राजा का स्वामित्त्व, सामुदायिक स्वामित्त्व सामन्तो के स्वामित्त्व, राजा एव कृषक का सयुक्त स्वामित्त्व होता था। भूमि बटाई पर भी दी जाती थी। राजा तथा सामतो द्वारा सेवा के बदले भी भूमि दान मे दी जाती थी। इस प्रकार के भूमिदानो के लिखित दस्तावेज रखे जाते थे जिनके लेखन कार्य को एक विशिष्ट लिपिक वर्ग करता था, जिसे दिविर या कायस्थ कहा जाता था। कश्मीरी लोग अपने पारिवारिक सदस्यो के साथ छोटे-छोटे खेतो मे कृषि कार्य करते थे। खेतो की सिचाई के लिए नदियो के जल का उपयोग किया जाता था जिनमे बॉध बनाये जाते थे। कल्हण महोदय ने सुय्य— द्वारा वितस्ता नदी की सफाई कराने का बडा ही कौशलपूर्ण आख्यान प्रस्तुत किया है। सिचाई के लिए रहट तथा चमड़े के चरसो का भी उपयोग किया जाता था।

कश्मीर अगूर की खेती के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध था किन्तु इसके अतिरिक्त यहॉ चावल, यव, कोद्रव, मुद्‌गा उडद, तिल, नरसो, सतरा, सेव खजूर, केला, नीबू, केला, अनार, द्राक्षासव की पैदावार की जाती थी। नमक, मिर्च, हीग, हल्दी, अदरक, प्याज, लहसुन जैसे मसालो का आयात किया जाता था। कश्मीर मे वन-उपवन मनोरञ्जन के साधन के लिए प्रयोग किये जाते थे। दुर्भिक्ष के समय निर्दयी शासको द्वारा जहॉ अत्यधिक कर लगाया जाता था वही लालची व्यापारी ऊँचे दामो मे खाद्य सामग्री बेचकर प्रचुर मात्रा मे धन कमाते थे, किन्तु कुछ सहृदयनरेश अपने सचित कोष से अनाज खरीद कर प्रजा का पालन करते थे। कृषक यद्यपि समाज के आधार स्तम्भ माने जाते थे किन्तु सामंती दशाओ के उद्‌भव तथा भूमि पर राजाओ, जमींदारो तथा उनके अधिक अधिकार के दावे के कारण किसानो के भूमि सम्बन्धी स्वामित्त्व मे कमी आयी।

घोडे, हाथी, ऊँट, भेड, बकरी, गाय, सुअर के अतिरिक्त मछलियो को भी पाला जाता था। पूर्व मध्यकाल की दसवीं शती मे व्यापार एव वाणिज्य के क्षेत्र मे ह्रास दिखाई पडता है जबकि ग्यारहवी व बारहवी शती मे पुन व्यापार एव वाणिज्य मे सुधार हुआ। वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, चर्म उद्योग, मृदभाण्ड शिल्प उद्योग, प्रस्तर उद्योग, काष्ठ उद्योग तथा विभिन्न लघु उद्योग—हाथी दॉत, नमक, कॉच, छत्र, सौन्दर्य प्रसाधन कश्मीर मे प्रचलित थे। कश्मीरी व्यापारियो द्वारा आन्तरिक एव बाह्य व्यापार किया जाता था। जिसमे उपयोगी वस्तुओ का आयात एव निर्यात किया जाता था।

व्यापारियो द्वारा धन, धरोहर के रूप मे रखा जाता था। व्यापारियो पर राज्य द्वारा अत्यधिक शुल्क लगाया जाता था, जिसके भय से वह प्राय जगलो से होकर अपने सामान को लाते थे। इसके अतिरिक्त विदेशी आक्रमणो, सामतो द्वारा केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध किये गये विद्रोहो तथा टूटी-फूटी सडको के कारण भी व्यापारिक-गतिविधियॉ बाधित हुई। विद्वान ब्राह्मणो के भ्रमण, धर्म शिक्षको के आवागमन, कवियो, विद्वानो, छात्रो, बेरोजगारो तथा व्यापारियो को भी सास्कृतिक आदान-प्रदान का साधन माना गया है।

कश्मीर नरेश अपने नाम के विभिन्न धातुओ के सिक्के ढलवाते थे, जिन्हे 'दीनार' कहा जाता था। विवेच्यकाल मे सिक्को की अल्प उपलब्धता को व्यापारिक ह्रास का कारण माना गया है किन्तु बी० एन० एस० यादव महोदय ने मुसलिम आक्रमण, ब्याज दर मे हुई वृद्धि, मन्दिर की समितियो तथा अभिजात्य वर्गो के पास अत्यधिक धन के सग्रह को व्यापारिक ह्रास के लिए उत्तरदायी माना है। राज्य की आय के प्रमुख साधन-राजकीय भूमि 'खेरि', व्यापारियो तथा कृषको से प्राप्त राजस्व, राजाओ द्वारा समय-समय पर लगाये जाने वाले कर, न्यायालयो द्वारा लगाये गये अर्थदण्ड के रूप मे प्राप्त धन, नौ घाटो के शुल्क, सामन्तो तथा अधीनस्थ सामन्तो से प्राप्त उपहार—माने जाते थे। इस राजस्व को एकत्र करने का उत्तरदायित्त्व राज्य द्वारा नियुक्त कर्मचारियो पर होता था।

कश्मीरी समाज सदैव से धर्म-सहिष्णु रहा है। यहॉ शैव दर्शन की एक विशिष्ट परम्परा दिखाई पडती है, जिसे कश्मीरी शैव दर्शन कहा जाता है इसकी दो शाखाऍ थी—स्पन्दशास्त्र एव प्रत्याभिज्ञा-शास्त्र- इसकी तुलना यद्यपि वेदान्त दर्शन से की जाती है किन्तु जहॉ वेदान्त ससार को मिथ्या मानता

है वही कश्मीरी शैव दर्शन के अनुसार चूँकि विश्व की प्रत्येक वस्तु ईश्वर (शिव) का स्वरूप है इसलिए जब 'स्व' की अनुभूति होती है तब यह विश्व अपने वास्तविक रूप मे दिखाई पडने लगता है। कश्मीर मे शिव के अर्द्धनारीश्वर तथा त्रिदेव स्वरूप के दर्शन होते है। लगभग सभी कश्मीरी नरेशो ने शैव मदिरो, शिव मूर्तियो तथा उनसे सम्बन्धित कार्तिकेय, गणेश, पार्वती, उमेश की प्रतिमाओ का अनावरण करवाया।

वैष्णव धर्म जिसे भागवत धर्म भी माना जाता है का अत्यधिक प्रचार-प्रसार गुप्तकाल मे हुआ। कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने अपनी कृति 'दशावतारचरित' मे विष्णु के विभिन्न अवतारो का विवेचन किया है। विष्णु से सम्बन्धित असख्य मदिर भी कश्मीर मे राजा, रानियो, राजकुमारो, मत्रियो तथा श्रद्धालुओ द्वारा बनवाये गये। श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान, के पूजन की भी परम्परा प्रचलित थी। सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, शेषनाग, कल्लिदेव, चामुण्डा, शारदा देवी, भ्रमरवासिनी, भगवती, शारिका देवी सदृश हिन्दू देवी-देवताओ के पूजन की प्रथा थी। बौद्ध धर्म का उद्भव भारतवर्ष मे हुआ था तथा इसको अनेक राजाओ ने सरक्षण प्रदान किया था। कश्मीर मे राजाओ ने न केवल बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार मे योगदान दिया बल्कि बुद्ध मूर्तियॉ, मठो, विहारो, चैत्यो का निर्माण करवाया। इस प्रकार यद्यपि कश्मीर मे बौद्ध धर्म समृद्ध था किन्तु कई भागो-स्थविर, महासाघिक, हीनयान तथा महायान— मे उसके विभाजन ने उसे पतनोन्मुख कर दिया। बज्रयान, तत्रवाद, तुर्की आक्रमण तथा भिक्षुओ मे उत्पन्न होने वाली अनैतिकता को भी बौद्ध धर्म के पतन का कारण माना जाता है। कश्मीर मे जैन धर्म भी प्रचलन मे था। तत्रवाद अथवा शाक्त सम्प्रदाय कश्मीर मे विवेच्यकाल मे प्रचलन मे था। जिसमे तत्रवाद के तीन वर्ग प्राप्त होते है—दिव्य, कौल तथा वाम।

कश्मीर मे नागपूजा प्राचीनकाल से प्रचलित थी। नागपूजन, नागयज्ञ, नागयात्रा सदृश प्रथाएँ कश्मीर मे दृष्टिगोचर होती है। कश्मीर मे अनेक तीर्थ थे, जहॉ की तीर्थयात्राओ को बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता था। विभिन्न प्रकार के व्रत, उत्सवो एव तीर्थयात्राओ से स्पष्ट होता है कि कश्मीरी जनता अत्यन्त उत्सव प्रेमी थी।

भारतीय समाज प्राचीनकाल से चार वर्णो मे विभाजित रहा है। ऋग्वेद मे वर्ण का अभिप्राय

'रग' से लगाया गया है। कश्मीरी समाज हिन्दू शास्त्रो की चतुर्वर्ण व्यवस्था के अनुसार विभाजित था। यद्यपि प्रारम्भ मे यह विभाजन कर्मगत था किन्तु बाद मे इसका स्वरूप जन्मगत हो गया तथा वर्ण के स्थान पर अनेक जातियो का उद्भव हुआ, जिसके अनेक कारण प्राप्त होते है।

समाज मे ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च था तथा ऐसा माना जाता था कि तपस्या व मत्र के प्रभाव से वे देवताओ को वश मे कर लेते है। बौद्ध कालीन प्रभाव के कारण राजाओ द्वारा उनका दमन भी किया जाता था। सामान्यतया— वेद पढ़ना, वेद पढाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना तथा दान लेना—ब्राह्मण के छ· कर्म माने गये है किन्तु आपत्ति काल मे उन्हे क्षत्रियो का व्यवसाय अपनाने की स्वतत्रता थी। ब्राह्मणो के कई उपवर्ग थे, जिन्हे अनेक सुविधाये प्राप्त होती थी। कश्मीर मे ब्राह्मणो की मृत्युदण्ड पर पूर्णतया निषेध था। क्षत्रियो का सामान्य कर्म प्रजा की रक्षा करना, वेद पढना, दान देना, यज्ञ करना तथा सासारिक विषयो मे चित्त न लगाना— थे। किन्तु आपत्ति काल मे वे अपने से निम्न वर्ण के व्यवसाय को अपना सकते थे। ब्राह्मणो की भॉति उन्हे भी मृत्यु दण्ड से छूट प्राप्त थी। वैश्य का सम्बन्ध कृषि, वाणिज्य एव व्यापार से होने के कारण समाज मे स्थान महत्त्वपूर्ण था, किन्तु विवेच्यकाल मे शूद्रो के कृषि कर्म मे लिप्त हो जाने के कारण उनकी सामाजिक स्थिति मे ह्रास आया। शूद्रो को यद्यपि कश्मीरी राजदरबार मे जाने की छूट नही थी किन्तु वह अस्पृश्य नही माने जाते थे। चारो वर्णो के आपसी स्वच्छन्द सम्बन्ध के कारण अनेक मिश्रित जातियो का उदय हुआ, जिनमे अम्बष्ठ, मागध, नापित, कैवर्त, महिष्य, कुम्भकार, खत्री प्रमुख है। बी० एन० एस० यादव ने इन मिश्रित जातियो को शूद्र की श्रेणी मे मानते हुए इन्हे उत्तम सकर, मध्यम सकर एव अधम सकर या अन्त्यज मे विभाजित किया है। अन्त्यज या अस्पृश्य वे जातियॉ थी जो वर्णेतर होती थी तथा गॉव या शहर के बाहर रहती थी धोबी, नाई, कहार, भाट, निषाद, शिकारी, मछुवारा, डोम, चाण्डाल, डामर को इस श्रेणी मे रखा गया है। विवेच्यकाल मे उदित होने वाले नए वर्ग—कायस्थ को व्यावसायिक वर्ण माना गया है। गुह्यक, यक्ष, किन्नर, नाग, दरद, पिशाच, खश, लाट, डामर, म्लेच्छ, जगली जनजातियॉ एव विदेशी जातियॉ थी।

कश्मीरी समाज मे— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास, आश्रम प्रचलित थे तथा लोग अपने सुख एव दु:ख की अभिव्यक्ति हेतु सस्कारो का सम्पादन किया करते थे। किसी न किसी रूप

मे कश्मीर मे आठो प्रकार के विवाहो का प्रचलन था। परिवार का प्रमुख पिता होता था किन्तु माता को भी समान अधिकार प्राप्त था। पुत्र को पुत्री की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता था। स्त्रियो की शिक्षा का पूर्ण ध्यान दिया जाता था तथा समाज मे उन्हे अनेक प्रकार की स्वतत्रताएँ—धार्मिक, सम्पत्ति सम्बन्धी, व्यावसायिक, वैवाहिक तथा शिक्षा—प्राप्त थी। कुछ रानियो द्वारा शासन कार्य भी सफलतापूर्वक सचालित किया गया था। कश्मीरी समाज मे अन्तर्जातीय (अनुलोम व प्रतिलोम) विवाह प्रचलित था। यत्र-तत्र बहुपत्नीत्त्व, बहुपतित्त्व, तलाक की प्रथा प्रचलन मे थी। विधवाओ की स्थिति अच्छी न थी तथा कल्हण ने इनके लिए 'रण्डा' शब्द का प्रयोग किया है। कश्मीर मे सती प्रथा काफी समय पहले से प्रचलन मे थी। वेश्यावृत्ति एव देवदासी प्रथा के अनेकश साक्ष्य प्राप्त होते है।

कश्मीरियो का मुख्य भोजन चावल था। शाकाहारी तथा मासाहारी दोनो प्रकार का भोजन किया जाता था। दाले, शाक, नमक, तेल, मसाले, शर्करा तथा दूध से निर्मित अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यञ्जन बनाये जाते थे। मत्स्यापूप स्वास्थ्यवर्द्धक पेय माना जाता था। पान-सुपारी भोजनोपरान्त मुखशुद्धि तथा शौकीनो द्वारा प्रयुक्त प्रिय वस्तु थी। मदिरापान सामान्य बात थी किन्तु बौद्धभिक्षु व ब्राह्मण केवल अगूर तथा ईख का शर्बत पीते थे।

कश्मीरी पुरुष अधोवस्त्र, उत्तरीय तथा पगडी धारण करते थे जबकि स्त्रियॉ प्राय ब्लाउज, साडी तथा लबादा पहनती थी। स्त्रियो द्वारा उत्तरीय, कचुकी तथा चन्दातक पहनने के भी साक्ष्य प्राप्त होते है। ये वस्त्र सूती, ऊनी, टाट तथा पशुओ के रोये से बने होते थे। उच्चवर्ग के लोगो के वस्त्रो पर सोने के तारो से काम किया होता था। पुरुषो द्वारा बाली, हार, बाजूबन्द, अंगूठियॉ कङ्कण, केयूर पहने जाते थे, जबकि स्त्रियॉ हार, कङ्कण, केयूर, परिहार्य, बाली, ताडियुगम, कर्णिका, कर्णकुण्डल, कॉची, नूपुर, स्वर्णकेतकी युक्त वेणी, बाजूबन्द, कनकपत्र तथा अंगूठियॉ पहनती थी। जूता तथा श्रृगार के विभिन्न साधनो का प्रयोग कश्मीरी जनमानस द्वारा किया जाता था।

शतरज, पासा, द्यूतक्रीडा, डोला, जलक्रीडा, दौड़-धूप का खेल, तमाशा, द्वन्द्व युद्ध, विनोदगोष्ठी, पशु-पक्षियो का पालन, घुडसवारी, मृगया, व्यसन, सङ्गीत-गायन, वादन, नृत्य मनोरञ्जन के प्रमुख साधन थे। कश्मीरी लोग अपनी बात को पूर्ण कराने के लिए अनशन किया करते थे। ऐसा राजा अथवा

देव-प्रतिमाओ के सम्मुख किया जाता था। बाहर जाते समय लोग प्रस्थान करने की आज्ञा प्राप्त करते थे। मेहमानो के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये भोजन करते समय उन्हे दाहिनी ओर बिठाया जाता था। शवो का दाह सस्कार किया जाता था। बालको को बुरी नजर से बचाने के लिए काजल लगाया जाता था। शकुन-अपशकुन, तत्र-मत्र, अभिसारिकी क्रिया, शाप एव वरदान, पुनर्जन्म, ज्योतिष एव भविष्यविचार तथा बलिप्रथा कश्मीरी समाज मे प्रचलित प्रथाए थी। विभिन्न प्रकार के रोगो के लिए औषधियॉ प्रयुक्त की जाती थी। राजाओ, मत्रियो, रानियो, सामतो, अधिकारियो के मध्य अनैतिक सम्बन्ध तथा भ्रष्टाचार व्याप्त था।

अत्यन्त प्राचीनकाल से कश्मीर भूमि अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध रही है। देश के कोने-कोने से अध्ययन के लिए छात्र गण यहॉ आते थे। उच्च वर्ग के लडको-लडकियो की प्रारम्भिक शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था थी। धार्मिक साहित्य के साथ-साथ नाटक, काव्य, इतिहास, व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, खगोल विज्ञान, ज्योतिष, वास्तुकला, नृत्य, सङ्गीत, सैन्य विज्ञान तथा इन्द्रजाल (जादू-टोना) की शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक एव तकनीकी शिक्षा की भी पूर्ण व्यवस्था थी। मठ, मन्दिर, विहार, चैत्य शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। जहॉ की सम्पूर्ण व्यवस्था की देख-रेख योग्य अध्यापकगण किया करते थे, जिन्हे, राजाओ का सरक्षण प्राप्त होता था। विद्वानगण उच्च उपाधियॉ तथा विशेष चिन्ह धारण करते थे। भूर्जपत्र, कागज, खडिया एव स्याही लेखन उपकरण थे। कश्मीर मे साहित्य की समृद्ध परम्परा के अन्तर्गत सभी प्रकार की विधाये थी। कवियो का सबसे उन्नत गुण राग-द्वेष बिना साहित्य रचना माना गया है। नागार्जुन, वसुनन्द, मम्मट, भर्तृमेण्ठ, मातृगुप्त, शिवस्वामी, अभिनन्द, शकुल, जल्हण, आनन्दवर्धन, महिमभट्ट, शम्भु, जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट, रत्नाकर, भामह, वामन, रुद्रट, क्षेमेन्द्र, कल्हण, विल्हण, जयदेव, धोयी सदृश विद्वानो की एक लम्बी तालिका निर्मित की जा सकती है।

गायन, वादन, नृत्य कला के ही कश्मीरी प्रेमी नही थे बल्कि चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, काव्यकला एव शिल्पकला के उदाहरणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे सृजनधर्मी थे।

आधार ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ एवं अनुवाद

अर्थशास्त्र— **कौटिल्य** कृत (सम्पा० एव अनु०) आर० पी० कागले तीन खण्डो मे, बम्बई, १९६९, १९७२, १९६५, शामशास्त्री, मैसूर, १९२९

अभिज्ञानशाकुन्तलम्— **कालिदास** कृत (सम्पा०) शारदा रञ्जन रे, कलकत्ता, १९०८

अमरकोश— **अमरसिंह** कृत (सम्पा०) ए० डी० शर्मा तथा एन० जी० सरदेसाई पूना १९४१, गुरुप्रसाद शास्त्री, वाराणसी, १९५०

अभिधानचिन्तामणि— **हेमचन्द्र** कृत, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६४ निर्णय सागर प्रेस, शक १८१८

अपराजितपृच्छा— **भुवनदेव** कृत—गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज अ० CXIV-१९५०

आख्यांकमणिकोश— प्राकृत टेक्स्ट सिरीज, वाराणसी, १९६२,

अलंकारसर्वस्व— **रुय्यक**—शारदा ग्रन्थमाला-१४

अग्निपुराण— अनु० आर० एल० मित्रा, तीन खण्ड, १८७६

आर्यमञ्जुमूलकल्प— अनु० टी० गणपतिशास्त्री, त्रिवेन्द्रम, १९२०

आर्या सप्तशती— **गोवर्धनाचार्य** कृत, काव्यमाला, १८८६

औशनस स्मृति : स्मृतीना समुच्चय· मे सकलित (सम्पा०) वी० जी० आप्टे, आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रथावली, ग्रन्थाङ्क ४८, पूना, १९२९

औचित्यविचारचर्चा— **क्षेमेन्द्र** कृत—काव्यमाला I, बम्बई १८८६

कविकण्ठाभरण— **क्षेमेन्द्र** कृत—काव्यमाला ४ बम्बई १८८७, हरिदास सस्कृत सिरीज २४, बनारस, १९३३

कलाविलास— **क्षेमेन्द्र** कृत काव्यमाला प्रथम

कथासरित्सागर— **सोमदेव** कृत (अनु०) ट्वायनी, लदन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना (दो खण्ड)

कर्णसुन्दरी— **बिल्हण** कृत अनु० दुर्गाप्रसाद, के० पी० परब, बम्बई १८८८

कथाकोशप्रकरण— **जिनेश्वरसूरी** कृत, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४९

कर्पूरमञ्जरी— **राजशेखर** कृत (अनु०) स्टेन कोनो, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी १९०१

कामसूत्र— **वात्स्यायन** कृत (सम्पा०) गोस्वामी दामोदर शास्त्री, बनारस, १९२९ अनु० देवदत्त शास्त्री, वाराणसी १९६४, सम्पा० दुर्गाप्रसाद, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, द्वितीय सस्करण

कादम्बरी— **बाणभट्ट** कृत निर्णयसागर प्रेस, सस्करण १९४८

कात्यायनस्मृति— व्यवहार पर (सम्पा०) पी० वी० काणे, बम्बई १९३३

कप्फिणाभ्युदय— **शिवस्वामी** कृत (अनु०) गौरीशकर, लाहौर , १९३७

कामन्दकनीतिसार— **कामन्दक** कृत (सम्पा०) टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम १९२१ ज्वाला प्रसाद मिश्र, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, स० २००९

काव्यमीमांसा— **राजशेखर** कृत—गायकवाड ओरिएन्टल सिरीज

काव्यप्रकाश— **मम्मट** कृत—चौखम्बा सस्कृत सिरीज, १९२७

काव्यानुशासन— **हेमचन्द्र** कृत—खण्ड दो, श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९३८

कीर्तिकौमुदी— **सोमेश्वर** कृत (अनु०) ए० वी०कथावटे, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, बम्बई, १८८३

कौलज्ञाननिर्णय— अनु० पी० सी० बागची, कलकत्ता सस्कृत सिरीज

कृत्यकल्पतरु— **लक्ष्मीधर** कृत, दानकाण्ड (१९२४), तीर्थविवेचनकाण्ड (१९४२)राजधर्मकाण्ड (१९४३), गृहस्थकाण्ड (१९४४) मोक्षकाण्ड (१९४५)ब्रह्मचारीकाण्ड (१९४८), श्राद्धकाण्ड (१९५०) , नियतकलाकाण्ड (१९५०) शुद्धिकाण्ड (१९५०), व्यवहारकाण्ड (१९५३), व्रतकाण्ड (१९५३)गायकवाड ओरिएटल सिरीज, बडौदा

कुमारपालचरित— **जयसिंह** कृत, निर्णयसागर प्रेस, १९२६

कूर्मपुराण— बिब्लियोथेका इण्डिका, एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल, १८९० (सम्पा०) आनन्दस्वरुप गुप्त, काशिराजन्यास, वाराणसी, १९७२

कुट्टनीमतम्— **दामोदरगुप्त** कृत (अनु०) प० दुर्गाप्रसाद, काव्यमाला ३

खण्डनखण्डखाद्यम्— **श्रीहर्ष** कृत (अनु०) मदनमोहन लाल, बनारस, १९१७

गृहस्थरत्नाकर— **चण्डेश्वर**, कलकत्ता, १९२८

गीतगोविन्द— **जयदेव**, निर्णयसागर प्रेस, १९२९, दिल्ली १९५५

गौतम धर्म सूत्राणि— (अनु०) यू० सी० पाण्डेय, चौखम्बा सस्कृत सिरीज, १९६६

चतुर्वर्गसंग्रह— **क्षेमेन्द्र** कृत—(अनु०) पं० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, काव्यमाला ५, बम्बई १८८८

चतुर्वर्गचिन्तामणि— **हेमाद्रि** कृत—एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल, १९२१

चौरपञ्चाशिका— **बिल्हण** कृत (अनु०) एस० एन० तडपन्निकर, ओरिएन्टल बुक एजेन्सी, १९४६

चारुचर्याशतक— **क्षेमेन्द्र** कृत (अनु०) पं० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, काव्यमाला-२, बम्बई १८८६

जातकमाला— **आर्यशूर** कृत (सम्पा०) पी० एल० वैद्य, बुद्धिस्ट सस्कृत टेक्स्ट्स, स० २१, दरभगा, १९५९

तन्त्रलोक— **अभिनवगुप्त** कृत खण्ड I (अनु०) प० मुकुन्दरामशास्त्री कश्मीर सिरीज ऑव टेक्स्ट्स ऐण्ड स्टडीज, २३, बम्बई १९१८
तंत्रवार्तिक— **कुमारिल** कृत, बनारस सस्करण
तत्त्वसग्रह— **कमलशील** कृत—गायकवाड ओरिएटल सिरीज, स० LXXXIII १९३९
दशावतारचरित— **क्षेमेन्द्र** कृत (अनु०) प० दुर्गाप्रसाद एवं के० पी० परब, काव्यमाला २६, बम्बई १८९१
दर्पदलन— **क्षेमेन्द्र** कृत—काव्यमाला ६ बम्बई १८९०
देशोपदेश— **क्षेमेन्द्र** कृत—(अनु०) प० मधुसूदन कौल शास्त्री, कश्मीर स० टे० सि० पूना, १९२३
दाकार्णव— अनु० एन० एन० चौधरी, कलकत्ता सस्कृत सिरीज, स० X, १९३५
दशकुमारचरित— **दण्डिन** कृत (सम्पा०) एम० आर० काले बम्बई १९१७
दायभाग— **जीमूतवाहन** कृत द्वितीय सस्करण सिद्धेश्वर प्रेस, कलकत्ता १८९३
देशीनाममाला— **हेमचन्द्र** कृत (अनु०) आर० पिस्चल, बाम्बे सस्कृत सिरीज, स० XVII १९३८
दोहाकोश— **सिद्ध सरहपाद** कृत (अनु०) पी० सी० बागची, यूनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता १९३५
द्वायाश्रय महाकाव्य— **हेमचन्द्र** कृत दो खण्डो मे, बाम्बे सस्कृत सिरीज, १९१५
देवलस्मृति— सम्पा० वी० जी० आप्टे, आनन्दाश्रम सस्कृत ग्रन्थावली ग्रन्थाङ्क ४८, पूना १९२९
ध्वन्यालोक— **आनन्दवर्धन** कृत, बम्बई १९१७
नर्ममाला— **क्षेमेन्द्र** कृत (अनु०) प० मधुसूदन कौल शास्त्री, कश्मीर सस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज, पूना , १९२३
नीतिकल्पतरु— **क्षेमेन्द्र** कृत (अनु०) वी० पी० महाजन भण्डारकर ओरिएटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना १९५६
नीलमतपुराण— अनु० वेद कुमारी जे०के० ऐकडमी ऑव आर्ट, कल्चर ऐण्ड लैन्वेज श्रीनगर, १९९८
नारदस्मृति— अनु० सैक्रेड बुक ऑव द ईस्ट जिल्द ३३ ऑक्सफोर्ड १८८९ (पुनर्मुद्रण) दिल्ली १९७७
नैषधीयचरितम्— **श्रीहर्ष** कृत—निर्णयसागर प्रेस, १९३३
नारदीयमनुसंहिता— अनु० के० शम्बशिवशास्त्री, त्रिवेन्द्रम सिरीज, १९२९
नरसिंह पुराण— बम्बई १९११
नाट्यशास्त्र— भरत कृत (टीका) अभिनवगुप्त, गायकवाड ओरिएटल सिरीज, सं० LXVIII

नवसाहशाङ्कचरित— **पद्मगुप्त** कृत—बाम्बे सस्कृत सिरीज स० LIII १८९५

नीतिवाक्यामृत— **सोमदेव** कृत-मानिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई १८८७-८८

नीतिसार— **कामन्दक** कृत (अनु०) आर० मित्रा, कलकत्ता १८८४

नीतिशतक— **भर्तृहरि** सिधी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई १९४८

पञ्चतन्त्र— (सम्पा०) एस० पी० शास्त्री बनारस १९३८

पञ्चसिद्धान्तिका— **वराहमिहिर** कृत (सम्पा०) जी० थिबौत एव सुधाकर द्विवेदी, वाराणसी १८८९

पराशरस्मृति— (सम्पा०) श्री वासुदेव, वाराणसी, १९६८

परमार्थसार— **अभिनवगुप्त** कृत (सम्पा० एव अनु०) एल० डी० बर्नेट—जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १९१०

पद्मपुराण— सृष्टि काण्ड—आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज, पूना, १८९४

पराशरस्मृति— माधवाचार्य की टीका—एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल, कलकत्ता

परिशिष्टपर्वन— **हेमचन्द्र** कृत अनु०एच० जैकोबी, कलकत्ता, १८८३

पवनदूत— **धोयी** कृत सस्कृत साहित्य परिषद ग्रन्थमाला, स० १३ कलकत्ता, १९२६

प्रबन्ध चिन्तामणि— **मेरुतुंग** कृत अनु० एच० पी० द्विवेदी सिधी जैन ग्रथमाला स० १११, १९४० अनु० टॉवनी, कलकत्ता, १९०१

प्रबन्धकोश— **राजशेखर** कृत..सिधी जैन ग्रन्थमाला, स० ६, १९३५

प्रबोधचन्द्रोदय— **कृष्ण मिश्र** कृत—अनु० के० एस० शास्त्री, गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन त्रिवेन्द्रम, १९३६, आर० एस० मिश्रा, बनारस, १९५५

प्राचीन गुजरात काव्यसग्रह— गायकवाड ओरिएटल सिरीज, स० XIII, १९२०

प्राकृत व्याकरण— हेमचन्द्र—बम्बई १९०५

पृथ्वीराजरासो— **चन्दवरदाई** कृत अनु० एम० वी०पाण्ड्रा एव श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला सिरीज, बनारस; १९१३

पृथ्वीराजविजय— **जयानक** कृत (अनु०) जी० एच० ओझा एव सी० गुलेरी, वैदिक यत्रा-लय, अजमेर, १९४१, बड़ौदा, १९२०

पुरुष परीक्षा— **विद्यापति** कृत—दरभगा सस्करण

बोधिसत्त्वावदान-कल्पलता— **क्षेमेन्द्र** कृत (अनु०) शरतचन्द्र दास एवं पं० एच० एम० विद्याभूषण बिब्लियोथेका इण्डिका, खण्ड प्रथम कलकत्ता, १८८८

बोधिसत्त्वभूमि— **आचार्य असङ्ग** कृत (सम्पा०) नलिनाक्ष दत्त (द्वितीय स०) पटना, १९७८

ब्रह्मसूत्र— **शङ्करभाष्य** सहित (सम्पा०) अनन्ताकृष्ण शास्त्री, बम्बई, १९३८

ब्रह्माण्ड पुराण— (सम्पा०) जे० एल० शास्त्री दिल्ली, १९७३, बेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९१३

वृहज्जातक— **वराहमिहिर** कृत (सम्पा०) सीताराम झा, बनारस, १९३४ (सम्पा०) बी० वी० रमन, बगलौर, १९५७

वृहत्कथाश्लोक सग्रह—**बुधस्वामिन्** कृत वी० एस० अग्रवाल द्वारा अध्ययन तथा पी० के० अग्रवाल द्वारा मूल पाठ सहित सम्पादित, वाराणसी, १९७४

वृहत्संहिता— **वराहमिहिर** कृत, भट्टोत्पल कृत भाष्य सहित (सम्पा०) सुधाकर द्विवेदी दो खण्डो मे, बनारस १८९५-९७

बृहस्पतिस्मृति— (सम्पा०) के० वी० आर० आयगर, गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९४१

बृहत्कथामञ्जरी— **क्षेमेन्द्र** कृत, काव्यमाला ६९, १९०१

वृहत्कथाकोश— हरिषेण कृत—सिधी जैन ग्रन्थमाला स० १७, ए० एन० उपाध्ये, बम्बई १९४३

भोजप्रबन्ध— **बल्लाल** कृत (अनु०) जे० एल० शास्त्री, पटना, १९६२

भविष्यपुराण— बेकटेश्वर प्रेस, बम्बई सस्करण

भागवतपुराण— गीता प्रेस, गोरखपुर वि० सं० २०११

मत्स्यपुराण— (सम्पा०) हरिनारायण आण्टे, सैक्रेड बुक्स ऑव द हिन्दूज सिरीज, पूना, १९०७

मनुस्मृति— **कुल्लूक** कृत महाभाष्य (सम्पा०) पं० गोपाल शास्त्री नेने वाराणसी १९७० **भारुचि** कृत भाष्य (सम्पा०) जे० डी० एम० डेरेट, दो खण्ड वीसबडेन, १९७५ मेघातिथि कृतभाष्य (सम्पा०) जी० एन० झा एशियाटिक सोसा० बगाल, १९३२

महाभारत— सम्पा० वी० एस०सुक्थकर एव एस० के० बेल्वल्कर, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना। गीताप्रेस गोरखपुर (तृतीय सस्करण) स० २०२६

मार्कण्डेय पुराण— क्षेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित बम्बई १८६२

मुद्राराक्षस— **विशाखदत्त** कृत (सम्पा०) आर० के० ध्रुव, पूना १९३०

मूलसर्वास्तिवाद-विनयवस्तु— (सम्पा०) एस० बागची, दो खण्ड, बुद्धिस्ट सस्कृत टेक्स्ट्स सख्या-१६, दरभगा; १९६७

मालिनीविजयोत्तरतत्रम्—अनु० प० मधुसूदन कौल, कश्मीर सस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज-३७ बम्बई १९२२

मानसार— अनु० पी० के० आचार्य, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, १९३३

मानसोल्लास— दो खण्ड, गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज, १९२६ एवं १९३९

मिताक्षरा— **विज्ञानेश्वर** कृत—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९०९, सैक्रेड ब्रुक्स ऑव द हिन्दूज सिरीज, इलाहाबाद १९१८

महावीरचरितम्— **भवभूति** कृत (अनु०) काशीनाथ, बम्बई १९०१

महाराज पराजय— **यशपाल**-गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज स० नवम

यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य— **सोमदेव** सूरी कृत (सम्पा० एव अनु०) सुन्दरलाल शास्त्री वाराणसी, १९६०

युक्तिकल्पतरु— **भोज** कृत—अनु० ईश्वरचन्द्रशास्त्री, कलकत्ता, १९१७

याज्ञवल्क्यस्मृति— **मिताक्षरा** भाष्य सहित (सम्पा०) नारायण शास्त्री, चौखम्बा सस्कृत सिरीज वाराणसी (अनु०) उमेश चन्द्र पाण्डेय (द्वितीय सस्करण) वाराणसी १९७७

योगयात्रा— **वराहमिहिर** कृत (सम्पा०) जे० एल० शास्त्री, लाहौर १९४४

रघुवश— **कालिदास** कृत (सम्पा०) के० पी० परब , बम्बई १८८२

राजतरङ्गिणी— **कल्हण** कृत (सम्पा०) विश्वबन्धु दो खण्ड , होशियारपुर, १९६३, १९६५

(अनु०) **आर० एस० पण्डित,** इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद १९३५

(अनु०) **दुर्गाप्रसाद** बम्बई ; १८९२-९६

(अनु०) **रामतेज शास्त्री** पाण्डेय, चौखम्बा सस्कृत सिरीज

(अनु०) **एम० ए० स्टेइन,** बम्बई १८९२, बेस्टमिनिस्टर १९००, अनु० **रघुनाथ सिंह**

राजेन्द्रकर्णपूर— **शम्भु** कृत—काव्यमाला १

रामचरित— **सन्ध्याकरनन्दी** कृत—अनु० एच० जी० शास्त्री कलकत्ता १९१०

रम्भा मञ्जरीनाटिका— **नवचन्द्रसूरी** कृत—निर्णय सागर प्रेस , १८८९

रसरत्नसमुच्चय— **वाणभट्ट** कृत आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज पूना—स० १९

रसार्णव— अनु० पी० सी० रे० १९१०

रूपशतकम्— **वत्सराज** कृत गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज स० ८ , १९१८

रतिरहस्य— **कोकक**—(अनु०) सदानन्द शास्त्री, लाहौर

लघुकाव्यसंग्रह— **क्षेमेन्द्र** कृत (अनु०) आर्येन्द्र शर्मा, सस्कृत ऐकडमी सिरीज स० ७, हैदराबाद १९६१

लोकप्रकाश— **क्षेमेन्द्र** कृत (अनु०) प० जगद्धर जादू शास्त्री, कश्मीर संस्कृत टेक्स्ट्स सिरीज ७५, श्रीनगर १९४७

लटकमेलक— **सांखधर** कृत निर्णय सागर प्रेस १८८९

लेखपद्धति— गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज, १९२५

लीलावती— **भाष्कराचार्य** कृत (अनु०) प० राधाबल्लव, कलकत्ता, शक १८३५

लिङ्गपुराण— अनु० जीवानन्द विद्या सागर, कलकत्ता १८८५

विक्रमाङ्कदेवचरित— **बिल्हण** कृत (अनु०) जी० ब्यूहलर, बाम्बे सस्कृत सिरीज स० XIV, १८७५ ,पं० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, बनारस, १९६४

विष्णु पुराण— गीताप्रेस, गोरखपुर, वेकटेश्वर प्रेस सस्करण, बम्बई

वायु पुराण— (सम्पा०) आर० एल० मित्र, दो खण्ड ; कलकत्ता, १८८०-८८, आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज, पूना, १९०५

विष्णुधर्मोत्तरपुराण— वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई १९१२

विवादरत्नाकर— **चण्डेश्वर** कृत; कलकत्ता १८८७

विविध तीर्थकल्प— **मुनि जिनविजय** बम्बई १९५६

वीसलदेव रासो— (अनु०) माता प्रसाद गुप्त एव अगरचन्द्र नहत, १९५३

वीर मित्रोदय— **मित्रमिश्र** कृत—चार खण्ड चौखम्बा सस्कृत सिरीज, बनारस १९१३

वामनपुराण— वेकटेश्वर प्रेस बम्बई १९२९

विजयन्ती— **यादव प्रकाश** कृत (अनु०) गुस्तव अपर्ट, गवर्नमेन्ट प्रेस, मद्रास, १८९३

वसन्तविलास— **बालचन्द्र सूरी** कृत—गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज स० VII १९१७

शिशुपालवध— **माघ** कृत—हिन्दी साहित्य सम्मेलन सस्करण वि० सं० २००९

शुक्रनीति— अनु० बी० के० सरकार, पाणिनि ऑफिस, इलाहाबाद १९१४

श्रीकण्ठचरित— **मंखक कृत** काव्यमाला ३ निर्णयसागर प्रेस १८८७

समयमातृका— **क्षेमेन्द्र** कृत—काव्यमाला सिरीज १० बम्बई १९२५

सेव्यसेवकोपदेश— **क्षेमेन्द्र** कृत—काव्यमाला २ बम्बई १८८६

सुवर्त्ततिलक— **क्षेमेन्द्र** कृत—काव्यमाला २, बम्बई १८८६

साधनमाला— खण्ड दो (अनु०) वी० भट्टाचार्य, गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज, स० XLI, १९२८

सदूक्तिकर्णामृत— **श्रीधरदास** कृत—द पजाब सस्कृत बुक डिपो, लाहौर १९३०

समरैच्चकहा— **हरिभद्रसूरी** कृत (अनु०) एच० जैकोबी कलकत्ता, १९२६

समरागणसूत्रधार— **भोज कृत**—टी० गणपतिशास्त्री, गायकवाड, ओरिएण्टल सिरीज स० XXV, १९२४

सन्देश रासक— **अब्दुल रहमान** कृत—सिधी जैन ग्रथमाला, १९४५

सङ्गीत रत्नाकर— **सारङ्गदेव** कृत—दो खण्ड आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज, १८९६

सिद्धान्तशिरोमणि— **भाष्कराचार्य** कृत नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९११

स्कन्दपुराण— वेकटेश्वर प्रेस बम्बई

स्मृतिचन्द्रिका— **देवाणभट्ट** कृत (अनु०) जे० आर० घारपूरे, बम्बई १९१८

स्मृतिनामसमुच्चयः— आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज स० ४८, १९०५ अनु० बी० जी० आप्टे, पूना १९२९

श्री भाष्य— **रामानुज** कृत निर्णयसागर प्रेस, १९१४

श्रीमद्देवीभागवतम्— प० पुस्तकालय काशी वि० स० २०१९

सुभाषितरत्नकोश— अनु० डी० डी० कौशाम्बी एव वी० वी० गोखले, हर्बर्ट यूनिवर्सिटी, प्रेस, १९५७

सूक्तिमुक्तावली— **जल्हण** कृत अनु० ई० कृष्णामाचार्य, बडौदा, १९३८

हरविजय— **रत्नाकर** अनु० प० दुर्गाप्रसाद एव के० पी० परब, काव्यमाला-२२, बम्बई १८९०

हरिवशपुराण— भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६२

हर्षचरित— **बाणभट्ट** कृत (सम्पा०) पी० वी० काणे, बम्बई १९१८, (सम्पा०) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, कलकत्ता, १८८२

हिन्दी काव्यधारा— अनु० राहुल साकृत्यायन, किताबमहल, इलाहाबाद, १९४५, हिस्ट्री ऑव द राइज ऑव द मुहम्डन पॉवर इन इण्डिया, खण्ड प्रथम ब्रिग्स जे, लागमैन्स एव ग्रीन, १८२९

त्रिशष्टिशलाका पुरुषचरित महाकाव्य—**हेमचन्द्र** कृत—श्री जैन आत्मानन्द शताब्दी सिरीज स० VII १९३६ एव VIII १९५०,

विदेशी यात्रियों के विवरण

इलियट एच० एम० एवं डाउसन जे०— **हिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स** ८ खण्डो मे लदन १८६६-७७, II खण्ड अलीगढ से एम० हबीव के प्रस्तावना के साथ।

कास्मस इण्डिकोप्लस्टस— **क्रिश्चियन टोपोग्राफी ऑव कास्मस** (अग्रेजी अनु०) जे० डब्ल्यू० मैक्रिण्डल, इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, वेस्टमिस्टर, १९०१

गाइल्स एच० ए०— **द ट्रैवेल्स ऑव फाह्यान** अथवा **रिकार्डस ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स,** कैम्ब्रिज, १९२३

बील० एस०— (अनु०) **ट्रैवेल्स ऑव फाह्यान ऐण्ड सुङ्गयुन,** लदन १८६९
: **बुद्धिस्ट रेकार्ड ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड** (दो खण्ड) लदन १९०६, दिल्ली १९६०

: लाइफ ऑव ह्वेनसांग : लदन १९११, दिल्ली, १८७३
महेश प्रसाद— सुलेमान सौदागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वि० स० १९७८
यूले०, सर हेनरी— द बुक ऑव सर मार्को पोलो (अनु० एव सपा०) सर हेनरीयूले दो खण्ड, लदन १९०३, १९२०
लेग्गे, जे० एच०— रेकार्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स बीइंग ऐन एकाउन्ट ऑव द चाइनीज मॉन्क फाह्यान्स ट्रेवेल्स, ऑक्सफोर्ड १८८६
वाटर्स, टी०— ऑन युवान च्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया (सम्पा०) टी० डब्ल्यू० राइस डेविड्स एवं एस० डब्ल्यू० बुशेल दो खण्डो मे, लदन १९०४, १९०५
सचाऊ, ई० सी०— अलबेरुनीज इण्डिया, दो खण्ड, लदन १९१०

अभिलेख

आयंगर,
के०वी०एस०— साउथ इण्डियन इंस्क्रिप्शंस, दो खण्डो मे, मद्रास, १९२८, १९३३
उपाध्याय, वासुदेव— गुप्त अभिलेख, बिहार हिन्दी ग्रथ अकादमी, पटना, १९७४
गोयल, श्रीराम— मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख, मेरठ, १९८७
थपलियाल, के०के०—इंस्क्रिप्शंस ऑव द मौखरीज, लेटर गुप्ताज, पुष्यभूतिज ऐण्ड यशोवर्मन् ऑव कन्नौज, दिल्ली, १९८५
पीटरसन, पी०— ए क्लेक्शन ऑव प्राकृत ऐण्ड संस्कृत इंस्क्रिप्शंस, भावनगर आर्क्या डिपार्टमेन्ट, भावनगर, १९०५
फ्लीट, जे० एफ०— कार्पस इस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खण्ड-३, इंस्क्रिप्शंस ऑव द अर्ली गुप्ता किंग्स ऐण्ड देयर सक्सेसर्स, वाराणसी, १९७०
भण्डारकर डी० आर०—'इंस्क्रिप्शंस ऑव द अर्ली गुप्ता किंग्स ऐण्ड देयर सक्सेसर्स' इपि० इण्डि०, खण्ड १९ एव २२ मे परिशिष्ट के रूप मे सकलित
मिराशी, वी०वी०— कार्पस इस्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खण्ड-४ इस्क्रिप्शस ऑव द कलचुरि चेदि एरा, ओटकमण्ड, १९५५, खण्ड-५ इस्क्रिप्शस ऑव द वाकाटकाज, ओटकमण्ड , १९६३
मुखर्जी, आर० आर०
एवं मैती, एस० के०— (सम्पा०) कार्पस ऑव बगाल इस्क्रिप्शस, कलकत्ता, १९६७
सरकार, डी० सी०— सेलेक्ट इस्क्रिप्शस बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड सिविलिजेशन प्रथम खण्ड (द्वितीय सशोधित सस्करण) कलकत्ता, १९६५ द्वितीय खण्ड-दिल्ली, १९८३
वोगेल, जे०— (सम्पा०) एन्टीक्विटीज ऑव द चम्बा स्टेट, कलकत्ता, १९११

मुद्राएँ

अल्टेकर, ए० एस०— कैटलॉग ऑव द गुप्ता गोल्ड क्वायन्स इन द बयाना होर्ड, बम्बई, १९५४

: गुप्तकालीन मुद्राएँ, पटना, १९५४

: द क्वायनेज ऑव द गुप्ता इम्पायर, बनारस, १९५७

एलन, जे०— कैटलॉग ऑव द क्वायन्स ऑव द गुप्ता डायनेस्टीज ऐण्ड ऑव शशाङ्क, द किंग ऑव गौड़, लन्दन, १९१४

· कैटलॉग ऑव द क्वायन्स ऑव ऐन्शिएन्ट इण्डिया, लन्दन, १९३६

कनिघम, ए०— क्वायन्स ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया फ्राम द अर्लिएस्ट टाइम्स डाउन टू द सेवेन्थ सेन्चुरी ए० डी०, लदन, १८९१

· क्वायन्स ऑव मेडिवल इण्डिया फ्राम द सेवेन्थ सेन्चुरी डाउन टू द मुहम्डन कन्क्वेस्ट, लन्दन, १८९४

गोपाल, एल०— अर्ली मेडिवल क्वायन-टाइप्स ऑव नार्दर्न इण्डिया, स० १२

ब्राउन, सी० जे०— कैटलाग ऑव द क्वायन्स ऑव गुप्ताज, मौखरीज, इटसेट्रा इन द प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ, इलाहाबाद, १९२०

: क्वायन्स ऑव इण्डिया, कलकत्ता १९२२

रैप्सन, ई० जे०— इण्डियन क्वायन्स, स्ट्रासबर्ग, १८९७

स्मिथ, वी० ए०— कैटलाग ऑव क्वायन्स इन इण्डिया म्यूजियम, कलकत्ता

पाण्डुलिपि-तालिका

: ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स संस्कृत सिरीज इन द जैन भण्डार्स ऐट जैसलमेर, बड़ौदा, १९२३

: कैटलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन द इण्डिया आफिस लाइब्रेरी; लन्दन

: कैटलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन द लाइब्रेरी ऑव पटना खण्ड I गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज. सं० LXXVI

: डिस्क्रिप्टिव कैटलाग ऑव मनुस्क्रिप्ट्स इन मिथिला-खण्ड प्रथम (अनु०) के० पी० जायसवाल एव ए० बनर्जी शास्त्री

सहायक-ग्रन्थ

अग्रवाल वी० एस०— हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पटना, १९६४

— वृहत्कथाश्लोकसग्रह-ए स्टडी वाराणसी, १९७४

— भारत की मौलिक एकता, इलाहाबाद, वि० स० २०११

— इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि-यूनिवर्सिटी आव लखनऊ, १९५३

अल्टेकर ए० एस०— द पोजीशन ऑव वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन द्वितीय सस्करण-बनारस १९५६

— स्टेट ऐण्ड गवर्नमेन्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बनारस; १९४९

— सोर्सेज ऑव हिन्दू धर्म, शोलापुर; १९५२

— द विलेज कम्यूनिटीज इन वेस्टर्न इण्डिया, ऑक्सफोर्ड प्रेस, १९२७

अशरफ के० एम०— लाइफ ऐण्ड कण्डीशन ऑव द पीपुल ऑव हिन्दुस्तान द्वितीय सस्करण, नई दिल्ली, १९७०

आप्टे, बी० एन०— सोशल ऐण्ड रिलिजस लाइफ इन द गृह्यसूत्राज, बम्बई, १९५४

आयंगर, के०बी०आर०— आस्पेक्ट्स ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डियन इकनॉमिक थाट, बनारस, १९३४

— सम आस्पेक्ट्स ऑव हिन्दू व्यू ऑव लाइफ एकार्डिग टु धर्मशास्त्र, बडौदा, १९५२

ओझा के० सी०— द हिस्ट्री ऑव फारेन रूल इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९६८

हिस्टारिकल सर्वे ऑव नार्थ वेस्टर्न इण्डिया (ई० पू० ६००-७०० ई०) इ० वि० वि०

ओम प्रकाश— अर्ली इण्डियन लैण्ड ग्रान्ट्स ऐण्ड स्टेट इकॉनमी, इलाहाबाद, १९८८

ओम प्रकाश— फूड एण्ड ड्रिंक्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६१

— प्राचीन भारत का सामाजिक एव आर्थिक इतिहास, दिल्ली, १९८६

ओझा, आदित्य प्रकाश— प्राचीन भारत मे सामाजिक स्तरीकरण (३००-६०० ई०) इलाहाबाद, १९९२

अच्छे लाल— प्राचीन भारत मे कृषि, वाराणसी, १९८०

उपाध्याय वी०— द सोशियो रिलिजस कण्डीशन्स ऑव नार्दर्न इण्डिया (७००-१२०० ई०) वाराणसी, १९६४

उपाध्याय, एन०— तात्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, काशी, वि० स० २०१५

उपाध्याय जी० पी०— ब्राह्माज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९७९

उपाध्याय, बी०एस० — गुप्तकाल एक सास्कृतिक अध्ययन, लखनऊ १९८९
— भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, नई दिल्ली, १९४३
— इण्डिया इन कालिदास, इलाहाबाद, १९४७

उडगॉवकर, पद्मा बी० — द पालिटिकल इन्स्टीट्यूशन्स ऐण्ड एडमिनिस्ट्रेशन ऑव नार्दर्न इण्डिया ड्यूरिग मेडिवल टाइम्स (७५०-१२०० ई०) दिल्ली, १९६९

ईश्वरी प्रसाद— हिस्ट्री ऑव मेडिवल इण्डिया-इलाहाबाद, १९२५

इलियट सी० — हिन्दूइज्म, ऐण्ड बुद्धिज्म खण्ड I-III, लदन, १९२१, १९६२

काणे, पी० वी० — हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, ५ खण्डो मे, पूना, १९३०
— धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनु०) अर्जुन चौबे काश्यप, हिन्दी समिति, लखनऊ

कामेश्वर प्रसाद— सिटीज, क्राफ्ट्स ऐण्ड कामर्स अण्डर द कुषाणाज, दिल्ली, १९८१

कीथ, ए० बी० — ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर, दिल्ली, १९७३
— सस्कृत ड्रामा, ऑक्सफोर्ड, १९२४
— रिलिजन ऐण्ड फिलॉसफी ऑव द वेद, हार्बर्ट ओरिएटल सिरीज

कुप्पूस्वामी, बी० — सोशल चेन्ज, दिल्ली, १९७७

केतकर, ए० बी० — द हिस्ट्री ऑव कास्ट इन इण्डिया, न्यूयार्क, १९०९

कौन्जे, एडवर्ड— बुद्धिज्म, आक्सफोर्ड, १९५३

कौशाम्बी, डी० डी० — ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑव इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई, १९५६
— ओरिजिन्स ऑव फ्यूडलिज्म इन कश्मीर १८०४-१९५४
— द कल्चर ऐण्ड सिविलाइजेशन ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, लन्दन १९६५

कौल, जी० एल० — कश्मीर देन ऐण्ड नाऊ श्रीनगर-१९७२
— कश्मीर थ्रू द ऐजेज, श्रीनगर, सातवा संस्करण, १९६३

कपूर, एम० एल० — इमीनेन्ट रूलर्स ऑव एन्शिएण्ट कश्मीर, दिल्ली, १९७५
— स्टडीज इन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव कश्मीर, जम्मू, १९७६

काक, आर० सी० — ऐन्शिएण्ट मानुमेन्ट्स ऑव कश्मीर, लदन, १९३३, नई दिल्ली, १९७१
— एन्टीक्विटीज ऑव वसोहली ऐण्ड रामनगर (जे० के० स्टेट), दिल्ली, १९७२
— हैण्डबुक ऑवद आर्क्यालॉजिकल ऐण्ड न्यूमिसमेटिक सेक्सन्स ऑव द श्री प्रतापसिह म्यूजियम, श्रीनगर, कलकत्ता, शिमला, १९२३

कोले, एच० एच० — इलुस्ट्रेशन्स ऑव ऐन्शिएण्ट बिल्डिग्स इन कश्मीर, लदन, १८६९

कुमारस्वामी ए० के० —सती, लन्दन, १९१३

कॉलवॉर्न, आर० — फ्यूडलिज्म इन हिस्ट्री, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी, प्रेस, १९५६

क्रूक, डब्ल्यू०— रिलिजन ऐण्ड फोल्कलोर ऑव नार्दर्न इण्डिया, आक्सफोर्ड, १९२५

कनिंघम, ए०— एन्शिएण्ट ज्यॉग्राफी ऑव इण्डिया, अनु० रामकृष्ण द्विवेदी इलाहाबाद,

कगले, आर० पी०— द कौटिल्य अर्थशास्त्र, बम्बई, १९६५

कृष्णामाचारियर, एम०— हिस्ट्री ऑव क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर

क्रैमरिच, स्टेला— द आर्ट ऑव इण्डिया, लन्दन, १९५४

खोसला, सरला— गुप्ता सिविलाइजेशन, दिल्ली, १९८२

गांगुली, डी० के०— द इम्पीरियल गुप्ताज ऐण्ड देअर टाइम्स, नई दिल्ली, १९८७

गुप्त, पी० एल०— द इम्पीरियल गुप्ताज, खण्ड I, वाराणसी, १९७४

गुप्ते, बी० ए०— हिन्दू हॉलीडेज ऐण्ड सेरेमानियल्स, कलकत्ता, १९१९

गंहर, जे० एन० एवं पी० एन०— बुद्धिज्म इन कश्मीर ऐण्ड लद्दाख, नई दिल्ली, १९५६

गियर्सन, जी० ए०— लिग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली १९६८

गिब्स, एम०— फ्यूडल आर्डर, लन्दन, १९४९

गोपाल, लल्लनजी— द इकानामिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, १९६५

— आस्पेक्ट्स ऑव हिस्ट्री ऑव एग्रीकल्चर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९८०

गोयल, एस० आर०— प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, १९६९

गांगुली, डी०सी०— हिस्ट्री ऑव द परमार डाइनेस्टी, ढाका, १९३३

गौड़, मनोहरलाल— आचार्य क्षेमेन्द्र, अलीगढ, १९५५

घुर्ये, जी०एस०— कास्ट ऐण्ड क्लास इन इण्डिया, द्वितीय सस्करण, बम्बई, १९५७

— फेमिली ऐण्ड किन इन इण्डो-यूरोपियन कल्चर, बम्बई, १९६२

— इण्डियन कस्टम, बम्बई, १९५१

घोष, ए०— द सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, शिमला, १९७३

घोष, एन० एन०— अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, इलाहाबाद, १९६०

घोषाल, यू० एन०— द एग्रेरियन सिस्टम इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९३०

— द बिगनिग ऑव इण्डियन हिस्ट्रोग्राफी ऐण्ड अदर एसेज, कलकत्ता, १९४४

— हिन्दू पॉलिटिकल थियरी, मद्रास, १९२७

— हिस्ट्री ऑव हिन्दू पब्लिक लाइफ, कलकत्ता, १९४५

— स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, १९५७

— कन्ट्रीब्यूशन्स टू द हिस्ट्री ऑव द हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, कलकत्ता, १९२९

घोष, बी० के०— हिन्दू लॉ ऐण्ड कस्टम्स, कलकत्ता, १९२८

चकलादार, एच० सी०— सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९३०

चक्रवर्ती, हरिपद— इण्डिया ऐज रिफ्लेक्टेड इन द इंस्क्रिप्शश ऑव गुप्ता पीरियड दिल्ली, १९७८

— ट्रेड ऐण्ड कामर्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६६

चट्टोपाध्याय, ए० के०— स्लेवरी इन इण्डिया, कलकत्ता

चट्टोपाध्याय, बी० डी०— आस्पेक्ट्स ऑव रूरल सेटेलमेन्ट्स ऐण्ड रूरल सोसाइटी इन अर्ली मिडीवल इण्डिया, कलकत्ता, १९९०

चट्टोपाध्याय, एस०— अर्ली हिस्ट्री ऑव नार्थ इण्डिया, कलकत्ता, १९५८

— सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५

चानना, देवराज— स्लेवरी इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६०

चौधरी, आर० के०— व्रात्यज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९६४

चौधरी, एस० बी०— एथनिक सेटेलमेट्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५

चक्रवर्ती, पी० सी०— द आर्ट ऑव वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, ढाका, १९४१

चक्रवर्ती, सी०— ए स्टडी ऑव हिन्दू सोशल पॉलिटी, कलकत्ता, १९५४

चन्द्रप्रभा— हिस्टोरिकल महाकाव्याज इन संस्कृत, दिल्ली, १९७६

चटर्जी, जे० सी०— कश्मीर शैविज्म, खण्ड II, श्रीनगर, १९१४

चतुर्वेदी, परशुराम— वैष्णव धर्म, इलाहाबाद, १९५३

चौधरी, जी० सी०— पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज, अमृतसर १९५३,

जयचन्द्र— भारत भूमि और उसके निवासी

जायसवाल, के० पी०— हिन्दू पालिटी (द्वितीय सस्करण) बंगलौर, १९४३

— हिस्ट्री ऑव इण्डिया, लाहौर, १९३३

जायसवाल, सुवीरा— द ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेट ऑव वैष्णविज्म, दिल्ली, १९६७

जॉली, जे०— हिन्दू लॉ ऐण्ड कस्टम्स, कलकत्ता, १९२८

जैन, के० सी०— प्राचीन भारतीय सामाजिक और आर्थिक संस्थाएँ, म० प्र०, १९७६

जैन, जे० सी०— लाइफ ऐज डेपिक्टेड इन जैन कैनान्स, बम्बई, १९४७

जैन, पी० सी०— लेबर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, १९७१

— सोशियो इकनॉमिक एक्सप्लोरेशन ऑव मिडिवल इण्डिया, दिल्ली, १९७६

जोशी, लालमनि— स्टडीज इन बुद्धिस्टिक कल्वर ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९६७

जोशी, एल० डी०— द खश फेमिली लॉ, इलाहाबाद, १९२९

झा, डी० एन०— ऐन्शिएण्ट इण्डिया ऐन इट्रोडक्टरी आउटलाइन, दिल्ली, १९७७

— स्टडीज इन अर्ली इण्डियन इकनॉमिक हिस्ट्री, दिल्ली, १९८०

— (सम्पा०)-फ्युडल सोशल फार्मेशन इन अर्ली इण्डिया, दिल्ली, १९८७

— रेवेन्यू सिस्टम इन पोस्ट-मौर्यन ऐण्ड गुप्ता ऐज, कलकत्ता, १९६७

ट्यूमिन, एम० एम०— सोशल स्ट्रेटीफिकेशन, दिल्ली, १९७८

टेलर हेनरी आसवॉर्न— द मिडिवल माइन्ड, लन्दन, १९११

टाइटस एम० डी०— इण्डियन इस्लाम, लन्दन, १९३०, मद्रास १९३८

टॉड जेम्स— ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया, एशियाटिक सोसाइटी बगाल, १८३९

टॉयनबी— ऐन हिस्टॉरियन्स एप्रोच टु रिलिजन, आक्सफोर्ड, १९५६

ठाकुर, विजयकुमार— अरबनाइजेशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, नई दिल्ली, १९८१

ड्रयू, एफ०— ए ज्यॉग्रफिकल एकाउन्ट ऑव जम्मू ऐण्ड कश्मीर टेरिटरीज, लन्दन, १८७५

डाउसन, जे०— क्लासिकल डिक्शनरी ऑव हिन्दू माइथोलाजी, रिलिजन, ज्यॉग्रफी, हिस्ट्री ऐण्ड लिटरेचर, लन्दन, १९५०

डांगे, एस० ए०— भारत आदिम साम्यवाद से दास प्रथा तक का इतिहास, दिल्ली, १९७८

डेरेट, जे० डी० एम०— रिलिजन, लॉ ऐण्ड स्टेट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, १९६८

डे, एस० के०— अर्ली हिस्ट्री ऑव द वैष्णव फेथ ऐण्ड मूवमेन्ट इन बगाल, कलकत्ता, १९४२

डे, एन० एल०— ज्यॉग्रफिकल डिक्शनरी ऑव ऐन्शिएण्ट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया

ताराचन्द्र— इन्फ्लुएन्स ऑव इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, इलाहाबाद

तिवारी, गौरीशंकर— उत्तरी भारत के ब्राह्मणो का सामाजिक अध्ययन, फैजाबाद, १९८२

थपलियाल, उमाप्रसाद— फारेन इलीमेन्ट्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोसाइटी, नई दिल्ली, १९७९

थपलियाल, के० के०— स्टडीज इन ऐन्शिएण्ट सील्स, लखनऊ १९७२

थापर, रोमिला— ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, १९७८

— हिस्ट्री ऑव इण्डिया, खण्ड I, पेलिकन, १९७२

थॉमसन, जे० डब्ल्यू०— ऐन इकनॉमिक ऐण्ड सोशल हिस्ट्री ऑव मिडिल ऐज, न्यूयार्क, १९२८

दत्त, बी० एन०— स्टडीज इन इण्डियन सोशल पॉलिटी, कलकत्ता, १९४४

दत्त, आर० सी०— लेटर हिन्दू सिविलाइजेशन, कलकत्ता, १९६५

दत्त, एन० के०— ओरिजिन ऐण्ड ग्रोथ ऑव कास्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६५

दण्डेकर, आर० एन०— हिस्ट्री ऑव गुप्ताज, पूना, १९४१

दास, एस० के०— इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९८०
— शक्ति ऑर् डिवाइन पॉवर, कलकत्ता, १९३४

दास, मोतीलाल— हिन्दू लॉ ऑव बेलमेन्ट

दासगुप्ता, एस० एन०
तथा डे, एस० के०— ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर, कलकत्ता, १९४७

दास, एस० सी०— इण्डियन पण्डित्स इन द लैण्ड ऑव स्नो, १८९३

दास, एस० के०— द एजुकेशनल सिस्टम ऑव द ऐन्शिएण्ट हिन्दूज, कलकत्ता, १९३०

दासगुप्ता, एस० एन०— हिस्ट्री ऑव इण्डियन फिलॉसफी, कैम्ब्रिज, १९४०

दाते, जी० टी०— द आर्ट ऑव वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बम्बई, १९२९

दीक्षितार, के०
वी० आर०— वार इन ऐन्शिएण्ट इण्डियन, १९४८

दीक्षितार, वी०
आर० आर०— हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स, मद्रास, १९२९

दीक्षितार, एस० के०— द मरद गॉडेस, पूना

दुबे, एस० एन०— क्रास करेन्ट्स इन अर्ली बुद्धिज्म, नई दिल्ली, १९८०

दुबे, लालमणि— अपराजितपृच्छा ए क्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, १९८७

दुबे, हरिनारायण— पुराण समीक्षा, इलाहाबाद, १९८४

देवहूति, डी०— हर्ष-ए पोलिटिकल स्टडी-आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९७०

धर, एस० एन०— कल्हण, पोयट, हिस्टोरियन ऑव कश्मीर, बगलौर, १९५६

नन्दी, आर० एन०— रिलिजस इन्स्टीट्यूशन्स ऐण्ड कल्ट्स इन द डेकन, दिल्ली, १९७३

नदवी, एस० एस०— अरब-भारत के सम्बन्ध, इलाहाबाद, १९३०

नाग, कालिदास— ग्रेटर इण्डिया, बम्बई, १९६०

निगम, एस० एस०— इकनॉमिक आर्गनाइजेशन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९७५

नियोगी, पुष्पा— कन्ट्रीब्यूशस टू द इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता, १९६२
— ब्रह्मनिकल सेटेलमेन्ट्स इन डिफरेन्ट सब-डिवीजन्स ऑव ऐन्शिएण्ट बगाल, कलकत्ता, १९६७

नियोगी, रोमा— हिस्ट्री ऑव द गाहड़वाल डाइनेस्टी, कलकत्ता, १९५९

निजामी, के० ए०— सम आस्पेक्ट्स ऑव रिलिजन ऐण्ड पॉलिटी इन इण्डिया ड्यूरिग द थर्टीन्थ, सेचुरी, १९६१

नेगी, जे० एस०— सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज, खण्ड I इलाहाबाद, १९६९

प्रभु, पी० एच०— हिन्दू सोशल ऑर्गनाइजेशन, बम्बई, १९५४

पणिक्कर, के० एम०—इण्डिया ऐण्ड द इण्डियन ओशन, लन्दन, १९५१

पार्जिटर, एफ० ई०— ऐन्शिएण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशस, दिल्ली, १९७२

पाण्डेय, ए० बी०— पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, कानपुर, १९५४

पाण्डे, अनूपा— ए हिस्टारिकल कल्चरल स्टडी ऑव द नाट्यशास्त्र ऑव भरत, जोधपुर, १९९१

पाण्डे, वीणापाणि— हरिवशपुराण का सास्कृतिक विवेचन, वाराणसी, १९६०

पाण्डे, सुस्मिता— बर्थ ऑव भक्ति इन इण्डियन रिलिजन्स ऐण्ड आर्ट, दिल्ली, १९८२

समाज, आर्थिक व्यवस्था एव धर्म, भोपाल, १९९१

पाण्डे, जी० सी०— द मीनिग ऐण्ड प्रोसेस ऑव कल्चर, आगरा, १९७२

— फाउन्डेशस ऑव इण्डियन कल्चर, खण्ड I

— डाइमेन्शस ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री, नई दिल्ली, १९८४

— बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, १९६३

— भारतीय परम्परा के मूल स्वर, नई दिल्ली—१९८१

— स्टडीज इन द ओरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, इलाहाबाद, १९५७

पाण्डेय, चन्द्रदेव— साम्ब पुराण का सास्कृतिक अध्ययन, इलाहाबाद, १९८६

पाण्डेय, जयनारायण— पुरातत्त्व विमर्श, इलाहाबाद, १९८८

— भारतीय कला एव पुरातत्त्व, इलाहाबाद, १९८९

पाण्डेय, एल० पी०— सन वर्शिप इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९७१

पाण्डेय, आर० बी०— हिन्दू सस्काराज, बनारस, १९४९

पाण्डेय, के०सी०— अभिनवगुप्त ऐन हिस्टारिकल ऐण्ड फिलॉसफिकल स्टडी, बनारस, १९३६

पण्डित, एम० पी०— स्टडीज इन द तत्राज ऐण्ड द वेद, मद्रास, १९६४

पटवर्धन, सी० एन०— हिस्ट्री ऑव एजुकेशन इन मेडिवल इण्डिया।

पाटिल, डी० आर०— कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायु पुराण, दिल्ली, १९७३

पाठक, पी० एन०— सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन अर्ली बिहार, पटना, १९८८

पाठक, वी० एस०— ऐन्शिएण्ट हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया, बम्बई, १९६६

— स्मार्त रिलिजस ट्रेडिशन, मेरठ, १९८७

— शैव कल्ट्स इन नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, १९६०

पाठक, हलधर— कल्चरल हिस्ट्री ऑव द गुप्ता पीरियड, दिल्ली, १९७८

पाठक, एस०— चार्वाक दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा, वाराणसी, १९६५

प्राणनाथ— ए स्टडी इन द इकानामिक कण्डीशन ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, १९२९

पॉवेल, बेडेन— द इण्डियन विलेज कम्यूनिटी, लन्दन १८९६

पारसन्स, टी०— एसेज इन सोशियोलॉजिकल थियरी, दिल्ली, १९७५
पुरी, बी० एन०— द हिस्ट्री ऑव द गुर्जर-प्रतिहार, बम्बई, १९५७
पीथवाला, एम०बी०— एन इन्ट्रोडक्शन टू कश्मीर इट्स ज्यॉग्रफी ऐण्ड ज्यालाजी, कराची, १९५३
फरक्यूहर, जे० एन०—आउट लाइन ऑव रिलिजस लिटरेचर ऑव इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, १९२०
फिक, रिचर्ड— सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, वाराणसी, १९७२
फिनले, एम० आई०—ऐन्शिएण्ट स्लेवरी ऐण्ड मार्डर्न आईडियोलॉजी, लन्दन, १९८०
फिलिप्स, सी० एच०—हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया, पाकिस्तान ऐण्ड सीलोन, न्यूयार्क, १९६७
बागची, पी० सी०— स्टडीज इन द तन्त्राज, कलकत्ता, १९३९
बाजपेयी, के० डी०— भारतीय व्यापार का इतिहास, मथुरा, १९५१
बनर्जी, एन० आर०— द आइरन ऐज इन इण्डिया, नई दिल्ली, १९६५
बनर्जी, जे० एन०— डेवलमेट ऑव हिन्दू आइकनोग्राफी, कलकत्ता, १९५६
बनर्जी, आर० डी०— द ऐज ऑव द इम्पीरियल गुप्ताज, वाराणसी, १९७०
बनर्जी, एस० सी०— कल्चरल हेरिटेज ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९६५
बनर्जी, पी०— ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन टैक्सेसन, लन्दन, १९३०
बर्नेट, एल० डी०— एन्टिक्विटीज ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९६४
बट्स, आर० एफ०— ए कल्चरल हिस्ट्री ऑव एजुकेशन, लन्दन, १९४७
बर्नियर, एफ०— ट्रेवेल्स इन द मुगल इम्पायर, लन्दन, १९१६
बमजाई, पी०एन०के०— ए हिस्ट्री ऑव कश्मीर, दिल्ली, १९७३
बन्द्योपाध्याय, एन०सी०— इकनॉमिक लाइफ ऐण्ड प्रोग्रेस इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९२५
ब्लंट— द कास्ट सिस्टम इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली, १९६९
ब्यूहलर, जी०— डिटेल्ड रिपोर्ट ऑव ए टूर इन सर्च ऑव सस्कृत मनुस्क्रिप्ट्स बम्बई, १८७७
बार्थ, ए०— द रिलिजन्स ऑव इण्डिया, लन्दन, १९२१, वाराणसी, १९६३
बाजपेयी, रञ्जना— सोसाइटी इन इण्डिया, दिल्ली, १९९२
बाशम, ए० एल०— द वन्डर दैट वाज इण्डिया, लन्दन, १९५४
— हिस्ट्री ऐण्ड डाक्ट्रिन्स ऑव द आजीविकाज, दिल्ली, १९८१
— कल्हण ऐण्ड हिज क्रोनिकल, शोधपत्र, १९५६
ब्रॉन, सी० जे०— क्वायन्स ऑव इण्डिया, द हेरिटेज ऑव इण्डिया सिरीज, १९२२
ब्राउन, पर्सी— इण्डियन आर्किटेक्चर, बम्बई

बूच, एम० ए०— इकनॉमिक लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, बडौदा, १९२४
बेनी प्रसाद— स्टेट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९२८
बोस, ए० एन०— सोशल ऐण्ड रुरल इकॉनमी ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता, १९६७
बोस, एन० के०— द स्ट्रक्चर ऑव हिन्दू सोसाइटी, नई दिल्ली, १९७५
बोस, फणीन्द्रनाथ— द इण्डियन टीचर्स इन चाइना, मद्रास, १९२३
बील, एस०— सी-यु-की-लन्दन, १८८४
लाइफ ऑव ह्वेनसाग—लन्दन १९१४
बुद्ध प्रकाश— स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, आगरा, १९६२
भट्टाचार्य, एच०— द कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया खण्ड IV-कलकत्ता, १९५३-६२
भट्टाचार्य, एस० सी०— सम आस्पेक्ट्स ऑव इण्डियन सोसाइटी, कलकत्ता, १९७८
भण्डारकर, आर०जी०— वैष्णविज्म, शैविज्म ऐण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम, पूना, १९२८
— वैष्णव, शैव तथा अन्य धार्मिक मत, वाराणसी, १९६७
— रिपोर्ट इन सर्च ऑव सस्कृत मनुस्क्रिप्ट्स, बम्बई, १८९७
भण्डारकर,
डी० आर०— सम आस्पेक्ट्स ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डियन पॉलिटी, कलकत्ता, १९२९,
ममफोर्ड, लेविस— द सिटी इन हिस्ट्री, लन्दन, १९६१
मजूमदार आर० सी०
एव माधवनन्द— ग्रेट वूमेन ऑव इण्डिया, अल्मोडा, १९५३
मजूमदार, ए० के०— राजतरङ्गिणीज ऐज द सोर्सेज ऑव द हिस्ट्री ऑव कश्मीर, बम्बई, १९५६
मजूमदार, बी० के०— द मिलिटरी सिस्टम इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९५५, १९६०
मजूमदार, आर० सी०—कारपोरेट लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९२२
मजूमदार, आर० सी०
एव ए० डी० पुलास्कर—द हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव द इण्डियन पीपुल-खण्ड II-VI बम्बई १९६०
मजूमदार, एस० एन०—(सम्पा०) कनिघम्स ऐन्शिएण्ट ज्यॉग्रफी ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९२४
मजूमदार, डी० एन०— रेसेज ऐण्ड कल्चर्स ऑव इण्डिया, बम्बई, १९६१
मजूमदार, बी० पी०— द सोशियो-इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता, १९६०
मलूनी— हिस्ट्री ऑव कश्मीर-क्रिश्चियन लिटरेरी सोसाइटी फार इण्डिया, १९२१
मार्क्स, कार्ल,— द पावर्टी ऑव फिलासफी, मास्को, १९७३
मिश्र, के०सी०— ट्राइब्स इन द महाभारत : ए सोशियो कल्चर स्टडी, नई दिल्ली, १९८७
मिश्र, रमानाथ— प्राचीन भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था एव धर्म (वैदिककाल से ३०० ई० तक) भोपाल, १९९१

मिश्र, सच्चिदानन्द— प्राचीन भारत मे ग्राम एव ग्राम्य जीवन, गोरखपुर, १९८४

मिश्र, पद्मा— इवोल्यूशन ऑव द ब्राह्मण क्लास, वाराणसी, १९७८

मिश्र, दुर्गाप्रसाद— श्रृगारी शतक काव्यो का आलोचनात्मक अध्ययन, मेरठ, १९९०
साहित्य सौहित्यम्, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९९५

मित्रा, आर०— इण्डो-आर्यन्स खण्ड II कलकत्ता, १८८१

मित्रा, आर० सी०— डिक्लाइन ऑव बुद्धिज्म, विश्वभारती स्टडीज, १९५४

मुकर्जी, आर० के०— ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९६०
लोकल गवर्नमेण्ट इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, ऑक्सफोर्ड, १९२०

मुकर्जी, सन्ध्या— सम आस्पेक्ट्स ऑव सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद १९७६

मूरक्राफ्ट, डब्ल्यू० एव जार्ज ट्रेबेक— ट्रेवेल्स इन हिमालयन प्रोविन्सेस ऑव हिन्दुस्तान, ऐण्ड द पजाब, इन लद्दाख ऐण्ड कश्मीर, दो खण्ड, नई दिल्ली, १९७१

मैक्डॉनल, ए० ए०— हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, लन्दन, १९००

मैती, एस० के०— अर्ली इण्डियन क्वायन्स ऐण्ड करेसी सिस्टम, दिल्ली, १९७०
— इकनॉमिक लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया इन द गुप्ता पीरिएड, दिल्ली, १९७०

मोतीचन्द्र— सार्थवाह, पटना, १९५३

मेरी, मार्टिन— वूमेन इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९६४

यादव, बी०एन०एस०— सोसाइटी ऐण्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया इन द ट्वेल्फथ सेन्चुरी ए०डी०, इलाहाबाद, १९७३

यंग हसबैण्ड, एफ०— कश्मीर, नई दिल्ली, १९७०

यूले, हेनरी— द बुक ऑव सर मार्को पोलो, दो खण्ड, लन्दन, १९०३

युशुफ अली— मेडिवल इण्डिया, सोशल ऐण्ड इकनॉमिक कन्डीशस, लन्दन, १९३२

रमनप्पा, एम० एन०— आउटलाइन्स ऑव साउथ इण्डियन हिस्ट्री, दिल्ली, १९७५

राज, भारती— प्राचीन भारत मे सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन, इलाहाबाद, १९८५

राधाकृष्णन्— इण्डियन फिलॉसफी, लन्दन, १९५६

राय, उदयनारायण— प्राचीन भारत मे नगर और नगर-जीवन, इलाहाबाद, १९६५
— गुप्त सम्राट और उनका काल, इलाहाबाद, १९७१
— स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, इलाहाबाद, १९६९

राय, एस० एन०— हिस्टारिकल ऐण्ड कल्चरल स्टडीज इन द पुराणाज, इलाहाबाद, १९७८

राय, जी० के०— इनवालटरी लेबर इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९८१
राय, जयमल— द दरूल अरबन इकॅानामी ऐण्ड सोशल चेन्जेज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, वाराणसी, १९७४
राय चौधरी,
एच० सी०— पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९५३
— अर्ली हिस्ट्री ऑव द वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता, १९२०
रे, एच० सी०— डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया, दो खण्ड, कलकत्ता, १९३१
रे, एस० सी०— अर्ली हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९५७, दिल्ली, १९७०
रिस्ले, एच०— द पीपुल ऑव इण्डिया, लन्दन, १९१५
रेनो, लुइस— वेदिक इण्डिया, कलकत्ता, १९५७
रैप्सन, ई० जे०— (सम्पा०) द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९६८
रॉलैण्ड, बेन्जिमिन— द आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया
लॉ०, एन० एन०— स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर, कलकत्ता, १९२५
लॉ, बी० सी०— ह्मिटारिकल ज्यॉग्रफी ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डिया, पेरिस, १९५४
लॉरेन्स, वाल्टर— द वैली ऑव कश्मीर, लन्दन १८९५, श्रीनगर, १९६७
लैपियर, आर० टी०— सोशल चेन्ज, टोकियो, १९६५
वलवलकर, पी०एच०—हिन्दू सोशल इन्स्टीट्यूशस, मद्रास, १९३९
वरदचारियर, एस०— हिन्दू जुडिसियल सिस्टम, लखनऊ, १९४६
विन्टरनित्स, एम०— ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, दिल्ली, १९७२
विग्ने, जी० टी०— ट्रेवेल्स इन कश्मीर, लद्दाख, इस्कार्डो, खण्ड I-II, लन्दन, १८४२
वेद कुमारी— द नीलमत पुराण ए कल्चरल एण्ड लिटरेरी स्टडी, दो खण्ड श्रीनगर—जम्मू, १९६८
वैद्य, सी० वी०— हिस्ट्री ऑव मेडिवल हिन्दू इण्डिया, तीन खण्ड, पूना, १९२१, १९२४, १९२६,
वाट, जी (सर) — डिक्शनरी ऑव द इकनॉमिक प्रोडक्ट्स ऑव इण्डिया, छ खण्ड, १८९१
वाटर्स, टी०— ऑन युवान च्वाग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया, दिल्ली, १९६१
विल्सन, एच० एच०— ए ग्लोजरी ऑव जुडीशियल ऐण्ड रेवेन्यू टर्म्स, लन्दन, १८५५
— एसे ऑन द हिन्दू हिस्ट्री ऑव कश्मीर, कलकत्ता, १९६०
विलियम्स, एम०— ब्राह्मणिज्म ऐण्ड हिन्दूइज्म, लन्दन, १८९१
— बुद्धिज्म, वाराणसी, १९६४
— ए सस्कृत इगलिश डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड, १९५१
विन्टरनित्ज, एम०— हिस्ट्री ऑन इण्डियन लिटरेचर, दो खण्ड, कलकत्ता, १९२७-३३

वुड्रॉफ, सर जे— इन्ट्रोडक्शन टु तंत्रशास्त्र, मद्रास, १९६३
— द सर्पेन्ट पॉवर, १९६४
— शक्ति ऐण्ड शाक्त, मद्रास, १९५१
वेवर, मैक्स— द रिलिजन ऑव इण्डिया, द फ्री प्रेस, ग्लेन कोइ
वाचस्पति, गैरोला— भारतीय चित्रकला,
शर्मा, दशरथ— राजस्थान थ्रू द ऐजेज (खण्ड I) बीकानेर, १९६६
— अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, दिल्ली, १९५९,
शर्मा, जी० आर०— इक्सकावेशस ऐट कौशाम्बी (१९५७-१९५९)
शर्मा, बी० एन०— सोशल लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया (१०००-१२०० ई०), दिल्ली, १९६६
शर्मा, आर० एस०— इण्डियन फ्युडलिज्म, दिल्ली, १९८०
— पर्सपेक्टिव्स इन सोशल ऐण्ड इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव अर्ली इण्डिया, दिल्ली, १९८३
— प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एव सामाजिक सरचनाए, नई दिल्ली, १९९०
— पूर्वकालीन भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था पर प्रकाश, दिल्ली, १९७८
— पूर्व मध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तन, दिल्ली, १९७५
— मैटेरियल कल्चर ऐण्ड सोशल फार्मेशन्स इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९८३
— लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसाइटी ऐण्ड इकॉनमी, बम्बई, १९६६
— शूद्राज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९८०
— लैण्ड रेवेन्यू इन इण्डिया, हिस्टारिकल स्टडी, दिल्ली, १९७१
एव झा, वी०— (सम्पा०) इण्डियन सोसाइटी, हिस्टारिकल प्रोबिन्स, नई दिल्ली, १९७४
शर्मा, रामायण प्रसाद— भारतीय वर्ण व्यवस्था, सास्कृतिक एवं दार्शनिक विवेचन, वाराणसी, १९७४
शास्त्री,
शकुन्तला राव— वूमेन इन द सेक्रेड लाज, बम्बई, १९५३
शाह, के० टी०— ऐन्शिएण्ट फाउन्डेशंस ऑव इकनामिक्स इन इण्डिया, बम्बई, १९५४
शास्त्री, ए०बी०— असुर इण्डिया, पटना, १९२६
स्पेगलर, जोसेफ जे०— इण्डियन इकनॉमिक थाट, डरहम, एन० सी०, १९७३
स्मिथ, वी० ए०— अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, आक्सफोर्ड, १९२४
सरकार, डी० सी०— इण्डियन इपिग्राफी, दिल्ली, १९६६
— द इम्परर ऐण्ड द सबार्डिनेट रुलर्स, कलकत्ता, १९८२

— स्टडीज इन इण्डियन क्वायन्स, दिल्ली, १९६८
— (सम्पा०) लैण्ड सिस्टम ऐण्ड फ्युडलिज्म इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९६६
— सोशल लाइफ इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९७१

सक्सेना, के० एस०— पालिटिकल हिस्ट्री ऑव कश्मीर, लखनऊ, १९७४

सरन, पी०— स्टडीज इन मुगल इम्पायर, कलकत्ता

स्पेयर, जे० एस०— स्टडीज एबाउट द कथासरित्सागर, लैडेन

सिल्स, एल० डेविड— इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइन्सेज, खण्ड V, १९६८

सिंह, चन्द्रदेव— प्राचीन भारतीय समाज और चिन्तन, वाराणसी, १९८७

सिंह, देवी प्रसाद— हिन्दू समाज मे परिवर्तन की प्रक्रिया, गोरखपुर, १९८४

सिंह, रणजीत— धर्म की हिन्दू अवधारणा, इलाहाबाद, १९७७

सिन्हा ए० के०— सोशल स्ट्रक्चर ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९७४

सिन्हा, वी०पी०— पाटरीज इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, पटना, १९६९

सिलवरवर्ग, जेम्स— सोशल मोबिलिटी इन द कास्ट सिस्टम इन इण्डिया माटन, द हाग, १९६८

सोरोकिन, पी० ए०— सोशल ऐण्ड कल्चरल मोबिलिटी, लन्दन, १९५९

साहनी, डी० आर०— प्रि मोहम्डन मानुमेन्ट्स ऑव कश्मीर, आर्क्या०, सर्वे० इण्डि० १९१५-१६ कलकत्ता १९१८

साकृत्यायन, राहुल— पुरातत्त्व निबन्धावली, इलाहाबाद, १९३७
तिब्बत मे बौद्ध धर्म, १९३४

सरकार, बी० के०— द फोल्क इलमेन्ट इन हिन्दू कल्चर, लन्दन, १९१७

सेन, पी० एन०— जनरल प्रिन्सिपल्स ऑव हिन्दू जुरिशप्रुडेन्स

सूफी, जी०एम०डी०— कश्मीर, दो खण्ड, लाहौर, १९४९

सूर्यकान्त— क्षेमेन्द्र स्टडीज, पूना, १९५४

श्रीमाली, के० एम०— (सम्पा०) एसेज इन इण्डियन आर्ट, रिलिजन एण्ड सोसाइटी, दिल्ली, १९८७

श्रीवास्तव, वी०सी०— सन वर्शिप इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, १९७२

श्रीवास्तव, ए०एल०— मेडिवल इण्डियन कल्चर, आगरा, १९६४

हबीब, इरफान— द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, खण्ड III

हट्टन— कास्ट इन इण्डिया, लन्दन, १९६३

हनुमन्थन, के०आर०— अनटचेबिलिटी, मदुरै, १९७९

व्हीलर, जे० टाल्ब्याज— द रिलिजस ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव इण्डिया, दिल्ली, १९८८

हापकिन्स, ई० डब्ल्यू०— द रिलिजन्स ऑव इण्डिया, लन्दन १८९५

— द सोशल ऐण्ड मिलिटरी पोजीशन ऑव द रुलिग कास्ट इन इण्डिया

हेस्टिंग्स, जे०— (सम्पा०) इनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐण्ड इथिक्स, वाराणसी, १९७२, खण्ड I-XIII, इण्डिन वर्ग, १९०८-१९२६

हुसैन, युसुफ— ग्लिम्पसेज ऑव मेडिवल इण्डियन कल्चर, बम्बई, १९६२

त्रिपाठी आर० पी०— स्टडीज इन पोलिटिकल एण्ड सोशियो—इकनॉमिक हिस्ट्री ऑव अर्ली इण्डिया, इलाहाबाद, १९८१

— मिनिस्टर्स इन अर्ली इण्डिया, नीरज प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९९

त्रिपाठी, आर० एस०—हिस्ट्री ऑव कन्नौज, दिल्ली, १९५९, बनारस १९३७

त्रिपाठी, सत्यदेव— प्राचीन भारत मे गुप्तचर सेवा, दिल्ली, १९८५

कोश

इण्टरनेशनल एन्साइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइन्सेज

- एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका
- एन्साइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐण्ड एथिक्स
- एन्साइक्लोपीडिया ऑव सोशल साइन्सेज
- ए सस्कृत-इग्लिश डिक्शनरी (सम्पा०) एम० मोनियर विलियम्स (पुनर्मुद्रण) दिल्ली, १९७६
- ए ग्लोसरी ऑव स्मृति लिट्रेचर, सुरेश चन्द्र बनर्जी, कलकत्ता, १९६३
- डिक्शनरी ऑव पालि प्रापर नेम्स, जी० डी० मललसेकर, खण्ड I-II, लन्दन, १९६०
- द प्रैक्टिकल सस्कृत-इग्लिश डिक्शनरी (सम्पा०) वी० एस० आप्टे, खण्ड I-III, पूना १९५७-१९५९
- बाम्बे ग़जेटियर
- हिन्दू शब्द-सागर, काशी नागरी प्रचारिणी, वाराणसी, १९२५

शोध-पत्रिकाएँ

- अनुसन्धानम्—चौधरी चरण सिह वि० वि० मेरठ संस्कृत अध्यापक परिषद मेरठ।
- अच्युत

- आवर हेरिटेज
- अमेरिकन जर्नल ऑव सोशियोलॉजी
- इण्डियन आर्क्यालॉजी—ए रिव्यू
- इण्डियन ऐन्टिक्वेरी
- इण्डियन कल्चर
- इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
- इस्लामिक कल्चर
- द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू
- एनाल्स ऑव भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट
- ऐन्शिएण्ट इण्डिया
- एपिग्राफिया इण्डिका
- एनुअल रिपोर्ट ऑव द ऑर्क्यालॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
- कान्ट्रिब्युशन टु इण्डियन सोशियोलॉजी
- कम्परेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एण्ड हिस्ट्री, हेग, नीदरलैण्ड
- जर्नल ऑव द अमेरिकन ओरिएण्टल सोसाइटी
- जर्नल ऑव द आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी
- जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री
- जर्नल ऑव द इकनामिक ऐण्ड सोशल हिस्ट्री ऑव द ओरिएण्ट, लैडेन
- जर्नल ऑव द ईश्वरी प्रसाद इस्टीट्यूट ऑव हिस्ट्री
- जर्नल ऑव ऐन्शिएण्ट इण्डियन हिस्ट्री
- जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल
- जर्नल ऑव ओरिएण्टल रिसर्च, मद्रास
- जर्नल ऑव द गङ्गानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद
- जर्नल ऑव द न्युमिस्मैटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया
- जर्नल ऑव द बाम्बे ब्रान्च ऑव द रायल एशियाटिक सोसाइटी
- जर्नल ऑव द बिहार रिसर्च सोसाइटी
- जर्नल ऑव द बिहार ऐण्ड उडीसा रिसर्च सोसाइटी
- जर्नल ऑव द यू० पी० हिस्टारिकल सोसाइटी
- जर्नल ऑव द बाम्बे हिस्टारिकल सोसाइटी
- जर्नल ऑव द इण्डियन म्यूजियम्स

- जर्नल ऑव द इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरिएन्टल आर्ट
- जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑव ग्रेट ब्रिटेन ऐण्ड आयरलैण्ड
- जर्नल ऑव सेन्ट जेवियर कालेज, बाम्बे
- जैन सिद्धान्त भास्कर अथवा जैन एन्टिक्वेरी
- पास्ट ऐण्ड प्रजेन्ट अनु० जॉन मोरिस
- पूना ओरिएन्टलिस्ट
- प्रोसीडिंग्स ऑव द इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस
- प्रोसीडिंग्स ऐण्ड ट्रान्सएक्शन्स ऑव द आल-इण्डिया ओरिएन्टल कांन्फ्रेस
- पुराण
- पटना कालेज आर्क्यालाजिकल ऐण्ड हिस्टारिकल सोसाइटी
- मैन इन इण्डिया—रॉची
- मेम्वायर्स ऑव द आर्क्यालॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
- ब्रह्मविद्या—अडयार लाइब्रेरी बुलेटिन
- बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव ओरिएण्टल ऐण्ड अफ्रीकन स्टडीज, यूनिर्वसिटी ऑव लन्दन
- भारतीय विद्या
- भारतीय कौमुदी, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद
- युनिर्वसिटी ऑव इलाहाबाद स्टडीज
- रूपम
- रिदम ऑव हिस्ट्री
- विद्यापीठ अहमदाबाद, गुजरात
- विश्वेश्वरानन्द इण्डोलॉजिकल जर्नल, होशियारपुर
- बंगीय साहित्य परिषद पत्रिका
- समाज, धर्म एवं दर्शन, इलाहाबाद
- सम्मेलन पत्रिका, इलाहाबाद
- हिन्दुस्तानी
- हिस्ट्री-थ्योरी ऐण्ड स्टडीज इन द फिलॉसफी ऑव हिस्ट्री
- हिस्ट्री ऐण्ड आर्क्यालॉजी